सूर्य-सिद्धान्त

का

विज्ञान भाष्य

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद

भाग १

१९४०

विज्ञान परिषद

इलाहाबाद

प्रकाशक

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९४०

दो भागों में, मूल्य प्रति भाग ३)

शारदा प्रेस, इलाहाबाद में

भूमिका छपी

सूर्य-सिद्धान्त

दो शब्द

प्राचीन भारतीय ज्योतिष ग्रंथोंमें सूर्य-सिद्धांतका स्थान सर्व-प्रथम है। इस पुस्तकके अनुवाद अँग्रेज़ी और हिंदीमें पहले हो चुके हैं, परंतु महावीरप्रसादजीके विज्ञान-भाष्यके समान सरल, स्पष्ट, तथा वैज्ञानिक भाष्य अभी तक किसी भी भाषामें नहीं प्रकाशित हुआ। इस पुस्तकका प्रथम अध्याय (मध्यमाधिकार) १९२४ में प्रकाशित हुआ था और बारहवाँ अध्याय १९३१ में। केवल दो अध्याय रह गये थे। कुछ तो धनाभावके कारण, और कुछ लेखकको अवकाश कम मिलनेके कारण, वर्षों बीत गये और पुस्तक पूरी न हो सकी। जबसे मैं विज्ञान-परिषदका मंत्री हुआ तबसे मेरी बड़ी इच्छा थी कि यह पुस्तक पूरी कर दी जाय। हाथ में कुछ पैसा आते ही मैंने महावीरप्रसादजीसे प्रार्थना की कि वे पुस्तक के बचे अध्यायोंका भाष्य तैयार कर दें और संपूर्ण पुस्तककी भूमिका भी लिख दें। बड़े हर्षकी बात है कि शेष दोनों अध्यायोंके भाष्य और भूमिकाके प्रकाशित होनेसे पुस्तक आज अपने पूर्ण रूपमें जनताके सम्मुख आ सकी है। अपना विज्ञान-भाष्य लिख कर जो सेवा महावीरप्रसादजी श्रीवास्तवने साहित्य और विज्ञानकी की है उसके लिए विज्ञान-परिषद और विद्या-प्रेमी उनके चिरऋणी रहेंगे।

गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०

मंत्री, विज्ञान-परिषद्

विषय-सूची

समर्पण

पूज्यपाद पिताजीकी पुण्य स्मृतिमें, जिनके
चरणोंमें बैठकर गणितका प्रथम
पाठ पढ़ा था ।

स्पष्टाधिकार

विषय-सूची

त्रिप्रश्नाधिकार

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

भूमिका

ज्योतिषशास्त्र वेदका प्रधान[1] अङ्ग है क्योंकि इसीसे यज्ञोंका[2] समय निश्चित किया जाता है। इसलिए प्राचीन कालमें भारतवर्षमें ज्योतिषशास्त्रका अध्ययन-अध्यापन पुण्यकार्य समझा जाता था। इसका दूसरा नाम कालविधानशास्त्र अथवा कालज्ञान भी है। कश्यप संहिता[3] के अनुसार ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक १८ आचार्य थे जिनके नाम यह हैं :—

१—सूर्य, २—पितामह, ३—व्यास, ४—वसिष्ठ, ५—अत्रि ६—पराशर, ७—कश्यप, ८—नारद, ९—गर्ग, १०—मरीचि, ११—मनु, १२—अङ्गिरा, १३—लोमश, १४—पौलिष, १५—च्यवन, १६—यवन, १७—भृगु और १८—शौनक।

नारद संहितामें दिये गये १८ प्रवर्तकोंके नामोंमें कुछ भेद है। इसमें सूर्यका नाम आया ही नहीं है। आचार्य शब्दसे सूर्यका नाम समझा जा सकता है, परन्तु यह बृहस्पतिका नाम भी हो सकता

---

[1] यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥ ऋग्वेद ज्योतिष ३५, यजुर्वेद ज्योतिष ४; देखो हिन्दुस्तान रिविउ जिल्द १३, पृष्ठ २४७।

[2] वेदाहि यज्ञार्थ मभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥ ऋ० ज्यो०, ३६, य० ज्यो० ३—हिन्दुस्तान रिविउ, जिल्द १३, पृ २४७।

[3] सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशरः। कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा। लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः। शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्र प्रवर्तका। सुधाकरकी गणक-तरंगिणी, पृ० १।

है क्योंकि यह देवताओंके आचार्य थे। पौलिशकी जगह पौलस्त्य, लोमशकी जगह रोमश और पितामहकी जगह ब्रह्मा शब्द हैं। पराशर संहितामें ब्रह्माकी जगह विश्वसृक् तथा पौलिश और पुलस्त्य दोनों नाम अलग-अलग हैं, मनुके साथ आचार्य लगा हुआ है जो वृहस्पति हो सकता है। इस प्रकार १९ या २० आचार्य हो जाते हैं। तुलसी शब्दार्थप्रकाश नामक हिन्दी ग्रन्थमें जो १८ नाम दिये गये हैं उनमें सुरगुरु साफ़-साफ़ दिया गया है; सूर्यका नाम नहीं है, इसकी जगह मयवर शब्द है, यवनका नाम नहीं है. पौलिशकी जगह पुलस्त्य है।*

इस भिन्नतासे यह प्रकट होता है कि संहिताकारोंको स्वयम् कुछ नामोंमें शंका थी। जान पड़ता है कि १८ पुराणोंकी समता-के लिए १८ ज्योतिषशास्त्र प्रवर्तकोंकी भी सूची बना दी गयी। आश्चर्य है कि इस सूचीमें वेदाङ्ग ज्योतिषके रचयिता लगध† तथा सोमसिद्धान्तके कर्ता सोम अथवा चन्द्रमाका नाम नहीं आया है। महात्मा लगधका नाम आचार्योंकी सूचीमें न होनेसे जान पड़ता है कि वेदाङ्ग-ज्योतिष ज्योतिषशास्त्रका सिद्धान्तग्रन्थ नहीं समझा जाता था, वरन् वैदिक पुरोहितोंकी सुविधाके लिए एक संग्रहमात्र ‡था। परन्तु ऊपर जो १८ नाम गिनाये गये हैं उन सबके

*पं० इन्द्रनारायण द्विवेदीकृत सूर्यसिद्धान्तकी टीकाकी भूमिका, पृष्ठ २, ३।

†प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥ ऋग्वेद ज्योतिष २।

‡यही मत स्वर्गीय लाला छोटेलालजी बार्हस्पत्य का भी था—

The Jyotish Vedanga is not a treatise on Astronomy designed for systematic study by a novice, but, on the contrary, it is a collection of mnemonic

सिद्धान्तग्रन्थोंका पता नहीं है। "इनमें कई संहिता और सिद्धान्त दोनोंके कर्ता हैं, कोई दोनों में केवल एक ही विषयके हैं, किसीके नामका ग्रन्थ दोनों विषयोंपर भी नहीं उपलब्ध है……उक्त श्लोकों-में जिन नामोंका उल्लेख है वह क्रमसे या अक्रमसे हैं इसका ठीक निर्णय कठिन† है।"

ऊपर के बतलाये हुये नामोंमें गर्ग और पराशरका नाम प्रसिद्ध है, परन्तु इनके कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ सिद्धान्तके विषयमें नहीं मिलते। गर्गकी चर्चा महाभारतमें बहुत आयी है। परन्तु गर्गसंहिता नामकी पुस्तक गणित-ज्योतिषकी नहीं है। पराशर-सिद्धान्तकी चर्चा द्वितीय आर्यभटने (शंकर बालकृष्ण दीक्षितके अनुसार ९५३ ई० के लगभग) अपने महासिद्धान्तमें की है और लिखा है कि उसी मतके अनुसार वह अपना सिद्धान्त बना रहे हैं। लघु और बृहत्पा-राशरी ग्रन्थ जातक सम्बन्धी हैं।

जिन प्राचीन सिद्धान्तोंकी चर्चा वराहमिहिरके समयसे अब तक होती आयी है वे हैं १–पौलिश, २–रोमक, ३–वासिष्ठ ४–सौर, और ५–पैतामह सिद्धान्त, जिनका संग्रह वराहमिहिर ने (५५० ई० के लगभग) अपनी पंच-सिद्धान्तिका* नामक पुस्तकमें किया है जिसमें यह भी बतलाया है कि पौलिश सिद्धान्त

---

rules for the use of the priest who is already familiar with the principles of the Science (Hindustan Review; vol 13, page 244)

†पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदीकृत सिद्धान्त-शिरोमणि गणिताध्याय की टीकाकी भूमिका, पृ० ७।

*डाक्टर थीबो और म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित, अध्याय १, श्लोक ३,४।

स्पष्ट है, उसीके निकट रोमक-सिद्धान्त है, परन्तु सबसे स्पष्ट सूर्य-सिद्धान्त है, शेष दो बहुत भ्रष्ट‡ है। डाक्टर थीबोने दूरविभ्रष्टका अर्थ 'बहुत अशुद्ध' किया है, परन्तु बार्हस्पत्यजी इसका अर्थ 'बहुत भ्रष्ट' या 'विकृत' करते हैं (देखो हिन्दुस्तान रिविउ, जिल्द १४, पृष्ट ३६८)। बार्हस्पत्यजीका अर्थ युक्तिसंगत जान पड़ता है। पंचसिद्धान्तिका—प्रकाशिका टीका के पृष्ठ २ पर म० म० सुधाकर द्विवेदीजी सूर्यारुण-संवादका अवतरण देकर कहते हैं कि गर्गादि मुनियोंको जो ज्ञान पुलिश महर्षिने कहा वह पौलिश सिद्धान्त, ब्रह्मशापके कारण रोमक नगरमें उत्पन्न होकर सूर्यभगवानने जो ज्ञान रोमकके यवन जातिको बतलाया वह रोमक सिद्धान्त, जिसे वसिष्टने अपने पुत्र पराशरको दिया वह वसिष्ट सिद्धान्त, जिसे सूर्यने मय दैत्यको दिया वह सौर-सिद्धान्त और जिस ब्रह्माने अपने पुत्र वसिष्ठको दिया वह पैतामह-सिद्धान्त है।

यह सूर्यारुण संवाद कहाँ से लिया गया यह नहीं बतलाया गया है। इसके अनुसार रोमक सिद्धान्त और सौरसिद्धान्त दोनोंके उपदेशक सूर्य भगवान् हैं, पहला रोमक नगरमें यवनोंको बतलाया गया और दूसरा मयदैत्यको जिनके स्थानका पता नहीं है परन्तु जिसको पाश्चात्य विद्वान यूनानी (यवन) तथा भारतीय विद्वान* असीरिया या बैबीलोनियाका निवासी समझते हैं। परन्तु†

‡पौलिशकृतः स्फुटोऽसौ······परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ। पं० सि०, अध्याय १, श्लोक ४।

*It was revealed to Maya, an Asura, in all probability an Assyrian or rather a Babylonian (Introduction to Burgess's Translation of Surya Sibdhant by P. C. Sen Gupta, page VIII).

†ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्त मध्यमाधिकार, श्लोक १२।

ब्रह्मगुप्तने (६२८ ई०) केवल रोमक-सिद्धान्तको विदेशी (स्मृति वाह्य) समझा था, सौर-सिद्धान्तको नहीं। वर्तमान सूर्यसिद्धान्तके पहले अध्यायके श्लोक २–९ में लिखा है कि सतयुगके अंतमें मय-नामक असुरने ज्योतिष सीखनेके लिए सूर्य भगवान्की तपस्याकी, तब उन्होंने अपने अंश पुरुषको इस कामके लिए नियुक्त किया। इसी अंश पुरुषने सारा सूर्यसिद्धान्त जिसे पहलेके युगोंमें स्वयम् सूर्य भगवान्‡ ने महर्षियोंको बतलाया था मयासुरको बतलाया जिससे महर्षियोंने फिर प्राप्त किया*।

इससे यह नहीं सिद्ध होता कि मय यवन या किसी अन्यदेश-का निवासी था। ऐसा जान पड़ता है कि असुर शब्द किसी विदेशीके लिये नहीं प्रयुक्त हुआ है। भगवद्गीतामें असुर ऐसे लोगों को कहा गया है जो आसुरी सम्पत्तिवाले अथवा आजकलकी भाषामें भौतिकवादी (Materialistic) होते हैं, सांसारिक उन्नति-को ही सब कुछ समझते हैं, वैज्ञानिक उन्नतिके आधार पर अस्त्र-शस्त्रोंकी उन्नति करके संसारका संहार करते हैं। मय भी इसी प्रकारका मनुष्य रहा होगा। मैं समझता हूँ कि मय किसी एक पुरुषका नाम नहीं था वरन् एक जातिका नाम था जो शिल्प और यन्त्र विद्यामें बहुत कुशल थी। मयकी चर्चा महाभारतमें सभाभवनके बनानेके प्रसंगमें आयी है, रामायणमें भी मयकी चर्चा है। शायद इसी मय जातिके कुछ लोग भारतवर्षसे मेक्सिको तक पहुँचकर वहाँ मय सभ्यता† की नीव डाली है जिसके अनेक

‡ केवल ज्योतिषमें ही सूर्यभगवानके उपदेशकी परम्परा नहीं है, वरन् दर्शन-शास्त्रमें भी है (देखो भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १–२)।

*मानाध्याय श्लोक २५–२६।

†Mayan civilization (देखो Hindu America by Chaman Lal)

चिन्ह विशेषकर ज्योषित सम्बन्धी अब तक पाये जाते हैं। इसके सिवा, जब यह साफ़-साफ़ लिखा हुआ है कि मयने सूर्यभगवान्की तपस्या की, तब उन्होंने अपने अंशको ज्योतिष सिखानेके लिए तैयार किया, और उसने पहले ही कह दिया कि जो ज्ञान सूर्यभगवान्ने महर्षियोंको पहलेके युगोंमें दिया था वही मैं तुमको बतला रहा हूँ, यदि कोई भेद है तो कालके परिवर्तनके कारण, तब यह कैसे मान लिया जाता है कि मयने यह ज्ञान अपने देश यूनान, सीरिया अथवा बैबिलोनियासे लाकर दिया। यह क्यों न मान लिया जाय कि मयने बाहरसे आकर भारतवर्षमें सूर्य नामक ज्योतिषाचार्यके किसी शिष्यसे ज्ञान सीखा, यहीं रहने लगा और वही ज्ञान दूसरे महर्षियोंको बतलाया। पाइथेगोरसके बारेमें तो यह प्रसिद्ध है कि वह भारतवर्षमें आकर यहाँके दर्शन शास्त्रका अध्ययन किया था और पुनर्जन्म का सिद्धान्त यहींसे प्राप्त किया था।

जो लोग यह कहते हैं कि भारतीय वैज्ञानिक-ज्योतिषका आधार यूनानका ज्योतिषशास्त्र है वह यह बतलाने की कृपा नहीं करते कि यूनानके किस ज्योतिषशास्त्रसे यह लिया गया है और कब लिया गया है। डाक्टर थीबो ने यह सिद्ध करनेकी बहुत कोशिश की है कि हिन्दू ज्योतिष यूनानी ज्योतिषका ऋणी है और इसके लिए अनेक अनुमान पेश किये, परन्तु अंतमें सिद्ध नहीं कर सके, जैसा उनकी पंच-सिद्धान्तिका की भूमिका* से प्रकट होता है। इसका भावानुवाद यह है :—

*It is by no means impossible that the astronomical knowledge which the Hindus have worked up in their Siddhantas was not derived from any of the great scientific works of the Alexandrian astronomers, but rather from an altogether different

"यह किसी तरह असंभव नहीं है कि जिस ज्योतिषके ज्ञानको हिन्दुओं ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखा है वह सिकंदरियाके ज्योतिषियोंके महान् वैज्ञानिक ग्रन्थोंसे नहीं लिया गया वरन् एक बिल्कुल भिन्न प्रकारकी पुस्तकोंसे जिन्हें, बायोके मतानुसार, यूनानी भविष्यवक्ता काममें लाते थे और जिन्हें हमारे मतानुसार, पंचांग बनानेवाले भी शायद बर्तते थे।......यदि यह मानलिया जाय कि सबसे पहलेके हिन्दू वैज्ञानिक या अर्धवैज्ञानिक ज्योतिषी हिपार्कस, टालमी या थीअन जैसे बड़े-बड़े ज्योतिषियोंके ग्रन्थोंसे परिचित नहीं थे वरन् उस कोटिके ग्रन्थोंसे जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है तो मैं समझता हूँ कि वह क्रम आसानीसे समझमें आ जायगा जिस क्रमसे वैज्ञानिक-ज्योतिष का प्रसार यूनानसे भारतवर्षमें हुआ। परंतु यदि इसके प्रतिकूल हम यह मानलें कि यूनानी ज्योतिषका बहुत अपूर्ण ज्ञान भारतवर्षमें आया और उसी की नीवपर हिन्दू ज्योतिषियोंने अपने पूरे ज्योतिषका महल खड़ा किया तो हम समझ सकते हैं कि सूर्य सिद्धान्तके ढंगके ग्रन्थ कैसे अस्तित्वमें आये जो यद्यपि यूनानी ज्योतिषपर पूरी तरह आश्रित हैं तथापि अनेक बातोंमें नवीनता

---

class of books, viz. the manuals used by Greek astrologers (as Biot suggests) and, as we may not improbably add, almanac makers... The assumption of the earliest scientific (or quasi-scientific) Hindu astronomers being acquainted, not with the writings of men like Hipparchus or Ptolemy or Theon but only with the works of the class mentioned above would, I believe, help to render the whole process of transmission more intelligible."

और मौलिकताके असन्दिग्ध चिह्न प्रकट करते हैं और अनेक बातोंमें अपने मूलसे हीन होते हुए भी कहीं-कहीं ऐसी युक्तियां देते हैं जिनसे निस्सन्देह उनकी प्रतिभा झलकती है। ऐसी दशामें पूर्ण हिन्दू पद्धतिको ऐसा समझना होगा कि पच्छिम से ज्योतिषका जो ज्ञान स्थूल और असम्बद्ध रूपमें आया था वह ज्यों-का-त्यों नहीं ले लिया गया और न उसका भावानुवाद ही कर लिया गया वरन् इन दोनों क्रियाओंके साथ अपने ढंगसे उनको बढ़ाया भी गया और इस मौलिकताका श्रेय सूर्य-सिद्धान्तके अज्ञात रचयिताको मिलना चाहिए।"

इस लम्बे अवतरणसे प्रकट होता है कि डाक्टर थीबो बहुत कोशिश करके भी यह सिद्ध नहीं कर सके कि सूर्य सिद्धान्त यूनानके किसी बड़े ज्योतिषीके ग्रन्थका अनुवाद है अथवा कुछ भविष्य-वक्ताओं या पंचांगकर्ताओंके ग्रन्थोंकी छाया है। बात यह है कि इन महानुभावोंने पहले ही से यह मान लिया कि प्राचीन भारतीयोंको ज्योतिषका उतना ही ज्ञान था जितना वेदाङ्ग ज्योतिष या पैतामह सिद्धान्त में मिलता है, इससे आगे समझने के वे अयोग्य थे, इसी लिए यह कठिनाई पड़ी।

"But if we, on the other hand, suppose that only a very imperfect knowledge of Greek Astronomy was transmitted to India and that Hindu Jyotishas endeavoured to erect on that basis complete system fo their own, we can understand how there came into existence works of the type of the Suryasiddhant, evincing a fundamental dependence on Greek Astronomy, yet showing unmistakable traces of originality in numerous details, remaining indeed in by far the

यदि यह समझते कि प्राचीन कालके भारतीय ज्योतिषी वैसे नहीं थे जैसा कोलब्रुक† या अलबेरुनीने* लिखा है वरन् सूक्ष्म-दर्शी (keen observers) थे तो इनको यह कष्ट न उठाना पड़ता और सच्ची बातपर तुरंत पहुँच जाते। अलबेरुनी और कोलब्रुक

---

greater number of cases inferior to their original, yet hitting here and there on new devices and methods of undeniable merit and ingenuity. The perfect Hindu system would in that case have to be characterized not either as a mere loan from the Greeks or as a mere adaption in the ordinary sense of the word, but rather as a combination and further development proceeding on partly original lines, of elements of astronomical knowledge, transmitted in a rude and detached condition from the west. And the merit of originality as for as it goes, would most probably belong to the, unknown, author of the old Surya Siddhanta. (Introduction to Panchasiddhantika, p. LIII–LV)

†"None of the astronomers I consulted were able to point out in the heavens all the asterisms for which they had names." (quoted by G. R. Kaye in in his Hindu Astronomy, page 5)

*"Albiruni said that he could find no Hindu astronomer to identify them all, and so did Sir William Jones and H. T. Colebrook (G. R. Kaye, Hindu Astronomy, p. 24)

के समयमें भी सभी भारतीय ज्योतिषियोंकी वही दशा नहीं थी जिसका अनुभव इन महानुभावोंको हुआ। यह तो भारतवर्षके पतनकालका अनुभव है जिसके कारण विदेशियोंको यहां आकर अपना सिक्का जमानेका अवसर मिला। बहुत प्राचीन कालमें, जिसका पूरा पता इतिहास-वेत्ताओंको अभी नहीं लगा है, भारतीयों की यह दशा नहीं थी। यदि वेदकी संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंका* निष्पक्ष भावसे अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि उस प्रागैतिहासिक कालमें भी आकाश-दर्शनके अनुभव जहाँ-तहाँ भरे पड़े हैं और उनपर खूब तर्क-वितर्क किया गया है। यदि ऐसा न होता तो अयन विन्दुके भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंमें होने की बात कहाँसे आती‡, ऋतुओं और महीनों तथा तिथियों और नक्षत्रोंका सम्बन्ध किस प्रकार जान पाते। मध्यकालीन भारतमें भी बुद्धिमान् और सूक्ष्मदर्शी ज्योतिषियों और गणितज्ञोंका अभाव नहीं था। आर्यभट, वराह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, मुंजाल, केशव, गणेश आदि के ग्रन्थ पढ़नेवाले यह जान सकते हैं कि आकाशकी घटनाओंके बारेमें इन्होंने कैसी-कैसी सूक्ष्म बातें लिखी हैं। अब तो शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त※ आदिने प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिषियोंके ग्रन्थोंके तुलनात्मक अध्ययन

---

*अथान्यत्राप्युक्तमन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः कालश्चान्नस्य सूर्यो योनिः कालस्य तस्यैतद्रूपं यन्निमेषादि कालात् सम्भृतं द्वादशात्मकं वत्सरमेतस्याग्नेयमर्द्धमर्द्धं वारुणं मघाद्यं श्रविष्ठार्द्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सार्पाद्यं सौम्यं... मै-युपनिषत् प्रपाठक ६, अनुवाक १४।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्चाथ यः प्रागादित्यात् सोऽकालोऽकलोऽथ य आदित्याद्यः सकालः सकलः सकलस्य वा एतद्रूपंयत् संवत्सरः संवत्सरात् खल्वेमाः प्रजाप्रजायन्ते......वही अनुवाक् १५।

‡देखो मराठीका भारतीय ज्योतिषशास्त्र।

से भी यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय ज्योतिष हिपार्कस या टालमीकी ज्योतिषसे सर्वथा स्वतंत्र है।

इस सम्बन्धमें बर्जेस महोदयने सूर्य सिद्धान्तके अँग्रेजी अनुवादके परिशिष्ठमें जो अपना स्वतन्त्र मत दिया है वह ध्यान देने योग्य है, और जिसको मैं यहाँ दुहरा देनेका लोभ रोक नहीं सकता। परन्तु इससे पहले मैं प्रो० ह्विटनी और के (Kaye) महाशयके मतों केभी दिग्दर्शन करा देना चाहता हूँ। प्रोफेसर ह्विटनीके सम्बन्धमें डाक्टर थीबो लिखते हैं, "हम इस बात के लिए प्रो० ह्विटनीके बहुत ऋणी हैं कि उन्होंने इस विषय में अच्छी तरह विचार किया है और लिखा है कि टालमी ने यवन ज्योतिष में जो जो संशोधन किये हैं हिन्दू-ज्योतिषमें उनका अभाव है जिससे यह नतीजा निकलता है कि भारतवर्षमें यूनानसे ज्योतिष का जो ज्ञान आया वह टालमी के पहले आया। ऐसा मान लेने से उन भिन्नताओं का भी समाधान हो जाता है जो हिन्दू ज्योतिष और टालमीके सिंटैक्सिसमें हैं।"* इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दू ज्योतिषका आधार टालमीका सिंटैक्सिस नहीं है। परन्तु इसपर के महाशय लिखते हैं, "देखने में तो इसका अर्थ यह है कि ईस्वीकी लगभग दूसरी शताब्दीके बाद भारतवर्ष ने पच्छिमसे कोई ज्ञान नहीं ग्रहण किया और विशेष कर इसका अर्थ यह जान पड़ता है कि छठवीं शताब्दी और उसके बाद वाले भारतीय ज्योतिषी यूनानके

※देखो Translation of the Suryasiddhanta by Burgess with an introduction by Prabodhchandra Sen Gupta, Calcutta University Press, 1935 edition. और इन्हींका खण्डखाद्यक का अनुवाद और उसकी भूमिका तथा परिशिष्ठ, १६३४ का छपा देखो।

*पंचसिद्धान्तिका, भूमिका, पृष्ठ LI.

वैज्ञानिक ज्योतिषके बारे में कुछ नहीं जानते थे जो दूसरी शताब्दी के बाद बढ़ा। परन्तु हिन्दू-यवन ज्योतिषके जिस ग्रन्थका पता हमको है वह छठीं शताब्दीके आरम्भ का है। ...परन्तु यह मत स्वीकार करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है कि टालमीके महान् ग्रन्थके प्रकाशनके बाद पाश्चात्य विद्याका और ज्ञान पच्छिमी भारतमें नहीं आया। संभवतः इसका अर्थ यह है कि हिन्दू ज्योतिषियोंने टालमीके सिद्धान्तका कुछ भाग स्वीकार नहीं किया और यूनानके उसी परम्परा-प्राप्त-ज्ञानपर चिपटे रहे जो टालमीके पहले यहाँ आया था।"‡

के महाशयने यह नतीजा बहुत खींच-तान कर निकाला है। भारतीय ज्योतिषी इतने मूर्ख नहीं थे कि वे टालमीके उन नवीन सिद्धान्तों को छोड़ देते जिनसे यवन ज्योतिषकी महत्ता प्रकट होती है और केवल उन्हीं बातोंको बंदरियाके बच्चे की तरह चिपटाये रहते जो बहुत महत्व नहीं रखते। यथार्थ बात यह जान पड़ती है कि जब तक भारतवर्षमें बौद्धमत उन्नतिके शिखर पर था और ज्यौतिषके विषयमें राज दरबारोंमें उदासीनता थी तबतक हमारे ज्योतिषियोंने केवल उन्हीं ग्रन्थोंसे सन्तोष किया जिन्हें वे बचा सके थे, परन्तु जब बौद्धमत का ह्रास और हिन्दूमत की वृद्धि होने लगी तब फिर इस विषय पर खोज होने लगा, कुछ लोगोंने विदेशी ग्रन्थों का अध्ययन करना आरंभ किया और रोमक सिद्धान्त जैसा ग्रन्थ प्रकट किया और कुछ लोगोंने स्वतंत्र रूपसे अपने ही यहाँ की विद्याका विकास किया*। आर्यभटके उद्धृत श्लोकों से सिद्ध होता है कि उसने भारतके प्राचीन ज्योतिषका

‡ Memoirs of the Archaeological Survey of India No. 18–Hindu Astronomy, by G. R. Kaye, p.129

मंथन करके तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रहों और नक्षत्रों का स्वयम् निरीक्षण करके आर्यभटीय ग्रन्थका निर्माण किया था।

के महाशय लिखते हैं, "इसमें संदेह नहीं कि वराहमिहिरके पास यवनों के सिद्धान्तग्रन्थ मौजूद थे और उनकी व्याख्याके ढंगसे यह जान पड़ता है कि वे नये विचार या कम से कम ऐसे विचार और शब्द जो दोनोंमें सामान्य नहीं थे अपने ग्रन्थोंमें ला रहे थे और यह तो निश्चय है कि इनमें से कुछ विचार टालमीके बाद के हैं।" इसमतका खण्डन करनेके लिए मुझे सबसे प्रबल प्रमाण यह जान पड़ता है जिसमें वराहमिहिरने अयन-चलन या वसंत-संपात-चलन की अनभिज्ञता† दिखलायी है, यद्यपि उनको इस बातका ज्ञान था कि उनके समयमें दक्षिणायन कर्क राशिके आरंभमें अथवा पुनर्वसु नक्षत्रमें होता था और प्राचीन कालमें यह अश्लेषा के आधे भागपर होता‡ था। यदि उनको हिपार्कस या टालमीके ग्रन्थसे परिचय होता तो इनके लिखे वसन्त-सम्पातचलन (precession of equinoxes) को अवश्य मान लेते। इस बात पर ब्रह्मगुप्त ने भी नहीं ध्यान दिया

---

*सदसज्ज्ञान समुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तर रत्नं मया निमग्नं स्वमतिनावा ॥ ४९ ॥
आर्यभटीयं नाम्नापूर्वं स्वायम्भुवं सदासद्यत्।
सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रति कञ्चुकं योऽस्यः ॥ ५०॥
क्षितिरवियोगाद्दिनकृद्रवीन्दुयोगात् प्रसाधितश्चेन्दुः।
शशि तारा ग्रह योगात्तथैव ताराग्रहास्सर्वे ॥ ४८॥ आर्यभटीय गोलपाद

†देखो विज्ञानभाष्य पृष्ठ ३३९ और उसकी पाद टिप्पणियाँ तथा पंचसिद्धान्तिका, अध्याय ३, श्लोक १।

‡आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदासीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः ॥ २१ ॥

था जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्तके समयतक वसंत-सम्पातचलनकी बात मध्यकालीन भारतीय ज्योतिषियोंको नहीं खटकी थी यद्यपि प्राचीन कालमें आकाशके प्रत्यक्ष दर्शनसे उनको अनुभव हो गया था कि उत्तरायण और दक्षिणायनके नक्षत्र बदल गये हैं। क्योंकि मैत्रायिणी उपनिषद्में इस बातका उल्लेख है कि दक्षिणायन उस समय होता था जब सूर्य मघा से लेकर धनिष्ठाके आधे भाग तक रहता था और उत्तरायण उस समय होता था जब सूर्य श्रविष्ठार्ध से अश्लेषा तक रहता था। वेदाङ्ग ज्योतिषमें भी यह साफ़-साफ़ बतलाया गया है कि उत्तरायणका आरंभ उस समय होता था जब सूर्य श्रविष्ठाके आदिमें आता था। वराहमिहिर इसी की चर्चा करते हुए बतलाते हैं कि हमारे समयमें दक्षिणायन पुनर्वसुमें होता है, जब इससे भिन्न हो तो निरीक्षण करके निश्चय कर लेना चाहिए❋।

इसके सिवाय यवनोंके मेटानिक युग (Metonic cycle) तथा सरोयुग Saros से भी भारतीयोंने कोई लाभ नहीं उठाया और न कहीं इसकी चर्चा है। इससे प्रकट होता है कि वे यूनानियोंके ज्योतिष साहित्यसे परिचित नहीं थे अथवा परिचित होते हुए भी इसको ऐसा महत्वपूर्ण नहीं समझा कि इसे उल्लेखयोग्य समझते। इस बातका प्रमाण विज्ञान-भाष्यमें जगह जगह दिया गया है कि हमारे ज्योतिषियोंके ध्रुवाङ्क टालमीके ध्रुवाङ्कोंसे कितने स्वतंत्र हैं और टालमीके ध्रुवाङ्कोंकी अपेक्षा कहीं-कहीं यथार्थके अधिक निकट हैं, फिर भी दो चार बातें श्री प्रबोध चन्द्र सेन गुप्त की खण्ड-खाद्यक तथा सूर्यसिद्धान्त की भूमिकाके आधार पर यहां लिख देना उचित समझ पड़ता है।

❋ वाराही संहिता, आदित्य चार पृष्ठ १६, १७, विज्ञान-भाष्य पृष्ठ ३२१।

सौरवर्षके मान भिन्न-भिन्न मतोंके अनुसार :—

	दिन	घंटा	मिनट	सेकंड	
वर्तमान सूर्य सिद्धान्त	३६५	६	१२	३६·५६	यथार्थसे ३ मिनट २७ से० अधिक
आर्यभटीय	३६५	६	१२	२९·६४	,, ३ ,, २० ,, ,,
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त	३६५	६	१२	९	,, ३ मिनट अधिक
मध्यमनाक्षत्र वर्ष लॉकियरके अनुसार	३६५	६	९	९·३	यथार्थ नाक्षत्र वर्ष
मन्द-केन्द्र-वर्ष ,,	३६५	६	१३	४९·३	
सायनवर्ष ,,	३६५	५	४८	४६·०५४	
सायनवर्ष टालमीके अनुसार*	३६५	५	५५	१२	यथार्थ सायनवर्षसे ६ मि० २६ से० अधिक
,, कोपरनिकस के अनुसार×	३६५	५	५५	५८	,, ,, ७ ,, ९ ,,
नाक्षत्रवर्ष मेटनके अनुसार†	३६५	६	१८	५७	यथार्थ नाक्षत्रवर्षसे ९ ,, ४८ ,,
,, बेबीलोनियन§	३६५	६	१३	३९·३	,, ,, ४ ,, ३० ,,

* Syntaxis, Karl Manitius's edition, Vol. I, p. 146.

× Heroes of Science, p. 63

§ Encyclopaedia Britannica, History of Astronomy.

ऊपरके अंकोंसे स्पष्ट है कि नात्तत्रवर्षके भारतीय मान यथार्थ नात्तत्रवर्षसे ३ मिनट २७ सेकंडसे अधिक बड़े नहीं हैं और ब्रह्मगुप्तका मान इसके सबसे निकट है। वास्तवमें यह मान मन्द-केन्द्र वर्षके मानसे सवा मिनटके लगभग कम हैं इसलिए इससे, प्राय: बिल्कुल मिलते हैं। यही कारण है कि सूर्यके मन्दोच्चकी गति हमारे ग्रन्थोंमें प्राय: नगण्यसी मानी गयी है। इनकी तुलनामें मेटन और बैबीलोनियाके नात्तत्रवर्षके मानोंमें अधिक भूल है। टालमी और केपलरके सायनवर्षके मान यथार्थ सायनवर्षसे साढ़े ६ या ७ मिनट अधिक हैं। इसलिए सिद्ध है कि हमारे ज्योतिषियों के बेध टालमी वा केपलरके बेधोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध हैं और इसलिए स्वतन्त्र भी हैं।

इसी प्रकार यदि मन्दोच्चों, पातों तथा अन्य ध्रुवाङ्कोंकी तुलनाकी जाय तो प्रगट हो जाता है कि हमारे आचार्योंके माने हुए ध्रुवाङ्क अधिकांशमें यथार्थसे अधिक निकट हैं। इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि हमारा ज्योतिष टालमी या किसी अन्य विदेशी ज्योतिषकी छाया नहीं है वरन् स्वतन्त्र हैं। इन बातोंका दिग्दर्शन विज्ञान-भाष्यमें जगह जगह कराया गया है।

इस विषयमें अधिक न लिखकर मैं बर्जेस महोदयका मत‡ लिख देना पर्याप्त समझता हूँ :— "अपनी खोजोंसे मुझे जो कुछ मालूम हुआ है वह मुझे बाध्य करता है कि मैं प्रोफेसर ह्विटनीके उन बहुमूल्य टिप्पणियोंके विचारोंसे मतभेद प्रकट करूँ जिन्हें उन्होंने मेरे अनुवादपर किया है क्योंकि सत्यका तकाजा यह है कि मैं कम-से-कम उन परिणामोंका सार संक्षेपमें दे दूं जिनपर मैं उन

---

‡ Burgess's Translation of Suryasiddhanta 1935 edition p. 387–392.

विचारोंके सम्बन्धमें पहुँचा हूँ। मेरे परिणामोंसे सिद्ध होता है कि हिन्दुओंको इस बातका श्रेय मिलना चाहिये कि वे ज्योतिर्विज्ञानके मूल आविष्कारक थे, विशेष करके यूनानियोंकी तुलनामें।

"प्रोफेसर ह्विटनीका मत यह मालूम होता है कि हिन्दुओंने गणित और फलित दोनों प्रकारकी ज्योतिषको यूनानियोंसे पूरा-पूरा ले लिया है और जो कुछ इनसे नहीं लिया है उन्हें अरबों, खाल्दिया निवासियों और चीनियोंसे लिया है। मेरी समझमें यह हिन्दुओंको उतनी प्रतिष्ठा नहीं देते जितनी के वे योग्य हैं; इसके प्रतिकूल यूनानियोंको यह अधिक श्रेय देते हैं जिसके वे सचमुच अधिकारी नहीं हैं। साथ ही साथ मैं यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि पिछले कालमें यवनोंने ज्योति विज्ञानका अधिक सफलतापूर्वक अनुशीलन किया था। हिन्दू ग्रन्थोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जो टालमीके सिंटैक्सिस ग्रन्थकी समानता करे। फिर भी मुझे जो प्रकाश अब मिला है उससे मुझे यह अवश्य मानना चाहिए कि ज्योतिषकी उन बहुतसी प्रारम्भिक बातों और सिद्धान्तोंके लिए जो इनके ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं हिन्दुओंमें मौलिकता थी। ज्योतिषके अनुशीलनमें भी अधिकांशमें मौलिकता थी और यूनानियोंने या तो इन्हीं से लिया है या किसी ऐसे स्रोतसे जहां यह बातें और सिद्धान्त भारतवर्षसे ही आये थे। इस कथनको मैं इतना बदल सकता हूँ कि न तो हिन्दुओंने यवनोंसे और न यवनोंने हिन्दुओंसे ऋण लिया वरन् दोनोंने किसी एकही मूल-स्रोतसे अपनी पूंजी बढ़ायी है। लेकिन अब तक मुझे जो कुछ मालूम हो सका है उससे मैं यह नहीं मान सकता कि ज्योतिर्विज्ञानके लिए हिन्दू यवनोंके बहुत ऋणी हैं। इस बातका भी कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है कि यूनानियोंको ही ज्योतिषकी उन प्रारम्भिक बातों

और सिद्धान्तोंके लिए श्रेय देना चाहिए जो उनके तथा अन्य प्राचीन देशोंकी ज्योतिषमें सामान्य रूपसे पायी जाती हैं और जो इस प्रकारकी हैं जिनसे सबका एकही मूल जान पड़ता है और मालूम होता है मानों एक दूसरेसे लिया गया है। स्पष्ट करनेके लिए यह अच्छा होगा कि मैं उन बातों और सिद्धान्तोंको ख़ास तौरसे लिख दूँ जिनकी चर्चा अभी की गयी है। वे यह हैः—

"१—चन्द्रमाकी गतिके अनुसार राशिचक्रका २७ या २८ नक्षत्रोंमें विभाग—यह विभाग थोड़ेसे परिवर्तनके साथ हिन्दू, अरबी और चीनी तीनों पद्धतियोंमें पाया जाता है।

२—सूर्यकी गतिके अनुसार राशिचक्रका १२ राशियोंमें विभाग—जिनके नाम राशियोंके नामके अनुसार रखेगये हैं। हिन्दू और यूनानी दोनों पद्धतियों में इन नामोंका एकही अर्थ है। इन दोनोंमें इतनी समानता है कि यह मत निस्सन्देह ठीक है कि इनका विभाजन और भागोंका नामकरण एकही मूलसे हुआ है।

३—ग्रहोंकी गतिका कारण बतलाने तथा उनके स्पष्ट स्थानकी गणना करनेके लिए प्रतिवृत्तों (Epicycle) की कल्पना। यह हिन्दू और यूनानी दोनों पद्धतियोंमें सामान्य हैं। इस विषय में दोनों पद्धतियोंमें इतनी समानता है कि यह नहीं कहा जासकता कि प्रत्येकने इसका आविष्कार स्वतन्त्र रूपसे किया है।

४—हिन्दू, यूनानी और अरबी फलित ज्योतिषमें समानताएँ ही नहीं कुछ अंशोंमें इतनी अभिन्नता है जिससे साफ़ प्रकट होता है कि इनके प्रारम्भिक और मुख्य मुख्य तथ्य एकही जगहसे लिये गये हैं।

५—उन पाँच ग्रहोंके नाम जो प्राचीनोंको मालूम थे और उनके आधार पर सप्ताहोंके नाम।”

“इन पर मेरे साधारण विचार यह हैं :—

प्रथम तो किसीके लिए इस बातका दावा कि वे मौलिक आविष्कारक या निर्माता हैं इतना प्रमाणयुक्त नहीं जान पड़ता जितना हिन्दुओंका। दूसरे, उनमेंसे अधिकांशके लिए मौलिकताका प्रमाण हिन्दुओंके पक्षमें अधिक मिलता है; कुछके लिए तो प्रमाण प्रायः या बिल्कुल निश्चयात्मक है, और यह महत्वपूर्ण है। इन पाँचोंके बारेमें कुछ संक्षेपमें लिखना आवश्यक है :—

१—चन्द्रमाकी गतिके आधार पर राशिचक्रका २७ या २८ नक्षत्रोंमें विभाग—इस विभागका सूक्ष्म विचार हिन्दुओंमें निस्सन्देह बहुत प्राचीन कालमें था जब कि अन्य देशवालोंके यहाँ इस प्रमाणका या तो बिल्कुल अभाव है या उसकी बहुत कमी है जिससे मुझे निश्चय रूपसे इस मतकी ओर झुकना पड़ता है कि इसके आविष्कारक हिन्दू हैं। यह अब भी मेरा निश्चित मत है यद्यपि बायो महाशय (Biot) ने इसका दूसरा मूल सिद्ध करनेकी बहुत कोशिशकी है।

२—सौरगतिके अनुसार राशिचक्रका १२ भागोंमें विभाजन और उनके १२ नाम—यह सिद्ध किया जा सकता है कि भारतवर्षमें यह विभाग तथा इनके नाम उतने ही पुराने समयसे अस्तित्वमें हैं जितने पुराने समयसे और देशोंमें। यह सच है कि यह प्रमाण उतना स्पष्ट और सन्तोषजनक नहीं है परन्तु तो भी इस श्रेणीका है जिससे यह विश्वास किया जा सकता है कि यह विभाग भी हिन्दुओंको शताब्दियों पहले मालूम था जबकि और देशोंमें इसका कोई चिन्ह भी नहीं था।

३—प्रतिवृत्त या मंदपरिधिकी कल्पना—हिन्दू और यूनानी पद्धतियोंमें इस कल्पना का विकास भिन्न-भिन्न रूपमें हुआ है जिससे यह कहा जा सकता है कि यदि एक ने दूसरेसे कुछ लिया है तो वह केवल संकेत मात्र है। जहाँ तक अकेले इस विषयसे सम्बन्ध है यह माननेके लिए हमारे पास इतने ही प्रमाण हैं कि यवनोंने हिन्दुओंसे ऋण लिया जितने कि इसके विपक्षमें, लेकिन और विचार इस अनुमानके अनुकूल जान पड़ते हैं कि हिन्दू इस कल्पनाके मूल प्रतिपादक थे।

४—फलित ज्योतिषके निर्माण और अनुशीलनके सम्बन्धमें विचार करनेमें बहुत गौरव नहीं है। हिन्दू और यूनानी पद्धतियोंमें इतनी समानता है कि यह नहीं समझा जा सकता कि यह दोनों स्वतन्त्र हैं लेकिन इनके निर्माणका गौरव मेरे मतसे हिन्दुओं और खाल्दियावालोंके हिस्सेमें पड़ना चाहिए। सब बातोंका विचार करनेपर यही जान पड़ता है कि पहले पहल हिन्दुओंने ही इसका नर्माण और अनुशीलन किया। हिन्दू पद्धतियोंमें तीन या चार अरबी या यूनानी शब्दों के होने से यह कहा जा सकता है कि उनका व्यवहार पीछे किया गया है। होराके सम्बन्धमें हिरोडोट-सकी गवाही अनुचित न होगी। वह कहता है कि धूप-घड़ी और शंकु (gnomon) तथा दिनके १२ खंडों का विभाग यूनानियोंने बेबीलोनिया के निवासियोंसे लिया। इस बातके अनेक प्रमाण हैं कि दिनके २४ विभाग यूनानकी अपेक्षा सचमुच भारतवर्ष में नहीं तो पूर्वके अन्य देशोंमें पहले से मौजूद थे। हिन्दू ज्योतिष-सिद्धान्तोंमें तथाकथित यूनानी शब्दोंके व्यवहारके लिए हम उन बहुतसे शब्दों के नाम ले सकते हैं जो संस्कृत और यूनानी भाषा में साधारणतः पाये जाते हैं, जो या तो दोनोंमें किसी एक ही मूलसे आये या बहुत प्राचीन कालमें संस्कृतसे यूनानी भाषा

में आ गये क्योंकि जहाँ तक मुझे मालूम है कोई यह नहीं कह सकता कि युनानी भाषा संस्कृत की जननी है।......

५—सभी ग्रहोंके नाम युनानी और हिन्दू पद्धतियोंमें एकसे नहीं हैं। युनानी ज्योतिषमें ग्रहोंके वर्तमान नाम कम से कम इतने पूर्व में रचे गये हैं जितना खाल्दिया है। हीरोडोटस कहता है, "देवताओंके नाम मिस्रसे युनान में आये।" ग्रहोंके नाम देवताओंके नाम हैं।......

यह निश्चय करना असम्भव है कि ग्रहोंके नामपर सप्ताहके दिनोंके नाम पहले पहल किस देश में रखे गये। इस सम्बन्धमें प्रोफेसर विल्सनका यह मत है जिसको मैं भी मानता हूँ—इस परिपाटीका उद्गम स्थान ठीक ठीक जाना नहीं जा सकता क्यों कि यवनों को यह अज्ञात थी और रोमवालोंने इसे बहुत पीछे स्वीकार किया था। यह साधारणतः कहा जाता है कि इसके आविष्कारक मिश्रवाले या बैबीलोनियावाले हैं परंतु इसके लिए प्रर्याप्त आधार नहीं है। हिन्दुओंको इसके आविष्कारका उतना-ही श्रेय दिया जा सकता है जितना औरों को।

एक शब्द अरबवालोंके लिए भी कह देना चाहिए कि उनको ज्योतिष-सिद्धान्त या ज्योतिर्विज्ञानके आविष्कारक का श्रेय कहाँ तक देना चाहिए। पहली बात तो यह है कि वे स्वयम् ऐसे सम्मान का दावा नहीं करते। वे स्वीकार करते हैं कि उन्होंने भारतवर्ष और युनानसे ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त किया। पूर्वकालमें उन्होंने प्रथम हिन्दू ज्योतिष सिद्धान्तके दो या तीन ग्रन्थ प्राप्त किये थे। "दूसरे अब्बासी खलीफा अलमंसूरके शासन कालमें, (७७३ ई० के लगभग) जैसा कि बेन्-अल्-अदमी की ज्योतिष की सारणी (tables) की भूमिका में लिखा गया है जो ९२० ई० में प्रकाशित हुई थी, एक भारतीय ज्योतिषी, जो अपने विषयका

बड़ा विद्वान था, खलीफाके दरबारमें गया था। वह अपने साथ ग्रहोंकी मध्यम गतिके अनुसार मन्द-फलोंकी सारणी तथा सूर्य्य और चन्द्रमाके ग्रहणोंके वेध तथा राशियोंके पूर्व क्षितिजमें उदय होने के समयों की सारणी लेता गया था जो एक भारतीय राजा की बनायी सारणीसे लिये गये थे जिसका नाम उस अरबी ज्योतिषी के अनुसार फिघर (Phigher) या फिगर था (Colebrook Hindu Algebra पृष्ठ LXIV)। यह बात तो उनके टालमीके ग्रन्थ सिंटाक्सिसके अनुवादसे ही सिद्ध होती है कि अरब वाले यूनानी ज्योतिषका परिचय प्राप्त करनेके पहले हिन्दू ज्योतिषसे पूरे परिचित थे।

यह तो सबको मालूम है कि यूनानी ज्योतिषका यह महान ग्रन्थ यूरोपमें अरबी पाठान्तर द्वारा मालूम हुआ। इस पाठान्तरके लैटिन अनुवाद में उत्तरपात (Ascending node) को शिरका पात (Node of the head) और दक्षिणपातको (Descending node) पूँछ का पात (Node of the tail) कहा गया है जो साफ़-साफ़ हिन्दू शब्द राहु और केतुके अनुवाद हैं। यह तथ्य तथा अन्य गवाहियाँ साफ़ साफ़ जाहिर करती हैं कि अरब ज्योतिषपर हिन्दू ज्योतिषका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यथार्थमें इन लोगोंने इस विद्यामें कोई मौलिक काम न करके केवल उन बातोंको आगे बढ़ाया है जो उन्हें पूरब और पच्छिमके पड़ोसियोंसे मिली हैं।

एक और बात भी यहाँ कह देना उचित जान पड़ता है जिससे सिद्ध होता है कि अरबोंको स्वयम् इस बातका विश्वास है कि विज्ञानके सम्बन्धमें वे हिन्दुओंके ऋणी हैं। वे कहते हैं कि ६ अंकोंका निर्माण करनेवाले हिन्दू हैं (यद्यपि युरोपके लोग इसके लिए अरबोंको श्रेय देते हैं)। अंक गणितके सभी अरबी और फारसीके ग्रन्थ कहते हैं कि इन अंकोंके आविष्कारक भारतीय हैं

(Strachey. on the early History of Algebra, As. Res. XII. 184, and likewise Colelrooke's, Hindu Algebra p. p LII--LIII) जहाँ वही बात दूसरे प्रमाणके आधारपर दुहरायी गयी है।

ऊपर के तथ्यों और विचारोंसे जिनसे प्रकट होता है कि गणित और ज्योतिर्विज्ञानमें अरब हिन्दुओंके कितने ऋणी हैं यह बात भी सिद्ध होती है कि चन्द्रगतिके अनुसार राशिचक्रको २८ भागोंमें पहले पहल बाँटनेवाले हिन्दू ही थे। सब बातोंका विचार करने पर यह कहना कि अरब इस विभागके आविष्कारक थे बिल्कुल युक्तिशून्य है।

सूर्यकी गतिके अनुसार राशिचक्रके १२ भागोंमें विभाजित होने तथा उनका नामकरण करनेके बाद मेरी समझमें यह स्पष्ट है कि एक दूसरेके पास केवल भाव मात्र पहुँच सके होंगे और वह भी बहुत पहले (अर्थात् हिपार्कस या टालमीके पहले) क्योंकि यदि यह मान लिया जाय कि हिन्दुओंने यूनानियोंसे पीछे ऋण लिया तो हमको यह ठीक-ठीक जाननेमें कठिनाई देख पड़ती है कि वह क्या था जिसे उन्होंने लिया; क्योंकि दोनों जातियोंकी पद्धतियोंके ध्रुवाङ्क और परिणाम किसी भी विषयमें एक दूसरेसे ठीक ठीक नहीं मिलते और अधिक महत्वपूर्ण ध्रुवाङ्कों और परिणामोंके बारेमें जैसे विषुवसम्पातकी वार्षिक गतिके मान, पृथ्वीकी तुलनामें सूर्य और चन्द्रमाके सापेक्ष आकार, सूर्यके परम मन्दफलके मान, आदिमें, हिन्दू यवनोंकी अपेक्षा यथार्थसे अधिक निकट हैं, और ग्रहोंके भगण-कालोंके विचारसे वे उतने ही अभ्रान्त हैं जितने यूनानी। ग्रहोंके भगण-कालोंकी तुलना करनेसे यह विदित होता है कि चारके बारेमें हिन्दू यथार्थसे बहुत निकट हैं और ६ के बारेमें टालमी। ज्योतिषके ध्रुवाङ्कोंके लिए हिन्दुओं या

यवनोंमें से किसीने भी दूसरेसे बहुत कम उधार लिया है। जिन बातोंसे यह सिद्ध होता है कि वे एक जातिसे दूसरी जातिके पास गयीं उनके विषयमें मेरा अब तकका जो ज्ञान है उससे मुझे तो यह कहना पड़ता है कि वे पूरबसे पच्छिमको गयी न कि पच्छिमसे पूरबको जो कि कोलब्रुकके अनुमानके विरुद्ध है। ज्योतिषके सम्बन्धमें भी मैं अपने भाव उसी भाषामें प्रकट करूँगा जिस भाषा में यह प्रसिद्ध विद्वान् इन दोनों जातियोंके तत्वज्ञान तथा धार्मिक व्यवस्थाओंके सम्बन्धमें लिखता है, विशेष कर पुनर्जन्म-वादके बारे में, जो कि हिन्दू और यूनानी दोनों पद्धतियों में पाया जाता है और सूचित करता है, कि यह एक से दूसरे के पास गयी है, 'मुझे यह परिणाम निकालनेके लिए झुकना चाहिए कि इस बारे में भारतीय गुरु थे न कि चेले। कोलब्रुकने यह मत अपने प्राच्य दर्शनके अन्तिम निबन्ध में प्रकट किया है।"❀

हिन्दुओंकी निरीक्षण-शक्ति—के महाशय ने यह कई बार लिखा है कि हिन्दुओंमें निरीक्षण-शक्तिका अभाव था। और प्रमाणमें अल्-बेरूनीके इस मत को दो तीन बार दुहराया है कि उसने किसी ज्योतिषी को ऐसा नहीं पाया जो राशि-चक्रके सत्ताइसों नक्षत्रोंको दिखला सके। इस समय भी कुछ ज्योतिषी ऐसे मिलेंगे जो यह न बतला सकेंगे। परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि प्राचीन कालके भारतीय ऐसे ही थे आँखमें धूल झोंकना है। संहिता और ब्राह्मण आदि ग्रन्थोंमें जो कि ज्यौतिष के ग्रन्थ नहीं हैं ऐसी बातें दर्जनों स्थानोंमें मिलती हैं जिनमें नक्षत्रों, महीनों, पूर्णिमाओं और अयनोंका वर्णन है जिनके कुछ उद्धरण

❀ Transactions of the Royal Asiatic Society I—579

विज्ञान-भाष्यमें दिये गये हैं। आजसे चार-पांच हज़ार वर्ष पूर्व अयन विन्दुओंका कितना सूक्ष्म निरीक्षण किया गया था यह मैत्रायिणी उपनिषद्के "मघाद्यं श्रविष्ठार्धं..." नामक प्रसिद्ध श्लोक तथा वेदाङ्ग ज्योतिषके "प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसा-वुदक्..."आदि वाक्योंसे स्पष्ट होता है कि निरीक्षण में वे कितने कुशल थे। हां, अयनकी वार्षिक गतिके सम्बन्धमें उन लोगोंने कुछ नहीं लिखा है। उसका कारण यह जान पड़ता है कि प्राचीन कालमें लिखने की वह सुविधा नहीं थी जो पीछे हुई। इस लिए ज्ञानकी सारी बातें, वेद, ब्राह्मण उपनिषद आदि कंठस्थ ही रहते थे। ऐसी दशामें ज्योतिष संबंधी तुलना करके अयन चलन की गति निकालना संभव नहीं था। परन्तु अयन बिन्दुओं में जो अंतर पड़ता हुआ देख पड़ता था उसका उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण किया था, इसमें सन्देह नहीं है।

वराहमिहिरने इन्हीं निरीक्षणोंके विचारसे कहा है कि पहले दक्षिणायन अश्लेषामें होता था परन्तु अब पुनर्वसुमें होता है। इससे भी सिद्ध होता है कि वराहमिहिर स्वयम् निरीक्षण करते थे। इन्होंने तो वाराही-संहिता में आकाश, अंतरिक्ष तथा भूगर्भ की बहुत सी घटनाओं का वर्णन किया है जो सूक्ष्म निरीक्षणके ही परिणाम हो सकते हैं। हाँ, इन्होंने तथा इनके पीछे होनेवाले ब्रह्मगुप्त आदिने अयन-चलन के बारे में कुछ नहीं लिखा है। उसका कारण स्पष्ट है। वराहके समयमें अयन-बिन्दु कर्क राशिके आदि में था और उस समयसे ब्रह्मगुप्त केकाल तक इसकी गति दो या तीन अंशसे अधिक नहीं हुई थी इस लिए ब्रह्मगुप्तका ध्यान इधर नहीं गया। परंतु जब अंतर ५, ६ अंश का होगया तो मुंजाल या मंजुलने पहले पहल (९३२ ई० में) इसका पता लगाया और जो अयन गति स्थिर की वह यथार्थ के बहुत निकट थी। क्योंकि देखनेमें

यद्यपि एक कला प्रतिवर्षकी गति अधिक जान पड़ती है तथापि जब इसका विचार किया जाय कि हमारे यहाँ नाक्षत्र-वर्षका मान ३ मिनटके लगभग यथार्थ नाक्षत्र-वर्षसे अधिक है तो यह अंतर नगण्य हो जाता है। टालमीने तो अयन चलनकी गति ३६ विकलासे अधिक नहीं मानी थी उसके बाद फिर केपलरने ही इसका निकट मान निकाला था ।

के महाशय कहते हैं कि जबतक सौर वर्षका मान ठीक-ठीक न मालूम हो तब तक इसका पता कैसे लग सकता है । परन्तु ऊपरके उदाहरणसे यह बात अशुद्ध सिद्ध होती है। निरीक्षणकी सूक्ष्मताके बारे में महाभारतकी ग्रहण सम्बन्धी घटना, "चन्द्रसूर्यावुभौ......" के बारे में विद्वानोंका ध्यान आकर्षित करना उचित समझता हूँ। प्राचीन ज्योतिषके सम्बन्धमें इस समय भी प्रबोध चन्द्र सेन गुप्त जी की खण्डखाद्यककी टीका सबसे नयी है जिसके परिशिष्ट १ में वह लिखते हैं (देखो पृष्ठ १५६), 'दोनों ग्रहण महीने के १३ वें दिनोंमें नहीं पड़ सकते थे जबतक कि महीनेका प्रारंभ चन्द्रमाके प्रथम दर्शनसे न माना जाय। यह प्रथा प्राचीन कालमें बैबीलोनियामें थी और मुसलिम संसारमें अब तक चली आ रही है। वराहमिहिर (५४० ई०) की पंचसिद्धन्तिकामें शशि-दर्शन पर एक अध्याय है। इससे स्पष्ट है कि चन्द्रमाको उस समय देखने की प्रथा थी जब वह सूर्य्यके बहुत निकट होता था।' इसी श्लोकसे सेनगुप्त महाशय यह परिणाम निकालते हैं—'महाभारत-कालमें (१४०० ई०)पूर्व में महीनेका आरंभ चन्द्रमाके प्रथम दर्शन कालसे माना जाता था।' इस सम्बन्धमें मैं आदरणीय सेनगुप्त महाशयसे प्रार्थना करूंगा कि वे इस पर फिर से विचार करें; क्योंकि चन्द्रदर्शनसे महीनेका प्रारंभ माननेपर १३ वें दिन चन्द्रग्रहण साधारणतः पड़ता है, इसमें कोई विशेषता नहीं है । किसी भी

पंञ्चागको उठाकर देखने से यह बात प्रकट हो सकती है। मेरी समझमें तो महाभारतका यह वर्णन बिल्कुल ठीक है और उस समयके सूक्ष्मनिरीक्षणका परिणाम है। १३ दिनके अंतरपर दो ग्रहण कैसे पड़ सकते हैं इसका समाधान मेरी तुच्छ बुद्धिमें जो आया है वह विज्ञान-भाष्यके पृष्ठ ८२२—२३ की पाद टिप्पणी में दिया हुआ है, पाठक उसे देखनेका कष्ट उठावें।

सूर्य-सिद्धान्तका रचनाकाल—इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मत भेद है। इस पुस्तक में जो रचनाकाल बतलाया गया है वह तर्कसे तो समझमें आता नहीं क्योंकि यदि यह इतने प्राचीन-काल, इक्कीस लाख पैंसठ हज़ार वर्षसे इसी प्रकार चला आता तो आजसे पांच हज़ार वर्ष पूर्व महाभारत-कालमें उस समयके महाराजाधिराज दुर्योधनके दरबारमें जहाँ उस समयके बड़-बड़े विद्वान मौजूद थे यह प्रश्न क्यों उठ खड़ा होता कि पाण्डवोंके चौदह वर्षका बनवास-काल कब पूरा होगा? इस सम्बन्धमें भीष्म-का जो उत्तर है उससे तो यह समझमें नहीं आता कि उस समय सूर्य-सिद्धान्त जैसे ग्रन्थ की ज्योतिष-गणनाका उनको परिचय था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रन्थका आदि रूप वराह-मिहिरके बहुत पहले का है और संभव है कि पंचसिद्धान्तिकामें जो रूप देख पड़ता है वह आदि रूप नहीं है वरन् उसमें वराहमिहिर ने कुछ संशोधन किया है। परन्तु आश्चर्य है कि आर्यभट्ट (४७६ ई०) ने अपने ग्रन्थमें इसकी कहीं चर्चा नहीं की है, इससे यह अनुमान होता है कि आर्यभटीयके रचना कालके आस पास ही इसकी रचना भी हुई है। वराहमिहिरने सूर्य-सिद्धान्तका जो रूप दिया है वह वर्तमान सूर्य-सिद्धान्तसे भिन्न है जिसमें अयन-चलन की बातें पीछेसे बढ़ायी गयी हैं क्योंकि यदि अयन-चलन की चर्चा सूर्य-सिद्धान्तमें वराहमिहिरके पहले होती तो यह पञ्च-

सिद्धान्तिका में कहीं न कहीं इसका समावेश ज़रूर करते और इतना ही लिखकर न संतोष करते कि प्राचीनकाल में अयन-विन्दु आश्लेषा नक्षत्रमें था अब पुनर्वसुमें है। ब्रह्मगुप्त (६२८-६६५ ई०) के समयमें भी सूर्य-सिद्धान्तका जो रूप था उसमें अयन-चलन की बात नहीं थी क्योंकि ऐसी दशामें ब्रह्मगुप्त इसकी चर्चा अवश्य करते। यह बात तो भास्कराचार्यके कुछ पहले मिलायी गयी होगी परन्तु फिर भी उस रूपमें नहीं जैसा कि अब देख पड़ती है क्यों कि भास्कराचार्यने स्वयं इसकी शुद्धता पर शंका प्रकट की है। इसलिये यह सिद्ध है कि वर्तमान सूर्य-सिद्धान्तका आदि-रूप तो वही है जो पञ्च-सिद्धान्तिकामें दिया गया है और वराह-मिहिरके पहले भी मौजूद था अथवा वाराही सूर्य-सिद्धान्त उसका संशोधित रूप है और बादमें उसमें भी ज्योतिषियोंने समय-समय पर संस्कार करके इसको वर्तमान रूपमें प्रकट किया है, जिसके लिये आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदिके ग्रन्थों या वेधोंसे सहायता ली गयी होगी, जैसा कि सेन गुप्त महोदय अपनी खण्डखाद्यक की भूमिका में सिद्ध करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का मत—इसके रचना कालके संम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंने बड़ा ऊहा-पोह किया है जिसके लिये उनको धन्यवाद देना हमारा परम कर्तव्य है। इस विषयमें बेंटली महोदयने बहुत परिश्रम किया है। इन्होंने सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों की गणना सूर्य-सिद्धान्त तथा नवीन वेधोंके अनुसार भिन्न-भिन्न कालोंके लिये करके उस समय को सूर्य-सिद्धान्तका रचनाकाल स्थिर किया है जब दोनों गणनाओंके अनुसार ग्रहोंके भोगांश एक हो जाते हैं। यह बात पृष्ठ २९ के कोष्टकसे स्पष्ट होगी जिसमें ग्रहोंकी अशुद्धियाँ दिखलाई गयी हैं।

ग्रह	कलियुग के आरंभमें ३१०२ ई० पूर्व अंश कला विकला	कलि संवत १००० में २१०२ ई० पूर्व अंश कला विकला	कलि संवत २००० में ११०२ ई० पूर्व अंश कला विकला	कलि संवत ३००० में १०२ ई० पूर्व अंश कला विकला	कलि संवत ३६३९ में ५३८ ई० अंश कला विकला	कलि संवत ४१०२ में १०९१ ई० अंश कला विकला	ठीककब था ईस्वी
बुध	+३३ २५ ३५	+२५ ९ ५२	+१६ ५४ ९	+८ ३८ २६	+३ २१ ४०	—१ १२ २८	५४५
शुक्र	+३२ ४३ ३६	—२४ ३७ ३१	—१६ ३१ २६	—८ २५ २१	—३ १४ ४५	+१ १४ ३	५२५
मंगल	+१२ ५ ४२	+९ २६ ३२	+६ ४७ २२	+४ ८ १२	+२ २६ ३०	+० ५८ २९	१४५८
गुरु	—१७ २ ५३	—१२ ४४ १६	—८ २५ ३९	—४ ७ २	—१ २१ ४७	+० ४१ १४	५०६
शनि	+२० ५९ ३	+१५ ४३ २०	+१० २७ ३७	+५ ११ ५४	+१ ५० १०	—१ ४ २५	८८७
चन्द्र	—५ ५२ ४१	—३ ५० ४८	—२ ९ १७	—० ५२ ३३	—० १८ ३०	—० ० ११	१०९७
चन्द्रोच्च	—३० ११ २५	—२३ ९ ३६	—१६ ७ ४७	—९ ५ ५८	—४ ३६ २६	—० ४३ १०	११५३
चन्द्र-पात	+२३ ३७ ३१	+१७ ५९ २१	+१२ ३१ ११	+७ ३ १	+३ ३३ १९	+० ३१ ५०	११८८
						मध्यम मान	१०९१

इससे बेंटली यह परिणाम निकालते हैं कि सूर्य-सिद्धान्त ११ वीं सदी के अन्तिम चरण में लिखा गया। देखने में तो यह बहुत ही युक्ति-युक्त जान पड़ता है और इसमें संदेह नहीं कि लेखक महोदय ने इसमें बड़ी नवीनता दिखलाई है परन्तु यथार्थ में यह रीति बिना अच्छी तरह परीक्षा किये मानने योग्य नहीं है। यह बात मैं बर्जेस के अनुवाद की प्रकाशन समिति के शब्दों❀ में ही बतला देना पर्याप्त समझता हूँ:—

"दूसरे ग्रहोंके सम्बन्धमें बेंटलीने शून्य अशुद्धिके जो समय निकाले हैं वे हमारे निकाले हुए समयों से बहुत मिलते हैं जिनको हमने १८६० ई० की अशुद्धियों से पीछे की तरफ़ गणना कर के निकाले हैं और जो, ६७ वें श्लोककी टीकाके साथ दिये गये हैं।" (तुलनाकी सुविधाके लिये वे पृष्ठ ३१ और ३२ पर दे दिये गये हैं—लेखक)।

"इन दोनों कोष्ठकोंकी तुलना करनेपर यह तुरन्त देख पड़ेगा कि बेंटलीने अपना निर्णय ग्रहोंके निरपेक्ष स्थानोंकी अशुद्धियोंसे नहीं निकाली है वरन् सूर्यके स्थानकी तुलनामें। परन्तु सूर्यके स्थान की अशुद्धिका उन्होंने विचार ही नहीं किया है। हिंदुओं का राशि-चक्र नाक्षत्रिक (Sidereal) है और सूर्यकी गतिपर किसी प्रकार निर्भर नहीं है। अन्य ग्रहोंको तरह सूर्य भी ३१०२ ई० पूर्व उस स्थानपर नहीं था, जहाँ मान लिया गया है और इसलिये इस पद्धतिके अनुसार सूर्यकी जो गति मानी गयी है वह यथार्थसे भिन्न है क्योंकि नाक्षत्रवर्ष ३॥ मिनट बड़ा माना गया है। इसलिये सूर्यकी अशुद्धिका विचार क्यों न किया जाय और ग्रहोंकी नाक्षत्रिक गतिका विचार इसी अशुद्ध गतिकी तुलनामें

❀ देखो पृष्ठ २४-२६।

पहली जनवरी सन् १८६० ई० को वाशिंगटन की मध्यरात्रिमें ग्रहोंके मध्यम भोगांश ।

ग्रह	सूर्य-सिद्धान्तानुसार मूल			सूर्य-सिद्धान्तानुसार बीज संस्कृत			अर्वाचीन ज्योतिषानुसार		
	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला
सूर्य	९६	१८	२१	९६	१८	२१	१००	५	६
बुध	१५५	२	३०	१४८	२५	३९	१५१	२८	२०
शुक्र	३३९	५४	५५	३३४	५७	१८	३६६	१३	३६
मंगल	१९२	३६	५	१९२	३६	५	१९७	२६	३२
गुरु	१०४	७	२२	१००	४८	५६	१०३	३५	१७
शनि	१२८	१०	११	१३३	१४	४९	१३७	१०	१०
चन्द्रमा	९	४	९	९	४	९	१२	४१	२३
चन्द्रोच्च	३२७	५०	२४	३२६	११	११	३२६	४७	३५
चन्द्रपात	३१२	२९	५१	३१०	५०	३८	३१२	४८	१०

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए ग्रहोंके मध्यम भोगांशों की अशुद्धियाँ

ग्रह	मूल ग्रन्थ के अनुसार अशुद्धियाँ: *निरपेक्ष (अंश कला विकला)	कब शुद्ध (ई०)	सूर्य की अपेक्षा (अंश कला विकला)	कब शुद्ध (ई०)	बीज संस्कृत ग्रन्थ के अनुसार अशुद्धियाँ: निरपेक्ष (अंश कला विकला)	कब शुद्ध (ई०)	सापेक्ष (अंश कला विकला)	कब शुद्ध (ई०)
सूर्य	—३ ४६ ४५	२५०	० ० ०	......	—३ ४६ ४५	२५०	० ० ०	......
बुध	+३ ३४ १०	२३३२	+७ २० ५५	३२७१	—३ २ ४१	१५१७	+० ४४ ५	१६७०
शुक्र	+३ ४१ १६	१२२२	+७ २८ ४	६४१	—१ १६ १८	२१२६	+२ ३० २७	१५०६
मंगल	—४ ५० २७	८८६	—१ ३ ४२	१४५५	—४ ५० २७	८८६	—१ ३ ४२	१४५५
गुरु	+० ३२ ५	१५७१	+४ १८ ५०	८३२	—२ ४६ २१	४२०३	+१ ० २४	१५७५
शनि	—८ ५२ ५६	६६६	—५ ६ १४	८५७	—३ ५५ २१	१२५०	—० ८ ३६	१८२५
चन्द्रमा	—३ ३७ १४	११५	+० ६ ३१	१०६७	—३ ३७ १४	११५	+० ६ ३१	१०६७
चन्द्रोच्च	+१ २ ४६	१६७६	+४ ४६ ३४	१२५२	—० ३६ २४	१६६६	+३ १० २१	१४५६
चन्द्रपात	—० १८ १६	१६७६	+३ २८ २६	११६२	—१ ५७ ३२	२७१४	+१ ४६ १३	१४६८

*निरपेक्ष स्थान वह है जो राशि-चक्रके स्थिर आदि विन्दुसे नापा जाता है और सापेक्ष वह स्थान है जो सूर्यसे नापा जाता है जिसकी स्थिति सौर नाक्षत्र वर्षके अनुसार निश्चय की जाती है जो यथार्थसे ३ मिनटके लगभग बड़ा है, इसलिये सूर्यका स्थान भी इसीके अनुसार बदल रहा है ।

क्यों किया जाय ? यह प्रकट है कि बेंटलीको सूर्यके स्थानका भी पूरी तरह विचार करना चाहिए था और यह दिखलाना चाहिए था कि इससे भी वही परिणाम निकलता है जैसा कि अन्य ग्रहोंकी गणनासे और यदि नहीं तो असंगतिका कारण क्या था ? ऐसा न करके हमारी समझमें सारी गणनाका बहुत ही महत्वपूर्ण अंश छोड़ दिया गया है जिससे बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम निकलता है।"..........

"लेकिन हमारे सिद्धान्तके बारेमें यथार्थ बात क्या है ? हमें यह मिलता है कि इसमें ग्रहोंके ऐसे ध्रुवाङ्क दिये गये हैं जिनके स्थानों की भूलोंकी परीक्षा ऊपर बतलायी हुई रीतिसे करनेपर जान पड़ता है कि इन ध्रुवाङ्कोंका निश्चय इस विचारसे नहीं किया गया है कि किसी निर्दिष्ट कालमें इनकी यथार्थ नाक्षत्रिक स्थिति जानी जा सके। बल्कि इसके प्रतिकूल ये ऐसी गवाही देते हैं कि ईसा की १० वीं या ११ वीं सदीमें इस बातका प्रयत्न किया गया है कि ग्रहोंकी स्थिति सूर्यकी स्थितिकी तुलनामें ठीक-ठीक जानी जा सके। इसका भी ठीक ठीक समय संदेहात्मक है क्योंकि उन समयोंमें बड़ी भिन्नता है, जिनमें अशुद्धि शून्य समझी जाती है। संस्कृत साहित्यके इतिहासमें यह बात उतनी ही ध्रुव है जितनी कोई बात हो सकती है कि उस समय से बहुत पहले सूर्य-सिद्धान्तका अस्तित्व था। अन्य ज्योतिषके ग्रन्थोंके निर्देशों और उद्धरणोंसे इस बातका भी पता चलता है कि इस नामके ग्रन्थके कई पाठान्तर भी थे और हम ऊपर (श्लोक ९ में) यह देख भी चुके हैं जो बहुत अस्पष्ट सूचना नहीं है कि वर्तमान ग्रन्थमें ठीक-ठीक वही ध्रुवाङ्क नहीं दिये गये हैं जो पहले सूर्य-सिद्धान्तके माने गये थे। इसलिए इस अनुमानके निकट और क्या हो सकता है कि १० वीं या ११ वीं शताब्दीमें संशोधनके

लिये बीजकी जो गणना की गयी थी वह मूलमें केवल चार या पाँच श्लोकोंको बदलकर खपा दी गयी इस लिये जबकि दूसरे ग्रहोंकी तुलनात्मक अशुद्धियाँ उस समय का निर्देश करती हैं जब यह बीज संस्कार किया गया था, सूर्यकी निरपेक्ष अशुद्धि मूल पुस्तकका प्राय: सच्चा समय प्रकट करती है।

"हमारे कोष्ठकमें सूर्यकी शून्य अशुद्धिका समय २५० ई० है। इस तारीखकी अशुद्धताके लिये बहुत जोर देनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह उस बेधकी शुद्धता पर निर्भर है जिससे सूर्यका स्थान पहले-पहल निश्चय किया गया और फिर उस विन्दु से निर्देश किया गया जिसको आकाश चक्रका आदि विन्दु कहते हैं। कोरी आँखसे इसका वेध करना असंभव था कि सूर्यका केन्द्र मध्यम गतिके अनुसार रेवतीके योग तारा Zeta Piscium के दस कला पूर्व कब था और यह तो स्पष्ट है कि हिन्दुओंने इस विन्दु से राशिचक्रके अन्य विन्दुओंका जो निश्चय किया है उनमें बड़ी बड़ी भूलें हैं और यदि सूर्यके स्थानके निश्चय करनेमें एक अंशकी भी भूल हो जाय तो इससे शून्य अशुद्धिके कालमें ४२५ वर्ष का अन्तर पड़ सकता है।

ब्रह्मगुप्त आदिके दिये हुए योग तारोंके ध्रुवांकों (Polar longitude) की तुलनासे भी सूर्य-सिद्धान्तका समय इसीके आसपास आता है। इनमें कुछ ध्रुवांक परम्परा प्राप्त हैं। ये वह हैं जो तीनों ग्रन्थोंमें अभिन्न हैं, कुछ को ग्रन्थ कर्त्ताओंने स्वयं शुद्ध कर दिया है। इनके तुलनात्मक अध्ययनसे हम सूर्य-सिद्धान्त कालकी परा और अपरा सीमा (Superior and inferior limit) जान सकते हैं। वराहकी पञ्चसिद्धान्तिकामें भी (थीबोके- अनुसार) सात योग तारोंके ध्रुवांक दिये गये हैं जिनको हम उस

प्राचीन सूर्य-सिद्धान्तके ध्रुवांक मानते हैं जो वराहके पहले मौजूद था देखो (पृष्ठ ३६-३७)।*

प्राचीन सूर्य-सिद्धान्तके समय निरूपणके लिये नीचे लिखे नक्षत्र चुने जाते हैं जिनके ब्रह्मगुप्तके ध्रुवांक सूर्य-सिद्धान्तके ध्रुवांकसे जितने अधिक हैं वह सामने लिखे जाते हैं :—

	अंश	कला
कृत्तिका	४	४८
रोहिणी	१	२८
पुनर्वसु	५	३
मघा	३	०
पू० फाल्गुनी	३	०
चित्रा	३	०
योग	२०	१९
मध्यममान	३	२३

इन छः तारोंके ध्रुवांकोंकी अधिकताका मध्यममान ३ अंश २३ कलाके समान है। यदि अयन चलनके कारण ध्रुवांकोंकी एक अंश की वृद्धि ७२ वर्ष में मानी जाय, तो यह वृद्धि लगभग २४४

* बर्जेस के सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद के दूसरे संस्करण की पी० सी० सेनगुप्त की लिखी भूमिका पृष्ठ XXVI–XXIX

योग तारों के ध्रुवक (Polar Longitude)

तारा	पंच सिद्धान्तिका		ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त		शिष्यधीवृद्धिद		वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त		वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवक कहां से लिये गये
	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
अश्विनी	...		८	०	८	३	८	३	परम्पराप्राप्त
भरणी	...		२०	०	२०	०	२०	०	,,
कृत्तिका	३२	४०	३७	२८	३६	०	३७	३०	ब्रह्मगुप्त
रोहिणी	४८	०	४९	२८	४९	०	४९	३०	,,
मृगशिरा	...		६३	०	६२	०	६३	०	,,
आर्द्रा	...		६७	०	७०	०	६७	२०	नया ?
पुनर्वसु	८८	०	९३	३	९२	०	९३	०	ब्रह्मगुप्त
पुष्य	९७	२०	१०६	०	१०५	२०	१०६	०	,,
अश्लेषा	१०७	४०	१०८	०	११४	०	१०९	०	नूतन
मघा	१२६	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	ब्रह्मगुप्त
पू० फल्गुनी	...		१४७	०	१३९	२०	१४४	०	परम्पराप्राप्त
उ० फल्गुनी	...		१५५	०	१५४	०	१५५	०	ब्रह्मगुप्त

हस्त	......		१७०	०	१७३	०	१७०	०	ब्रह्मगुप्त
चित्रा	१८०	५०	१८३	०	१८४	२०	१८०	०	परम्पराप्राप्त
स्वाती			१९९	०	१९७	२०	१९९	०	ब्रह्मगुप्त
विशाखा	......		२१२	५	२१२	०	२१३	०	नूतन
अनुराधा	......		२२४	५	२२२	०	२२४	०	ब्रह्मगुप्त
ज्येष्ठा	......		२२९	५	२२८	०	२२९	०	,,
मूल	......		२४१	०	२४१	०	२४१	०	परम्पराप्राप्त
पूर्वाषाढ़ा	......		२५४	०	२५४	०	२५४	०	,,
उत्तराषाढ़ा	......		२६०	०	२६७	०	२६०	०	ब्रह्मगुप्त
अभिजित	......		२६५	०	२६७	२०	२६६	०	नया
श्रवण	......		२७८	०	२८३	१०	२८०	०	,,
धनिष्ठा	......		२९०	०	२९६	२२	२९०	०	ब्रह्मगुप्त
शतभिषा	......		३२०	०	३१३	२०	३२०	०	,,
पूर्वाभाद्रपदा	......		३२६	०	३२७	०	३२६	०	,,
उत्तराभाद्रपदा	......		३३७	०	३३५	०	३३७	०	,,
रेवती	......		०	०	३५९	०	३५९	५०	,,

वर्ष के समय में हुई होगी। परन्तु ब्रह्मगुप्तका समय हमें निश्चय-पूर्वक मालूम है कि ६२८ ई० है। इसलिये सूर्य-सिद्धान्तका समय इससे २४४ वर्ष पूर्व अथवा ३८४ ईस्वी आता है। इसको स्थूल रूपसे ४०० ई० समझा जा सकता है। जो इस समय की परा सीमा (Upper limit) है। अपरा सीमाकी खोज करनेके लिए हमें नीचे लिखे तारोंके ध्रुवकों को देखना चाहिए जिनके ध्रुवांक ब्रह्मगुप्त के ध्रुवकों से जितने अधिक हैं उनका मध्यममान १ अंश १५ कला है जो ब्रह्मगुप्तसे ९० वर्ष बाद हुआ होगा। इस प्रकार यह अपरा सीमा ६२८+९०=७१८ ईस्वी होती है।

	अंश	कला
अश्लेषा	१	०
विशाखा	१	०
अभिजित	१	०
श्रवण	२	०
योग	५	०
मध्यम	१	१५

इस प्रकार यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सूर्य-सिद्धान्तकी रचना ४०० ई० से लेकर ७२५ ई० तक हुई। बेंटली और बर्जेसने भी सूर्य-सिद्धान्तमें दिये हुए नक्षत्रोंके ध्रुवाङ्कोंकी तुलना अर्वाचीन ज्योतिर्गणितसे सिद्ध ध्रुवाङ्कोंसे करके सूर्य-सिद्धान्तका समय निरूपण इसी प्रकार किया है, परन्तु वह इतना

ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि वेधोंके विषयमें जिस प्रकारकी भूल सूर्य-सिद्धान्तकारने की होगी, वैसी ही ब्रह्मगुप्त आदिने भी की होगी। इस प्रकार रचनाकाल की परा सीमा इससे अधिक बढ़ायी जा सकती। परन्तु अपरा सीमा ११०० ई० तक आ सकती है जैसा कि बेंटलीने सिद्ध किया है।

अयन-चलन की बात से भी बेंटली के मत का समर्थन होता है। भास्कराचार्य के समय में सूर्य-सिद्धान्त में लिखित अयन-गति उतनी नहीं थी जितनी वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त में है। इससे जान पड़ता है कि अयनगति का संशोधन भास्कराचार्य के बाद किया गया है। परन्तु भास्कराचार्य का समय ११५० ई० है।

सूर्य-सिद्धान्तका लेखक—यह दिखलाया जा चुका है कि सूर्य-सिद्धान्तके ध्रुवाङ्क यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस, टालमी या अन्य पाश्चात्य देशों के ज्योतिषियों के ध्रुवाङ्कों से नहीं मिलते। इसलिये यह ग्रन्थ उन लोगों के वेधों के आधार पर नहीं लिखा गया। इसकी परम्परा विवस्वान् अर्थात् सूर्य से बतलायी गयी है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ८-९) जिस प्रकार भगवद्गीता में बतलाये हुए योग मार्ग की परम्परा बतलायी गयी है (देखो भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १-२)। मयासुर विदेशी नहीं है। उसने भारतका निवासी होकर यह ज्ञान प्राप्त किया था और उसी से ऋषियोंने भी पीछे सीखा। यही सूर्य-सिद्धान्त में दी हुई कथा का रहस्य मालूम होता है। ब्रह्मशाप के कारण सूर्य भगवान्का रोमक नगरमें उत्पन्न होनेकी कथा मनगढ़न्त है और केवल एक या दो हस्त-लिखित पुस्तकों में पायी जाती है, इसलिए प्रक्षिप्त है जिसको किसीने स्वीकार नहीं

किया। यदि सूर्य-सिद्धान्त विदेशीके द्वारा प्राप्त हुआ होता तो ब्रह्मगुप्त अवश्य लिखते, क्योंकि रोमक सिद्धान्तके लिये, जो निस्सन्देह विदेशी है, उन्होंने साफ-साफ लिख दिया है। पंच-सिद्धान्तिका-प्रकाशिका टीका में म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी का दिया हुआ सूर्यारुण-संवादके मूलका पता नहीं है, इसलिए नहीं कहा जा सकता कि यह किसने लिखा और किस आधार पर लिखा। नित्यानान्द* का यह लिखना कि यह कलियुग के ३६०० वर्ष बीतने पर अर्थात् शक ४२१ या ४९९ ई० में लिखा गया जब कि आर्यभट्टने अपना आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा है, भ्रम है। शायद इसी भ्रमके कारण मुनीश्वरने भी आर्यभट्टको सूर्य-सिद्धान्तका रचयिता मान लिया था। अलबेरूनीका यह कहना कि इसको लाटाचार्य या लाटसिंहने बनाया भ्रम है‡ क्यों कि वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त किसी ने भी लाटाचार्य को सूर्य सिद्धान्तका रचयिता नहीं माना। वराहमिहिरके अनुसार लाटाचार्य रोमक और पौलिश सिद्धान्तोंके व्याख्याता हैं। लाटके अहर्गण* यवनपुरके सूर्यास्त-काल के हैं। इस प्रकार यह प्रकट है कि सूर्य-सिद्धान्तके रचनाकाल तथा रचयिताके सम्बन्ध में जितने अनुमान हैं वे सिद्ध नहीं होते। अंतरंग

---

* सूर्य-सिद्धान्त रचनाकालस्तु नित्यानन्देन सिद्धान्तराजकृता कलेः षट्त्रिंशच्छतमिते अब्दगणे व्यतीते निगद्यते—पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका पृष्ट २

‡ लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये पंच सिद्धान्तिका अध्याय १ श्लोक ३

* वही अध्याय १५ श्लोक १८

प्रमाणोंके आधारपर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसकी वृद्धि ४०० ई० के आसपास से प्रारम्भ होकर १२०० ई० तक समाप्त हुई। पहले-पहल इसका विस्तार (संशोधन) वराहमिहिरने किया होगा। फिर अन्य संशोधकोंने आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, मंजुल आदि के वेधों से लाभ उठाकर इसको अप्-टु-डेट (Up-to-date) बनानेकी कोशिश की। यह संशोधन उस समयतक जारी था जब तक रंगनाथजी ने इसकी टीका लिखकर इसके श्लोकों को बाँध नहीं दिया। माधव पुरोहितकी टीकामें कुछ श्लोक अधिक मिलते हैं, पता नहीं ये किसी पुराने ग्रन्थके आधारपर लिखे गये या यों ही बढ़ा दिये गये।

उपसंहार—परमात्माकी बड़ी दया है कि जिस कामको अबसे १८ वर्ष पहले इसी मासमें आरम्भ किया था, वह ज्यों-त्यों करके इस रूपमें समाप्त हो रहा है। पिछले नौ वर्षोंमें तो इसका कुछ काम हो ही नहीं पाया और आशा नहीं थी कि यह इस वर्षभी पूरा हो सकेगा। परन्तु विज्ञान-परिषद्के मंत्री डा० गोरख प्रसाद जी के बार-बार तगादा करनेसे यह इस दशाको प्राप्त हुआ है। इसके लिए मैं उनको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। इस भाष्यको मैंने जिस समय प्रारंभ किया उस समय हिन्दी में ज्योतिषपर बहुत कम पुस्तकें थीं। संस्कृत ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवादोंमें पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, पं० माधव पुरोहित, ठा० उदयनारायण सिंह तथा पं० इन्द्रनारायण द्विवेदीजीकी सूर्य सिद्धान्तकी टीकाएँ तथा पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदीजीका सिद्धान्त-शिरोमणि गोलाध्यायकी हिन्दी टीका प्राप्त हो सकती थीं। परन्तु इनमेंसे किसी पुस्तकके द्वारा सूर्य-सिद्धान्तके गहन विषयोंका ठीक ज्ञान होना संभव नहीं था। क्योंकि इनमें उदाहरण और चित्रोंकी कमी थी ही, साथ ही साथ व्याख्या भी

पर्याप्त नहीं थी। इस विषयमें ब्रेनेंडकी हिन्दू एस्ट्रानामीने मुझे बड़ी सहायता पहुँचाई जिसके लिए मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। पीछेसे मुझे विज्ञानानन्द स्वामीके वङ्गानुवाद तथा शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितके मराठी ज्योतिष-शास्त्रके इतिहाससे भी सहायता मिली। म० म० सुधाकर द्विवेदीकी सुधावर्षिणी टीका बहुत पीछे मिली जब १२ अध्यायोंका विज्ञान-भाष्य छप चुका था। पिछले वर्ष मुझे बर्जेस महोदयके सूर्यसिद्धान्तका अनुवाद जिसमें प्रबोध चन्द्र सेनगुप्त महोदयकी बहुमूल्य भूमिका है तथा अन्तिम सज्जनकी खण्डखाद्यककी टीका और भूमिका पढ़नेको मिलीं जिनसे मुझे भूमिका लिखनेमें बड़ी सहायता मिली। इसलिए मैं इन दोनों महाशयोंका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। डा० थीबो तथा सुधाकर द्विवेदीकी पंचसिद्धान्तिका की टीका और भूमिका तथा 'के' महोदयकी हिन्दू एस्ट्रानामीसे भी कुछ बातें मालूम हुईं, इसलिए मैं इनका भी कृतज्ञ हूँ। इसके बाद विज्ञान-परिषद् के मन्त्रिगण, प्रो० रामदास गौड़, सालगराम भार्गव तथा विज्ञान के संपादक प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, डा० सत्यप्रकाश तथा मंत्री डा० गोरखप्रसादका हृदयसे कृतज्ञ हूँ जिनकी कृपासे इस बृहदाकार भाष्यका प्रकाशन हो सका।

इस भाष्यका आकार बहुत बढ़ गया। स्पष्टाधिकारमें अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्तके आधारपर ग्रह स्पष्ट करनेकी रीति कुछ दुरूह भी हो गयी जिससे साधारण विद्यार्थी घबरा जाते हैं। परन्तु मुझे विश्वास है कि आरम्भमें यदि वह अंश छोड़ दिया जाय तो इन्टरमीडियेट या हाईस्कूलके विद्यार्थी भी इस भाष्यके द्वारा सूर्यसिद्धान्तका पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। संस्कृत पढ़नेवाले ज्योतिषके विद्यार्थीभी इसके द्वारा सूर्य सिद्धान्तके कठिन विषयोंकोअच्छी तरह समझ सकते हैं।

मुझे विश्वास है कि इस भाष्यसे गणितसे प्रेम रखने वाले नवयुवकोंमें यह विश्वास उत्पन्न होगा कि हमारे ज्योतिष के आचार्य निरे बुद्धू नहीं थे जैसा कि थीबो या 'के' महोदयके ग्रन्थोंसे प्रकट होता है। उनके ग्रन्थोंको निष्पक्ष भावसे पढ़ने पर यह सिद्ध होता है कि दर्शन शास्त्रमें ही नहीं वरन् ज्योतिष तथा गणित-शास्त्रमें भी अन्य देशके लोग इनके ऋणी हैं। साथ ही साथ यह भी मालूम होता है कि अन्य देशके ज्ञान-विज्ञानसे भी इन्होंने लाभ उठाया है जो सर्वथा उचित है। क्योंकि विद्या किसी एक देशकी बपौती नहीं है। हमारे पुरखों का तो यह आदर्श रहा है कि 'उत्तम विद्या लीजिए, यदपि नीच पै होय, पर्यो अपावन ठौरमें कंचन तजत न कोय'।

यदि इस भाष्यको पढ़कर एक भी नवयुवकके हृदयमें प्राचीन भारतके ज्योतिषका इतिहास जानने और आविष्कार करनेकी लालसा उत्पन्न होगी तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

प्रयाग,

भ्रातृ द्वितीया, संवत् १९९७ वि० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

सूर्य सिद्धान्त

मध्यमाधिकार नामक पहला अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—ईश्वर वंदना । २-७ श्लोक—ज्योतिःशास्त्र जानने [illegible] मयासुरका सूर्य भगवानकी तपस्या करना, सूर्य भगवानका प्रसन्न [illegible] वर देना तथा अपने शरीरसे एक पुरुषका उत्पन्न करना । ८-९ श्लो[illegible] सूर्यांश पुरुषका मयासुरसे कहना कि जो शास्त्र पहले सूर्य[illegible] महर्षियोंसे कहा था वही कुछ परिवर्तनके साथ कहा जा रहा है [illegible] श्लोक—कालके दो भेद (१) अनादि और अनन्त, (२) कल[illegible] ११–२० श्लोक—निमेषसे लेकर कल्प तककी कालकी इकाइयां । [illegible] श्लोक—ब्रह्माकी वर्तमान आयु । २४ श्लोक—कल्पके आरंभसे कितने समयमें सृष्टि रची गयी । २५-२७ श्लोक—नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिका कारण । २८ श्लोक—कोण नापनेकी इकाइयां । २९-३४ श्लोक—एक महायुगमें ग्रहों, उनके शीघ्रोच्चों, चन्द्रमाके उच्च और पात तथा नक्षत्रोंके कितने चक्कर होते हैं । ३५-३६ श्लोक—चान्द्र और सौर मासोंका [illegible] ३७-३९ श्लोक—एक महायुगमें कितने सावन दिन, अधिमास तथा [illegible] होती हैं । ४० श्लोक—एक कल्पमें कितने सावन दिन तथा तिथि[illegible] हैं । ४१–४४ श्लोक—एक कल्पमें ग्रहोंके मन्दोच्चों तथा पातोंके [illegible] चक्कर होते हैं । ४५–४७ श्लोक—कल्पके आरंभसे सत्[illegible] समय । ४८–५० श्लोक—सृष्टिके आरंभसे अब तक कित[illegible]

जाननेकी रीति । ५१-५२ श्लोक—दिन-पति, वर्षपति और मासपति जाननेकी रीति । ५३-५४ श्लोक—ग्रहोंके मध्यम स्थान जाननेकी रीति । ५५ श्लोक—बृहस्पतिका वर्ष (संवत्सर) जाननेकी रीति । ५६-५८ श्लोक—सत्ययुगके अंतमें ग्रहोंके स्थान क्या थे । ५९ श्लोक—व्यास और परिधिका सम्बन्ध तथा भूपरिधिका परिमाण । ६०-६१ श्लोक—किसी स्थानके अक्षांश-वृत्तका परिमाण जानना तथा उससे ग्रहका मध्यम स्थान निकालना । ६२ श्लोक—भारतवर्षकी मध्यरेखा पर कौन कौन प्रसिद्ध नगर हैं । ६३-६५ श्लोक—चंद्र-ग्रहणसे यह जानना कि अमुक स्थान मध्यरेखासे कितना पूर्व या पच्छिम है । ६६ श्लोक—वार-प्रवृत्ति कब होती है । ६७ श्लोक—किसी इष्टकालमें ग्रहोंका स्थान क्या है । ६८-७० श्लोक—चंद्रमा इत्यादि ग्रह कान्ति-वृत्तिसे कितने उत्तर या दक्खिन जा सकते हैं ।]

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्त जगदाधार मूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

अनुवाद—उस परब्रह्मको नमस्कार है जिसका रूप न तो ध्यानमें आ सकता है और न प्रकट किया जा सकता है, जो निर्गुण है परन्तु जिससे सब गुण उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्वका आधार है ॥ १ ॥

अल्पावशिष्टे तु कृते मय नामा महासुरः ।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥ २ ॥
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषांगति कारणम् ।
आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ ३ ॥

अनुवाद—सत्ययुगके कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुरने सब वेदाङ्गोंमें श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष्क पिंडोंकी गतियोंका

कारण बतलानेवाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञानको जानने की इच्छासे कठिन तप करके सूर्य भगवानकी आराधना की ॥ २,३ ॥

विज्ञान भाष्य—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगकी व्याख्या इसी अध्यायके १६ वें श्लोकमें की गयी है।

वेदाङ्ग ६ हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष। इनसे वेदोंके समझने समझानेमें सहायता मिलती है, इसलिए यह वेदाङ्ग कहलाते हैं। वेदाङ्गोंमें ज्योतिषकी श्रेष्ठता भास्कराचार्यजीने इस प्रकार दिखलायी है:—शब्द-शास्त्र वेद भगवानका मुख है, ज्योतिःशास्त्र आंख है, निरुक्त कान है, कल्प हाथ है, शिक्षा नासिका है, छन्द पांव हैं, इस लिए जैसे सब अंगोंमें आंख श्रेष्ठ होती है वैसे ही सब वेदांगोंमें ज्योतिःशास्त्र श्रेष्ठ है।

[illegible]षितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने।
[illegible]हाणां चरितं प्रादान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥

[illegible]—उसकी तपस्यासे संतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य [illegible]स्वयम् वर चाहनेवाले मयको ग्रहोंके चरित अर्थात् [illegible]तिः शास्त्रका उपदेश दिया ॥ ४ ॥

विज्ञान भाष्य—पाश्चात्य ज्योतिषी ग्रह उन ज्योतिष्क पिंडों को कहते हैं जो सूर्यकी परिक्रमा किया करते हैं। इस परिभाषाके अनुसार बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, युरेनस और नेपच्यून यह आठ ग्रह हैं, जिनमेंसे पिछले दो ग्रहोंका पता पिछले दो सौ [illegible] लगा है और यह कोरी आंखसे नहीं दि[illegible]मा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है,

इसलिए यह उपग्रह है। अन्यग्रहोंके भी उपग्रह दूरवीक्षण यंत्रसे देखे गये हैं। परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थोंमें पृथ्वीको नहीं वरन् सूर्यको ग्रह माना है। चन्द्रमा भी ग्रहोंकी श्रेणीमें रखा गया है। युरेनस और नेपच्यूनकी कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए हमारे यहां सूर्य चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु अथवा बृहस्पति, शुक्र और शनि सात स्थूल ग्रह तथा राहु और केतु दो सूक्ष्म ग्रह माने जाते हैं। दो सूक्ष्म ग्रहोंका पूरा विवरण इसी अध्यायमें चंद्रमाके पातोंका वर्णन करते समय लिखा जायगा। ज्योतिःशास्त्रमें इन ग्रहोंकी गतियोंसे जो घटनाएं आकाशमें होती हैं उनका वर्णन है, इस लिए इस श्लोकमें ज्योतिःशास्त्रका दूसरा नाम 'ग्रहोंका चरित' बतलाया गया है।

विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम्।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ॥५॥
न मे तेजः सहः कश्चिदाख्यातुं ना[illegible]
मदंशः पुरुषोयं ते निःशेषं कथयिष्या[illegible]

अनुवाद—भगवान सूर्यने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तपसे मैं बहुत संतुष्ट हूं; मैं तुझे ग्रहोंके महान् चरितका उपदेश करता हूं, जिससे समयका ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है; परंतु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश देनेके लिए मुझे समय भी नहीं है इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अंश है, तुझे भली भांति उपदेश देगा॥ ५,६॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः ।
स पुमान् मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥*
शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥

अनुवाद—इतना कह कर सूर्य भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और सूर्यांश पुरुषने, आदेशानुसार, मयसे जो विनीत भावसे झुके हुए और हाथ जोड़े हुए थे कहा—एकाग्र चित होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान सूर्यने स्वयम् समय समय पर महर्षियोंसे कहा था; भगवान सूर्यने पहले जिस शास्त्रका उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है; युगोंके परिवर्तनसे केवल कालमें कुछ भेद पड़ गया है ॥ ७,९ ॥

विज्ञान भाष्य—नवें श्लोकके दूसरे पदका कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि सूर्य भगवानने जिस शास्त्रका उपदेश महर्षि-योंको किया था वही शास्त्र बिना किसी परिवर्तनके यह है,

---

* इस श्लोकके पहले पूनाके आनन्दाश्रमके सूर्य सिद्धान्त की एक टीका रहित प्रतिमें यह श्लोक भी पाया जाता है:—

तस्मात्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानम् ददामि ते ।
रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतार धृक् ॥

परन्तु यह सूर्य सिद्धान्तकी अन्य किसी प्रति में नहीं है । आगे पीछेके श्लोकोंसे इसका कोई सम्बन्ध भी नहीं देख पड़ता, इसलिए यह क्षेपक है ।

केवल कहनेके समयमें भेद है। परन्तु यदि इसका यही अर्थ होता तो यह कहनेकी क्या आवश्यकता थी कि केवल कालमें भेद है, पहले पदमें जो कुछ कहागया है वही पर्याप्त था। इस लिए इस पदका अधिक युक्तियुक्त अर्थ यह है कि पहलेके बतलाये हुए और इस समय बतलाये जानेवाले ज्योतिः शास्त्रमें यदि कुछ भेद है तो वह कालके कारण हो गया है, तत्वतः कोई अन्तर नहीं है। कालके कारण भेद कैसे हो सकता है; इसका कारण यह है कि ज्योतिः शास्त्र प्रयोगात्मक विज्ञान है और प्रयोगमें कुछ न कुछ सूक्ष्म भूल रह ही जाती है, जिसे प्रयोगात्मक भूल (Experimental error) कहते हैं। ज्योतिः शास्त्रमें यह भूल प्रति वर्ष इकट्ठी होती रहती है और सैकड़ों वर्षके बाद वह बहुत बड़ा रूप धारण कर लेती है; इस लिए समय समय पर उसका संशोधन करना पड़ता है, जिसको बीज-संस्कार कहते हैं। इसी दृष्टिसे यह वाक्य सूर्यांश पुरुषने कहा है जिसके प्रमाणमें सूर्य सिद्धान्तके अन्तिम अध्यायमें 'बीजोपनयन' नामके २१ श्लोक हैं, जिनकी टीका रंगनाथजीने तथा पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी जीने क्षेपक मान कर नहीं की है और क्षेपक माननेका कारण यह बतलाया है कि सूर्य भगवानके कहे हुए शास्त्रमें बीज-संस्कार स्वयम् सूर्य भगवान कैसे करते। परन्तु रंगनाथ जी अपनी गूढ़ार्थ-प्रकाशिका टीका में ९ वें श्लोककी व्याख्या करते हुए यह भी बतलाते हैं कि काल पाकर कुछ अन्तर हो जाया करता है उनके वाक्य ज्योंके त्यों यह हैं:—

"तथा च कालवशेन ग्रहचारे किञ्चिद्वैलक्षण्यं भवतीति युगान्तरे तत्तदनन्तरं ग्रहचारेषु साध्य

तत्कालस्थित लोकव्यवहारार्थं शास्त्रान्तरमिव कृपालुरुक्तवानिति नानन्तर शास्त्राणां वैयर्थ्यम। एवञ्च मया वर्तमान युगीय सूर्योक्त शास्त्र सिद्ध-ग्रहचारमंगीकृत्याद्य सूर्योक्त शास्त्रसिद्धं ग्रह-चारंच प्रयोजनाभावादुपेक्ष्य तदुक्तमेवत्वां प्रत्यु-पदिश्यत इति भावः। एवञ्च युग मध्येऽप्यवान्तर काले ग्रहचारेष्वन्तर दर्शने तत्तत्काले तदन्तरं प्रसाध्यग्रंथास्तत्काल वर्तमानाभियुक्ताः कुर्वन्ति। तदिदमन्तरं पूर्व ग्रंथे बीजमित्यामनन्ति। पूर्व ग्रंथानां लुप्तत्वात्सूर्य्यर्षि संवादोऽपीदानीं न दृश्यत इति। तदप्रसिद्धिरागम प्रामाण्याच्च नाशंक्या॥"†

काल पाकर अन्तर पड़नेके उदाहरण अनेक हैं, जो इसी टीकामें उचित स्थानपर बतलाये जायंगे।

लोकानामन्तकृत्कालः कालोन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त्त श्चामूर्त उच्यते॥१०॥

अनुवाद—एक प्रकारका काल संसारको नाश करता है और दूसरे प्रकारका कलनात्मक है अर्थात् जाना जा सकता है। यह भी दो प्रकारका होता है—(१) स्थूल और (२) सूक्ष्म। स्थूल नापा जा सकता है, इसलिए मूर्त कहलाता है

---

† वेंकटेश्वर प्रेसका १९५३ वि० का छपा सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ७।

और सूक्ष्म नापा नहीं जा सकता इसलिए अमूर्त कहलाता है ॥ १० ॥

विज्ञान भाष्य—पहले प्रकारके कालकी कल्पना भी नहीं हो सकती, क्योंकि न तो यही मालूम है कि वह कबसे आरंभ हुआ और न यही मालूम होगा कि उसका अन्त कब होगा। यह अखंड और व्यापक है; परन्तु इसके बीचमें ही अथवा इसके उपस्थित रहते ही लोकका अन्त हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते, सृष्टि रचते तथा लय करते हैं; परन्तु काल बना ही रहता है। इसलिए इसको लोकोंका अन्त कर देनेवाला, नाश कर देनेवाला, कहते हैं। इसीलिए मृत्युको भी काल कहते हैं।

कालका जो थोड़ा सा मध्य भाग जाना जा सकता है; उसमें भी जो बहुत छोटा है वह नापा नहीं जा सकता है और अमूर्त कहलाता है। नापनेमें जितनी ही सूक्ष्मता होगी अमूर्त कालकी परिभाषा भी नयी होती जायगी; जैसा कि अगले श्लोक की व्याख्यामें दिखाया जायगा।

प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्त संज्ञकः।
षड्भिःप्राणैर्विनाड़ी स्यात्तत् षष्ट्या नाड़िकास्मृता ११

नाड़ी षष्ट्यातु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा ॥१२॥

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते ॥१३॥

अनुवाद—प्राणसे लेकर ऊपरकी जितनी समय की इकाइयां हैं वह मूर्त कहलाती हैं और त्रुटिसे लेकर प्राणके नीचेकी इकाइयोंको अमूर्त कहते हैं। ६ प्राणोंकी एक विनाड़ी (पल) तथा ६० विनाड़ियोंकी एक नाड़ी (घड़ी) होती है ॥ ११ ॥

६० नाड़ियोंका एक नाक्षत्र अहोरात्र (दिन रातका एक जोड़ा) तथा ३० नाक्षत्र अहोरात्रोंका एक नाक्षत्र मास होता है। इसी प्रकार ३० सावन दिनोंका एक सावन मास होता है ॥ १२ ॥ उसी प्रकार ३० चान्द्र तिथियोंका एक चान्द्र मास तथा एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति तकके समयको सौरमास कहते हैं। १२ मासोंका एक वर्ष होता है, जिसको* दिव्य दिन अथवा देवताओंका दिन कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—

स्वस्थ मनुष्य सुखसे बैठा हुआ हो तो जितने समयमें वह सहज ही हवा (प्राण वायु) भीतर खींचता और बाहर निकालता है उस समयको प्राण कहते हैं। यही सबसे छोटी इकाई है, जो उस समय नापी जा सकती थी। इससे कम समयके नापनेका कोई साधन उस समय नहीं था; इसलिए उसको अमूर्त कहते थे। अब ऐसी घड़ियां बनायी जाती हैं जिनसे उस इकाईका भी नापना सहज है जो अमूर्त कही गयी हैं। एक नाक्षत्र दिनमें ६० घड़ी=६०×६० पल=६०×६०×६ प्राण अथवा २१६०० प्राण होते हैं। इसी तरह ?

---

* इस शब्दसे यह प्रकट होता है कि जिन १२ मासोंका वर्ष होता है वह सौर मास हैं। चांद्र, नाक्षत्र अथवा सावन मासोंका वर्ष नहीं होता है।

दिन में २४ घंटे=२४ × ६० मिनट=२४ × ६० × ६० सेकंड अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं। इसलिए १ प्राणमें ४ सेकंड होते हैं। जिस घड़ीमें सेकंड जाननेकी सुई लगी रहती है उससे सेकंडका नापना कितना सहज है, यह सबको विदित है। ऐसी घड़ियां भी हैं जिनसे १ सेकंडका पांचवां अथवा दसवां भाग सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु १ सेकंडका दसवां भाग १ प्राणके चालीसवें भागके समान है। इस-लिए आजकल प्राणके नीचेकी कुछ इकाइयां भी मूर्त कही जा सकती हैं।

प्राणको असु भी कहते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य जी सिद्धान्त-शिरोमणिमें प्राणकी दूसरी परिभाषा छन्द-शास्त्रके शब्दोंमें यों देते हैं—एक गुरु अक्षरके उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उसके दस गुने समयको प्राण कहते हैं। सानुस्वार, विसर्गान्त, दीर्घ और जिस लघु अक्षरके पीछे कोई संयुक्ताक्षर हो उसको गुरु अक्षर कहते हैं।

पल तोलनेकी एक इकाईका भी नाम है, जो चार तोलेके समान होता है। जितने समयमें १ पल अथवा ४ तोला जल एक विशेष नापके छिद्र द्वारा घटिका[१] यंत्रमें चढ़ता है उस समयको पल कहते हैं।

त्रुटिकी कल्पना भास्कराचार्य जीने[२] इस प्रकार की है। जितने समयमें पलक गिरती है उसको निमेष कहते हैं। १

---

१ इसका विशेष विवरण ज्योतिषोपनिषत नामक १३वें अध्याय में किया जायगा। २ सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय मध्यमाधिकार, काल मानाध्याय श्लोक १६,१७।

निमेषके तीसवें भागको तत्पर तथा १ तत्परके सौवें भागको त्रुटि कहते हैं । निमेष के ऊपरकी इकाइयोंका सम्बन्ध यह है:—

१८ निमेष=१ काष्ठा

३० काष्ठा=१ कला

३० कला=१ घटिका

२ घटिका=१ मुहूर्त

३० मुहूर्त=१ दिन (नाक्षत्र)

इस प्रकार १ नाक्षत्र दिन=३० × २ × ३० × ३० × १८ निमेष

=९७२००० निमेष

पहले दिखलाया गया है कि १ दिनमें २१६०० प्राण अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं इसलिए १ प्राणमें $\frac{९७२०००}{२१६००}$ निमेष अथवा ४५ निमेष और १ सेकंडमें ११$\frac{१}{४}$ निमेष होते हैं ।

नाक्षत्र अहोरात्र—नक्षत्रका अर्थ है तारा, तारा-समूह तथा उस चक्रका २७ वां भाग जिस पर सूर्य एक वर्षमें एक परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है । पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण आकाशके सब तारे पूरब में उदय हो कर ऊपर उठते, पच्छिमकी ओर बढ़ते, पच्छिममें अस्त होते और फिर पूरबमें उदय होते हैं । किसी तारेके उदयका समय घड़ीमें देखकर लिख लीजिये और देखिए कि वह तारा फिर कब उदय होता है । यदि घड़ी ठीक हो तो इन दोनों उदयोंके बीचका समय २३ घंटा ५६ मिनट और ४ सेकंडके लगभग होता है । इसीको नाक्षत्र अहोरात्र या केवल नाक्षत्र दिन कहते हैं । यह सदा एकसा होता है, घटता बढ़ता नहीं, यदि तारोंके

बहुत सूक्ष्म गतिका विचार न किया जाय। इसलिए ज्योतिषी लोग इसीसे समयका हिसाब लगाते हैं।

सावन दिन—सूर्यके एक उदयसे लेकर दूसरे उदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं। यह नाक्षत्र दिनसे कोई ४ मिनट बड़ा होता है। सावन दिनका मान समान नहीं होता। इसलिए मध्यम सावन दिनका जो मान होता है वही समय घड़ियोंके द्वारा जाना जाता है।

ऐन्दव तिथि या चान्द्र तिथि—चन्द्रमा आकाशमें चक्कर लगाता हुआ जिस समय सूर्यके बहुत पास पहुँचता है उस समय अमावास्या होती है। एक अमावास्यासे दूसरी अमावास्या तकके समयको चान्द्रमास कहते हैं। इसका मध्यम मान २९·५३०५८७९४६ मध्यम सावन दिनका होता है। अमावास्या के बाद चन्द्रमा सूर्यसे आगे पूर्वकी ओर बढ़ता जाता है और जब १२ अंश आगे हो जाता है तब पहली तिथि (परिवा) बीतती है, १२ अंशसे २४ अंश तकका जब अंतर रहता है तब दूइज रहती है। २४ अंशसे ३६ अंश तक जब चन्द्रमा सूर्यसे आगे रहता है तब तीज रहती है। जब अंतर १६८° से १८० अंश तक होता है तब पूर्णिमा होती है, १८० अंशसे १९२ अंश तक जब चन्द्रमा आगे रहता है तब १६वीं तिथि अथवा परिवा (प्रतिपदा) होती है, १९२° से २०४° तक दूइज होती है, इत्यादि। पूर्णिमाके बाद चन्द्रमा सूर्यास्तसे प्रति दिन कोई २ घड़ी (४८ मिनट) पीछे निकलता है। पूर्णिमासे अमावास्या तकके १४, १५ दिनको कृष्णपक्ष कहते हैं। अमावास्याको ३० वीं तिथि भी कहते हैं; इसीलिए पंचांगोंमें अमावास्या के लिए ३० लिखते हैं।

सौरमास—सूर्य जिस मार्गसे चलता हुआ आकाश में परिक्रमा करता है उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं। इसके बारहवें भागको राशि कहते हैं। सूर्यमंडल का केन्द्र जिस समय एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश करता है उस समय दूसरी राशिकी संक्रान्ति होती है। एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक के समय को सौरमास कहते हैं। १२ सौर मास परिमाणमें भिन्न भिन्न होते हैं; इसका कारण यह है कि सूर्यकी गति सर्वदा समान नहीं होती। जब सूर्यकी गति तीव्र होती है तब वह एक राशिको जल्दी पूरा कर लेता है और वह सौरमास छोटा होता है। इसके प्रतिकूल जब सूर्यकी गति मन्द होती है तब सौरमास बड़ा होता है।

वर्ष—जितने प्रकार के महीने होते हैं उतने ही प्रकार के वर्ष होते हैं, बारह चान्द्र मासोंका एक चान्द्रवर्ष, १२ सावन मासोंका एक सावनवर्ष तथा बारह सौरमासों का एक सौरवर्ष होता है। हमारे ज्योतिषी परंपरासे यही मानते आये हैं। परन्तु १३वें श्लोकमें दूसरे पदका सीधा अर्थ यह है कि १२ मासोंका वर्ष होता है, जिसको दिव्य दिन कहते हैं। इसलिए जिन बारह मासोंका वर्ष कहा गया है वह अन्य मास नहीं हैं, केवल सौरमास हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्तमें केवल सौर वर्षकी चर्चा है और सौर वर्षको ही वर्ष माना गया है, अन्य को नहीं।

दिव्यदिन—पृथ्वीके उत्तरी ध्रुव पर देवताओंके रहनेका तथा दक्षिणी ध्रुव पर राक्षसोंके रहनेका स्थान बतलाया गया है। इसलिए उत्तरी ध्रुवको देवलोक तथा दक्षिणी ध्रुवको असुरलोक कहते हैं। जिस समय सूर्य विषुववृत्त पर आता है

उस समय दिन और रात समान होते हैं। यह घटना वर्षमें केवल दो बार होती है। ६ महीने तक सूर्य विषुववृत्तके उत्तर तथा ६ महीने तक दक्षिण रहता है। पहली छमाहीमें उत्तर गोलमें दिन बड़ा और रात छोटी तथा दक्षिण गोलमें दिन छोटा और रात बड़ी होती है। दूसरी छमाहीमें ठीक इसका उलटा होता है। परन्तु जब सूर्य विषुववृत्तके उत्तर रहता है तब वह उत्तरी ध्रुव पर (सुमेरु पर्वत पर) ६ महीने तक सदा दिखाई देता है और दक्षिणी ध्रुवपर इस समयमें नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए इस छमाहीको देवताओंका दिन तथा राक्षसोंकी रात कहते हैं। जब सूर्य ६ महीने तक विषुववृत्तके दक्षिन रहता है तब उत्तरी ध्रुव पर देवताओंको नहीं देख पड़ता और राक्षसोंको ६ महीने तक दक्षिणी ध्रुवपर बराबर देख पड़ता है। इसलिए इस छमाहीको देवताओंकी रात और असुरोंका दिन कहा गया है। इसलिए हमारे १२ महीने देवताओं अथवा राक्षसोंके एक अहोरात्रके समान होते हैं।

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्र विपर्ययात् ।
तत् षष्टिः षड् गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेवच ॥१४॥

अनुवाद—जो देवताओंका दिन होता है वही असुरोंकी रात होती है और जो देवताओंकी रात होती है वह असुरोंका दिन कहलाता है। यही देवता या असुरके अहोरात्रका ६० × ६ गुना दिव्य या असुर वर्ष कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—जैसे ३६० सावन दिनके एक सावन वर्षकी कल्पना की गयी है उसी प्रकार ३६० दिव्य दिनका एक दिव्य वर्ष माना गया है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि हमारे ३६० वर्षों का देवताओंका एक वर्ष होता है।

तद्द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ।
सूर्याब्द सङ्ख्यया द्वित्रि सागरैरयुता हतैः ॥१५॥
सन्ध्या सन्ध्यांश सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपाद व्यवस्थया ॥ १६ ॥
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येक संगुणः ।
क्रमात्कृत युगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोःस्वकः॥१७॥

अनुवाद—इन बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है जिसकी संख्या सौर वर्षोंमें तैंतालीस लाख बीस हजार (४३२००००) होती है। इसमें संध्या और संध्यांशके वर्ष भी मिले हुए हैं। एक चतुर्युगमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युग होते हैं; जिनके मान धर्मके चरणोंके अनुसार होते हैं। चतुर्युगके दसवें भागका चार गुना सत्ययुग, तीन गुना त्रेता, दो गुना द्वापर और एक गुना कलियुग होता है। प्रत्येक युगके छठें भागके समान उसकी दोनों संध्याएं होती हैं ॥ १५–१७ ॥

विज्ञान भाष्य—१४वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सुरों या असुरोंके ३६० दिनका एक दिव्य वर्ष होता है। तेरहवें श्लोकमें बतलाया गया है कि देवताओंका एक दिन एक सौर वर्षके समान होता है इसलिए यह स्पष्ट है कि देवताओंका एक वर्ष ३६० सौर वर्षोंके समान हुआ। १५ वें श्लोकके अनुसार १२००० दिव्य वर्षोंका अथवा १२००० × ३६० (अर्थात् ४३२००००) सौर वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। चतुर्युगको महायुग भी कहते हैं। एक महायुगमें चार युग सत्ययुग, त्रेता,

द्वापर और कलियुग होते हैं इसी लिए इसको चतुर्युग भी कहते हैं। सत्ययुगमें धर्म चार चरण होता है, त्रेतामें तीन चरण, द्वापरमें दो चरण और कलियुगमें एक चरण। इसी तरह एक महायुगमें सत्ययुग चार भाग, त्रेता तीन भाग, द्वापर दो भाग और कलियुग एक भाग होता है। इसलिए

			दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
दोनों संध्याओं सहित	सत्ययुगका	मान हुआ	४८००	१७२८०००
”	त्रेता	”	३६००	१२९६०००
”	द्वापर	”	२४००	८६४०००
”	कलियुग	”	१२००	४३२०००
	महायुग		१२०००	४३२००००

प्रत्येक युगकी दोनों सन्ध्याएं उसके छठें भागके समान होती हैं इसलिए एक संध्या (सन्धि-काल) बारहवें भागके समान हुई। युगके आदिमें जो संध्या होती है उसको आदि संध्या और अन्तमें जो संध्या होती है उसको संध्यांश कहते हैं। इनके मान यह हुए :—

	दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
सत्ययुगकी आदि वा अन्त संध्या	४००	१४४०००
त्रेताकी ” ”	३००	१०८०००
द्वापरकी ” ”	२००	७२०००
कलियुगकी ” ”	१००	३६०००

जैसे एक, अहोरात्रमें प्रातः और सायं दो संध्याएँ होती हैं वैसे ही चतुर्युगके प्रत्येक युगमें दो संध्याएँ होती हैं, एक आरम्भमें और एक अन्तमें।

युगानां सप्तति: सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते संधि:प्रोक्तो जलप्लव: ॥१८॥
ससन्धयस्ते मनव: कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
कृतप्रमाण: कल्पादौ सन्धि: पञ्चदश:स्मृत: ॥१९॥

अनुवाद—७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है, जिसके अंतमें सत्ययुगके समान संध्या होती है। इसी संध्यामें जल प्लव होता है। संधि सहित १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है, जिसके आदिमें भी सत्ययुगके समान एक संध्या होती है; इसलिए एक कल्पमें १४ मन्वन्तर और १५ सत्ययुगके समान संध्याएं हुईं ॥१८-१९॥

विज्ञान भाष्य—चतुर्युगके प्रत्येक युगमें दो संध्याएं मानी गयी हैं; परन्तु मन्वन्तरके केवल अंतमें एक संध्या मानी गयी है जिसका मान सत्ययुगके समान होता है। १ मन्वन्तर ७१ महायुगोंका अर्थात् ७१ × ४३२०००० = ३०६७२०००० सौरवर्षोंका होता है। प्रत्येक मन्वन्तरके अंतमें १७२८००० सौर वर्षोंकी एक संध्या होती है तथा कल्पके आदिमें भी इसीके समान एक संध्या होती है इस प्रकार

१ कल्प = १४ मन्वन्तर + १५ सत्ययुगके समान संध्याएं

= १४ × ७१ महायुग + १५ सत्ययुग

$$= ९९४ \text{ महायुग} + \frac{१५ \times ४}{१०} \text{ महायुग}$$ [क्योंकि

सत्ययुग = महायुगका $\frac{४}{१०}$]

= ९९४ + ६ महायुग

=१००० महायुग अथवा

=१००० × १२०००=१२०००००० दिव्य वर्ष अथवा

=१००० × ४३२००००=४३२००००००० सौर वर्ष

महायुग अथवा मन्वन्तरके यह मान मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रोंसे मिलते हैं; परन्तु आर्यभटने अपने आर्यभटीयमें युगोंके मान कुछ भिन्न दिये हैं। इनके अनुसार १ कल्पमें १४ मनु और १ मनु में ७२ चतुर्युगके प्रत्येक युग सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुग समान[१] होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्यभटके अनुसार एक कल्पमें १४ × ७२=१००८ चतुर्युग होते हैं ॥ २० ॥

इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥२०॥

अनुवाद—इस प्रकार एक हज़ार महायुगका एक कल्प होता है जो ब्रह्माके एक दिनके समान है। इतने ही समयकी ब्रह्माकी एक रात होती है, जिसमें सृष्टिका लय हो जाता है ॥ २० ॥

विज्ञान भाष्य—ब्रह्माके दिन और रातका बहुत ही अच्छा चित्र भगवान कृष्णने श्रीमद्भगवत्गीताके आठवें अध्यायमें यों [illegible] है—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके ॥ १८ ॥

---

[१] [illegible] श्लोक का विज्ञान भाष्य।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
राज्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अर्थात् "(१७) अहोरात्रको (तत्वतः) जाननेवाले पुरुष समझते हैं कि (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगोंका महायुग होता है और ऐसे) हजार महायुगोंका समय ब्रह्मदेवका एक दिन होता है और ऐसे ही हज़ार युगोंकी (उसकी) एक रात्रि होती है।

(१८) 'ब्रह्मदेवके दिनका आरंभ होनेपर अव्यक्त से सब व्यक्त (पदार्थ) निर्मित होते हैं और रात्रि होनेपर उसी पूर्वोक्त अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं। (१९) हे पार्थ! भूतोंका यही समुदाय (इस प्रकार) बार बार उत्पन्न होकर अवश होता हुआ, अर्थात् इच्छा हो या न हो रात होते ही लीन हो जाता है और दिन होनेपर (फिर) जन्म लेता है।"*

परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया।
आयुषोर्धमितं तस्य शेषकल्पोयमादिमः ॥२१॥
कल्पादस्माच्च मनवः षड् व्यतीताः ससन्धयः।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः ॥२२॥
अष्टाविंशाद् युगादस्माद्यातमेतत्कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिंडयेत ॥२३॥

अनुवाद—(२१) ब्रह्माकी आयु उन्हींके दिन-मानसे सौ वर्षकी होती है। इस समय ब्रह्माकी आधी आयु बीत चुकी

---

* गीता रहस्य पृष्ठ ७२४, ७२५

है, शेष आधी आयुका यह पहला कल्प है। (२२) इस कल्पके संधियों सहित ६ मनु बीत गये हैं और सातवें मनु वैवस्वतके २७ महायुग बीत गये हैं, तथा (२३) अट्ठाईसवें महायुगका सत्ययुग भी बीत गया है; इस लिए काल गणनाके लिए इतनी संख्याओंको एकत्र कर लेना चाहिये ॥ २१–२३ ॥

विज्ञान भाष्य—आयुका परिमाण सौ वर्षका माना गया है। मनुष्यकी परम आयु सौ सौर वर्षों की होती है, देवताकी आयु सौ दिव्य वर्षोंकी होती है और एक दिव्य वर्ष ३६० सौर वर्षोंका होता है। इसी तरह ब्रह्माकी आयु सौ ब्राह्म वर्षोंकी समझनी चाहिये। एक ब्राह्म वर्ष ३६० ब्राह्म दिनोंका और एक ब्राह्म दिन (अहोरात्र) दो कल्प अथवा २००० महायुगोंका होता है। इस गणनासे ब्रह्माके ५० वर्ष बीत गये हैं, इक्यावनवें वर्षका पहला दिन (कल्प) आरंभ हो गया है जिसके संधियों सहित ६ मनु, २७ महायुग और २८ वें महायुगका सत्ययुग बीत गया है।* यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि यह बात सत्ययुगके अंतमें कही जा रही है; जैसा कि दूसरे श्लोकके 'अल्पावशिष्टेतु कृते' इत्यादिसे प्रकट है। इस गणनासे वर्तमान कल्पके आरम्भसे २८ वें महायुगके सत्ययुगके अन्त तकका समय यों निकलता है:—

		सौर वर्षोंमें
कल्पकी आदि संध्या	=	१७,२८,०००
६ मन्वन्तर=६ × ३०,६७,२०,०००	=	१,८४,०३,२०,०००

* देखिये १९ वें श्लोकका विज्ञान भाष्य

६ मन्वन्तरोंकी ६ संध्याएं

=६ × १७,२८,०००	=	१,०३,६८,०००
सातवें मन्वन्तरके २७ महायुग		
=२७ × ४३,२०,०००	=	११,६६,४०,०००
२८ वें महायुगका सत्युग	=	१७,२८,०००
∴ कल्पके आरंभसे वर्तमान		———

महायुगके सत्ययुगके अन्त तकका समय==१,९७,०७,८४,०००

इस समय १९७९ वि० में कलियुगके ५०२३ वर्ष बीते हैं; इसलिए यदि कल्पके आरम्भसे अबतकका समय जानना हो तो ऊपर सत्ययुगके अन्त तकके सौर वर्षोंमें त्रेताके १२,९६,००० सौर वर्ष, द्वापरके ८, ६४,००० सौर वर्ष तथा कलियुगके ५०२३ वर्ष और जोड़ देने चाहियें। इस प्रकार कल्पके आरम्भसे अब तकका समय हुआ १, ९७, २९, ४९, ०२३ सौर वर्ष। संकल्पके मंत्रमें समयकी गणना इसी प्रकार की गई है जिसका समय संबन्धी भाग यह है:—

प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे···बौद्धावतारे वर्तमानेऽस्मिन् वर्तमान् संवत्सरेऽमुकनाम वत्सरेऽमुकायने अमुक ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे संयुक्ते चन्द्रे···तिथौ··· ।

आर्यभटके मतसे कल्पके आरम्भसे कलियुगके आरम्भ तकका समय

=६ मनु + २७ चतुर्युग + $\frac{3}{4}$ चतुर्युग†

---

† काहो मनवोढ (१४) मनुयुग श्ख (७२) गतास्ते च (६) मनुयुग छ्ना (२७) च। कल्पादेर्युगपादा ग (३) च गुरु दिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥ ३ ॥ आर्यभटीय प्रथम पाद, बा० उदयनारायण सिंह द्वारा संपादित।

=६ × ७२ + २७ + $\frac{३}{४}$ चतुर्युग

=४३२ + २७ + $\frac{३}{४}$ चतुर्युग

=४५९$\frac{३}{४}$ × ४३, २०,००० सौर वर्ष

=(४६० − $\frac{१}{४}$) × ४३, २०,००० "

=१,९८,७२,००,००० − १०,८०,००० सौरवर्ष

=१,९८,६१,२०,००० सौर वर्ष ।

इसमें यदि ५०२३ वर्ष और जोड़ दिये जायं तो १९७९ वि० में कल्पके आरम्भसे जितने सौर वर्ष बीते हैं वह निकल आवेंगे । ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादिने आर्यभटके इस मतको नहीं माना है । उनके मतसे कल्पके आरम्भसे अबतक-की सौर वर्षोंकी संख्या वही आती है, जो सूर्य सिद्धान्तके अनुसार आती है ।

बीते हुए ६ मन्वन्तरोंके नाम हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) औत्तमि, (४) तामस, (५) रैवत और (६) चाक्षुष । वर्तमान मन्वन्तरका नाम वैवस्वत है । वर्तमान कल्प-को श्वेत-वाराह-कल्प कहते हैं ।

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादिसृजतोस्य चराचरम् ।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ॥२४॥

अनुवाद—ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष इत्यादि चराचर जगतके बनानेमें ब्रह्माको ४७,४०० दिव्य वर्ष अथवा ४७,४०० × ३६०=१,७०,६४,००० सौर वर्ष लग गये । (इसलिए कल्पके आदिसे इतने समयके बाद सारी सृष्टि तैयार हुई) ॥ २४ ॥

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्तका यह मत है कि कल्पके आदिमें सृष्टिकी रचना नहीं थी । इसके लिए ब्रह्माको १,७०,

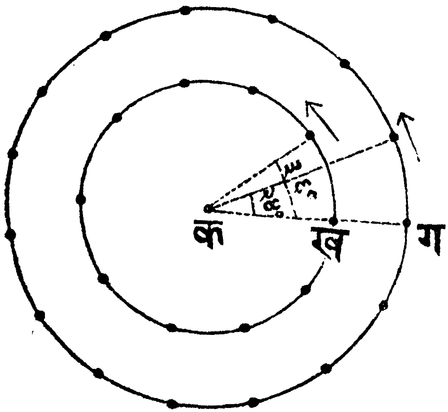
६४,००० सौर वर्ष लगाने पड़े थे। दूसरे आर्यभटका भी वही मत है; परन्तु ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादिके गणितसे जान पड़ता है कि इनको यह मत मान्य नहीं था, क्योंकि इन्होंने ग्रहोंका स्थान जाननेके लिए कल्पके आदिसे गणना की है; परन्तु सूर्य सिद्धान्तने सृष्टिके तैयार होनेमें जितना समय लगा है उसको ग्रह गणितमें छोड़ दिया है।

पश्चाद् व्रजन्तोऽतिजवान् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः ॥२५॥
प्रागगतित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः।
परिणाहवशाद्भिन्नाः तद्वशाद्भानि भुञ्जते ॥२६॥
शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन मन्दगोऽल्पगः।
तेषां तु परिवर्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः ॥२७॥

अनुवाद—(२५) शीघ्र गामी नक्षत्रोंके साथ सदैव पच्छिमकी ओर चलते हुए ग्रह अपनी अपनी कक्षामें समान परिमाणमें हारकर पीछे रह जाते हैं; (२६) इसलिए वह पूर्वकी ओर चलते हुए देख पड़ते हैं और कक्षाओंकी परिधिके अनुसार उनकी दैनिक गति भी भिन्न देख पड़ती है; इसलिए नक्षत्र चक्रको भी यह भिन्न समयमें अर्थात् (२७) शीघ्र चलनेवाले थोड़े समयमें और कम चलनेवाले बहुत समयमें पूरा करते हैं। रेवतीके अंतमें पूरे होनेवाले चक्रको भगण कहते हैं ॥ २५-२७ ॥

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकोंमें ग्रहोंकी गतिका सिद्धान्त बतलाया गया है; इसलिए यह बड़े महत्वके श्लोक हैं। इनसे संक्षेपमें यह पता चलता है कि भारतके प्राचीन ज्योतिषी ग्रहोंके

बारेमें क्या विचार रखते थे। २५वें श्लोकमें बतलाया गया है कि आकाशमें जितने तारे देख पड़ते हैं वह सब ग्रहोंके साथ पच्छिमकी ओर जा रहे हैं; परन्तु नक्षत्रोंके बहुत शीघ्र चलनेके कारण यह पीछे रह जाते हैं और इसीसे पूर्वकी ओर चलते हुए देख पड़ते हैं। इनकी पूरबकी ओर बढ़नेकी चाल तो समान है, परन्तु इनकी कक्षाओंका विस्तार भिन्न होनेसे इनकी गति भी भिन्न देख पड़ती है। इसका रहस्य नीचेके चित्रसे



चित्र १

प्रकट होगा—मान लीजिये कि दिये हुए चित्रमें भीतरी वृत्त १० इंचका और बाहरी १५ इंचका है और मान लीजिये कि ख और ग स्थानोंसे, जो क केन्द्रकी सीधमें हैं दो चींटियां १ इंच प्रति सेकंडकी चालसे भीतरी और बाहरी वृत्तकी परिक्रमा करनेको चलती हैं; तो यह स्पष्ट है कि बाहरी वृत्त पर चलने-

वाली चींटी एक परिक्रमा १५ सेकंड में और भीतरी वृत्तपर चलनेवाली चींटी एक परिक्रमा १० सेकंडमें कर डालेगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि समान रेखात्मक गतिसे चलने पर भिन्न भिन्न आकारकी कक्षाका चक्कर भिन्न भिन्न समयमें होगा। परन्तु २७वें श्लोकमें कहा गया है कि शीघ्र चलनेवाले ग्रह थोड़े कालमें तथा मंद चलने वाले ग्रह अधिककालमें चक्कर पूरा करते हैं। यहां कुछ विरोध जान पड़ता है, परन्तु यह विरोध नहीं है; क्योंकि पहले श्लोकमें जो समान गति बतलायी गई है वह योजनात्मक गति है और इस श्लोकमें गतिका मान कोणात्मक (Angular velocity) है। एक चक्कर ३६० अंशोंका होता है; इसलिए बाहरी वृत्तका एक इंच, केन्द्र पर $\frac{३६०}{१५}$°=२४° का कोण बनाता है और भीतरी वृत्तका एक इंच $\frac{३६०}{१०}$°=३६° का कोण बनाता है। इसलिए यद्यपि चींटियोंकी रेखात्मक (rectilinear) गति १ इंच प्रति सेकंड होनेसे समान है तथापि इनकी कोणात्मक गति प्रति सेकंड भिन्न है। बाहरी चींटी प्रति सेकंड २४° तथा भीतरी ३६° चलती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि शीघ्र चलनेवाली कम समयमें तथा मंद चलनेवाली अधिक समयमें चक्कर पूरा करेगी।

२७वें श्लोकमें भगणकी परिभाषा भी दी गयी है। रेवती नक्षत्रके अंतसे आरंभ करके पूरबकी ओर बढ़ता हुआ जब ग्रह एक चक्कर लगाकर फिर वहीं रेवतीके अंतमें आ जाता है तब वह एक भगण (नक्षत्र गण जो २७ हैं) पूरा करता है। इसलिए भगणको चक्कर भी कहते हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार यह मानना पड़ेगा कि ग्रहोंकी दूरी और उनके भगण-कालमें एक विशेष सम्बन्ध है। जो

ग्रह जितना ही दूर है उसका भगण काल (चक्कर लगानेका समय) उतना ही अधिक है। यह संबन्ध यहां बहुत संक्षेपमें बतला दिया जाता है। इसकी पूरी व्याख्या भारतीय तथा पाश्चात्य ज्योतिषियोंके सिद्धान्तोंकी तुलना करते हुए भूगोलाध्याय नामक बारहवें अध्यायमें की जायगी।

जब सभी ग्रहोंकी रेखात्मक गतियां समान मान ली जायं तब यह सहज ही सिद्ध हो सकता है कि ग्रहोंकी दूरियोंका परस्पर संबंध क्या है; क्योंकि यह जानना तो कुछ कठिन नहीं है कि कौन ग्रह कितने दिनमें एक चक्कर लगा लेता है। जब यह मालूम हो गया कि शनि एक चक्कर स्थूल रीतिसे ३० वर्षमें लगाता है और सूर्य १ वर्षमें और दोनोंकी रेखात्मक गतियां समान हैं तब यह स्वयंसिद्ध है कि सूर्यकी कक्षाकी ३० गुनी शनिकी कक्षा है; क्योंकि ३० वर्षमें सूर्य अपनी कक्षाका ३० गुना चलता है और शनि अपनी कक्षाको केवल एक ही बार पूरा कर पाता है। इसलिए शनिकी कक्षा=३० × सूर्यकी कक्षा। अर्थात् पृथ्वीसे शनिकी दूरी, सूर्यकी दूरीकी ३० गुनी है। इसी प्रकार और ग्रहोंकी दूरी भी जानी जा सकती है।

आज कलकी गवेषणाओंसे जाना गया है कि ग्रहोंकी परस्पर दूरियोंका सम्बन्ध इतना सरल नहीं है और न इनकी रेखात्मक गति ही समान है। अब तो यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीसे जितनी सूर्यकी दूरी है उससे लगभग १० गुना शनि पृथ्वीसे दूर है।

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
तत् त्रिंशता भवेद्राशि र्भगणो द्वादशैवते ॥२८॥

अनुवाद—६० विकलाओंकी एक कला, ६० कलाओंका एक भाग या अंश, ३० भागों या अंशोंकी एक राशि तथा १२ राशियोंका एक भगण होता है ॥ २८ ॥

विज्ञान भाष्य—यह कोण नापनेकी इकाइयां हैं। पूरे नक्षत्र-चक्रको भगण कहते हैं। यदि इस चक्रके १२ समान भाग किये जायं तो प्रत्येक भागको राशि कहते हैं। राशिके तीसवें भागको अंश, अंशके साठवें भागको कला तथा कलाके साठवें भागको विकला कहते हैं। इनमेंसे भगण और राशिका प्रयोग तो केवल उस आकाश-स्थित चक्रके लिए होता है जिसके तलमें (plane) सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है और अन्य ग्रह इधर उधर कुछ हटकर परिक्रमा करते हैं। परन्तु अंश, कला और विकलाका प्रयोग अन्य कोणोंके नापनेमें भी किया जाता है। आज कल अंशको संक्षेपमें लिखनेकी रीति यह है कि अंशका परिमाण बतलाने-वाले अंकके ऊपर तनिक सा दाहिने हटकर एक छोटासा वृत्त लिख देते हैं, कला लिखनेके लिए अंकके ऊपर कुछ दाहिने हटकर बायें हाथको झुकती हुई एक टेढ़ी रेखा छोटी सी खींच देते हैं और विकलाके लिए उसी प्रकारकी दो तिरछी रेखाएं खींच देते हैं; जैसे ५ अंश १६ कला और ५० विकला लिखना हो तो ५°१६′५०″ यों लिखते हैं।

कोण और समय नापनेकी इकाइयोंमें घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जितने समयमें एक भगण पूरा करता है वह एक वर्ष, जितने समयमें एक राशि चलता है वह एक मास, जितने समयमें एक अंश चलता है वह एक दिन, जितने समयमें एक

कला चलता है वह एक घड़ी और जितने समयमें एक विकला चलता है वह एक पलके प्रायः समान होता है।

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥२९॥
इन्दो रसाग्नि त्रित्रीषुसप्तभूधरमार्गणाः।
दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु ॥३०॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः।
बृहस्पतेः खदस्त्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा ॥३१॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधरा।
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥३२॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्त्रकाः ॥३३॥

अनुवाद—(२९) एक (महा) युगमें पूर्वाभिमुख चलनेवाले सूर्य, बुध और शुक्रके ४३,२०,००० भगण; मंगल, शनि और बृहस्पतिके शीघ्रोंके भी उतने ही भगण; (३०); चन्द्रमाके ५,७७,५३,३३६ भगण, मंगलके २२,९६,८३२ भगण (३१) बुध-शीघ्रके १७९,३७,०६० भगण, बृहस्पतिके ३,६४,२२० भगण, (३२) शुक्रशीघ्रके ७०,२२,३७६ भगण; शनिके १,४६,५६८ भगण और (३३) चन्द्रोच्चके ४,८८,२०३ भगण तथा बायीं (पच्छिमकी) ओर चलने वाले चन्द्रपातके २,३२,२३८ भगण होते हैं। २९-३३

विज्ञान भाष्य—इस जगह यह बतला देना अच्छा होगा कि हमारे यहां संख्या लिखनेकी पुरानी परिपाटी क्या है। एक,

दो तीन, चार इत्यादि अंकोंको पद्यमें लिखनेके लिए कुछ शब्द नियत कर लिये गये हैं। वही या उनके पर्याय पद्यमें 'अंकानां वामतो गतिः' नियमके अनुसार क्रमसे रख दिये जाते हैं अर्थात् इकाईके स्थानमें लिखे जानेवाले अंकका सूचक शब्द पहले, फिर दहाईके स्थानमें लिखे जानेवाले अंकका सूचक शब्द, फिर सैकड़ेके स्थानमें लिखे जानेवाले अंकका सूचक शब्द क्रमसे रख दिये जाते हैं। जैसे ३२५ कहना हुआ तो पहले ५ का सूचक कोई शब्द पंच, इषु, मार्गण इत्यादि लिखकर उसके पीछे २ का सूचक कोई शब्द द्वि, अश्वि, यम इत्यादि लिखा जाता है, फिर ३ का सूचक त्रि, अग्नि, शिखि इत्यादि लिखा जाता है। इस तरह ३२५ को हम पंचाश्विशिखि या इषुयमाग्नि लिख सकते हैं। सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त तथा सिद्धान्त-शिरोमणिमें संख्याओंके लिखनेकी यही परिपाटी है। प्रथम आर्यभटके आर्यभटीय तथा दूसरे आर्यभटके महासिद्धान्तमें संख्या लिखनेकी रीतियां इससे भिन्न हैं।

एक महायुगमें ग्रहोंके जितने भगण होते हैं वह सूर्य सिद्धान्तके अनुसार ऊपर दिये गये हैं। आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्तके सिद्धान्तोंके अनुसार महायुगीय भगणोंके मानोंमें कुछ अंतर है तथा आजकल सूक्ष्म यंत्रोंकी सहायतासे भगणोंके जो मान जाने गये हैं वह भी किसी सिद्धान्तके अनुसार नहीं मिलते वरन् थोड़ी सी भिन्नता रखते हैं। अगले पृष्ठमें हम सूर्य सिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त तथा आधुनिक भगण-कालोंके मान तुलनात्मक दृष्टिसे देते हैं, जिनसे यह प्रकट होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंके निकाले हुए भगण कालमें और आजकलके सूक्ष्म यंत्रोंके द्वारा निकाले हुए भगण कालमें कितना

कम अंतर है। जितने समयमें किसी ग्रहका एक भगण या चक्कर पूरा होता है उसको भगण काल कहते हैं। इसके निकालनेकी रीति सिद्धान्तके अनुसार यह है कि एक महायुगमें जितने भगण उस ग्रहके होते हैं उससे महायुगके सौर वर्षोंमें भाग दे दीजिये तो १ भगण काल (सौर वर्षोंमें) निकल आवेगा। अब इसको चाहे आप दशमलव भिन्नमें लिखिये और चाहे सावन दिनोंमें। सायन दिनोंमें भगणकाल निकालनेके लिए सबसे सुगम रीति यह है कि महायुगमें जितने सावन दिन हों उनमें महायुगीय भगणका भाग दे दीजिये, जितनी लब्धि आवे वह सावन दिन है शेषकी घड़ी, पल, विपल इत्यादि बना लीजिये। जैसे १ घड़ीमें ६० पल होते हैं वैसे ही १ पलमें ६० विपलकी तथा १ विपलमें ६० प्रतिविपलकी भी कल्पनाकी जा सकती है।

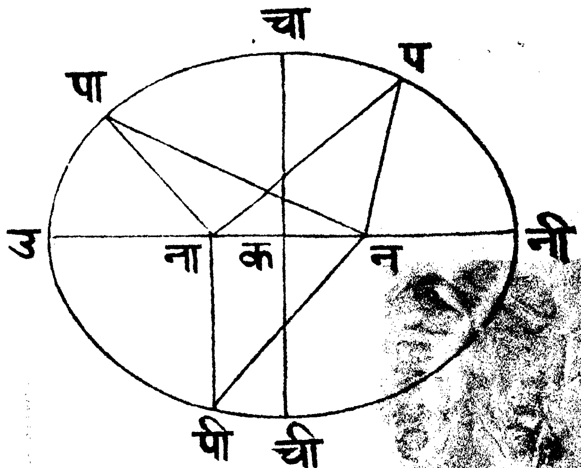
इन श्लोकोंमें जिन नये शब्दोंका प्रयोग हुआ है वह हैं ग्रह-शीघ्र, चन्द्रोच्च और पात। इन शब्दोंको समझनेके लिए पहले हमको अपने ऋषियोंकी उन कल्पनाओंका ज्ञान होना चाहिये जिन्हें उन्होंने ग्रहोंकी चालके सम्बन्धमें मान रखी थीं। उन्होंने पृथ्वीको अचल समझा था और सूर्य चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रोंको पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए समझा था। परन्तु इतनेसे ही ग्रहोंकी गतियोंका हिसाब ठीक ठीक नहीं निकलता था; इसलिए उन्होंने ग्रहशीघ्रोंकी कल्पना की थी। वह यह तो देखते ही थे कि दो ग्रह बुध और शुक्र सूर्यके आस पास ही रहते हैं; इसलिए इनका स्थान जाननेके लिए सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सूर्य कहां है। सूर्यका स्थान जान लेने पर यह निश्चय हो जाता है कि बुध सूर्यसे

इसी प्रकार पृथ्वी, मङ्गल, बुध, शुक्र इत्यादि भी दीर्घवृत्तमें सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। और सूर्य इन कक्षा-वृत्तोंकी नाभि पर रहता है। उच्च स्थान पर गति बहुत मंद और नीच स्थान पर बहुत तीव्र क्यों होती है, इसका कारण आकर्षण शक्तिकी घटती बढ़ती है। जब ग्रह उच्च पर रहता है तब उसका अंतर अत्यन्त अधिक होनेके कारण आकर्षण शक्ति अत्यन्त कम होती है, जिससे ग्रहकी गति मंद पड़ जाती है और जब वह नीच पर होता है तब अंतर अत्यन्त कम होनेसे आकर्षण शक्ति अत्यन्त अधिक होती है, जिससे ग्रहकी गति बहुत तीव्र हो जाती है। इसके सम्बन्धमें कई नियम जाने गये हैं, जो केपलरके सिद्धान्तके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्यायमें उचित स्थान पर की जायगी।

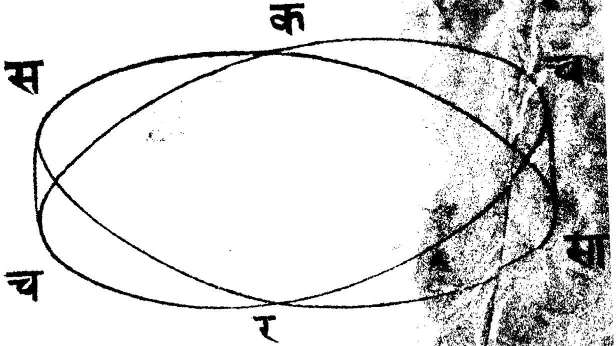
पात—सूर्य जिस मार्ग पर चलता हुआ १ वर्षमें आकाशका चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है, उसको क्रान्ति-वृत्त कहते हैं। इसी तरह चन्द्रमा, जिस मार्ग पर चलता हुआ पृथ्वीकी परिक्रमा लगाता है उसको चन्द्र-कक्षा कहते हैं। क्रान्ति-वृत्त और चन्द्र-कक्षा एक ही तल पर नहीं हैं और समानान्तर भी नहीं हैं; इसलिए यह दोनों कक्षाएँ एक दूसरेसे दो विन्दुओं पर मिलती हुई जान पड़ती हैं; जैसे दो उड़ती हुई पतंगोंकी डोरियाँ एक दूसरीसे बहुत दूर रहती हुई भी एक विन्दु पर मिलती हुई जान पड़ती हैं और उन पतंगोंकी गतियोंमें भिन्नता होनेसे यह विन्दु एक ही दिशामें नहीं देख पड़ता। इन्हीं विन्दुओंको चन्द्रमाके पात कहते हैं। चन्द्रमा अपनी कक्षामें चलता हुआ आधे भ्रमण कालतक क्रान्तिवृत्तके उत्तर और आधे भ्रमण कालतक क्रान्तिवृत्तके दक्खिन रहता

है। जब वह अपने पात पर पहुँचता है तब या तो वह क्रान्ति-वृत्तसे उत्तरकी ओर बढ़ता है और या दक्खिनकी ओर। जिस पातपर पहुंच कर यह उत्तरकी ओर जाता है उसे उत्तर पात (Ascending node) और जिस पात पर पहुंच कर वह दक्खिनको ओर जाता है उसे दक्खिन पात (Descending node) कहते हैं। उत्तर पातको राहु तथा दक्खिन पातको केतुभी कहते हैं। जब चन्द्रमा पूर्णमासी या अमावास्याके समय इन्हीं पातोंके पास होता है तब चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण लगता है; इसीलिए यह कल्पना हो गयी कि राहु और केतु राक्षस हैं, जो ग्रहणके कारण होते हैं। कुछ लोग पृथ्वीकी छायाकी नोकको राहु और चन्द्रमाकी छायाकी नोकको केतु मानते हैं; परन्तु यह भ्रम है।

इन पातोंके स्थान भी स्थिर नहीं हैं वरन पच्छिमकी ओर खसकते हुए जान पड़ते हैं। जितने समयमें यह पच्छिमकी ओर खसकते हुए एक परिक्रमा कर लेते हैं उतने समयको इनका भगण-काल कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रहोंके पातोंके बारेमें समझ लेना चाहिये। यह पच्छिमकी ओर क्यों खसकते हैं, इसका कारण भौतिक ज्योतिर्विज्ञानमें (Physical Astronomy) बहुत ही सूक्ष्म गणितके द्वारा समझाया गया है, जो उचित स्थान पर इस विज्ञान भाष्यमें भी समझाया जायगा। चित्र ४ में यदि स र सा क को सूर्यका मार्ग अर्थात् क्रान्तिवृत्त समझा जाय और च र चा क को चन्द्रकक्षा तो र और क विन्दु चन्द्रमाके पात कहलाते हैं। चन्द्रमा तीरकी दिशामें भ्रमण करता हुआ जब र पातसे आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्त से उत्तर हो जाता है और र चा क भाग तक उत्तर रहता है,



चित्र । ३



चित्र ४

(देखिये पृष्ठ २४ और २[illegible])

इसलिए र पातको उत्तर पात कहते हैं। क बिन्दुपर पहुंच कर चन्द्रमा क्रान्तिवृत्तसे दक्खिन जाता है, इसलिए क दक्खिन पात कहा जाता है। भारतीय ज्योतिषी चंद्रमाके उत्तर पातको राहु तथा दक्खिन पातको केतु कहते हैं। चा र सा कोण क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षाके तलोंके बीचका कोण है, जिसका मान ५° के लगभग है। इसी कोणको चंद्रमाका विक्षेप कहते हैं, जिसकी चर्चा इसी अध्यायके ६८वें श्लोकमें की गयी है।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऊपर जो भगण काल दिये हुए हैं वह कैसे जाने गये और भिन्न भिन्न मतोंमें अंतर क्यों है। इसका उत्तर भास्कराचार्य जी के मतानुसार यों है:—

सा तु तत्द्भाषाकुशलेन तत्त्र क्षेत्रसंस्थानज्ञेन श्रुत गोलेनैव श्रोतु शक्यते, नान्येन। ग्रह मन्द शीघ्रोच्च पाताः स्व स्वमार्गेषु गच्छन्तः एतावतः पर्य्ययान् कल्पे कुर्व्वन्तीत्यत्रागम एव प्रमाणम्। स चागमो महता कालेन लेखकाध्यापकाध्येतृ दोषैर्बहुधा जातः; तदा कतमस्य प्रामाण्यम्? अथ यद्येवमुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम्। उपपत्त्या ये सिध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः। तदपि न। यतोऽतिप्राज्ञेन पुरुषेणोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते। न तया तेषां भगणानामियत्ता कर्त्तुं शक्यते; पुरुषायुषोऽल्पत्वात्। उपपत्तौ तु ग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः, भगणान्तं यावत्। एवं शनैश्चरस्य तावद्वर्षाणां त्रिंशता भगणः पूर्य्यते। मन्दोच्चानान्तु वर्षशतैरनेकैः। अतो नायमर्थः पुरुषसाध्य इति। अत एवातिप्राज्ञा गणकाः साम्प्रतोपलब्ध्यनुसारिणं प्रौढ़गण स्वीकृतं कमप्यागममङ्गीकृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणितगोलयोर्निरतिशयं कौशलं दर्शयितुं तथाऽन्यैर्भ्रान्ति ज्ञानेनान्यथोदितानर्थांश्च निराकर्त्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति। ग्रह गणित इति

कर्तव्यतायामस्माभिः कौशलं दर्शनायं भवत्यागमो योऽपिको ऽप्ययमाशयस्तेषाम् ।

अर्थ—किन्तु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिःशास्त्रकी) विशेष भाषामें कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्र-आदिके स्थानोंको जानता हो, और जिसने भूगोल खगोलके बारेमें अच्छी तरह सुना हो। अपने अपने मार्गोंमें जाते हुए ग्रह, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्पमें इतने भगण करते हैं, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परम्परागत ज्ञान ही है। किन्तु अधिक समय बीतनेके कारण लेखकों, अध्यापकों तथा पढ़नेवालोंकी भूलसे आगम अनेक हो गये हैं ! इसलिए प्रश्न होता है कि कौनसा आगम प्रमाण माना जाय। यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम गणितके अनुसार खरा सिद्ध हो उसीको प्रमाण मानकर जो भगण निकले वही माने जायँ तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि अत्यन्त ज्ञानी पुरुष भी केवल रीतिके ही जाननेमें समर्थ हो सकता है; परन्तु रीतिसे ग्रहोंके भगणकी संख्या नहीं निकाल सकता। कारण यह है कि मनुष्यकी आयु बहुत थोड़ी होती है और उपपत्ति जाननेके लिए ग्रहको प्रतिदिन वेध करना होता है, जब तक कि भगण पूरा न हो। इस तरह शनिश्चरका एक भगण ३० वर्षोंमें पूरा होता है। मन्दोच्चोंके भगण तो अनेक शताब्दियोंमें पूरे होते हैं। इसलिए यह कार्य पुरुष-साध्य नहीं है। इसलिए बुद्धिमान गणक किसी ऐसे आगमको मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो

* सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृ० १६-१७ (कलकत्तेका छपा। द्वितीय संस्करण)

और जिसको प्रतिष्ठाप्राप्त गणकने स्वीकार कर लिया हो, अपनी गणित तथा गोल सम्बन्धी ग्रहोंकी गणनाकी कुशलता दिखानेके लिए तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये हैं उनके दूर करनेके लिए, दूसरे ग्रंथ बनाते हैं। उनका यह अभिप्राय है कि हमको ग्रहोंकी ठीक गणना करनेमें कुशलता दिखानी चाहिये, आगम चाहे जो हो।

सूर्य, बुध और शुक्रके भगणके सम्बन्धमें भास्कराचार्य जी कहते हैं कि कल्पमें जितने वर्ष होते हैं उतने ही सूर्यके भगण होते हैं। इसलिए सूर्यका भगण-काल ही वर्ष है। बुध और शुक्र रविके पास कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे सदा अनुचरकी तरह रहते हैं। इसलिए इनके भगण भी रवि भगणके समान हुए।

सूर्यका भगण काल जाननेके लिए यह युक्ति बतलायी गयी है—

समतल भूमिमें एक वृत्त खींचकर उसमें दिशाओंके चिह्न लगा लो। जब सूर्य उत्तरायण हो तब जिस दिन वह पूर्व दिशासे कुछ ही दक्खिन होकर उदय हो उस दिन वृत्तके मध्यमें गड़ी हुई कीलके द्वारा उदय होते हुए सूर्यको वेध लो। इसके बाद एक वर्ष तक सूर्यके उदयकी गणना करनी चाहिये। एक वर्षमें ३६५ बार उदय होगा। अन्तिम उदय पहले दिनके उदय-स्थानसे कुछ दक्खिन होगा। इन दोनोंमें जो अंतर हो वह लिख लो। दूसरे दिन फिर उदय होते हुए सूर्यको वेध करो। इस दिन यह पूर्व दिशासे कुछ उत्तर हो कर उदय होगा। पिछले दिनके उदय स्थानसे कितना उत्तर होकर उदय होता है इसको भी जान लो। फिर अनुपातके द्वारा यह जानलो कि जब ६० घड़ीमें इतना उत्तर बढ़ता है तब पहला अन्तर

कितने समयमें हुआ होगा। इस प्रकार १५ घड़ी ३० पल २२ विपल ३० प्रति-विपल और ३६५ सावन दिनोंमें सूर्यका उदय उसी स्थानपर होता है जिस स्थानपर वर्षके आरंभमें हुआ था। इसलिए यही समय सूर्यका भगण काल हुआ। फिर अनुपातके द्वारा यह जानलो कि जब १ वर्षमें उतने सावन दिन होते हैं तब १ कल्प वर्षोंमें कितने सावन दिन होते हैं, इत्यादि।

आजकल वसंत-सम्पात जाननेके लिए जो रीति काममें लायी जाती है उससे भास्कराचार्य जीकी बतलायी हुई रीति बहुत कुछ मिलती है। अंतर यह है कि भास्कराचार्यजीने क्षितिज-वृत्तपर वेध करनेको कहा है और आजकल याम्योत्तर-वृत्त पर वेध किया जाता है, जिससे लम्बन और प्रकाश वक्रीभवनके कारण कोई भूल नहीं हो सकती; दूसरा अंतर यह पड़ता है कि आजकलके यंत्र बहुत सूक्ष्म हैं पर भास्कराचार्यकी बतलायी हुई रीतिमें कोरी आंखसे ही काम लिया गया है।

चन्द्र भगणकी उपपत्तिभी गोलयंत्रके द्वारा जिसमें नक्षत्र-चक्र, क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त, चंद्रकक्षा, ग्रहकक्षा इत्यादि बने रहते हैं, वेध करके जानना चाहिये। इसका वर्णन बहुत विस्तार-के साथ करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह केवल इसलिए लिखा गया है कि प्राचीन ज्योतिषी भी वेधके द्वारा ग्रन्थमें दी हुई बातोंकी परीक्षा करते थे और जो ठीक निक-लता था उसीको मानते थे।

चन्द्रोच्चका भगणकाल जानने की रीति

प्रतिदिन गोलयंत्रके द्वारा चंद्रमाका वेध करके स्पष्ट गति निकालनी चाहिये। जिस दिन गति सबसे कम हो उस दिन

मध्यम और स्पष्ट चन्द्रमाके स्थानोंमें अंतर नहीं होता। यही चंद्रमाके उच्चका स्थान है। इसी प्रकार प्रतिदिन वेध करते करते जब चन्द्रमाकी गति फिर परम अल्प हो तब उसी स्थानको उच्च समझना चाहिये। यह स्थान पहले स्थानसे कुछ आगे रहता है। कितना आगे हो जाता है यह जानकर अनुपातके द्वारा यह गणित कर लेना चाहिये कि उच्चकी दैनिक गति कितनी होती है तथा एक भगणकाल कितने दिनमें पूरा होता है।

चन्द्रपातका भगणकाल जाननेकी रीति—प्रति दिन चन्द्रमाका वेध करते हुए यह देखना चाहिये कि किस दिन चन्द्रमाका दक्षिण विक्षेप कम होते होते शून्य हो जाता है। जिस समय विक्षेप शून्य हो उस समय चन्द्रमा पात स्थान पर होता है। इसी प्रकार जब दूसरे चक्करमें चंद्रमाका दक्षिण विक्षेप कम होते होते शून्य हो जाय तब समझना चाहिये कि वह अपने पातपर पहुंच गया। दूसरी बार पातका स्थान पहले स्थानसे कुछ पच्छिम होता है, इसीलिए यह कहा जाता है कि पातकी गति विलोम होती है अर्थात् पच्छिमकी ओर होती है। फिर अनुपातके द्वारा जानना चाहिये कि जब इतने दिनमें पात इतना चलता है तो एक दिनमें कितना चलेगा। यही पातकी दैनिक गति समझनी चाहिये। इसी प्रकार यह भी जानना चाहिये कि एक कल्पमें कितने भगण होते हैं।

मंगल, गुरु और शनिके शीघ्रोच्चोंके सम्बन्धमें—जब सूर्य, शनि, गुरु या मंगलसे आगे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थानसे कुछ आगे रहते हैं और जब सूर्य पीछे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थानसे पीछे रहते हैं; इसलिए विद्वानोंने यह कल्पना की कि

इन तीनोंके शीघ्रोच्च सूर्यके साथ ही रहते हैं और ग्रहोंको अपनी ओर अर्थात् सूर्यकी ओर आकर्षित करते हैं; इसलिए इनके शीघ्रोच्चोंके भगण सूर्यके समान होते हैं।

भानामष्टाक्षिवस्वद्रित्रिद्विद्व्यष्टशरेन्दवः।
भोदया भगणैः स्वैः स्वैरूनाः स्वस्वोदया युगे ॥३४॥

अनुवाद—१ महायुगमें नक्षत्रोंके १,५८,२२,३७,८२८ भगण होते हैं। किसी ग्रहके महायुगीय भगणको नक्षत्रके महायुगीय भगणमेंसे घटा देनेसे जो बचता है उतने ही बार एक महायुगमें वह ग्रह पूर्व क्षितिजमें उदय होता है ॥ ३४ ॥

विज्ञान भाष्य—१२ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें नाक्षत्र-अहोरात्रकी परिभाषा दी गयी है। एक नाक्षत्र-अहोरात्रमें तारे पश्चिमकी ओर चलते हुए एक परिक्रमा कर लेते हैं। इसी परिक्रमाको नाक्षत्र भगण कहते हैं। इसलिए एक महायुगमें जितने नाक्षत्र भगण होते हैं उतने ही नाक्षत्र-अहोरात्र होते हैं।

ऊपरके श्लोकके पिछले भागमें यह जाननेकी रीति बतलायी गयी है कि एक महायुगमें कौन ग्रह कितने बार पूर्व-क्षितिजमें उदय होता है। एक महायुगमें ग्रहके जितने भगण होते हों उसको एक महायुगके नाक्षत्र भगणकी संख्यासे घटा दो; शेष जो संख्या होगी उतने ही बार वह ग्रह एक महायुगमें पूर्व-क्षितिजमें उदय होगा। मानलो कि यह जानना है कि सूर्य पूर्व-क्षितिजमें एक महायुगमें कितनी बार उदय होता है। २९ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य एक महायुगमें ४३,२०,००० भगण करता है। इसको यदि महायुगीय नाक्षत्र भगण १,५८,२२,३७,८२८ में से घटा दिया जाय तो शेष १,५७,

७६,१७,८२८ होता है। इतने ही बार सूर्य पूर्व क्षितिजमें एक महायुगमें उदय होता है। परन्तु १२वें श्लोकके विज्ञान-भाष्यमें यह बतलाया गया है कि सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं। इसलिए ३४वें श्लोकके अनुसार १ महायुगमें १,५७,७६,१७,८२८ सावन दिन होते हैं।

इसी तरह और ग्रहोंके उदयकी संख्या भी जानी जा सकती है। इसकी उपपत्ति यह है:—यदि किसी दिन सूर्य किसी तारेके साथ उदय हो तो दूसरे दिन वह तारा सूर्यसे कोई ३ मिनट ५६ सेकंड पहले उदय होता है। क्योंकि इतने समयमें सूर्य कोई एक अंश पूर्वकी ओर चला जाता है। तीसरे दिन वह तारा सूर्यसे ३ मिनट ५६ सेकंडके दूने समय अर्थात् ७ मिनट ५२ सेकंड पहले उदय होगा, चौथे दिन उसके तिगुने समय पहले और १६वें दिन उसके १५ गुने समय पहले अर्थात् ५६ मिनट वा १ मिनट कम १ घंटा पहले वह तारा उदय होगा। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते ३६१ वें दिन अर्थात् ३६० नाक्षत्र दिन बाद वह तारा सूर्यसे २४ मिनट कम २४ घंटे पहले और ३६६ नाक्षत्र दिन बाद पूरे २४ घण्टे अर्थात् १ दिन पहले उदय होगा जब कि सूर्य और वह तारा फिर साथ हो जावेंगे। इसलिए जितने समयमें नक्षत्र ३६६ भगण करता है उतने समयमें सूर्य १ बार कम उदय होता है और एक भगण पूरा करता है। इसलिए सूर्य एक भगण कालमें (१ सौर वर्षमें) ३६६ − १ बार उदय होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके उदयके बारेमें समझना चाहिये।

भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम्।
रविमासोनितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः ॥३५॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमाके महायुगीय भगणोंका जो अंतर होता है उतने ही चान्द्रमास एक महायुगमें होते हैं। एक महायुगमें जितने सौर मास होते हैं उनकी संख्याको महायुगीय चान्द्रमासोंकी संख्यासे घटा देने पर शेष अधिमासोंकी संख्या होती है ॥ ३५ ॥

विज्ञान भाष्य—जिस समय सूर्य और चन्द्रमाकी युति होती है उस समयको अमावस्या कहते हैं। इस समय चन्द्रमा और सूर्य बहुत पास होते हैं। एक अमावास्यासे दूसरी अमावास्यातक के समयको चान्द्र-मास कहते हैं। इसलिए यदि यह जानना हो कि एक महायुगमें कितने चान्द्र मास होते हैं तो पहले यह जानना चाहिये कि एक महायुगमें सूर्य और चंद्रमाकी युति कितने बार होती है। इसके लिए सूर्य और चंद्रमाके महायुगीय भगणोंका अंतर निकाल लेना पर्याप्त है। क्योंकि यह बात सहज ही जानी जा सकती है कि यदि दो लड़के किसी गोल मैदानका चक्कर लगाने लगें और यदि एक लड़का घन्टेमें ५ चक्कर लगाता हो और दूसरा ३ तो दोनों यदि एक ही स्थानसे एकही समय दौड़ना आरंभ करें तो घन्टे भरमें दोनों लड़के ५—३=२ बार एक दूसरे से मिलेंगे। इसके लिए घड़ीकी घण्टा और मिनट बतलानेवाली सुइयोंकी चालका उदाहरण बहुत उपयुक्त है। बारह बजे दोनों सुइयां एक दूसरे से मिली रहती हैं अर्थात् दोनोंकी युति रहती है। इसके बाद दोनों चक्कर लगाना आरम्भ करती हैं और १ बज कर ५$\frac{५}{११}$ मिनटपर पहले पहल मिलती हैं। दूसरी बार वे २ बज कर १०$\frac{१०}{११}$ मिनट पर, तीसरी बार ३ बज कर १६$\frac{४}{११}$ मिनट पर, चौथी बार ४ बज कर २१$\frac{९}{११}$ मिनट पर, पांचवीं बार

५ बज कर २७$\frac{३}{११}$ मिनटपर, छुठी बार ६ बज कर ३२$\frac{८}{११}$ मिनट पर, सातवीं बार ७ बज कर ३८$\frac{२}{११}$ मिनटपर, आठवीं बार ८ बज कर ४३$\frac{७}{११}$ मिनट पर, ९ वीं बार ९ बज कर ४९$\frac{१}{११}$ मिनटपर दसवीं बार १० बज कर ५४$\frac{६}{११}$ मिनटपर और ११ वीं बार ठीक बारह बजे मिलेंगी। इन ग्यारह युतियोंके लिए मिनटवाली सुईको १२ चक्कर और घण्टेवाली सुईको १ चक्कर लगाना पड़ा। इसलिए युतियोंकी संख्या दोनोंके चक्करोंका अंतर (१२ – १) हुई। इसी प्रकार

महायुगीय चांद्र-मासोंकी संख्या

=महायुगीय चन्द्र-भगण – महायुगीय सूर्य-भगण

=५,७७,५३,३३६ – ४३,२०,०००

=५,३४,३३,३३६

अधिमास—मासोंकी गणना चान्द्रमाससे और वर्षों गणना सौर वर्षसे होती है। एक सौर वर्षमें १२ सौर म तथा ३६५·२५८७५ मध्यम सावन दिन होते हैं परन्तु चांद्रमास २९·५३०५ मध्यम सावन दिनका होना है; इसलिए १२ चान्द्रमासोंका वर्ष सौर वर्षसे १०·८९१७० मध्यम सावन दिन छोटा होता है; इसलिए कोई तैंतीस महीनेमें यह अंतर एक चान्द्रमासके समान हो जाता है। जिस सौर वर्षमें यह अंतर १ चांद्रमास के समान हो जाता है उस सौर वर्षमें १३ चांद्रमास होते हैं। तब एक चान्द्रमास अधिमास या मल-मासके नामसे छोड़ दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो चांद्रमासके अनुसार मनाये जानेवाले त्यौहार पर्व इत्यादि भिन्न भिन्न ऋतुओंमें मुसलमानी त्यौहारोंकी तरह पड़ने लगें। ऊपरके श्लोकमें यह बतलाया गया है कि एक महायुगमें

जितने सौरमास होते हैं उनसे चांद्रमासोंकी संख्या जितनी अधिक हो उतने ही चांद्रमास अधिमासके नामसे छोड़ दिये जायंगे। इसलिए एक महायुगमें अधिमासोंकी संख्या

=महायुगीय चांद्रमास – महायुगीय सौर मास
=५,३४,३३,३३६ – ४३,२०,००० × १२
=१५,९३,३३६

सावनाहानि चान्द्रेभ्यो द्युभ्यः प्रोज्झ्य तिथिक्षयाः।
उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः॥ ३६॥

अनुवाद—एक महायुगमें जितनी चान्द्र तिथियां होती हैं उस संख्यामेंसे महायुगके सावन दिनोंकी संख्या घटानेसे उन तिथियोंकी संख्या निकल आती है जो क्षय होती हैं अर्थात् जिनकी गणना नहीं की जाती। सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयके बीचके समयको भूमिसावन दिन कहते हैं॥३६॥

विज्ञानभाष्य—एक चांद्रमासमें ३० तिथियां होती हैं। इस लिए यदि महायुगीय चांद्रमासोंकी संख्याको ३० से गुणा कर दिया जाय तो एक महायुगमें कितनी तिथियां होती हैं यह मालूम हो जाय। यह पहले ही बतलाया गया है कि एक महायुगमें कितने सावन दिन होते हैं और एक सावन दिनमें एक ही तिथिकी गणना होती है; इसलिए सावन दिनोंकी संख्या से तिथियों की संख्या जितनी अधिक होती है उतनी तिथियों-की गणना नहीं की जाती; इसलिए यह क्षय या अवम तिथियां कहलाती हैं।

इस श्लोकके उत्तरार्द्धकी व्याख्या कई बार की जा चुकी है। यहां केवल यह अधिक बतलाया गया है कि सावन दिन-को भूमिसावन दिन भी कहते हैं।

वसुद्व्यष्टाद्रिरूपांकसप्ताद्रितिथयो युगे ।
चान्द्राः खाष्टखखव्योमखाग्नि खर्तुनिशाकराः ॥३७॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः ।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योम शराश्विनः ॥३८॥
खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासकाः ।
भवन्ति भोदया भानुभगणैरूनिताः कुहाः ॥३९॥

अनुवाद—(३७) एक महायुगमें १,५७,७९,१७,८२८ सावन दिन; १,६०,३०,००,०८० चान्द्र दिन अर्थात् तिथियां; (३८) १५,९३,३३६ अधिमास; २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियां तथा (३९) ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं। नक्षत्रके उदयोंमेंसे सूर्यके भगणकी संख्या घटानेसे भूमिसावन दिन होते हैं ॥३७–३९॥

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें जो संख्याएं दी गयी हैं वह इनसे पहलेके तीन श्लोकोंके उदाहरण हैं।

ऊपर जो महायुगीय अंक दिये गये हैं वह सब सिद्धान्तोंमें एकसे नहीं हैं। थोड़ा बहुत अंतर पाया जाता है। एक महायुगमें सावन दिनोंकी संख्या भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंमें जैसी मिलती है वह नीचे की सारिणीसे सहजही जानी जासकती है:—

प्रचलित सूर्य सिद्धान्त के मतसे १,५७,७९,१७,८२८
पंचसिद्धान्तिके सूर्यसिद्धान्तके मतसे १,५७,७९,१७,८००
आर्यभटीयके मतसे १,५७,७९,१७,५००
ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणिके मतसे १,५७,७९,१६,४५०
महासिद्धान्तके मतसे १,५७,७९,१७,५४२

अधिमासोनरात्र्यृक्ष चान्द्र सावन वासराः ।
एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः ॥४०॥

अनुवाद—अधिमासों, अवम तिथियों, नाक्षत्र, चान्द्र और सावन दिनों तथा ग्रहोंके भगणोंकी जो संख्याएं (बतलायी गयी) हैं उनका एक हजार गुना कर देनेसे कल्पकी संख्याएं निकल आती हैं ॥ ४० ॥

विज्ञान भाष्य—१००० महायुगोंका एक कल्प होता है इसलिए महायुगीय भगण इत्यादिकी संख्याओंको १००० से गुणा कर देनेपर कल्पकी संख्याएं जानी जा सकती हैं।

प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः ।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥४१॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः ।
गोग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः ॥४२॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्ट सागराः ।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य त्रिखाङ्काश्च भृगोस्तथा ॥४३॥
शनि पातस्य भगणाः कल्पे यम रसर्तवः ।
भगणाः पूर्वमेवात्र प्रोक्ताश्चन्द्रोच्च पातयोः ॥४४॥

अनुवाद—(४१) पूर्व की ओर चलते हुए एक कल्प में सूर्य का मन्दोच्च ३८७ भगण, मङ्गल का मन्दोच्च २०४ भगण, बुधका मन्दोच्च ३६८ भगण, (४२) बृहस्पति का मन्दोच्च ९०० भगण, शुक्रका मन्दोच्च ५३५ भगण और शनि का मन्दोच्च ३९ भगण करता है। पातों की गति पश्चिम की ओर को होती है। एक कल्प में मङ्गल का पात २१४ भगण, बुध का पात ४८८ भगण, बृहस्पति का पात १७४ भगण, शुक्रका पात ९०३ भगण और (४४) शनिका पात ६६२ भगण करता है। चन्द्रमाके उच्च

और पातके भगणोंकी संख्या पहले (३२वें श्लोकमें) बतलायी जा चुकी है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहोंके मन्दोच्चों और पातोंकी गति बहुत सूक्ष्म होती है। इनमेंसे कोई भी १ महायुगमें १ पूरा चक्कर नहीं कर पाते, इसलिए इनकी संख्या कल्पके अनुसार दी गयी है।

मन्दोच्च और पात किसे कहते हैं इसका विवेचन चन्द्रमाके उच्च और पातके साथ किया गया है। यह संख्याएँ कैसे जानी गयीं, इसका स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलता; परंतु इसमें संदेह नहीं कि इसकी जानकारी बहुत कालके पर्यवेक्षणसे की गयी होगी। कुछ पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि इसका ज्ञान भारतीय ज्योतिषियोंको यूनानियोंसे हुआ होगा; परंतु यह उनका भ्रम है जैसा कि नीचे की सारिणीसे जान पड़ेगा। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि इन भगणोंकी संख्या आज कलके सूक्ष्म यंत्रोंसे जाने गये अंकोंसे बहुत भिन्न है।

आधुनिक ग्रन्थोंमें इन मन्दोच्चों और पातोंकी वार्षिक गति दी हुई है; इसलिए सूर्यसिद्धान्तके कल्पीय भगणोंसे वार्षिक गतिका मान निकाल कर तुलना की जा सकती है। वार्षिक गति इस प्रकार निकाली गयी:—कल्पमें जितने भगण होते हैं उसको कल्पके सौर-वर्षसे भाग दे दिया गया तो भगणकी एक भिन्न संख्या प्राप्त हुई। इसको ३६० से गुणा करने पर अंश, अंशको ६० से गुणा करने पर कला और कलाको ६० से गुणा करने पर विकलामें वार्षिक गति निकल आयी। जैसे सूर्य-मन्दोच्च एक कल्पमें ३८७ भगण करता है तो

एक वर्षमें वह $\frac{३८७ \times ३६० \times ६० \times ६०}{४३२००००००००}$ विकला अर्थात् $\frac{११६१}{१००००}$ विकला अर्थात ·११६१ विकला चलेगा।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके मन्दोच्चों तथा पातोंकी वार्षिक गति विकलामें जानी जा सकती है।

इस सारिणीके जिन अंकोंके पहले धनका चिह्न (+) है उससे यह प्रकट होता है कि गति पूर्वकी ओर है और जिन अङ्कोंके पहले ऋणका चिह्न (—) है उससे प्रकट होता है कि गति पश्चिमकी ओर है।

दूसरे स्तम्भमें जो अंक दिये गये हैं वह सायन-मेषके विचारसे दिये गये हैं अर्थात् उनसे यह प्रकट होता है कि सायन मेषसे (वसंत सम्पातसे) ग्रहोंके मन्दोच्चों और पातों-का अन्तर प्रति वर्ष कितना होता जाता है।

परन्तु सायन-मेष चल है। यह प्रति वर्ष ५०·२६ विकला पश्चिमकी ओर हटता जाता है; इस लिए यदि निरयन-मेषसे जो स्थिर है मन्दोच्चों और पातोंका वार्षिक अन्तर जानना हो तो दूसरे स्तम्भके अंकोंसे ५०·२६ विकला घटा देना चाहिये। ऐसा करनेसे जो अन्तर आवेंगे वह निरयन-मेषसे मन्दोच्चों और पातोंके वार्षिक अन्तर होंगे। ऐसा करनेसे देखा जाता है कि शुक्रके मन्दोच्चकी गति पश्चिमकी ओर है अर्थात् शुक्रका मन्दोच्च तारोंके मध्य पूर्व न आकर पश्चिमकी ओर खसक रहा है। हमारे व्यावहारिक ज्योतिष ग्रन्थोंमें अयन चलन ६० विकला माना गया है। क्योंकि हमारा वर्षमान वास्तविक नाक्षत्र-वर्षसे ८॥ विकला अधिक है; इसलिए यदि वसंत-सम्पातकी वार्षिक गति ६० विकला मानी जाय और दूसरे

स्तम्भमें जो अंक दिये गये हैं उनमें से ६० विकला घटायी जाय तो जो अन्तर आता है वही चौथे स्तम्भमें लिखा गया है। इस स्तम्भमें जो अंक आये हैं उनकी तुलना सूर्यसिद्धान्तीय अङ्कोंसे करनी चाहिये।

मन्दोच्चों और पातों की वार्षिक गति

ग्रह	आधुनिक सूक्ष्म *वेधोंके अनुसार			
	सायन-मेष या वसंत संपातसे	वास्तविक निरयन मेषसे	हमारे सिद्धान्तोंके निरयन मेषसे	सूर्यसिद्धान्तके अनुसार
१	२	३	४	५
मन्दोच्च	विकला	विकला	विकला	विकला
रवि	+६१·५	+११·२४	+१·५	+०·११६१
मंगल	+६५·७	+१५·४६	+५·७	+०·०६१२
बुध	+५६·१	+५·८४	−३·९	+·११०४
गुरु	+५६·९	+६·६४	−३·१	+·२७
शुक्र	+४७·०	−३·२४	−१३·०	+·१६०५
शनि	+६९·३	+१९·०४	+९·३	+·०११७
मंगलका पात	+२५·०	−२५·२२	−३५·०	−०·०६४२
बुध "	+४०·२	−१०·०७	−१९·८	−·१४६४
गुरु "	+३४·३	−१५·९०	−२५·७	−·०५२२
शुक्र "	+२९·७	−२०·५०	−३०·३	−·२७०९
शनि "	+३०·७	−१९·५४	−२९·३	−·१९८६

*Loomis की Practical astronomy से लिया गया

भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ २०७

१	सम्बत ५५६ वि०में मन्दोच्चों और पातोंके स्थान निरयन २			३			४			सम्वत् २०५ वि० में मन्दोच्चों और पातोंके स्थान (सायन) ५			६			७		
	केरोपंतकी गणनाके अनुसार			सूर्य सिद्धान्तके अनुसार			अन्तर			केरो पंतकी गणनासे			टालमीकी गणनासे			अन्तर		
	राशि	अंश	कला	रा०	अं०	क०		अं०	क०	रा०	अं०	कला	रा०	अं०	क०		अं०	क०
रविका उच्च	२	१७	७	२	१७	१५	+	०	८	२	११	५	२	५	३०	−	५	३५
मंगल ”	४	८	११	४	१०	१	+	१	५०	४	१	३६	३	२५	३०	−	६	६
बुध ”	७	२४	१	७	१०	२६	−	१३	३५	७	१८	३२	६	१०	०	−	३८	३२
गुरु ”	५	२०	३८	५	२१	१६	+	०	३८	५	१५	७	५	११	०	−	४	७
शुक्र ”	६	२१	३	२	१६	४६	−	२११	१४	६	१६	१८	१	२५	०	−	२३१	१८
शनि ”	८	५	१२	७	२६	३७	−	८	३५	७	२८	४५	७	२३	०	−	५	४५
मंगलका पात	१	८	६	१	१०	५	+	१	५६	१	५	२६	०	२५	३०	−	६	५६
बुध ”	१	०	१८	०	२०	४४	−	६	३४	०	२६	५	०	१०	०	−	१६	५
गुरु ”	२	२५	३०	२	१६	४१	−	५	४६	२	२२	१	१	२१	०	−	३१	१
शुक्र ”	२	३	४०	१	२६	४६	−	३	५४	२	०	३६	१	२५	०	−	५	३६
शनि ”	३	१०	१३	३	१०	२५	+	०	१२	३	७	२८	६	३०	०	+	८५	३२

भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृ० २०५, २०६

५१ वें पृष्ठकी सारिणीके ४थे और ५वें स्तम्भोंमें बहुत अन्तर है। परन्तु यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि ५ वें स्तम्भमें जो कुछ लिखा गया है वह कोरी आंखसे और स्थूल यंत्रोंसे जाना गया है।

यदि इन सिद्धान्तोंके मानोंकी तुलना यूनानियोंके मानोंसे की जाय तो जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार कितनी सूक्ष्म परीक्षा करते थे (देखिए ५२ वें पृष्ठ की सारिणी)।

४ थे और ७ वें स्तम्भोंके अंकोंको मिलानेसे जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार वास्तविक स्थितिसे कितना निकट थे और टालमी कितनी दूर। केरोपन्तने जो गणना की है वह आधुनिक मानोंके अनुसार है, इसलिए इनकी गणनासे मन्दोच्चों और पातोंकी वास्तविक स्थितिका पता लगता है। इस तुलनासे यह भी प्रकट है कि हमारे सिद्धान्तकारोंने स्वतंत्र अनुभवसे इन सब भगण-मानोंको जाना था न कि यूनानियों या अन्य देशवालोंसे लिया था जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है।

षण्मनूनां तु सम्पिण्ड्य कालं तत्संधिभिः सह।
कल्पादि सन्धिना सार्धं वैवस्वतमनोस्तथा ॥४५॥

युगानां त्रिघनं यातं तथा कृतयुगं त्विदम्।
प्रोज्झ्य सृष्टेस्ततः कालं पूर्वोक्तं दिव्य संख्यया ॥४६॥

सूर्याब्द संख्यया ज्ञेयाः कृतस्यान्ते गता अमी।
खचतुष्कयमाद्र्यग्निशररन्ध्रनिशाकराः ॥४७॥

अनुवाद—(४५) छः मनुओं, उनकी छः सन्धियों और कल्पकी आदि संधिके कालको जोड़कर योगफलमें वैवस्वत मनुके (४६) २७ युगोंको तथा इस (अट्ठाईसवें) सत्ययुगको जोड़ दो और उसमें से सृष्टिके रचनेमें (२४ वें श्लोकमें) पहले कहेके अनुसार जितना समय लगा है उसको घटा दो। (४७) जो शेष बचे वही (वर्तमान) सत्ययुगके अन्ततक सौर वर्षोंमें संख्या हुई जो १,९५,३७,२०,००० है।

विज्ञान भाष्य—पिछले २२ वें और २३ वें श्लोकों में जो कुछ कहा गया है वही यहां फिर दुहराया गया है। इन श्लोकोंके विज्ञान-भाष्यमें कल्पके आरम्भसे वर्तमान महायुगके सत्ययुगके अन्त तकके सौर वर्षोंकी संख्या जाननेकी रीति बतलायी गयी है जो १,९७,०७,८२,००० होती है। इसमेंसे सृष्टिके रचनेके १,७०,६४,००० सौरवर्ष घटा दिये जाँय तो शेष १,९५,३७,२०,००० होता है। इतने ही सौरवर्ष सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अन्त तक बीते हैं।

अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया।
मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः ॥४८॥
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः।
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः ॥४९॥
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः।
लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामर्धरात्रिकः ॥५०॥

अनुवाद—(४८) ऊपर बतलाये गये (सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अंत तकके) सौरवर्षोंमें सत्ययुगके उपरान्त जितने

सौर वर्ष बीते हों उनको जोड़ लो। योगफल इष्टकाल तकके सौर वर्षोंकी संख्या होगी। इसके मास बनालो अर्थात् १२से गुणा कर दो। मासोंकी संख्यामें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे इष्टकाल तक जितने मास बीते हों उनको भी जोड़ दो। (४६) इस संख्याको दो स्थानोंपर रखो, एकको महायुगके अधिमासों-की संख्यासे गुणा कर महायुगके सौर मासोंकी संख्यासे भाग दे दो, जो लब्धि आवे वही सृष्टिके आदिसे इष्ट काल तकके अधिमासोंकी संख्या होगी। इस लब्धिको दूसरे स्थानमें रखे हुए मासोंमें जोड़ दो। योगफल सृष्टिके आदिसे इष्टकाल तकके चांद्र-मासोंको संख्या है। इसको ३० से गुणा कर (चान्द्र) दिन अर्थात् तिथियां बना लो और इष्टकाल तक वर्तमान मासकी जितनी तिथियां बीती हों उनको जोड़लो तो सृष्टिके आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियां बीती हैं वह मालूम हो जायँगी। (५०) इन तिथियोंकी संख्याको भी दो स्थानोंपर रखो। एकको महायुगीय क्षय-तिथियोंक संख्यासे गुणा दो और गुणनफल को महायुगीय तिथियों संख्यासे भाग दे दो जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आ इष्टकाल तककी क्षय-तिथियोंकी संख्या हुई। इसको स्थानमें रखो हुई तिथियोंकी संख्या में से घटा दो, जो उससे एक कम लङ्काकी अर्द्ध-रात्रि तक सावन संख्या हुई।

विज्ञान भाष्य—जब यह जानना होता है कि किसी इष्ट ग्रहोंके स्थान क्या हैं तब सबसे पहले यह जानना चा कि सृष्टिके आदिसे उस इष्ट समय तक कितने सावन बीते। जब सावन दिनोंकी संख्या मालूम हो गयी तब ग्र

शिकके द्वारा ग्रहोंका स्थान जान लेना सुगम होता है। क्योंकि सृष्टिके आदिमें सब ग्रह एक साथ थे और एक महायुगमें वह कितने भगण करते हैं तथा कितने सावन दिन होते हैं, यह भी बतला दिया गया है; इसलिए जब महायुगीय सावन दिनोंमें अमुक भगण होते हैं तब इष्ट काल तकके सावन दिनोंमें कितने भगण होंगे, यह जान लेनेसे ही ग्रहका स्थान निकल आता है। इष्टकाल तकके सावन दिनोंकी संख्या जिसे अहर्गण कहते हैं जानने की रीति ऊपरके तीन श्लोकोंमें बतलायी गई है।

उदाहरण—१९७९ विक्रमीय की वसंत पंचमी (माघ सुदी ५) तक सृष्टिसे कितने दिन बीते ?

सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अंत तक = १,९५,३७,२०,००० सौर वर्ष

त्रेता = १२,९६,००० सौर वर्ष

द्वापर = ८,६४,००० ”

७९ वि०की चैत्र शुक्ल १के आरम्भ तक = ५,०२३* ”

ए सृष्टिके आदिसे १९७९वि० के

' शुक्ल १ के आरम्भ तक = १,९५,५८,८५,०२३ वर्ष

= २३,४७,०६,२०,२७६ सौरमास*

से माघ शु० १ के आरंभ तक १० चांद्रमास

ष्टिके आदिसे

१९७९ के मा०शु०१ तक २३,४७,०६,२०,२८६ मध्यम मास

१९७९ वि० में जिस समय मेष-संक्रान्ति लगेगी उस समय।

गे। इसलिए इन्हें मध्यम सौर वर्ष या मास कहना चाहिये।

जब एक महायुगमें ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं तब १५,९३,३३६ अधिमास होते हैं; इस लिए २३,४७,०६, २०,२८६ मध्यम मासोंमें अधिमासोंकी संख्या हुई

$$\frac{२३,४७,०६,२०,२८६ \times १५,९३,३३६}{५,१८,४०,०००} = ७२,१३,८४,७२६ \text{ अधिमास}$$

इस लिए सृष्टिके आदिसे १९७९ वि० की

माघ शु० १ तक हुए २४,१९,२०,०५,०१२ चांद्रमास

=७,२५,७६,०१,५०,३६० तिथियां

∴ माघ सुदी ५ तक हुई ७,२५,७६,०१,५०,३६५ तिथियाँ

परन्तु एक महायुगमें ५३४३३३३६ चान्द्रमास तथा २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियां होती हैं, इसलिए २४,१९,२०, ०५,०१२ चान्द्र*मासोंमें क्षय तिथियोंकी संख्या=

$$\frac{२४,१९,२०,०५,०१२ \times २,५०,८२,२५२}{५३४३३३३६} = ११,३५,९०,१८,७६१$$

∴ माघ सुदी ५, तक सृष्टिके आदिसे

सावन दिनोंकी संख्या = ७,१४,४०,४१,

माघ सुदी ५ के पहलेकी अर्द्धरात्रि

तकके अहर्गण = ७,१४,४०,४१

---

* पुस्तकमें चन्द्रमासोंकी जगह तिथियां कही गयी है जिससे शुद्ध होती है; परन्तु गुणा भाग अधिक करना होता है इसलिए चान्द्र लिये गये हैं। इससे सम्भव है कि कहीं [illegible] भूल पड़े, जो निकालनेसे शुद्ध हो सकती है।

किसी समय तकके सावन दिनोंकी संख्या जाननेका यह नियम बहुत कष्टप्रद है और तनिक सी भी भूल हो जानेसे घंटोंका परिश्रम व्यर्थ जाता है। इसलिए व्यवहारमें इतने बड़े समयकी गणना नहीं की जाती वरन् करण ग्रन्थ और सारणियां बनी हुई हैं जिनके द्वारा यह गणना सहज ही हो जाती है। आगे चलकर इस पुस्तकमें भी सत्ययुगके अंतसे अहर्गण बनानेका उपदेश दिया गया है। यदि स्वतन्त्र गणना सुगम रीतिसे करना हो तो नीचे लिखी रीति काम दे सकती है:—

यह बतलाया जा चुका है कि एक महायुगमें ४३,२०,००० सौरवर्ष तथा, १,५७,७६,१७,८२८ सावनदिन होते हैं।

इसलिए एक सौर वर्ष में $\frac{१,५७,७९,१७,८२८}{४३,२०,०००}$ सावन-दिन

१ ३६५-२५८७५६४८१५ सावन-दिन होते हैं। जिस तकके अहर्गणकी संख्या जाननी हो वह जिस सम्वत् उसकी मेष संक्रान्तिके दिनका अहर्गण निकाल करनेके लिए एक वर्षके सावन दिनोंकी संख्याको आदिसे इष्ट सम्वत् तकके सौर वर्षोंसे गुणा कर दो। उदाहरणमें १९७९ वि० की मेष संक्रांतिके दिन सृष्टिके ,९५,५८,८५,०२३ सौरवर्ष बीते हैं; इसलिए इस मध्यम मेष-संक्रान्तिके समय तक ३६५·२५८७५- × १,९५,५८,८५,०२३ सावन दिन अर्थात् ७,१४,४०,- ,३२१· ७७००२६०५४५ सावन दिन बीते। परन्तु स्पष्ट संक्रांति मध्यम संक्रान्तिसे २·१७०६९४४ सावन दिन ही हो जाती है। इसलिए यदि मध्यम मेषसंक्रान्ति तकके

अहर्गणमेंसे २·१७०६९४४ सावन दिन घटा दिये जांय तो स्पष्ट मेष-संक्रांतिके समय तक ७,१४,४०,४१,३१,३१९·५९९२३१६ ७४५ सावन दिन बीते। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि सृष्टिके आदिसे इतने मध्यम सावन दिन बीतने पर १९७९ वि० की मेष संक्रांति लंकामें हुई।

इसलिए जिसदिन मेष संक्रांति थी उस दिनकी आधीरात तकके अहर्गण हुए ७,१४,४०,४१, ३१,३२०। अब देखना चाहिये कि मेषकी संक्रांतिसे कितने दिनपर वसंत पंचमी पड़ी।

इसके लिए पहले यह जानना चाहिये कि मेष संक्रांतिके दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्रमास २९·५३०५=२९४२०७ सावन दिनोंका होता है। इसलिए यदि मेष संक्रांतिके अहर्गण को इतने सावन दिनोंसे भाग दे दिया जाय तो जो लब्धि आवेगी वह सृष्टिके आदिसे मेष संक्रांति तकके बीते हुए चान्द्रमासोंकी संख्या होगी और जो शेष बचा है वह चालू चान्द्रमासके साव दिन होंगे। इस शेषको यदि ३० से गुणा करके गुणन चान्द्रमासके सावन दिनोंसे फिर भाग दिया जा लब्धि आवेगी वह तिथियोंकी संख्या होगी।

ऐसा करनेसे मेष संक्रांतिके समय तिथिकी ५२५७८ आती है, जो पूर्णिमान्त गणनासे वैशाख । अमान्त गणनासे चैत बदी २, होती है।

अब यह जानना चाहिये कि वैशाख बदी २से माघ ९ ५ तक कितने सावन दिन बीते। इसलिए पहले यह देख चाहिये कि इस समयमें कितनी तिथियां बीतीं। वैशाख ब ३ से माघ बदी २ तक ९ चान्द्र मास होते हैं, क्योंकि इस व

कोई मलमास नहीं पड़ा, तथा माघ बदी ३ से माघ सुदी ५ के आरम्भ तक अर्थात् चौथके अन्त तक १७ तिथियां होती हैं। इसलिए मेष संक्रांतिसे माघ सुदी ४ के अन्त तक ६ × ३० + १७ तिथियां अर्थात् २८७ तिथियां बीतीं।

परन्तु ३० तिथियां=२९·५३०५८७९४६०७ मध्यम सावन दिन; इसलिए २८७ तिथियाँ

= २८७ × २९·५३०५८७९४६०७ × $\frac{१}{३०}$
= २८२·५०९२९१३५०७३९
= २८२·५१ सावन दिन स्थूल रूपसे

परन्तु मेष संक्रांतिकी अर्द्धरात्रिके अहर्गण=७,१४,४०,४१,३१,३२०
इसलिए सृष्टिसे माघ सुदी ५ तकके अहर्गण=
७,१४,४०,४१,३१,६०२·५१

अर्थात् माघ सुदी ५ की पहली अर्द्ध-रात्रितक ७,१४,४०, ४१,३१,६०३ सावन दिन बीते; जो पहली रीतिसे निकाले गये ाहर्गणसे मिलता है। इस गणनाके लिए दशमलवके ग्यारहवें ... तक के अंकोंको लेना पड़ता है क्योंकि गुणक (सृष्टिसे ... सौर वर्षोंकी संख्या) अरबोंमें है। यदि त्रेता या ...दिसे अहर्गण निकालना हो जिसके लिए आगे ...ान्द्रमास और सौर वर्षके सावन दिनोंकी ...मलव स्थानों तक लेना पर्याप्त होगा।

...रीक्षा करना रह गया कि यह संख्या शुद्ध है ...ीं। इसके लिए केवल यह जांचना पर्याप्त होगा कि ...से इतने दिनोंके बाद कौन वार आरम्भ होगा। यदि ... ठीक निकल आवे या १ दिनका अंतर पड़े तो समझना ...हिये कि अहर्गण ठीक है, नहीं तो अशुद्ध है। इसकी रीति ...गे के श्लोक में दी हुई है।

सावनोद्युगणः सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः ।
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ॥५१॥
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥५२॥

अनुवाद—(५१) सावन दिनोंकी जो संख्या हो उससे दिनपति, मासपति और वर्षपति सूर्यसे गिनकर जानना चाहिये। इस संख्याको ७ से भाग दे दे जो शेष बचे वही सूर्यसे वारोंके क्रमसे आरंभ होकर दिन पति है। (५२) यदि इस (सावन दिनों की) संख्याको क्रमसे मास और वर्षके दिनोंकी संख्याओंसे भाग दे दे और भागफलोंको क्रमसे दो और तीन से गुणा करके, प्रत्येक गुणनफलमें एक जोड़ दे और योगफलोंको ७ से भाग दे दे तो जो शेष बचे वही सूर्यसे वारोंके क्रमसे आरंभ होकर क्रमानुसार मासपति और वर्षपति है।

विज्ञान-भाष्य—वार (दिन) का नाम उस ग्रहके नामपर रखा गया है जो वारके आरंभमें पहले घंटे (होरा) का स्वामी समझा गया है। जो ग्रह पहले घंटेका स्वामी होता है वही उस वारका भी स्वामी समझा जाता है। इसी तरह सावन* मास के आरंभमें जो वार पड़ता है उसीका स्वामी उस सावन मासका स्वामी समझा जाता है और सावनवर्षके आरम्भमें जो वार पड़ता है उसीका स्वामी उस सावन वर्ष-

---

* सावनको श्रावण न समझना चाहिये। ३० सावन दिनोंका जो मास होता है वह सावन मास और १२ सावन महीनों का जो वर्ष होता है वह सावन वर्ष कहलाता है।

का स्वामी समझा जाता है। जैसे रविवारके पहले घंटेका स्वामी रवि, उस दिनका स्वामी रवि, जो सावन मास रविवारसे आरंभ होता है उस मासका स्वामी रवि और जो सावनवर्ष रविवारसे आरंभ होता है उस वर्षका स्वामी भी रवि ही है।

किस घंटे (होरा) का स्वामी कौन ग्रह है यह जाननेके लिए यह क्रम समझ लेना चाहिये जिस क्रमसे घंटेके स्वामी बदलते हैं। शनि ग्रह पृथ्वीसे सब ग्रहोंसे अधिक दूर है, उससे निकट बृहस्पति है, बृहस्पतिसे निकट मंगल, मंगल से निकट सूर्य, सूर्यसे निकट शुक्र, शुक्रसे निकट बुध + और बुधसे निकट चन्द्रमा है। इसी क्रमसे होराके स्वामी बदलते हैं। यदि पहले घंटेका स्वामी शनि है तो दूसरे घंटेका स्वामी बृहस्पति, तीसरेका स्वामी मंगल, चौथेका सूर्य, पांचवे का शुक्र, छठेका बुध, सातवेंका चन्द्रमा, आठवेंका फिर शनि, इत्यादि क्रमानुसार है। परन्तु जिस दिन पहले घंटेका स्वामी शनि होता है उस दिनका नाम शनिवार होना चाहिये। इस लिए शनिवारके दूसरे घंटेका स्वामी बृहस्पति, तीसरे घंटेका स्वामी मंगल इत्यादि हैं। इस प्रकार सात सात घंटेके बाद स्वामियोंका वही क्रम फिर आरंभ होता है। इस लिए शनि-

---

+ पृथ्वीसे बुध शुक्र की अपेक्षा अधिक दूर है परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में शुक्र ही अधिक दूर माना गया है। कारण इसका यह है कि जो ग्रह जितनी ही दूर है उतनी ही देर में वह भगण पूरा करता है ऐसा विश्वास हमारे ज्योतिषियोंका भी है परन्तु इन्होंने पृथ्वीसे यह दूरी ली है और आधुनिक ज्योतिषियों ने सूर्यसे।

वारके २२वें घण्टेका स्वामी शनि, २३वें का बृहस्पति, २४ वें का मंगल, और २४वें के बाद वाले घंटेका स्वामी सूर्य होना चाहिये। परन्तु यह २५वां घंटा अगले दिनका पहला घंटा है जिसका स्वामी सूर्य है इस लिए शनिवारके बाद रविवार होता है। रविवारके दूसरे घंटेका स्वामी शुक्र, तीसरेका बुध, चौथेका चन्द्रमा, इत्यादि क्रमानुसार चलते हुए ११वें, १८वें और २५ वें घंटोंका स्वामी भी चन्द्रमा होता है। परन्तु २५वां घंटा अगले दिनका पहला घंटा है इस लिए इसी घंटेके स्वामी के नामसे अगला दिन चन्द्रवार पड़ा। इसी प्रकार और वारों का नामकरण* हुआ है।

अब यह स्पष्ट होगया कि शनिवारके बाद रविवार और रविवारके बाद सोमवार औरसोमवारके बाद मंगलवार क्यों होता है। ग्रहोंके क्रममें शनिसे रवि चौथा ग्रह है रविसे चंद्रमा चौथा ग्रह है, चन्द्रमासे मंगल चौथा ग्रह है। इस लिए यह नियम हो गया है कि ग्रहों के क्रम को शनि से गिनते हुए प्रत्येक चौथा ग्रह अगले वारका स्वामी होता है।

मासपति—यदि किसी सावन मासका पहला दिन रविवार हो तो अगले सावनमासका पहला दिन रविवारसे ३१ वां दिन होगा क्योंकि सावन मास ३० दिन का होता है। परन्तु रविवार से ३१ वां दिन पांचवें सप्ताहका तीसरा दिन मंगल-

*—वारों का यह क्रम प्रायः सभी देशोंमें पाया जाता है। परन्तु इनके नामकरण की उपपत्ति जैसी यहां की गयी है वैसी कहीं और भी है या नहीं यह खोजनेके योग्य है।

वार होता है। इस लिए दूसरे सावन मासका स्वामी मङ्गल ग्रह हुआ। तीसरे सावन मासका पहला दिन मंगलवार से ३१वां हुआ अर्थात मंगलवारसे आरम्भ करके पांचवें सप्ताहका तीसरा दिन, वृहस्पति वार हुआ। इस लिए तीसरे सावन मासका स्वामी वृहस्पति हुआ। इसी प्रकार चौथे सावन मासका स्वामी, वृहस्पतिवारसे तीसरे दिन शनि· वार का स्वामी शनि और पांचवें सावन मासका स्वामी शनिवारसे तीसरे दिन सोमवार का स्वामी सोम तथा छठें सावन मासका स्वामी बुध और सातवें सावन मास का स्वामी शुक्र हुआ। आठवें सावन माससे फिर यह क्रम चलेगा। इस लिए वारोंके क्रमसे तीसरा वार आने वाले सावन मासका पहला दिन तथा उसका स्वामी उस सावन मासका स्वामी होता है। अब यदि ध्यानसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि मासपतियों का क्रम ग्रहोंके क्रमके अनुसार इस प्रकार है—रवि, मंगल, वृहस्पति, शनि, सोम, बुध और शुक्र फिर रवि, मंगल, वृहस्पति शनि इत्यादि। यदि चन्द्रमासे यह चक्र आरंभ हो तो इनका क्रम वही रहेगा जिस क्रमसे ये पृथ्वीसे क्रमानुसार दूर समझे गये हैं।

वर्षपति—सावन वर्षका आरंभ जिस दिनसे होता है उसी दिनका स्वामी उस वर्षका स्वामी समझा जाता है। यदि पहले सावन वर्षका आरंभ रविवार को हो तो दूसरे सावन वर्षका आरंभ रविवारसे ३६१ वें दिन होगा जो ५१ सप्ताहके बाद वाले सप्ताहका चौथा दिन अर्थात् बुधवार है इसलिए दूसरे सावन वर्षका स्वामी बुध होगा। तीसरे सावन वर्षका आरम्भ दूसरे सावन वर्षसे ३६१ वें दिन होगा इस लिए

यह बुधवारसे चौथा दिन शनिवार होगा जिसका स्वामी शनि है इसलिए तीसरे सावन वर्षका स्वामी शनि होगा। इसी प्रकार चौथे सावन वर्षका स्वामी शनिवारसे चौथे दिन मंगलवारका स्वामी मंगल है। पांचवें सावन वर्षका स्वामी, मंगलवार से चौथे दिन शुक्रवारका स्वामी शुक्र है। छठे सावन वर्षका स्वामी शुक्रवारसे चौथे दिन सोमवारका स्वामी सोम, सातवें सावन वर्षका स्वामी सोमवारसे चौथे दिन बृहस्पति वारका स्वामी बृहस्पति तथा आठवें सावन वर्षका स्वामी बृहस्पतिवारसे चौथे दिन रविवारका स्वामी रवि फिर होगा। इस तरह आठवें सावन वर्षसे फिर वही क्रम आरंभ होगा। इन स्वामियोंका क्रम इस प्रकार हुआ रवि, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, सोम, बृहस्पति; फिर रवि, बुध शनि इत्यादि। इसलिए यदि वारोंके अनुसार क्रम मिलाया जाय तो आने वाले सावन वर्षका पहला दिन गत सावन वर्षके पहले दिनसे चौथा होगा। और यदि ग्रहोंका क्रम मिलाया जाय तो शनिसे आरम्भ करके प्रति तीसरा ग्रह वर्षका स्वामी होता है। इन बातोंको सूत्र रूपमें भूगोलाध्यायके ७८वें और ७९वें श्लोकोंमें यों लिखा गया है:—

मन्दादधःक्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्तिताः॥ ७८॥
ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः।
होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा॥ ७९॥

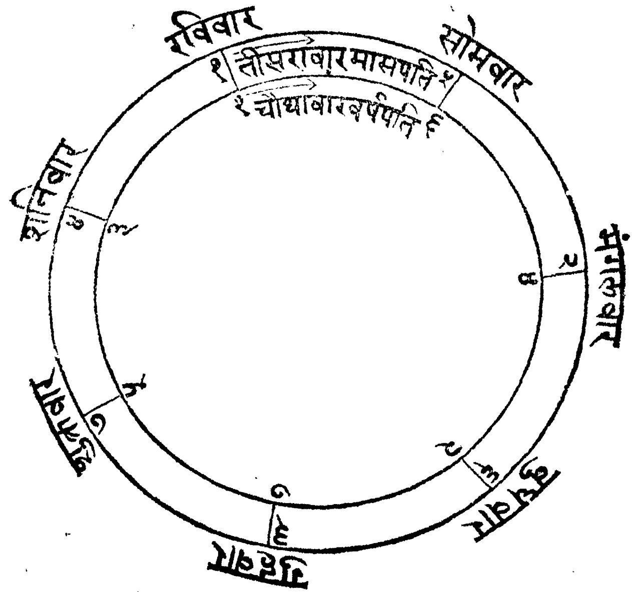
सूर्यसिद्धान्त, भूगोलाध्याय

वर्षपति, मासपति, दिनपति और होरापति, जाननेकी दोनों रीतियां नीचेके दो चित्रोंके द्वारा दिखलायी जाती हैं।

वारोंके नामों तथा वर्षपतियों और मासपतियोंके सम्बन्ध-का यह नियम जान लेनेपर अब ५१ वें और ५२वें श्लोकोंकी उपपत्ति सहज ही समझी जा सकती है।

इष्टकालतक जो अहर्गण (सावन दिन) आया हो उसको सातसे भाग देने पर जो शेष बचे उतने ही दिन सप्ताहके वीत चुके हैं। सृष्टि का आरंभ रविवारसे हुआ

वारों के अनुसार क्रम



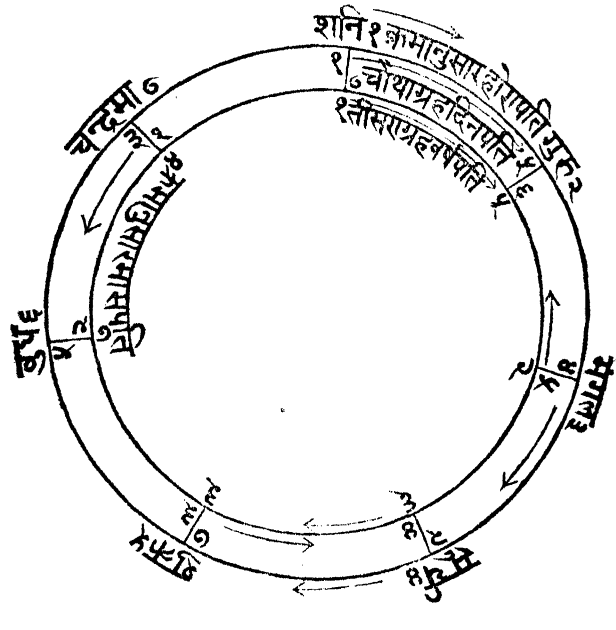
चित्र ५

इसलिए रविवार सप्ताहका पहला दिन है और शनिवार पिछला दिन अर्थात् सातवां दिन। इसलिए यदि शेष ५ बचे तो समझना चाहिए कि बृहस्पतिका दिन है जिसकी मध्य रात्रिको वह अहर्गण पूरा होता है क्योंकि बृहस्पति सप्ताहका पाँचवा दिन है। जैसे पिछले उदाहरणमें अहर्गणकी जो संख्या ७,१४,४०,४१,३१,६०३ आयी है उसको सातसे भाग-देने पर शेष १ बचता है। इस लिए जिस दिनका अहर्गण निकाला गया है वह सप्ताहका पहला दिन रविवार है। परंतु यह अहर्गण बसंत-पंचमीसे पहलेकी अर्द्धरात्रि तकका है इसलिए वसंत-पंचमीको सोमवार होगा।

मासपति जाननेके लिए इष्ट अहर्गणको ३० से भाग देना चाहिए जो लब्धि आवे वही सृष्टके आदिसे सावन मासोंकी संख्या हुई। इन सावन मासोंको दो से गुणा करके १ जोड़ दो और सात से भाग देदो, क्योंकि मासपतियोंका क्रम वारके अनुसार तीसरे दिन बदलता है और सात मास बीतने पर फिर वही क्रम आरंभ होता है। जो शेष बचे, सप्ताहके उसी दिनका स्वामी उस मासका-स्वामी होता है जो चल रहा है। जैसे ऊपर के अहर्गणको ३० से भाग देनेपर २३, ८१,३४,७१,०५३ सावन मास और १३ सावन दिन होते हैं। इन सावन मासोंकी सख्याको २ से गुणा करके १ जोड़ने पर ४७,६२,६९,४२,१०७ होता है। इस को ७ से भाग देने पर शेष ३ बचता है। इसलिए चलते सावन मासका पहला दिन मंगलवार था। इसलिए इस मासका स्वामी मंगल है।

वर्षपति जाननेके लिए इष्ट अहर्गणको ३६० से अथवा ऊपर निकाले हुए सावन मासोंको १२ से भाग दे दो, जो

लब्धि आवे उतने ही सायन वर्ष बीते हैं। इनको तीनसे गुणा करके १ जोड़ दो और सातसे भाग देदो क्योंकि वर्षपतियोंका क्रम वारके अनुसार चौथे दिन बदलता है और सात वर्षके बाद फिर वही क्रम आरंभ होता है। जो शेष बचे (सप्ताहके) उसी दिनका स्वामी चलते सायन वर्षका स्वामी होता है क्योंकि सप्ताहका आरम्भ रविवारसे होता है।



चित्र ६—पृथ्वीसे ग्रहोंकी दूरीके अनुसार क्रम

जैसे ऊपरके उदाहरणमें अहर्गणको ३६० से भाग देनेपर

अथवा सावन मासोंको १२ से भाग देने पर गत सावन वर्षोंकी संख्या १,९८,४४,५५,९२१ हुई। इसको तीनसे गुणा कर १ जोड़नेसे ५,९५,३३,६७,७६४ हुआ। इसको ७ से भाग देनेपर शेष १ बचता है। इसलिए चलते सावन वर्षका आरंभ रविवारको हुआ और इस वर्षका स्वामी रवि हुआ।

यह तो हुई सूर्यसिद्धान्तके अनुसार वर्षपति निकालनेकी रीति। आज कलके सभी पंचांगोंमें वर्षपति (वर्षेश) उस दिनका स्वामी माना जाता है जिस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होती है और वर्षका मंत्री उस दिनका स्वामी समझा जाता है जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है। मेघेश उस दिनका स्वामी होता है जिस दिन आर्द्रा नक्षत्र लगता है, इत्यादि इसी विचारसे वर्ष भरका फल निकाला जाता है। मकरंद सारिणीमें सूर्य सिद्धान्तसे भिन्न नियम यह है:—

चैत्र शुक्ल प्रतिपद्दिवसे यो वारः स राजा। मेष संक्रान्ति दिवसे यो वारः स मंत्री। कर्क संक्रान्ति दिवसे यो वारः स सस्याधिपः। तुला संक्रान्ति दिवसे (यो) वारः स रसाधिपः। मृग संक्रान्ति दिवसे यो वारो (स) नीरसाधिपः। आर्द्राप्रवेश दिवसे यो वारः स मेघाधिपः। धनुः संक्रान्ति दिवसे यो वारः स पश्चिमधान्याधिपः* ॥

सावन वर्ष तथा सावन मासका व्यवहार आज कल कहीं नहीं है। इसलिए वर्षाधिप और मासाधिप निकालनेका जो नियम सूर्य सिद्धान्तमें दिया गया है वह किस काम आता है यह मैं नहीं जानता। यदि कोई सज्जन जानते हों तो कृपया

* वेंकटेश्वर प्रेस की १९६० वि० की छपी मकरंद सारिणी पृष्ठ ४७।

सूचित करें। तेरहवें श्लोकसे, जैसा कि मैंने उस की टिप्पणी में लिखा है, यह ध्वनि निकलती है कि यथार्थ वर्ष सौर वर्ष ही है। फिर सावन वर्ष और सावन मासके अनुसार वर्ष पति और मास पति निकालनेकी क्या आवश्यकता है?

यथास्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥५३॥
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः।
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥५४॥

अनुवाद—(५३) जितने अहर्गण आवें उनसे किसी ग्रहके महायुगीय भगणको गुणा कर दो और गुणनफलको महायुगीय सावन दिनोंसे भाग दे दो। जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रहके (सृष्टिके आदिसे) मध्यम गतिके अनुसार पूरे हुए हैं। जो शेष बचे उसको १२ से गुणा करके फिर (महायुगीय सावन दिनों से) भाग देनेसे उस राशिकी संख्या आवेगी जितनी राशियां वह ग्रह वर्तमान भगणमें पूरा कर चुका है। अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनोंकी संख्यासे भाग देने पर उन अंशोंकी संख्या निकल आवेगी जितने अंश वह ग्रह वर्त्तमान राशिमें पूरा कर चुका है इत्यादि। (५४) इसी प्रकार पहले कहे हुए पूर्वकी ओर चलनेवाले शीघ्रों और मन्दोच्चोंके स्थान भी जाने जा सकते हैं। पातोंकी गति उलटी (पच्छिमकी ओर) होती है, इसलिए पातोंकी जो राशि अंश कला विकला आवें

उनको पूरे चक्रमें से अर्थात् १२ राशिमें से घटा देने पर, जो शेष बचे वही पातोंके स्थान हैं। (५३—५४)

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें वह रीति बतलायी गयी है जिससे किसी इष्ट समयमें ग्रहोंके मध्यम स्थान जाने जाते हैं। इसका संक्षेपमें अर्थ यह है कि जब एक महायुगमें (महायुगीय सावन दिनोंमें) ग्रह ऊपर कहे हुए भगण करता है तब इष्ट समय तक के सावन दिनों में कितने भगण करेगा। इस लिए त्रैराशिककी रीतिसे इस नियमको यों प्रकट कर सकते हैः—

महायुगीय सावन दिन : इष्ट अहर्गण :: महायुगीय भगण : इच्छित भगण

यदि 'स' को महायुगीय सावन दिन, 'अ' को इष्ट अहर्गण, 'भ' को महायुगीय भगण तथा 'भा' को अभीष्ट भगण माना जाय तो संक्षेपमें इसको यों लिखेंगेः—

$$भा = \frac{अ \times भ}{स}$$

यह एक भिन्न है, जिसको सरल किया जाय तो जो पूर्णाङ्क आवेगा वह ग्रहके उन भगणोंकी संख्या है जो उस समय तक पूरे हो चुके हैं और शेष भिन्नको १२ से गुणा करके सरल करने पर जो पूर्णाङ्क आवेगा वह गतराशि तथा फिर जो भिन्न होगी उसको ३० से गुणा करके सरल करने पर वर्तमान राशिके अंश निकलेंगे। यदि कला विकला भी जानना हो तो ६० से गुणा करके सरल करते जाना होगा।

यह नियम सभी पूर्व चलनेवाले ग्रहों, शीघ्रोच्चों और मन्दो-च्चोंके लिए लागू है। यदि किसी ग्रहके पातोंका स्थान जानना

हो तो ऊपर लिखी रीतिसे जो राशि, अंश, कला, विकला आवे उसे १२ राशियों में से घटा देना चाहिये क्योंकि पातकी चाल उलटी होती है इसलिए वह उलटे क्रमसे राशि चक्र पर चलेगा। यदि गणितसे निकले कि अमुक पात 'भा' भगण पूरे करके २ राशि ३ अंश ५ कला पर है, तो इसे मेषके आदि विन्दुसे उलटा गिनना चाहिये अर्थात् मीन, कुंभ, और मकरके अंतिम विंदुसे ३ अंश ५ कला अर्थात् मकरके २६ अंश ५५ कला पर। इसलिए यदि १२ राशियोंमें २ राशि ३ अंश ५ कला घटाया जाय तो ९ राशि २६ अंश ५५ कला आवेगा जिसका अर्थ यह हुआ कि वह पात राशि चक्रकी ९ राशियोंके उपरान्त दसवीं राशिके २६ अंश ५५ कला पर है।

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः।
राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्यास्युर्विजयादयः॥५५॥

अनुवाद—बृहस्पतिके गत भगणोंको १२ से गुणा करके गुणनफलमें वर्तमान भगणकी जिस राशिमें बृहस्पति हो उसकी क्रम संख्याको जोड़ दे, योगफलको ६० से भाग देने पर जो शेष बचे उसी क्रम संख्याका सम्वत्सर विजयसे आरंभ होकर चल रहा है, ऐसा समझना चाहिये। (५५)

विज्ञान भाष्य—बृहस्पति मध्यम गतिसे जितने समयमें एक राशि चलता है उसको सम्वत्सर कहते हैं। इसलिए बृहस्पति के एक भगणकालमें (४३३२·३२०६ सावन दिनोंमें) बारह सम्वत्सर होते हैं और एक सम्वत्सरमें ३६१·०२६७२ सावन दिन होते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि सौर वर्षकी अपेक्षा

संवत्सर ४·२३२०३ सावन दिन छोटा और सावन वर्षसे १·०२६७२ सावन दिन बड़ा होता है ।

एक चक्रमें ६० सम्वत्सर होते हैं जिनके नाम क्रमसे यह हैं:—

१ विजय	२१ प्रमादी	४१ श्रीमुख
२ जय	२२ आनन्द	४२ भाव
३ मन्मथ	२३ राक्षस	४३ युवा
४ दुर्मुख	२४ अनल (नल)	४४ धाता
५ हेमलम्ब	२५ पिंगल	४५ ईश्वर
६ विलम्ब	२६ कालयुक	४६ बहुधान्य
७ विकारी	२७ सिद्धार्थी	४७ प्रमाथी
८ शार्वरी	२८ रौद्र	४८ विक्रम
९ प्लव	२९ दुर्मति	४९ वृष
१० शुभकृत	३० दुंदुभी	५० चित्रभानु
११ शोभन	३१ रुधिरोद्गारी	५१ सुभानु
१२ क्रोधी	३२ रक्ताक्ष	५२ तारण
१३ विश्वावसु	३३ क्रोधन	५३ पार्थिव
१४ पराभव	३४ क्षय	५४ व्यय
१५ प्लवंग	३५ प्रभव	५५ सर्वजित
१६ कीलक	३६ विभव	५६ सर्वधारी
१७ सौम्य	३७ शुक्ल	५७ विरोधी
१८ साधारण	३८ प्रमोद	५८ विकृति
१९ विरोधकृत	३९ प्रजापति	५९ खर
२० परिधावी	४० अंगिरा	६० नन्दन

वराहमिहिरने बृहत्संहितामें* संवत्सर चक्रका आरंभ विजयसे न मानकर ३५वें सम्वत्सर प्रभवसे माना है। यही प्रथा आजकल भी प्रचलित है। यह प्रथा कबसे आरंभ हुई इसकी खोज करना आवश्यक है। ६० संवत्सरोंके चक्रमें कई छोटे छोटे विभाग हैं जिनका आरंभ भी प्रभवसे ही होता है। इनकी चर्चा मानाध्याय नामक अंतिम अध्यायमें की जायगी।

जब यह जानना हो कि किसी इष्ट समयमें कौन संवत्सर चल रहा है तब सबसे पहले ५३ वें श्लोकके अनुसार यह जानना चाहिये कि उस समय बृहस्पतिका मध्यम स्थान क्या है। सृष्टिके आदिसे अहर्गण निकाल कर मध्यम ग्रह जाननेकी क्रिया बहुत कठिन है, इसलिए यदि कलियुगके आदिसे अहर्गण साधा जाय तो अधिक सुभीता होगा; क्योंकि इस समयसे भी विजय सम्वत्सरका आरंभ हुआ है। जो लोग दशमलव भिन्नकी रीति जानते हों उनको अहर्गणकी जगह सौर वर्षोंसे काम लेनेमें और भी सुभीता होगा। इस प्रकार मेष-संक्रान्तिके समय बृहस्पतिका जो मध्यम स्थान होगा वह निकल आवेगा। जैसे मान लीजिये कि यह जानना है कि सम्वत् १९८९ विक्रमीयकी मेष संक्रान्तिके समय कौन सम्वत्सर वर्तमान होगा और वह कितने दिन तक रहेगा।

१—नवलकिशोर प्रेससे १८८४ ई० में प्रकाशित और पं० दुर्गाप्रसाद जी द्वारा अनुवादित पृष्ठ ६०—

आद्यंधनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदायात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ट्यब्द पूर्वः प्रभवः सनाम्ना प्रवर्तते भूतहितास्तदाब्दः॥

कलियुगके आरंभसे १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक ५०२५ सौर वर्ष बीत चुकेंगे। उस समय तक बृहस्पति कितने भगण पूरा करके किस राशि पर रहेगा, यह जान लेनेसे सम्वत्सरका पता चल जायगा। एक महायुग अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षोंमें बृहस्पतिके ३,६४,२२० भगण होते हैं; इसलिए ५०२५ सौर वर्षोंमें

$$\frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \text{ भगण}$$

$$= \frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \times १२ \text{संवत्सर}$$

=५०८३·९०४१६६६६ संवत्सर होते हैं।

जिसका अर्थ यह हुआ कि १९८१ वि० की मेष संक्रान्तिके समय ५०८४वां सम्वत्सर चल रहा है, उसका ·९०४१६६६६ भाग बीत गया है और, ·०९५८३३३४ भाग रह गया है।

६० संवत्सरोंका एक चक्र होता है इसलिए ५०८४ को ६० से भाग देने पर ८४ लब्धि आती है और ४४ शेष होता है जिसका अर्थ यह हुआ कि कलियुगसे ६० सम्वत्सरोंका चक्र ८४ बार हो चुका है ८५ वें चक्रका ४४वां सम्वत्सर धाता चल रहा है और मेष संक्रान्ति के समय उसका ·०९५८३३··· भाग बीतने को शेष है।

यदि यह जानना हो कि धाता सम्वत्सर १९८१ विक्रमीयमें कितने दिन तक रहेगा तो इस शेषको एक सम्वत्सरके सावन दिनोंसे अर्थात् ३६१·०२६७२से गुणा कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे गुणनफल ३४·५९८४ सावन दिन आता है; इसलिए १९८१की मध्यम मेष संक्रान्तिके समयसे ३४·५९८४ सावन

दिन बीतनेपर धाताका अंत और ईश्वर नामक संवत्सरका आरम्भ होगा। यह पहले बतलाया गया है कि स्पष्ट मेष-संक्रान्ति मध्यम मेष संक्रान्तिसे २·१७०७ सावन दिन पहले ही होती है; इसलिए स्पष्ट मेष संक्रान्तिसे ३६·७६६१ सावन दिनपर अथवा ३६ दिन ४६ घड़ी ८ पल ४० विपलपर ईश्वरका प्रवेश होगा।

विस्तरेणैतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम्।
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥५६॥
अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ॥५७॥
मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः।
निरंशत्वं गताश्चान्येनोक्तास्ते मन्दचारिणः ॥५८॥

अनुवाद—(५६) ग्रहोंके मध्यम स्थान जाननेकी रीति अब तक विस्तारके साथ कही गयी है; परन्तु व्यवहार के लिए इष्ट युगसे ही यह काम संक्षेपमें करना चाहिये। (५७) इस सत्ययुग-के अंतमें पातों और मन्दोच्चोंको छोड़कर सब ग्रहोंके मध्यम स्थान मेषके आदिमें समान थे अर्थात् सातों ग्रह मेषके आरंभ स्थानपर पहुँचे हुए थे। (५८) चन्द्रमाका उच्च मकर राशिके आदिमें तथा उसका पात (राहु) तुलाके आदिमें थे। अन्य ग्रहोंके पात और मन्दोच्च मन्दगतिके कारण किसी पूरे अंश पर नहीं थे; इसलिए इनके बारेमें कुछ नहीं कहा जाता है। (५६—५८)

विज्ञान-भाष्य—इस अध्यायके ४५ ५० श्लोकोंमें ग्रहोंके मध्यम-स्थान निकालनेकी जो रीति बतलायी गयी है वह गणित विस्तार

के कारण व्यवहारोपयोगी नहीं है जैसा कि दिये हुए उदाहरणोंसे स्पष्ट है। इसलिए सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अंत तकके वर्षोंका अहर्गण निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वर्तमान युगका आरम्भ जबसे हुआ है तभीसे इष्टकाल तकका अहर्गण ४८वें श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४९-५० श्लोकोंके अनुसार जानकर ग्रहोंके मध्यम स्थान जान लेने चाहियें।

जिस समय सूर्यांश पुरुषने मयको सूर्यसिद्धान्तका उपदेश दिया है वह इसी अध्यायके दूसरे श्लोकके अनुसार सत्ययुगके अंतका समय है, इसलिए ५७ वें श्लोकमें त्रेताके आदिसे अहर्गण बनानेका संकेत है और यह भी दिखलाया गया है कि इस समय सब ग्रहोंके मध्यम स्थान मेष राशि के आदिमें समान थे। इस नियमके अनुसार कलियुगमें कलियुगके आदि से ही अहर्गण निकालनेकी रीति सुविधाजनक है जो आजकल प्रचलित भी है। जैसे त्रेताके आदिमें सब ग्रहोंके मध्यम स्थान मेषके आदिमें समान थे वैसे ही कलियुगके आदिमें भी मेष राशिके आदिमें समान थे; क्योंकि त्रेताके आदिसे कलियुगके आदि तक आधा महायुग होता है जितने समयमें सब ग्रह पूरे पूरे भगण करते हैं। हां चंद्रमाका उच्च एक महायुगमें विषम भगण करनेके कारण मकरके आदिमें न होकर कर्कके आदिमें था, परन्तु पात तुलाके ही आदिमें था। यह मत सूर्यसिद्धान्तका है। भास्कराचार्यके* अनुसार कलियुगके आदिमें सूर्य चन्द्रमाके सिवा अन्य ग्रहोंके मध्यम स्थान यह थे:—

* सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ३२—३३; कलकत्तेकी १९१५ ई० की छपी।

	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	चंद्रोच	राहु†
राशि	११	११	११	११	११	४	५
अंश	२६	२७	२६	२८	२८	५	३
कला	३	२४	२७	४२	४६	२६	१२
विकला	५०	२६	३६	१४	३४	४६	५८

यहां तक तो वह रीति बतलायी गयी है, जिससे ग्रहोंका मध्यमस्थान लंका या उज्जैनकी आधी रातके समयका निकलता है। आगेके श्लोकोंमें लंकाके पूरब पच्छिमके देशोंमें आधीरातके समय ग्रहोंका मध्यमस्थान जाननेकी रीति बतलायी जायगी।

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्॥ ५९॥

अनुवाद—पृथ्वीका व्यास ८०० के दूने १६०० योजन है; इसके वर्गका १० गुना करके गुणनफलका वर्गमूल निकालनेसे जो आता है वह पृथ्वीकी परिधि है। (५९)

विज्ञान भाष्य—यदि पृथ्वीका व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि$=\sqrt{व^{२}\times१०}=व\times\sqrt{१०}=व\times३.१६२३$, जिससे सिद्ध होता है कि परिधि व्यासका ३.१६२३ गुना होती है।

---

† राहुकी यह स्थिति कलकत्तेकी छपी सिद्धान्तशिरोमणिमें तथा म. म. पं० बापूदेव शास्त्रीकी संपादित सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखी है; परन्तु मेरी गणनासे इसको ६ राशि २६ अंश ४७ कला २.४ वि० पर कलियुगके आरंभमें होना चाहिये जो १२ राशियोंमेंसे ऊपर दी हुई स्थितिको घटानेसे आती है।

आजकल यह सम्बन्ध ३·१४१६ दशमलवके चार स्थानतक शुद्धसमझा जाता है जो ३·१६२३ से बहुत भिन्न है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकारको व्यास और परिधिका ठीक ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि दूसरे अध्यायमें अर्द्धव्यास और परिधिका अनुपात ३४३८:२१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यासका ३·१४१३६ गुना ठहरती है। इसलिए इस श्लोकमें परिधिको व्यासका $\sqrt{१०}$, सुविधाके लिए, गणितकी क्रिया संक्षेप करनेके लिए, माना गया है; जैसे आजकल जब स्थूल रीतिसे काम लेना होता है तब कोई इसको $\frac{२२}{७}$ और कोई ३·१४ मानते हैं और जहां बहुत सूक्ष्म गणना करनेकी आवश्यकता पड़ती है वहां दशमलवके पांच पांच सात सात स्थानों तक इसको शुद्ध लेना पड़ता है।

भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंमें इस सम्बन्धका मान क्या लिया गया है यह नीचेके अवतरणसे जान पड़ेगा।

	व्यास : परिधि		व्यास : परिधि
सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त[1], द्वितीय आर्यभट[2]	१ : $\sqrt{१०}$	अर्थात्	१ : ३·१६२३
प्रथम आर्यभट[3]	२०००० : ६२८३२	”	१ : ३·१४१६

१—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त गोलाध्याय श्लोक १५।

२—महासिद्धान्त पाटीगणिताध्याय श्लोक ८८,६२।

३—आर्यभटीय पृष्ठ २६ श्लोक १०, (ब्रह्मप्रेस इटावाका छपा)।

	व्यास : परिधि		व्यास : परिधि
द्वितीय आर्यभट[२]			
भास्कराचार्य[४]	२२ : ७	अर्थात्	१ : ३·१४२८
भास्कराचार्य[४]	१२५० : ३९२७	"	१ : ३·१४१६
३४३८ कलाको त्रिज्या माननेसे, जो ब्राह्मस्फुटके सिवा सभी सिद्धान्तोंमें पाया जाता है।	६८७६ : २१६००	"	१: ३·१४१३६
आजकलके सूक्ष्म गणितसे			१ : ३·१४१५९२७

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट ने दो प्रकारसे व्यास और परिधिका संबंध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपयोगी। आगे व्यास और परिधिके सम्बन्धको π चिह्नसे सूचित किया जायगा जैसी कि आज कल प्रथा है अर्थात् यदि व्यास १ है तो परिधि π है, जब कि π का मान व्यवहारके अनुसार $\frac{२२}{७}$, ३·१४, ३·१४२, ३·१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

इस श्लोकमें दूसरा शब्द 'योजन' बड़े महत्व का है। आज कल लोग योजनको साधारणतः चार कोसका समझते हैं परन्तु कोसका मान स्वयम् स्थिर नहीं है। किसी किसी प्रान्तमें कोस बहुत छोटा होता है और किसी प्रान्तमें बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजनका भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंमें भूपरिधि या भूव्यासके

४—लीलावती पृष्ठ ५४ क्षेत्रव्यवहाराध्याय श्लोक ४०।

मान भिन्न भिन्न अंकोंमें दिये हुए हैं। नीचे लिखे अवतरणोंसे प्रकट होगा कि सिद्धान्तोंमें भूव्यासके मान क्या दिये हुए हैं :—

पंचसिद्धान्तिकाके[1] मतसे भूव्यास			१०१८$\frac{6}{10}$	योजन
आर्यभट[2] और लल्ल	"	"	१०५०	"
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त	"	"	१६००	"
सिद्धान्त शिरोमणि[3]	"	"	१५८१$\frac{1}{24}$	"
द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त)			२१०९	"
आधुनिक यूरोपीय मतसे[5]				
		विषुवद्वृत्तीय	७९२७	मील
"	"	ध्रुवीय	७९००	"

ऊपरके अंकोंसे प्रकट है कि वराहमिहिर, आर्यभट तथा लल्लके योजन प्रायः समान हैं और सूर्यसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणिके भी योजन प्रायः समान हैं; परन्तु पहलेके तीन आचार्योंका योजन इन दोनोंके योजनका प्रायः डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकारके योजनोंको तुलना वर्तमान मीलसे की जायगी। हमारे सिद्धान्तोंमें पृथ्वीको बिलकुल गोल माना

१—डाक्टर थीबो और पं० सुधाकर द्विवेदी संपादित पंचसिद्धान्तिका पृष्ठ ३४ श्लोक १८ में भूपरिधिका मान ३२०० योजन दिया है जिसको ३·१४१६ से भाग देनेपर १०१८·६ योजन पृथ्वीका व्यास हुआ।

२—आर्यभटीय पृष्ठ १०, प्रथम पादका ४वां श्लोक।

३—गोलाध्याय पृष्ठ २०, भुवनकोश श्लोक ५२।

४—महासिद्धान्त पृष्ठ १६१ भुवनकोश श्लोक ३५।

५—Sir Robert Ball's Spherical Astronomy pp. 44.

गया है जिससे यह भेद नहीं रखा गया कि विषुवद्वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधिसे भिन्न है। इसलिए तुलनाके लिए ध्रुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्योंने इसीकी नापसे भूपरिधिका परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

आर्यभटके मतसे

१०५० योजन=७६०० मील

वा १ योजन = $\frac{७६००}{१०५०}$ मील

= ७·५२ मील

यदि १ योजनमें चार कोस हों तो

१ कोस = $\frac{७·५२}{४}$ मील = १·८८ मील

सिद्धान्तशिरोमणिके मतसे

१५८१ योजन=७६०० मील

∴ १ योजन = $\frac{७६००}{१५८१}$ मील

= ५ मील

∴ १ कोस = $\frac{१}{४}$ योजन = १$\frac{१}{४}$ मील

आजकल १ कोस २ मीलके समान समझा जाता है इसलिए आजकलका योजन आर्यभटके योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्तशिरोमणि वाला कोस आजकलके 'गऊ-कोस' (गो-कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी किसी प्रान्तमें अब तक प्रचलित है।

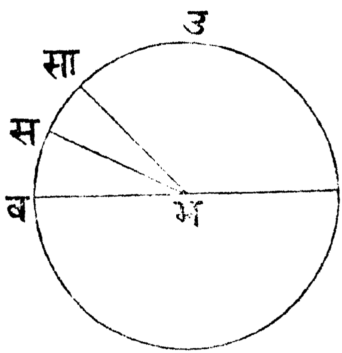
अब प्रश्न यह रह गया कि भूपरिधि नापी कैसे गयी। सूर्यसिद्धान्तमें इस विषयपर कुछ नहीं लिखा गया है। भास्कराचार्य[1] कहते हैं कि उत्तर-दक्षिण-रेखापर स्थित दो

१—गोलाध्याय भुवनकोश पृष्ठ १३ श्लोक १४—

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्ष विश्लेष लवैस्तदा किम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम्॥

८४ वें पृष्ठकी टिप्पणी भी देखिए

स्थानोंकी दूरी योजनोंमें नाप लो। उन दो स्थानोंके अक्षांशोंका भी अन्तर निकालो। फिर त्रैराशिक द्वारा यह जान लेना चाहिये कि जब इतने अक्षांशोंके अंतर होनेसे दो स्थानोंकी दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी। इसकी उपपत्ति यह है:—



चित्र ७

भ=पृथ्वीका केन्द्र।

वभ=विषुवद् वृत्तीय त्रिज्या।

उ=उत्तरी ध्रुव या सुमेरु। स,सा एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा (meridian) के दो स्थान।

स का अक्षांश= $\angle$ व भ स।

सा " = $\angle$ व भ सा।

दोनोंके अक्षांशोंका अन्तर = $\angle$ स भ सा।

चित्र ७ में एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखापर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अंतर ससा नापना चाहिये। फिर

दोनोंके अक्षांशांतर स भ सा कोणको जानना चाहिये फिर यह अनुपात करना चाहिये—

$\angle$स भ सा : ३६०° : : स सा : भूपरिधि

$$\therefore \text{भूपरिधि} = \frac{360^\circ \times \text{स सा}}{\angle \text{स भ सा}}$$

अक्षांश निकालनेकी रीति त्रिप्रश्नाध्याय नामक तीसरे अध्यायमें कई प्रकारसे बतलाई जायगी।

भूपरिधि इसी रीतिसे आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्म यंत्रोंके कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है।

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥६०॥
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्।
रेखा प्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत्स्युः स्वदेशजाः॥६१॥

अनुवाद—(६०) भूपरिधिको (अपने स्थानकी) लम्बज्यासे गुणा करके त्रिज्यासे भाग देनेपर अपने स्थानकी स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थानके देशान्तर-योजनको ग्रहकी दैनिक गतिसे गुणा करके गुणनफलको इसी स्फुट परिधिसे भाग देना

अथवा गणिताध्याय पृष्ठ ५६ श्लोक १—
याम्योदक पुरयोः पलान्तर हतं भूवेष्टनं भांश हृत।
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्॥

चाहिये। (६१) (यदि दैनिक गति कलामें ली गयी है तो) फल कलामें आवेगा। यदि अपना स्थान लंकासे पूरबमें हो तो लंकाकी अर्द्धरात्रिके समयके मध्यमग्रहमेंसे इस फलको घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंकासे पच्छिममें हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करनेसे अपने स्थानकी अर्द्ध रात्रि-के समयके मध्यमग्रह (ग्रहोंके मध्यम स्थान) निकल आते हैं।

विज्ञान भाष्य—बीज-गणितके अनुसार इन श्लोकोंको इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं:—

$$\text{स्फुट परिधि} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

$$\left.\begin{matrix}\text{देशान्तर}\\ \text{फल}\end{matrix}\right\} = \frac{\text{देशान्तर योजन} \times \text{ग्रहकी दैनिक गति (कलामें)}}{\text{स्फुट परिधि}} \quad \ldots (२)$$

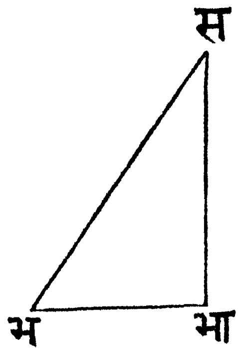
अपने स्थानकी अर्द्धरात्रिके समयके मध्यम ग्रह

$$= \text{लंकाकी अर्द्ध रात्रिके मध्यम ग्रह} \pm \text{देशान्तर फल} \quad \ldots\ldots (३)$$

यदि स्थान लंकासे पूरब हो तो ऋणात्मक चिन्ह और पच्छिम हो तो धनात्मक चिन्ह लेना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझनेके लिए पहले यह जानना चाहिये कि लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि क्या हैं।

ज्या—यदि किसी समकोण त्रिभुजके किसी भुजकी लम्बाई-को उसके कर्णकी लम्बाईसे भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुजके सामनेके कोणकी ज्या कहलाती है। चित्र ८ में स भा भ एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोणकी ज्या $=\frac{\text{सभा}}{\text{सभ}}$ और भ स भा कोणकी ज्या $=\frac{\text{भभा}}{\text{सभ}}$। समकोण

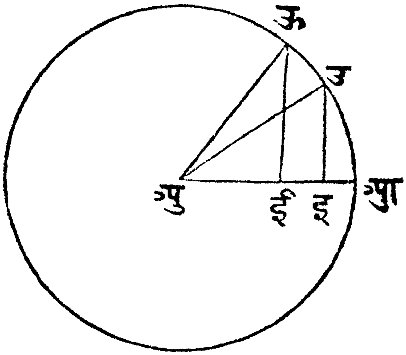


चित्र ८

त्रिभुजके कर्णकी लम्बाई किसी भुजकी लम्बाईसे अधिक होती है; इसलिए किसी भुजके सामनेके कोणकी ज्या एकसे कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्नमें लिखी जातीहै। यह आज कलकी प्रथा है। प्राचीन कालमें जब कि दशमलव भिन्नका प्रचार नहीं था कोणकी ज्या पूर्णाङ्कोंमें लिखी जाती थी।

किसी कोणकी ज्या जाननेके लिए हमारे सिद्धान्तोंमें ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या (अर्द्धव्यास) ३४३८ इकाइयां और परिधि २१६०० इकाइयां होती हैं, जिससे एक एक इकाई एक एक कलाके समान होती है। क्योंकि परिधि एक चक्रके समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६० ×६०=२१६०० कलाएं होती हैं। फिर केन्द्रसे परिधि तक दो त्रिज्याएं ऐसी खींचते हैं जिनके बीचका कोण उस कोणके समान होता है जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधिके मिलन-विन्दुसे दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते हैं। इस लम्बकी लम्बाई जितनी इकाइयां (कलाएं) होती हैं उसीको

उस कोणकी ज्या कहते हैं। चित्र ९ में अ केन्द्र है अ आ, अ उ तथा अ ऊ तीन त्रिज्याएं हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं।



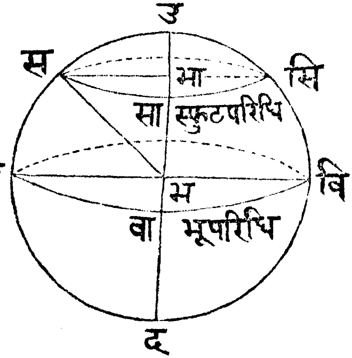
चित्र ९

उ या ऊ से उइ या ऊई लम्ब अआ पर डाले गये हैं। त्रिज्याकी नाप ३४३८ इकाइयोंमें मानकर उइ या ऊई की जो नाप इन्हीं इकाइयोंमें होगी वह उ अ इ कोण या ऊ अ ई कोणकी ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आज कलकी प्रथासे परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। त्रिज्याका मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओंमें विभाजित की जाती है तब त्रिज्याका मान ३४३७$\frac{३}{४}$ कला आज कल की सूक्ष्म गणना से ठहरता है जिसका निकटतम पूर्णाङ्क ३४३८ है। आजकलके एक रेडियन* (radian) में जितनी कलाएं होती हैं उतनी ही पूर्ण कलाओंके समान त्रिज्याका परिमाण माना गया है।

---

* १ रेडियन=५७°·२९५८ = ३४३७·७४८ कला

स्फुट परिधि-भूतलका वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंसे समान अन्तर पर दोनोंके बीचों बीच होता हुआ भूपृष्ठको दो समान भागोंमें बांटता है विषुवत्‌रेखा कहलाता है: विषुवत्‌रेखाके उत्तर वाले आधे भूगोलको उत्तर गोल और



चित्र १०

भ=पृथ्वीका केन्द्र ।

उ=पृथ्वीका उत्तरी ध्रुव (सुमेरु) ।

द= " दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु) ।

व=विषुवत्‌रेखाका वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है ।

स=अभीष्ट स्थान; उसवद स स्थानकी उत्तर-दक्षिण रेखा ।

< व भ स = स का अक्षांश ।

< स भ उ = स का लम्बांश ।

उ द = पृथ्वीका अक्ष ।

सभा = स से पृथ्वीके अक्षकी दूरी

= स स्थान की लम्बज्या, सिद्धान्तीय पद्धतिसे

दक्षिणवाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस रेखा से आकाशीय ध्रुव (आकाशका वह विन्दु जो पृथ्वीके उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवके ठीक ऊपर होता है। उत्तरीध्रुवतारा उत्तरी ध्रुवसे प्रायः १° दूर है) क्षितिजपर दिखाई देते हैं। यहां पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है। इसलिए विषुवत्रेखाको निरक्षवृत्त भी कहते हैं। चित्र १० में व वा वि विषुवत्रेखा है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्तके समानान्तर स सा सि वृत्त (Parrallel of latitude) भूतलपर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की स्फुट परिधि कहते हैं। विषुवत्रेखासे जैसे जैसे उत्तर या दक्षिण जाइये तैसे तैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहां तक कि ध्रुवोंपर स्फुट परिधि शून्य हो जाती है। इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवोंपर अक्षांश ९०° और लम्बांश शून्य हो जाता है। चित्रसे यह भी प्रकट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की त्रिज्या 'स भा' है जो 'स' की लम्बज्या भी कहलाती है; क्योंकि स का लम्बांश < स भ उ है उसके सामने की भुज स भा है।

रेखागणितसे यह सिद्ध है कि दो वृत्तोंकी परिधियोंमें वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासोंमें होता है, इसलिए,

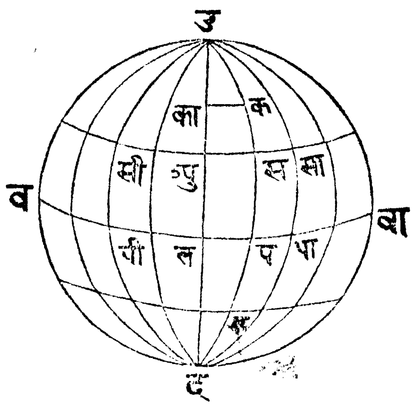
व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि

$$\therefore \text{स सा सि} = \frac{\text{व वा वि} \times \text{स भा}}{\text{व भ}} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$,जब त्रिज्या

३४३८ हो और लम्बज्याका मान सिद्धान्तीय पद्धतिके अनुसार कलाओंमें हो जिसकी सारिणी दूसरे अध्यायमें दी हुई है।

यदि आजकलकी प्रथाके अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि=भूपरिधि × लम्बज्या (Sine of Colatitude) जब कि लम्बांशकी ज्या दशमलवमें दी हुई हो (क्योंकि इस रीतिसे लम्बज्या = $\frac{\text{स भा}}{\text{स भ}} = \frac{\text{स भा}}{\text{व भ}}$)

देशान्तर—चित्र ११ भूगोलके आधे गोलेके पृष्ठका चित्र है जिसमें उत्तर गोलके सी, अ, स, सा स्थानोंके अक्षांश एक ही हैं



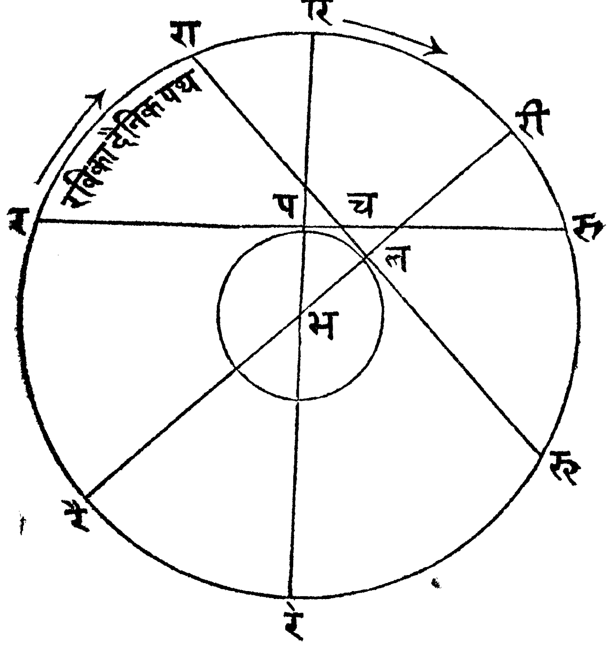
चित्र ११

इसलिए इन चारों स्थानोंकी स्फुट परिधि भी एक ही है । इन स्थानोंकी उत्तर-दक्षिण-रेखा (Meridian) क्रमसे उ सी पी द, उ अ ल द, उ स प द और उ सा पा द हैं। यदि उ अ ल द रेखापर अ अवन्ती (उज्जैन) और ल लंकाके स्थान हों तो इसको भारत वर्षकी मध्यरेखा (standard meridian) कहेंगे; जैसे आजकल ग्रीनिचसे जानेवाली उत्तर-दक्षिण-रेखा यूरोप और अमेरिका

वालोंकी भूमध्यरेखा कही जाती है। किसी स्थानकी स्फुट परिधिका वह खंड जो उस स्थानकी उत्तर-दक्षिण-रेखा और मध्यरेखाके बीचमें पड़ जाता है उस स्थानका देशान्तर (योजनोंमें) (Difference of longitude in yojan) कहलाता है, जैसे सका देशान्तर सञ्र, साका देशान्तर साञ्र और सीका देशान्तर सीञ्र हुए। इसी तरह पका देशान्तर प ल, पाका देशान्तर पा ल और पीका देशान्तर पी ल हुए। जिससे यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि प, स एक ही उत्तर-दक्षिण रेखापर है तथापि प, सके देशान्तर (योजनोंमें) समान नहीं है क्योंकि सकी स्फुट परिधि पकी स्फुट परिधि (भूपरिधि) से छोटी है। यदि इसी रेखापर कोई स्थान क हो तो इसका देशान्तर क का (योजनोंमें) और भी छोटा होगा। ६०वें श्लोकमें देशान्तरका शब्द इसी परिभाषाके अनुसार प्रयुक्त हुआ है। परन्तु यह परिभाषा सरल तथा व्यवहारोपयोगी नहीं है। आगे चलकर ६४वें श्लोकमें देशान्तर-नाड़ीकी चर्चा है। यह भी देशान्तरकी एक परिभाषा है जो सरल है; इसलिए इस जगह उसको भी समझा देना उचित होगा।

एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखापर जितने स्थान हैं सबमें जैसे क, स, प, ख स्थानोंमें मध्याह्न या अर्द्ध-रात्रि एक ही समय होती है। परन्तु जो स्थान इस रेखासे पूरब है वहां मध्याह्न या अर्द्धरात्रि पहले और जो स्थान पच्छिम हैं वहां पीछे होती है। स पर असे (मध्यरेखासे) जितना पहले मध्याह्न होता है उतने ही समयको हम सका पूर्व देशान्तरकाल (Time difference of longitude) कहते हैं। इसे हम समयकी इकाइयोंमें प्रकट कर सकते हैं; यदि घड़ी पलमें लिखें तो इसे देशान्तर घटिका या

देशान्तर- नाड़ी कहेंगे और यदि घंटे मिनटमें लिखें तो देशान्तर घंटा या मिनट कहेंगे। इस परिभाषासे हमको यह सुविधा होती है कि एक ही बातसे हम क, स, प, ख सबका देशान्तर सहज ही प्रकट कर सकते हैं, जब कि योजनोंमें इनके देशान्तर भिन्न भिन्न लिखने पड़ेंगे।



चि॰ १२

इसी प्रकार सी पर मध्यरेखासे जितना पीछे मध्याह्न होता है उस समयको सीका पश्चिम देशान्तर काल कहेंगे।

आगे पीछे मध्याह्न या मध्यरात्रि इसलिए होती है कि पृथ्वी २४ घंटेमें या ६० घड़ीमें एक बार अपने अक्षपर पच्छिम-से पूरबकी ओर लट्टूकी तरह घूम जाती है जिससे सूरज चांद तारे इत्यादि आकाशीय पिंड पूरबसे पच्छिमको चक्कर लगाते हुए जान पड़ते हैं। आकाशीय पिंडोंकी इस प्रत्यक्ष गति-को ही हमारे सिद्धान्तोंमें प्रवह-वायु-जनित गति कहा गया है। आगे सुविधाके लिए सूरजको ही कभी कभी चक्कर लगाता हुआ लिखा जायगा, क्योंकि ऐसा मान लेनेसे हिसाबमें कोई बाधा नहीं पहुँचती।

चित्र १२ में भ पृथ्वीका केन्द्र और प, ल विषुवत्‌रेखा परके दो स्थान हैं; प भ पृथ्वीका अर्द्धव्यास है जो चित्रको स्पष्ट करनेके लिए बहुत बढ़ाकर खींचा गया है, यथार्थमें सूर्यकी दूरी पृथ्वी-के अर्द्धव्यासकी कोई तेईस हजार गुनी है। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर ६० घड़ीमें र रा रि री... मार्गसे एकबार चक्कर लगा लेता है। विषुवत्‌रेखाको छूती हुए र प रु एक स्पर्श-रेखा है जो पकी क्षितिज कहलाती है। जब सूर्य इसके ऊपर रहता है तब प स्थानसे दिखाई पड़ता है। जब सूर्य क्षितिजसे ऊपर 'र' विन्दु-के पास आवेगा तब प निवासियोंके लिए सूर्योदय होगा। पमें जिस समय मध्याह्न होगा उस समय सूर्य रि पर रहेगा। जब वह रु पर आवेगा तब प-निवासियोंका डूबता हुआ देख पड़ेगा और जब रे पर आवेगा तब पमें मध्यरात्रि होगी। इसी प्रकार ल स्थानसे सूर्यका उदय उस समय देख पड़ेगा जब वह 'रा' पर होगा, मध्याह्न उस समय होगा जब वह 'री' पर रहेगा, सूर्यास्त उस [illegible] पर रहेगा और अर्द्धरात्रि उस समय [illegible]।

चित्रसे यह स्पष्ट है कि जिस समय 'प' पर सूर्योदय होगा उस समयसे उतनी देर पीछे 'ल' पर सूर्योदय होगा जितनी देरमें सूर्य 'र' से 'रा' तक जाता है। परन्तु र से रा तक जानेमें उसको र च रा कोण अथवा प भ ल कोण घूमना पड़ता है क्योंकि परिधिकी दो स्पर्श-रेखाओंके बीचका कोण स्पर्श-विन्दुओंसे खींची गयी त्रिज्याओंके बीचके कोणके समान होता है। यह बात मध्याह्न काल या मध्यरात्रिकी सूर्यकी स्थितियोंसे और भी सरलता पूर्वक समझमें आयगी; क्योंकि यह बतलाया ही जा चुका है कि सूर्यके 'रि' पर आनेसे 'प' पर और 'री' पर आनेसे 'ल' पर मध्याह्न होता है इसलिए जितनी देरमें सूर्य 'रि' से 'री' तक जाता है पकी अपेक्षा उतनी ही देर पीछे ल पर मध्याह्न होगा। इसी समयको 'प', 'ल' के बीचका देशान्तर काल कहते हैं। प, लके देशान्तरको प भ ल कोणसे भी प्रकट कर सकते हैं और देशान्तरको अंश, कला विकलामें भी लिख सकते हैं। चाहे देशान्तर प्रकट करनेकी इकाई घड़ी पलमें हो, चाहे अंश कलामें, दोनों तरहसे सुविधा होती है और जहां जिसकी आवश्यकता पड़ती है वहां वही लिखते हैं। यह स्पष्ट ही है कि ६० घड़ीमें अथवा २४ घंटेमें सूरज एक चक्कर अर्थात ३६०° चलता है इस लिए एक घड़ीमें ६° और १ घंटेमें १५° चलेगा; इसलिए यदि दो स्थानोंका देशान्तर एक अंश हो तो उन दोनोंके मध्याह्न काल या मध्यरात्रिके समयोंमें १० पल अथवा ४ मिनटका अन्तर होगा। संक्षेपमें यों लिखा जाता है कि दोनोंका देशान्तर १°, १० पल अथवा ४ मिनट है। साधारणतः मध्यरेखासे देशान्तर नापनेकी परिपाटी है। जो स्थान मध्य रेखासे पूरबमें हैं उनके देशान्तरके

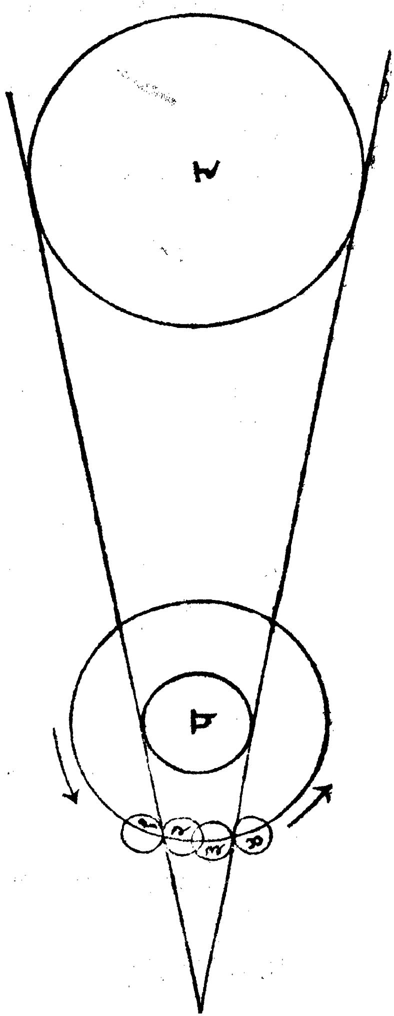
ग्रास या सम्पूर्ण ग्रहणका आरंभ होता है। इसको सम्मीलन काल भी कहते हैं।

उन्मीलन=(१) आंखोंका खोलना, (२) प्रकट होना, (३) पूर्ण ग्रसित चंद्रमाका अंधकारसे बाहर निकलना। इसलिए उन्मीलन काल उस समयको कहते हैं जिस समय चंद्रमाका पूर्ण-ग्रसित बिम्ब अंधकारसे बाहर निकलने लगता है।

स्पर्श काल उस समयको कहते हैं जिस समय चंद्रमाका बिम्ब अंधकारमें घुसने लगता है अर्थात् जिस समयसे यथार्थ ग्रहणका आरंभ होता है।

मोक्ष काल उस समयको कहते हैं जिस समय चंद्रमाका पूरा बिम्ब अंधकारके बाहर आ जाता है।

चित्र १३ में र रविका केन्द्र प पृथ्वीका केन्द्र और ब पृथ्वीकी छायाकी नोक है। चंद्रकक्षामें चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है। जब चंद्रमाका केन्द्र चन्द्रकक्षाके उस विन्दु पर पहुँचता है जहां १ लिखा हुआ है तब चन्द्र बिम्ब पृथ्वीकी छायाको स्पर्श करता है, इसलिए चंद्रमाकी यहस्थिति ग्रहणके समय स्पर्शकालकी स्थिति है। इसी समय चन्द्र बिम्ब अंधकारमें प्रवेश करताहुआ देख पड़ता है। जब चंद्रमा उस स्थिति परपहुँचता है जो २ अंकसे सूचित किया गया है तब उसका पूरा बिम्ब अंधकारमें हो जाता है। यह सम्मीलन काल अथवा निमीलन कालकी स्थिति है। जब चंद्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो ३ अंकसे प्रकट किया गया है तब चंद्रमा अंधकारसे बाहर निकलनेको होता है। यही उन्मीलन कालकी स्थिति है। और जब चंद्रमाका पूरा बिम्ब अंधकारके बाहर



निकल आता है जैसा कि ४ अंकसे प्रकट किया गया है तब मोक्ष कालकी स्थिति होती है।

इन चार घटनाओंमेंसे कोई घटना आकाशमें जिस समय होती है उसी समय* भूतल पर भी देख पड़ती है। परन्तु भूतलके सब स्थानोंमें सूर्योदय या मध्याह्न जिससे घड़ियां† सुगमता पूर्वक शुद्धकी जा सकती हैं, एक ही समय नहीं होता जैसा कि ६०-६१ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें देशान्तर की परिभाषा बतलाते हुए सिद्ध किया गया है इस लिए भिन्न भिन्न स्थानोंकी घड़ियांमें किसी घटनाके देखनेका समय भिन्न होता है। मध्यरेखासे पूर्वके स्थानोंकी घड़ियां मध्यरेखाकी घड़ीसे देशान्तर कालके समान आगे रहती हैं क्योंकि यहां सूर्योदय पहले होता है। इसलिए यहां जिस समय ग्रहण देख पड़ेगा वह मध्य रेखाके समयसे अधिक होगा और पश्चिमके स्थानों-में कम। मध्य रेखा पर जिस समय ग्रहण देख पड़ता है वही गणित करने पर भी निकलता है। इसलिए गणितसे यह जान कर कि मध्य रेखा पर कौन घटना कब देख पड़ेगी और अपने स्थानकी घड़ीके अनुसार कब देख पड़ती है, यह सहज ही जाना जा सकता है कि इन दोनों स्थानोंके स्थानीय कालोंमें क्या अंतर है। यही अंतर अपने स्थानका देशान्तर काल कहलाता है।

---

* यदि प्रकाशकी गतिका भी विचार किया जाय तो यह कहना अधिक शुद्ध होगा कि चंद्रमाकी कोई घटना भूतल पर सवा सेकंड पीछे देख पड़ती है।

† समय जाननेके यंत्र।

देशान्तर काल जाननेके लिए उन्मीलन कालकी स्थिति जाननेकी चर्चा पहलेकी गयी है। इसका कारण यह है कि उस समय चंद्रमा अंधकारसे बाहर निकलनेको होता है, भूतल पर भी अंधकार छाया रहता है इसलिए ज्योंही चंद्र बिम्ब प्रकाशमें आने लगता है त्योंही स्पष्टता पूर्वक देख पड़ता है और समय जाननेमें बहुत अशुद्धि नहीं होती। सम्मीलन कालके समय चन्द्रमा किस समय अंधकारमें पूरा प्रवेश करता है यह जानने में कुछ कठिनाई होती है इसलिए इससे देशान्तर काल निकालनेमें कुछ अशुद्धि हो सकती है। स्पर्श काल और मोक्ष कालके समय तो कई पल तक यह पता नहीं लग सकता है कि यथार्थ घटना किस समय हुई, इसलिए देशान्तर काल निकालनेके लिए इनसे काम नहीं लिया जाता।

देशान्तर कालसे देशान्तर योजन कैसे जाना जाता है यह ६०-६१ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यसे समझना चाहिये। यह बात तो स्पष्ट है कि सूर्य ६० घड़ीमें पृथ्वीकी परिक्रमा कर लेता है जिससे किसी स्थानकी स्फुट परिधिके चारों ओर वह ६० घड़ीमें घूम आता है, इसलिए किसी स्थानके देशान्तर कालमें स्फुट परिधिका वह खंड पूरा होगा जो उस स्थानसे मध्यरेखा का अन्तर है, त्रैराशिक द्वारा इसे यों प्रकट करते हैं:—

६० घड़ी : देशान्तर घड़ी :: स्फुट परिधि : देशान्तर योजन।

यहां देशान्तर जाननेकी कुछ अन्य रीतियोंकी चर्चा संक्षेपमें करना आवश्यक है।

देशान्तर जाननेकी रीतियां :—एक रीति तो ऊपर लिखी जा चुकी है। यह बहुत पुरानी रीति है और जब आजकलकी तरह सूक्ष्म यंत्रोंका निर्माण नहीं हुआ था तब इससे बढ़कर कोई

दूसरी रीति हो भी नहीं सकती थी। आजकल जितनी रीतियां प्रचलित हैं उनमेंसे अधिकांश इसीके रूपान्तर हैं, यदि कुछ अन्तर है तो यह कि आजकल ग्रहण इत्यादि आकाशीय घटनाओंके होनेके समयका सूक्ष्म ज्ञान किया जा सकता है जिससे देशान्तर काल जहां तक संभव है बहुत सूक्ष्मता पूर्वक जाना जा सकता है। जो रीति ऊपर बतलायी गयी है उसमें कुछ अशुद्धि रह जाती है, इसका कारण यह है कि कोरी आंखसे अथवा दूरवीक्षण यंत्रसे यह ठीक ठीक नहीं देखा जा सकता कि चन्द्र ग्रहणका उन्मीलन अथवा सम्मीलन किस क्षणसे आरम्भ हो जाता है। यदि पास ही पासके दो दर्शक अपनी अपनी घड़ी लेकर यह देखने बैठें कि सम्मीलन किस समय आरम्भ होता है और चुपकेसे उस समयको लिखलें जिस समय प्रत्येकको सम्मीलन देख पड़े तो देखा जाता है कि उन दोनोंके देखे हुए कालोंमें दो[१] तीन मिनटका अन्तर होता है। शायद यही कारण है जिससे उज्जैन, कुरुक्षेत्र और रोहतकके देशान्तरोंमें दो तीन मिनटका अन्तर है यद्यपि यह ६२वें श्लोकमें एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखा पर अर्थात् भूमध्य रेखा पर बतलाये गये हैं। नीचे ग्रीनिचसे इन स्थानोंके देशान्तरोंकी तुलना की जाती है:—

१—Godfray's Treatise on Astronomy sixth edition page 261.

नगर	ग्रीनिचसे देशान्तर	उज्जैनसे देशान्तर (कोणात्मक)	उज्जैनसे देशान्तर (कालात्मक) घड़ी	पल	विपल	मिनट सेकंड
उज्जैन[२]	७५°४६'६" पूर्व					
कुरुक्षेत्र[३]	७६°२०' ”	०°३३'५४" पूर्व	०	५	३९	(२ १५·६)
रोहतक	७६°३५' ”	०°४८'५४" ”	०	८	९	(३ १५·६)
काशी[४]	८३°३'४" ”	७°१६'५८" ”	१	१२	५०	(२९ ८)

इन अंकोंसे सिद्ध है कि चंद्रग्रहणसे देशान्तर जाननेकी रीतिमें दो तीन मिनटका अन्तर हो सकता है।

दूसरी रीति—जिसप्रकार चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है और उसमें ग्रहण लगता है इसी प्रकार बृहस्पतिके चारों ओर भी ४, ५ पिंड परिक्रमा करते हुए दूरवीक्षण यंत्रसे देखे जाते हैं। यह बृहस्पतिके चन्द्रमा कहलाते हैं। जब यह बृहस्पतिकी छायामें घुसते हैं तो इनमें भी ग्रहण लगता है। बृहस्पतिके चन्द्रमा बहुत छोटे हैं और इनके परिक्रमण काल भी छोटे हैं इसलिए इनमें ग्रहण जल्दी जल्दी लगते हैं। ग्रहणके कारण इनके छिपने और प्रकट होनेका समय ग्रीनिच कालके अनुसार नाविक पंचांगों में (Nautical almanac) दिया रहता है। इसलिए यदि किसी स्थानमें उसके स्थानीय कालके अनुसार बृहस्पतिके चन्द्रमाके छिपने या प्रकट होनेका समय देखा जाय तो नाविक पंचांगमें दिये हुए समयसे जो अन्तर

२—Indian Chronology page 60.

३—Imperial Gazetteer of India.

४—भारत भ्रमण (मकरंद सारिणीमें काशीका देशान्तर ६६ पल दिया है जो ऊपरके मानसे ४ पल कम है।

होना है वही उस स्थानका ग्रीनिचसे देशान्तर है। परन्तु यह रीति भी ऊपर कही हुई रीतिकी तरह स्थूल है क्योंकि बृहस्पतिके चंद्रमाके छिपने या प्रकट होनेका क्षण निश्चित रूपसे दूरबीक्षणसे भी नहीं जाना जा सकता परन्तु इसमें उतनी अशुद्धि नहीं होती जितनी पहली रीतिमें होती है।

तीसरी रीति—टूटनेवाले तारोंके प्रकट होने और लुप्त होनेके क्षणको भिन्न भिन्न स्थानोंके स्थानीय कालोंसे तुलना करनेपर देशान्तर सूक्ष्मता पूर्वक जाना जा सकता है यदि तारोंके टूटनेके समयका निश्चय पहलेसे हो सके औरउनके पहचाननेमें कोई गड़बड़ न हो।

चौथी रीति-विद्युत द्वारा समाचार भेजकर देशान्तर जानना—यदि दो स्थानोंका एक दूसरेसे ऐसा सम्बन्ध हो कि एक स्थानसे दूसरे स्थानको विद्युत् द्वारा समाचार भेजा जा सके तो इन दोनों स्थानोंका देशान्तर सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि विद्युत् समाचारके पहुँचनेमें इतना कम समय लगता है कि उससे जो अशुद्धि हो सकती है वह नहींके समान है।

मान लीजिए काशीसे लखनऊका देशान्तर जानना है। दोनों नगरोंके दर्शकोंको एक ही प्रकारकी घड़ी रखनी चाहिये, जैसे यदि एककी घड़ी सावन काल बतलाती हो तो दूसरेकी घड़ी भी सावन काल बतलाती हो। दोनों घड़ियोंको अपने अपने यहांके स्थानीय कालसे मिला लेना चाहिये जिससे प्रत्येक घड़ी अपने यहांका स्थानीय काल शुद्धता पूर्वक बतला सके। काशी लखनऊसे पूर्व है इसलिए काशीका स्थानीय काल लखनऊके स्थानीय कालसे आगे रहेगा और इन दोनोंमें जितना अंतर होगा वही काशीसे लखनऊका देशान्तर है। जिस समय

काशीकी घड़ीमें '$स_1$' समय हो उसी समय काशीसे विद्युत-संकेत किया जाय। जिस समय यह संकेत लखनऊ पहुँचे उसी समय लखनऊकी घड़ीमें समय देख लिया जाय। यदि इस घड़ीमें '$स_2$' समय हो और यह मान लिया जाय कि लखनऊमें संकेत उसी क्षण पहुँचा है जिस क्षण काशीसे भेजा गया है तो काशीसे लखनऊका देशान्तर '$द_1$' नीचे लिखे समीकरणसे सिद्ध होगा :—

$$द_1 = स_1 - स_2$$

परंतु इस समीकरणसे देशान्तरका जो मान निकलेगा वह यथार्थ देशान्तरसे कुछ कम होगा क्योंकि काशीसे लखनऊ तक विद्युत् संकेतके पहुँचनेमें कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। यदि इस समयका मान 'य' हो और काशीसे लखनऊका यथार्थ देशान्तर 'द' हो तो पूर्वोक्त समीकरणका रूप यह होगा :—

$$द = (स_1 + य) - स_2 = द_1 + य \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

क्योंकि जिस समय लखनऊमें समाचार पहुँचेगा उस समय काशीमें '$स_1 + य$' समय होगा। 'य' का मान जाननेके लिए लखनऊसे काशीको संकेत भेजकर दोनोंके स्थानीय काल फिर जानना चाहिए। मान लीजिए लखनऊसे जिस समय संकेत भेजा गया उस समय लखनऊकी घड़ीमें '$सा_2$' समय था और जिस समय यह संकेत काशी पहुंचा उस समय काशीकी घड़ीमें '$सा_1$' समय था, और यदि मान लिया जाय कि संकेतके पहुँचनेमें कुछ समय नहीं लगता तो इन दोनोंका अंतर $द_2$ लखनऊका देशान्तर होगा जिसका रूप यह है :—

$$द_2 = सा_1 - सा_2$$

परन्तु $द_2$ का मान यथार्थसे कुछ अधिक होगा क्योंकि संकेतके पहुँचनेमें कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है जो 'य' के समान फिर होगा इसलिए यथार्थ देशान्तर।

$$\text{द} = \text{सा}_1 - (\text{सा}_2 + \text{य}) = (\text{सा}_1 - \text{स}_2) - \text{य} = \text{द}_2 - \text{य} \ldots (२)$$

(१) और (२) समीकरणों के समान पक्षोंको जोड़नेसे

$$२\,\text{द} = \text{द}_1 + \text{द}_2$$

$$\text{अथवा द} = \frac{\text{द}_1 + \text{द}_2}{२} \;\ldots\ldots\ldots\ldots (३)$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि काशीसे लखनऊ संकेत भेजनेसे जो देशान्तर काल आवे उसको उस देशान्तर कालमें जोड़ दो जो लखनऊसे काशी उलटा संकेत भेजनेसे ज्ञात हो। फिर दोनों को जोड़कर आधा कर दो तो यथार्थ देशान्तर काल ज्ञात हो जायगा। देशान्तर जाननेकी और भी कई रीतियां हैं जो जहाज़वालोंके कामकी होती हैं और जिनमें नाविक पंचांगसे अथवा ग्रीनिचसे मिली हुई घड़ीसे सहायता लेनी पड़ती है; इसलिए इस स्थानपर उनका वर्णन नहीं किया जाता है।

वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्धेऽभ्यधिके भवेत्।
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ॥६६॥

अनुवाद—(६६) जो स्थान मध्य रेखासे पूर्व दिशामें हैं वहां वारकी प्रवृत्ति अर्थात् दिनका आरंभ उस स्थानकी अर्द्ध रात्रिसे उतने समय पीछे होती है जितना उस स्थानका देशान्तर काल है। मध्यरेखाके पश्चिमके स्थानमें उस स्थानकी अर्द्धरात्रिसे उतने समय पहले ही वारकी प्रवृत्ति हो जाती है जितना इस स्थानका देशान्तर काल है।

विज्ञान भाष्य—इस नियमके अनुसार काशीमें जो उज्जैनसे अथवा भारतवर्षको मध्य रेखासे ७३ पल पूर्व है, वारकी प्रवृत्ति उस समय होती है जब काशीमें स्थानीय कालके अनुसार रातको १२ बजकर ७३ पल अर्थात् १२ बजकर २९ मिनट १२ सेकंड होता है, और बम्बईमें जो उज्जैनसे कोई २९ पल पच्छिम है वारकी प्रवृत्ति १२ बजे रातसे कोई २९ पल अथवा ११ मिनट ३६ सेकंड पहले ही हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय भारतवर्षकी मध्यरेखापर अर्द्धरात्रि होती है उसी समय भारतके अन्य स्थानोंमें भी वारप्रवृत्ति समझनी चाहिये। इसलिए ग्रहोंका जो स्थान लंका या उज्जैनकी अर्द्धरात्रिके समय गणितसे सिद्ध होता है वह अन्य स्थानोंमें उस समय होता है जिस समय वहां वारप्रवृत्ति होती है। इसीलिए यदि किसी स्थानकी अर्द्धरात्रिके समयका ग्रह निकालना हो तो देशान्तर-फल घटाना या जोड़ना चाहिये।

यह मत सूर्यसिद्धान्तका है कि वार-प्रवृत्ति उज्जैनकी अर्द्धरात्रिके समय सब स्थानोंमें होती है। ब्रह्मगुप्त,[1] भास्कराचार्य[2] इत्यादि आचार्योंने वार-प्रवृत्ति उस समयसे माना है

१—जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्ट्यादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्मादिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात्‌ तस्मात्‌ ॥ ११ ॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त—मध्यमाधिकार।

२—लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोःसितादेर्दिन मास वर्ष युगादिकानां युगपत्‌ प्रवृत्तिः ॥१५॥
सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ७

जिस समय लंकामें सूर्योदय होता है क्योंकि इनके मतसे सृष्टि का आरंभ उस समयसे हुआ जिस समय लंकामें पहले पहल सूर्य देख पड़ा था और इसी समय पहले दिनका भी आरम्भ हुआ था। आजकल यही नियम साधारणतः प्रचलित भी है, हां वैष्णव सम्प्रदायके अनुयायी[३] अर्द्धरात्रिसे ही वारकी प्रवृत्ति मानते हैं और कमसे कम धार्मिक कृत्योंकेलिए दिनमें वही तिथि मानते हैं जो पिछली आधीरातके समय वर्तमान रहती है, इसलिए इनकी एकादशी प्रायः द्वादशीके दिन होती है। अधिकांश पंचांगोंमें भी ग्रह स्पष्ट अर्द्धरात्रिके समयका ही दिया रहता है।

इन दोनों मतोंमें अर्द्धरात्रिसे वार-प्रवृत्तिका मानना अधिक सरल और व्यापक है। एक ही उत्तर-दक्षिण रेखापर स्थित जितने स्थान हैं सब जगह अर्द्धरात्रि या मध्याह्न सदा युगपद् होती है परन्तु सूर्योदय वर्षमें दो दिनोंको छोड़कर कभी एक साथ नहीं होता। सूर्योदय सूर्यकी क्रान्ति और स्थानोंके अक्षांशके अनुसार कुछ आगे पीछे होता है जिसकी व्याख्या तीसरे अध्यायमें की जायगी। फिर पूरब पच्छिमके देशोंमें देशान्तर संस्कारके कारण भी सूर्योदय कालमें बहुत अंतर पड़ जाता है। इन सब कारणोंसे वार-प्रवृत्ति कभी कभी सूर्योदयके घंटे भर पीछे या पहले ही हो जाती है जो बहुत पेचदार है। परंतु यदि आधीरातसे वार-प्रवृत्ति मानी जाय तो सूर्यकी क्रान्ति और स्थानोंके अक्षांशके कारण कोई भेद नहीं पड़ सकता। हां देशान्तर संस्कार फिर

३—माधुरी खंड २ संख्या ४ पृष्ठ ४३७।

भी करना पड़ेगा परन्तु इससे भी वार प्रवृत्ति रातमें ही हो जायगी जिससे कोई गड़बड़ नहीं हो सकता। लोक व्यवहारमें भी किसी दिनकी प्रातः संध्या अथवा यात्रा सूर्योदयके पहले हो की जाती है जिससे जान पड़ता है कि साधारणतः सूर्योदय के दो तीन घड़ी पहलेसे ही दिनका आरम्भ मान लिया जाता है। इस विषयपर धर्म सिंधु †निर्णय सिंधु इत्यादि ग्रन्थोंमें बहुत चर्चाकी गयी है।

आजकल यूरोपीय देशोंमें आधीरातसे ही तारीख बदलती है तथा दिनका आरम्भ माना जाता है, इसीलिए अंगरेजी तारीखें भी आधीरात से ही बदलती है। इससे बहुतसे लोग यह समझते हैं कि आधीरातसे वारकी प्रवृत्ति मानना अंग्रेज़ी मत है, परन्तु यह भूल है। हमारे यहां भी आधीरातसे वार प्रवृत्ति माननेका नियम है।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि किसी स्थानकी अर्द्ध-रात्रिके समय किसी ग्रहका मध्यम स्थान क्या होता है और कैसे जाना जाता है। अगले श्लोकमें यह बतलाया जा रहा है कि मध्यरात्रिके सिवा दिनके किसी अन्य समयमें मध्यम ग्रह निकालना हो तो क्या करना चाहिये।

इष्टनाडीगुणाभुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्।
गते शोध्यं युतं गम्ये कृत्वा तत्कालिको भवेत् ॥६७॥

---

† सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रातः संध्या, सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायंसंध्या—

धर्म सिंधु प्रथम परिच्छेद पृष्ठ २
निर्णयसागर प्रेसका छपा (शक १८२६)

अनुवाद—(यदि मध्यरात्रिके सिवा किसी अन्य समय का मध्यम ग्रह जानना हो तो) इष्ट घड़ीको अर्थात् मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी पहले या पीछेका समय हो उस घड़ीको ग्रहकी दैनिक मध्यम गतिसे (जो कलाओंमें लिखना सुविधा जनक होता है (गुणा करके गुणनफलको ६० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उसे अर्द्धरात्रिके मध्यम ग्रहमेंसे घटा दो यदि इष्ट काल मध्यरात्रिसे पहले ही बीत जाय और जोड़ दो यदि इष्ट काल मध्यरात्रिसे पीछे आवे। ऐसा करनेसे ग्रहका तात्कालिक स्थान निकल आवेगा। (६७)

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ग्रहका मध्यम स्थान अर्द्ध-रात्रिके समय जो कुछ होता है वह अन्य समय नहीं रहता क्योंकि ग्रह निरंतर चलते रहते हैं। इसलिए अर्द्धरात्रिके पहले या पीछे किसी इष्ट समयमें किसी ग्रहका मध्यम स्थान जाननेके लिए यह जानना आवश्यक है कि उस समयमें ग्रह कितना हट जायगा। यह बात त्रैराशिकसे सहजही जानी जा सकती है—

६० घड़ी : इष्ट घड़ी :: दैनिक गति : इष्ट घड़ीमें गति

$$\therefore \text{इष्ट घड़ीमें गति} = \frac{\text{इष्ट घड़ी} \times \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

इसलिए अभीष्ट कालकी ग्रहकी स्थिति

$$= \text{अर्द्धरात्रिकी स्थिति} \pm \frac{\text{इष्ट घड़ी} + \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

यदि इष्ट काल अर्द्धरात्रिके पहले हो तो ऋणका चिह्न रखना चाहिये और पीछे हो तो धनका चिह्न।

यह इतना स्पष्ट है कि उदाहरण देकर पुस्तकका आकार बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

भचक्रलिप्ताशीत्यंशः परमं दक्षिणोत्तरम् ।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः ॥६८॥
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः ।
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ॥६९॥
एवं त्रिघ्नरन्ध्रार्करसार्कार्का दशाहताः ।
चन्द्रादीनां क्रमादुक्ता मध्यविक्षेपलिप्तिकाः ॥७०॥

अनुवाद—(६८) अपने पातके कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्तिवृत्तके विन्दुसे अधिकसे अधिक २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है। (६९) इसका $\frac{2}{9}$ भाग बृहस्पति, $\frac{3}{9}$ भाग अथवा $\frac{1}{3}$ भाग मंगल और $\frac{4}{9}$ भाग बुध, शुक्र और शनि अपने अपने पातोंके द्वारा हट जाते हैं। (७०) इस प्रकार चंद्रादि छः ग्रहों (चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि) के मध्यम विक्षेप २७०, ९०, १२०, ६०, १२०, १२० कलाएं क्रमसे हैं। (६८–७०)

विज्ञान भाष्य—पिछले ३३ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें चंद्रमाके पातका वर्णन है। ४ थे चित्रमें चंद्रकक्षा और क्रान्तिवृत्त एक दूसरेको काटते हुए दिखलाये गये हैं। जिस समय चन्द्रमा अपने पात पर रहता है उस समय यह क्रान्तिवृत्त पर देख पड़ता है, अन्य समय यह क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्षिण कुछ हटा हुआ देख पड़ता है। किस समय कितना हटा रहता है यह गणितसे सहज ही जाना जा सकता है। जिस समय चंद्रमा पातसे ९०° आगे या पीछे रहता है उस समय कान्तिवृत्तसे परम अंतर पर होता है। चित्र ४ में यह

परम अंतर चाप या चससे सूचित होता है। इसीको चंद्रमाका परम विक्षेप कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रह भी क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्षिण हट जाते हैं जिनके मध्यम विक्षेप ६९-७० श्लोकोंमें दिये हुए हैं। ग्रहोंके विक्षेप और पातोंमें बहुत घना सम्बन्ध है इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्योंका विचार था कि पात ही ग्रहोंको उत्तर या दक्षिण ढकेल देते हैं।

ग्रहोंके परम विक्षेप सब आचार्योंके मतसे एकसे नहीं है। आजकल सूक्ष्म यंत्रोंके द्वारा जो जानकारी हुई है वह हमारे किसी ग्रन्थके मानोंसे नहीं मिलती। तुलनाके लिए परम विक्षेपोंकी तालिका नीचे दी जाती है:—

	सूर्य सिद्धान्त	[1]ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि[2]	[3]महा सिद्धान्त	[4]सिद्धान्त दर्पण	[5]टालमी	[6]आधुनिक
चंद्र	४°३०′	४°३०′	४°३०′	५°९′०″	५°०′	५°८′४२″
मंगल	१°३०′	१°५०′	१°४६′	१°५१′०″	१°०′	१°५१′१″
बुध	२°०′	२°३२′	२°१८′	२°४४′०″	७°०′	७°०′१०″
गुरु	१°०′	१°१६′	१°१४′	१°१८′०″	१°३०′	१°१८′४२″
शुक्र	२°०′	२°१६′	२°१०′	२°२८′०″	३°३०′	३°२३′३७″
शनि	२°०′	२°१०′	२°१०′	२°२९′०″	२°३०′	२°२९′३९″

१—ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ७३, ११२।

२—सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १७५, २१२।

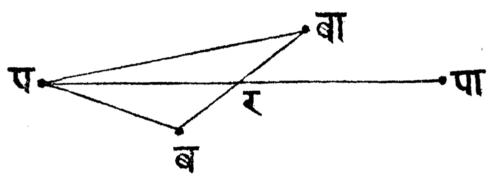
३—महा सिद्धान्त स्पष्टाधिकार श्लोक ३९,

४—सिद्धान्त दर्पण पृष्ट ३१, श्लोक ३२-३३, योगेश चन्द्रराय द्वारा सम्पादित और कलकत्तेसे १८९९ ई० में प्रकाशित।

५—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ट ३२४

६—Sir Robert Ball's spherical Astronomy pp 491

ऊपरकी तालिकासे देख पड़ेगा कि बुध और शुक्रके मध्य विक्षेपोंके आधुनिक मानों और सिद्धान्तोंमें दिये हुए मानोंमें बहुत अंतर है। इसका कारण यह है कि आधुनिक विक्षेप मान रविकेन्द्रगत (heliocentric) हैं अर्थात् वह हैं जो सूर्यके केन्द्रसे देख पड़ते हैं और हमारे सिद्धान्तोंके मान भूकेन्द्रगत (geocentric) हैं अर्थात् वह हैं जो पृथ्वीके केन्द्रसे देखने पर जान पड़ते हैं। दर्शकके स्थानोंकी भिन्नताके कारण उन ग्रहोंके विक्षेपोंमें बहुत अंतर नहीं पड़ता जो सूर्यसे दूर हैं। परन्तु सूर्यके पास वाले ग्रह बुध और शुक्रके विक्षेपोंमें बहुत अंतर पड़ जाता है जो नीचेके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगाः-



चित्र १४

दिये हुए चित्र १४ में र रविका केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र परपा क्रान्तिवृत्त और बरबा बुधकक्षा हैं। र से देखनेपर बुध कक्षा क्रान्तिवृत्तसे बरप या बारपा कोण बनाती है जो आधुनिक मतसे ७°०'१०" है। परन्तु पृथ्वीके केन्द्र प से देखने पर बुध कक्षा बपर कोण बनाती हुई जान पड़ती है जिसका मान बरप कोणसे कहीं कम है क्योंकि पब (बुधसे पृथ्वीका मध्यम अंतर) यदि १ है तो बर (सूर्यसे बुधका मध्यम अंतर) केवल ·३८७१ है। त्रिकोणमितिसे बपर कोणका मान सहज ही

निकल सकता है क्योंकि किसी त्रिभुजके किसी भुजको सामने के कोणकी ज्यासे भाग देने पर लब्धि समान होती है। इसलिए

$$\frac{\text{ज्या}\angle\text{बपर}}{\text{बर}}=\frac{\text{ज्या}\angle\text{बरप}}{\text{पब}}$$

$$\text{अथवा ज्या}\angle\text{बपर}=\frac{\text{बर}}{\text{पब}}\times\text{ज्या}\angle\text{बरप}$$

$$=\frac{\cdot\text{३८७१}}{\text{१}}\times\text{ज्या }\text{७}^\circ\text{०}'\text{१०}''$$

$$=\cdot\text{३८७१}\times\cdot\text{१२१६}$$

$$=\cdot\text{०४७२}$$

$$\therefore\angle\text{बपर}=\text{२}^\circ\text{४२}'$$

यह आधुनिक मतसे बुधका भूकेन्द्रगत मध्यम विक्षेप है जो सिद्धान्त शिरोमणिके मध्यम विक्षेपसे १०′ अधिक है। सिद्धान्त दर्पणके मान आधुनिक मतसे बहुत मिलते हैं।

इसी प्रकार शुक्रका (रविकेन्द्रगत) मध्यम विक्षेप ३°२३′ ३७″ और सूर्यसे मध्यम अंतर ·७२३३ है जब कि पृथ्वीका १ है, इसलिए यदि चित्र १४में ब, बा की जगह शु, शू रखकर शु शू को शुक्रकी कक्षा मान ली जाय तो पहलेकी नांई सम्बन्ध यह होगा—

$$\text{ज्या}\angle\text{शुपर}=\frac{\cdot\text{७२३३}}{\text{१}}\times\text{ज्या }\text{३}^\circ\text{२३}'\text{३७}''$$

$$=\cdot\text{७२३३}\times\cdot\text{०५६२}$$

$$=\cdot\text{०४२८}$$

$$\therefore\angle\text{शुपर}=\text{२}^\circ\text{२७}'$$

जो सिद्धान्त शिरोमणिके २°१६′ से ११′ अधिक और सिद्धान्त दर्पणके २°२८′ से केवल १′ कम है।

इससे प्रकट है कि हमारे पुराने आचार्योंके अनुसार बुध, शुक्रके मध्यम विक्षेप आधुनिक मानोंसे केवल १० या ११ कला कम हैं जो उस समयकी स्थितिको देखते हुए बहुत सूक्ष्म हैं।

सूर्य सिद्धान्तके मध्यमाधिकार नामक प्रथम अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।



स्पष्टाधिकार नामक दूसरा अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[१–११ श्लोक—शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक कालकी अदृश्य मूर्तियां ग्रहोंकी गतिमें कैसी भिन्नता उत्पन्न करती हैं। १२–१३ श्लोक—ग्रहोंकी आठ प्रकारकी गतियोंके नाम। १४ श्लोक—गणितसिद्ध और प्रत्यक्ष देखे हुए ग्रहके स्थानोंकी तुल्यताके लिए स्पष्टीकरणकी आवश्यकता। १५–१६ श्लोक—समकोणके २४ खंडोंकी ज्या जाननेकी रीति। १७–२१॥ श्लोक—किस खंडकी ज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २२ वें श्लोकका परार्द्ध—उत्क्रमज्या जाननेकी रीति। २३–२७ श्लोक—किस खंडकी उत्क्रमज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २८ श्लोक—परम विक्षेपकी ज्यासे क्रान्ति जाननेका गुर। २९–३० श्लोक—मन्दकेन्द्रसे भुजज्या और कोटिज्या बनाना। ३१–३२ श्लोक—सारिणीमें दिये हुए कोण खंडोंके सिवा अन्य कोणकी ज्या अनुपातसे जाननेकी रीति। ३३ श्लोक—ज्या ज्ञात हो तो धनु या कोण कैसे जाना जाय। ३४–३५ श्लोक—सातों ग्रहोंकी मंद-परिधिके मान विषम और सम पदोंमें क्या होते हैं। ३६–३७ श्लोक—पांच ग्रहोंकी शीघ्रपरिधिके मान विषम और सम-पदोंमें क्या होते हैं। ३८ श्लोक—पदके बीचमें किसी विन्दुपर मंद तथा शीघ्र परिधिका क्या परिमाण होता है। ३९ श्लोक—मन्दफल जाननेका नियम। ४०–४१ का पूर्वार्द्ध—शीघ्रकर्ण जाननेका नियम। ४१ श्लोकका उत्तरार्द्ध-४२ श्लोक—शीघ्रफल जाननेकी रीति। ४३–४४ श्लोक—ग्रहोंका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए मंदफल और शीघ्रफलका संस्कार कैसे

किया जाय । ४४ श्लोक—मेषादि केन्द्रमें मंदफल या शीघ्रफल जोड़ना चाहिये और तुलादि केन्द्रमें घटाना चाहिये । ४६ श्लोक—भुजान्तर संस्कारकी आवश्यकता । ४७–४६ श्लोक— ग्रहोंकी मध्यगतिसे मन्दस्पष्ट-गति जाननेकी रीति । ५०–५१ श्लोक—मन्दस्पष्टगतिसे स्पष्टगति जाननेकी रीति; वक्र गति कब होती हैं । ५२ श्लोक—वक्र गतिका कारण । ५३–५४ श्लोक—भौमादि पांच ग्रह शीघ्रोच्चसे कितनी दूरी पर वक्री होते हैं और कहां पहुँच कर वक्र गतिको त्यागते हैं । ५५ श्लोक—शीघ्रपरिधिके भिन्न भिन्न परिमाणके कारण वक्रगति भिन्न भिन्न अंतरपर होती है । ५६–५७ श्लोक—ग्रहोंका विक्षेप जाननेका नियम । ५८ श्लोक—ग्रहोंकी स्पष्ट क्रान्ति जाननेका नियम । ५६ श्लोक—ग्रहोंकी अहोरात्रिका मान जाननेका नियम । ६० श्लोक—द्युज्या जाननेकी रीति । ६१—क्षितिज्या और चरज्या जाननेकी रीति । ६२–६३ श्लोक—चरज्याके धनुसे दिन और रातका परिमाण जाननेका नियम । ६४ श्लोक—नक्षत्र और तिथिके मान तथा यह जाननेकी रीति कि ग्रह किस नक्षत्रमें है । ६५ श्लोक—योग जाननेकी रीति । ६६ श्लोक—तिथि जाननेकी रीति । ६७ श्लोक—चार स्थिर करणोंके नाम औरउनके समय । ६८ श्लोक—सात चर करण महीनेमें कितने फेरे करते हैं । ६६ श्लोक—आधी तिथि एक करणके समान होती है ।]

मध्यमाधिकार नामक पहले अध्यायमें मध्यमगतिके अनुसार ग्रहोंके स्थान जाननेकी रीति बतलायी गयी है । परन्तु इस रीतिसे ग्रहका जो स्थान मालूम होता है वह उससे बहुत भिन्न होता है जहां ग्रह प्रत्यक्ष देख पड़ता है । इस भिन्नताको मिटानेके लिए कुछ संस्कार करनेकी आवश्यकता पड़ती है । इस अध्यायमें यह बतलाया गया है कि यह संस्कार कैसे किये जाते हैं । इन संस्कारोंसे ग्रहोंका स्थान गणितसे भी वही

आता है जो स्पष्ट आकाशमें देख पड़ता है। इसलिए इस अध्यायका नाम स्पष्टाधिकार रखा गया।

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्र मन्दोच्च पाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥१॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥२॥
प्रवहाख्यो मरुत्तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत्।
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति पृथग्विधाम् ॥३॥
ग्रहात्प्राग्भगणार्धस्थः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम्।
उच्चसंज्ञोऽपरार्द्धस्थस्तद्वत्पश्चान्मुखं ग्रहम् ॥४॥
स्वोच्चापकृष्टा भगणैः प्राङ्मुखं यान्ति यद् ग्रहाः।
तत्तेषु धनमित्युक्तमृणं पश्चान्मुखेषु तु ॥५॥

अनुवाद—(१) शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक कालकी मूर्तियां जो आंखसे देखी नहीं जा सकतीं और जो स्वयम् क्रान्तिवृत्त पर चक्कर लगाती हैं ग्रहोंकी गतिके कारण हैं। (२) यह मूर्तियां अपने दहने और बायें हाथोंसे यदि (ग्रहोंसे) पूरब हुई तो पूरबकी ओर और पच्छिम हुई तो पच्छिमकी ओर जैसी दूरी हो उसके अनुसार ग्रहोंको जो उन (मूर्तियों) से वायु रूपी रस्सियोंसे बंधे हुए हैं अपनी ओर खींच लेती हैं। (३) प्रवह नामक वायु भी इन ग्रहोंको इनके उच्चोंकी ओर ढकेल देती है। इसी कारण पूरब या पच्छिमकी ओर खिंचे

हुए ग्रहोंकी गतियोंमें भिन्नता हो जाती है। (४) यदि ग्रहका उच्च ग्रहसे पूरब हो और ६ राशि या १८०° से अधिक दूर न हो तो वह ग्रहको मध्यम स्थानसे पूरबकी ओर खींच लेता है, परन्तु यदि १८०° से अधिक दूर हो तो (ग्रहसे पच्छिम होनेके कारण) वह ग्रहको पच्छिमकी ओर खींच लेता है। (५) अपने अपने उच्चोंसे खिंचे हुए ग्रह मध्यम स्थानसे जितना पूरबकी ओर बढ़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थानमें) जोड़नेसे तथा जितना पच्छिमकी ओर पिछड़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थानमेंसे) घटानेसे स्पष्ट स्थान निकलता है। जोड़े जानेवाले संस्कारको धन संस्कार तथा घटाये जाने वाले संस्कारको ऋण संस्कार कहते हैं।

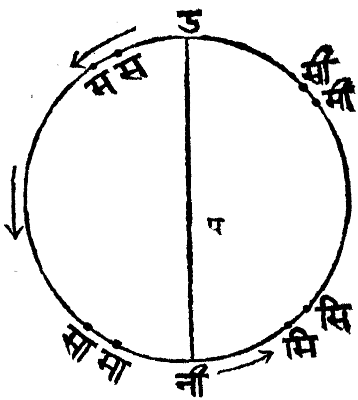
विज्ञान भाष्य—इन पांच तथा अगले ९—११ श्लोकोंमें हमारे आचार्योंकी आकर्षण सम्बन्धी कल्पनाएं हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि वह कितने सूक्ष्म निरूपण से काम लेते थे। वह देखते थे कि चक्कर लगाता हुआ ग्रह किसी समय ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहां उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मन्द पड़ जाती है। बस इसीको उन्होंने ग्रहके मन्दोच्च† का स्थान निश्चय किया था। मन्दोच्चका स्थान भी स्थिर नहीं है, वरन् अत्यन्त मन्द गतिसे चल रहा है, इसलिए इसको भगणाश्रित अर्थात् राशिचक्र पर चलता हुआ माना है। राशिचक्रमें ग्रहोंकी साधारण गति पच्छिमसे पूर्वको होती है। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर पहुँचता है तब उसकी गति अत्यन्त मंद

† मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पातकी कुछ चर्चा विज्ञान भाग १६ पृष्ठ १८७-१९१ में अथवा मध्यमाधिकारके २९-३३ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें है।

होनेके कारण मध्यम गतिसे कम होती है। इसलिए जब ग्रह मन्दोच्चसे आगे बढ़ता है तब दिन भरमें मध्यम गतिसे जहां पहुँचना चाहिये वहां न पहुँच कर पीछे ही रह जाता है। इस प्रकार ग्रहके मध्यम तथा स्पष्ट स्थानोंमें अंतर पड़ जाता है। यह अंतर प्रतिदिन बढ़ता जाता है और जब ग्रह मन्दोच्चसे ९०° आगे (पूर्वकी ओर) बढ़ जाता है तब यह अंतर सबसे अधिक होता है। इसके बाद यह अंतर कम होने लगता है, परन्तु ग्रह मध्यम स्थानसे पीछे ही रहता है जब तक कि वह मन्दोच्चसे १८०° आगे नहीं बढ़ जाता। मन्दोच्चसे १८०° पर ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थान एक हो जाते हैं। इससे यह कल्पना करना स्वाभाविक है कि जब ग्रह मन्दोच्चसे १८०° से कम अंतर पर पूर्वकी ओर रहता है तब मन्दोच्च उसको मध्यम स्थानसे कुछ पच्छिमकी ओर जिधर वह है खींच लेता है। इसलिए मध्यम स्थानमें ऋण संस्कार करनेसे ग्रहका स्पष्ट स्थान निकलता है। जैसे जैसे ग्रह मन्दोच्चसे दूर होता जाता है तैसे तैसे स्पष्ट गति अधिक होती जाती है; इसलिए यह समझा गया कि आसन्नताके अनुसार मन्दोच्चका आकर्षण बढ़ता घटता है।

जिस समय ग्रह मन्दोच्चसे १८०° पर पहुँचता है उस समय उसकी गति अत्यन्त अधिक होती है। यही ग्रहका नीच स्थान है। इस विन्दुसे जब ग्रह आगे बढ़ता है तब उसकी दैनिक स्पष्ट गति मध्यम गतिसे अधिक रहती है; इसलिए उसको मध्यम गतिसे जहां पहुँचना चाहिये उससे भी आगे बढ़ जाता है और प्रति दिन आगे बढ़ता जाता है। इसलिए ग्रहके मध्यम स्थानमें धन संस्कार करनेसे स्पष्ट स्थान ज्ञात होता है। जब

ग्रह मन्दोच्चसे १८०° से आगे हो जाता है तब मन्दोच्च ग्रहसे १८०° के भीतर पूर्वकी ओर होता है। इसलिए यहां भी ग्रह मन्दोच्चकी ओर खिंचा हुआ जान पड़ता है। इसी कारण यह कल्पना निश्चय हो गयी कि ग्रहको मन्दोच्च अपनी ओर अर्थात् पूरबमें हुआ तो पूरबकी ओर और पच्छिममें हुआ तो पच्छिमकी ओर खींच लेता है।



चित्र १५

दिये हुए चित्र १५में उ म नी मी सूर्यका मार्ग है। प पृथ्वीका केन्द्र है जो सूर्य मार्गके केन्द्रपर नहीं है।

सुविधाके लिए किसी ग्रहको हम दो नामोंसे पुकारेंगे मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह, जिनका अंतर यह है—मध्यम ग्रह वह काल्पनिक ग्रह है जो मध्यम गतिसे राशि चक्र पर पृथ्वी-

की परिक्रमा करता हुआ माना गया है और स्पष्ट ग्रह वह ग्रह है जो पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता है। मध्यम ग्रहकी गति सदैव समान होती है; परन्तु स्पष्ट ग्रहकी गति घटती बढ़ती रहती है। प्रति दिनकी स्पष्ट गतियोंकी औसत निकालनेसे जो कुछ आता है वही मध्यम गति है। इसलिए यह स्पष्ट है कि स्पष्ट गति मध्यम गतिसे कभी कम होती है और कभी अधिक। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर रहता है तब उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मन्द होती है। इस जगह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं। परन्तु इसके आगे मध्यम ग्रह स्पष्ट ग्रहसे तीव्र होनेके कारण आगे बढ़ जाता है और स्पष्ट ग्रह पीछे रह जाता है। चित्रमें म, मा मध्यम सूर्यके स्थान और स, सा स्पष्ट सूर्यके स्थान हैं। इसलिए स या साका स्थान जाननेके लिए म या माके स्थानमेंसे घटानेकी आवश्यकता होती है। जब मध्यम सूर्य नी पर पहुंचता है अर्थात् मन्दोच्चसे १८०° आगे हो जाता है तब स्पष्ट सूर्य भी नी पर देख पड़ता है। इस जगह स्पष्ट सूर्यकी गति अत्यन्त अधिक होती है और वह मध्यम सूर्यसे बहुत तीव्र होता है इसलिए नी से आगे चलकर स्पष्ट सूर्य ही मध्यम सूर्यसे आगे बढ़ा रहता है। सि, सी स्पष्ट सूर्यके और मि, मि मध्यम सूर्यके स्थान है। यहां भी स्पष्ट सूर्य उच्चकी ओर हटा हुआ देख पड़ता है और मध्यम सूर्यसे आगे है; इसलिए इसका स्थान जाननेके लिए मध्यम सूर्यके स्थानमें जोड़नेकी आवश्यकता होती है।

सूर्य और चन्द्रमाके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंकी भिन्नताका कारण तो इतनी ही कल्पनासे समझाया जा सकता है परन्तु

मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पांच ग्रहोंके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें और भी भिन्नता होती है। इसलिए मन्दोच्चकी कल्पनाके साथ शीघ्रोच्चकी कल्पना भी की गयी। इसकी कल्पना कैसे हुई इसका अनुमान भास्कराचार्य जीके अनुसार †यों हैं:—

'जब शनि, गुरु और मंगल इन तीन ग्रहोंसे सूर्य आगे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रहसे आगे होते हैं अर्थात् सूर्यकी ओर बढ़े हुए देख पड़ते हैं। परन्तु जब इनसे सूर्य पीछे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रहसे पीछे रहते हैं अर्थात् सूर्यकी ओर पिछड़े हुए देख पड़ते हैं। इस लिए विद्वानोंने यह कल्पना की कि इन तीनों ग्रहोंके शीघ्रोच्च सूर्यके साथ रहते हैं। इसलिए यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि इन ग्रहोंको इनके शीघ्रोच्च भी जो सूर्यके समान या साथ रहते हैं खींचते हैं। यदि इस कल्पनाको और बढ़ा दिया जाता तो सूर्यको ही शीघ्रोच्च अथवा इन ग्रहोंका आकर्षक मान लेनेमें न्यूटनका सिद्धान्त ज्ञात हो जाता।

ऊपर मन्दोच्च और शीघ्रोच्च स्थानोंकी जो कल्पना की गयी है, उनकी ओर ग्रह कुछ खिंच जाते हैं यह जानकर यह अनुमान होता ही है कि यह स्थान कुछ विशेष शक्ति रखते हैं और अदृश्य भी हैं; इसलिए इनको विशेष शक्तिमान समझनेके कारण अदृश्य देवमूर्तियां कहा गया है जो अदृश्य वायुरूपी रस्सीसे ग्रहोंको अपनी ओर खींचे रहते हैं और इनको प्रवह नामक वायु भी सहायता पहुँचाती है।

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ २०

पातके बारेमें पहले लिखा जाचुका है। वहां चन्द्रमाके पातके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है वही अन्य ग्रहोंके पातोंके लिए भी लागू है। जब ग्रह उत्तर पातपर आता है तब क्रान्तिवृत्तपर देख पड़ता है। जब यहाँ से आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्तसे उत्तर हो जाता है और जब तक वह दक्खिन पात पर अर्थात् उत्तर पातसे १८०° आगे नहीं पहुँच जाता तब तक क्रान्तिवृत्तसे उत्तर ही रहता है। ऐसी दशामें उत्तर पात ग्रहसे पच्छिम रहता है। इसीलिए आगेके ७वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि ग्रहसे १८०° तक पच्छिममें स्थित पात (उत्तर पात) ग्रहको उत्तरकी ओर ढकेलता है और १८०° तक पूर्वमें स्थित पात उसको दक्खिनकी ओर ढकेलता है। यह भी अदृश्य है और क्रान्तिवृत्तसे ग्रह को उत्तर या दक्खिनकी ओर ढकेलते हुए जान पड़ता है। इसलिए इसमें भी दैवीशक्ति मानी गयी है। परन्तु यथार्थ कारण यह है कि सूय और ग्रहों की कक्षाएं एक ही तलमें नहीं हैं, जिससे प्रत्येक ग्रहकी कक्षा सूर्यकी कक्षाको दो विन्दुओं पर काटती हुई जान पड़ती है।

आगेके ६—११ श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि जिन ग्रहों का आकार बड़ा है वह भारी होनेके कारण अपने मन्दोच्चों, शीघ्रोच्चों इत्यादि के द्वारा कम खिचते हैं और जो हलके हैं वह बहुत खिचते हैं। यह अनुमान सूक्ष्म निरूपण का फल है और आकर्षण सिद्धान्तके बिलकुल अनुकूल है।

सूर्य सिद्धान्तके इन्हीं आठ श्लोकोंके आधार पर कुछ विद्वान यह कहते हैं कि आकर्षण सिद्धान्तके आविष्कारक न्यूटन नहीं कहे जा सकते वरन् हमारे ही प्राचीन ज्योतिषा-

चार्य हैं। निष्पक्ष भावसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि हमारे पूज्य आचार्योंने प्रत्यक्ष देखकर अपनी कल्पना और तर्क शक्तिसे जितने अनुमान किये थे वह उस समयकी दशाको देखते हुए परम सराहनीय हैं। उन्होंने यह अवश्य समझा था कि ग्रहोंकी गतिकी भिन्नताका कारण कोई शक्ति है, परन्तु यह नहीं ज्ञात हो सका था कि यह शक्ति किस प्रकार काम करती है, केवल पृथ्वी तथा ग्रहोंके शीघ्रोच्चों मन्दोच्चों और पातोंमें ही है अथवा जगतके सब पदार्थोंमें, और गणितकी किस क्रिया द्वारा उपपत्ति बतलायी जासकती है। आकर्षण सिद्धान्तके इस व्यापक नियमका आविष्कारक न्यूटन है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि ज्योतिषका अध्ययन अध्यापन भारतवर्षमें उसी प्रकार चला आता जैसा भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादिके समयमें था या जैसा यूरोपके फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंडमें कोपरनिकस, टाइकोब्राही, केपलर, न्यूटन इत्यादिके समयमें १६वीं, १७वीं शताब्दीमें था तो संभव है कि आकर्षण सिद्धान्त हमारे आचार्योंको पहले ही उस रूपमें प्रकट हो जाता जिस रूपमें न्यूटनने स्थिर किया है। हमारे यहां आकर्षण सम्बन्धी कल्पना कल्पना (hypothesis) के रूपमें ही रह गयी और न्यूटनने इसे सिद्धान्त (theory) के रूपमें परिणत कर दिया।

इस जगह ग्रहोंकी भिन्न गतियोंके कारण पर विचार करते हुए आकर्षण सम्बन्धी कल्पना की गई है इसलिए यह असंगत न होगा यदि ग्रहोंकी गति संबंधी कोपरनिकस, केपलर और न्यूटनके सिद्धान्त संक्षेपमें बतला दिये जायं।

कोपरनिकसकी कल्पना

१५८७ वि० (१५३० ई०) में कोपरनिकसने जो ग्रन्थ लिखा उसमें दिखलाया कि यदि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हुए मान लिये जांय तो ग्रहोंकी प्रत्यक्ष टेढ़ी, सीधी गतियां सहज ही समझायी जा सकती हैं इसीको कोपरनिकसकी रीति कहते हैं।

केपलरके नियम

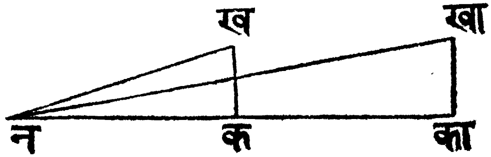
(१) जिस कक्षामें ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करता है वह दीर्घवृत्तके आकारकी होती है, जिसकी एक नाभि पर सूर्यका केन्द्र होता है।

(२) सूर्य और किसी ग्रहके केन्द्रोंको मिलानेवाली रेखा समान कालमें समान क्षेत्रफल बनाती है।

(३) दो ग्रहों के भगणकालोंके वर्गोंका परस्पर सम्बन्ध वही होता है जो सम्बन्ध सूर्यसे उनकी मध्यम दूरियोंके घनोंका होता है।

अब संक्षेपमें यह बतलाया जाता है कि केपलरने किस गणनासे यह नियम निकाले थे।

यह सबको अनुभव होगा कि जैसे जैसे कोई वस्तु दूर होती जाती है तैसे तैसे देख पड़ता है कि वह छोटी होती जाती है क्योंकि दूर हो जानेसे उस वस्तुसे जो कोण नेत्र पर बनता है वह छोटा होता जाता है। मान लो न नेत्रका स्थान है और क ख एक वस्तु है जो दूर होती जा रही है। जब वह क ख स्थान पर होगी तब न पर उससे क न ख कोण बनेगा और जब वह का खा स्थान पर पहुँच जायगी तब न पर उससे का न खा कोण बनेगा जो क न ख कोण से छोटा है। इसी कारण का खा स्थान पर वही वस्तु छोटी देख पड़ेगी; यद्यपि वस्तुतः उसके आकारमें कोई भेद नहीं पड़ा। (देखो चित्र १६)



चित्र १६

यदि सूर्य विम्ब प्रतिदिन वेध करके देखा जाय तो प्रतिदिन वह एक ही आकारका नहीं देख पड़ता। जब सूर्य धनु राशिके कोई ९.६° पर होता है (३ जनवरीको) तब उसका विम्ब सबसे बड़ा देख पड़ता है। इस दिन इसके विम्बका मान ३२′३५.२″ होता है। इसी दिन इसकी दैनिक स्पष्ट गति भी तीव्रतम अर्थात् ६१′६.६″ होती है। इसके बाद शनैः शनैः सूर्य-विम्ब छोटा होता जाता है और गति मंद होती जाती है। जब सूर्य मिथुन राशिके कोई १६° पर होता है अर्थात् पहले स्थानसे १८०° बढ़ जाता है तब विम्ब सबसे छोटा अर्थात् ३१′३०.७″ का होता है और दैनिक स्पष्ट गति मन्दतम अर्थात् ५७′११.५″ हो जाती है। विम्बके छोटा बड़ा देख पड़नेका कारण यह तो नहीं है कि सूर्यका आकार ही वास्तवमें छोटा बड़ा हो जाता है वरन् यह है कि सूर्यकी दूरी ही घटती बढ़ती रहती है। यह मत हमारे सिद्धान्तों † का भी है।

यदि सूर्य विम्बके अर्द्धव्यासका मान स हो और पृथ्वीसे सूर्यकी निकटतम दूरी क हो तो सूर्यके अर्द्धविम्बसे जो कोण पृथ्वीपर बनेगा उसकी ज्या=स/क

† सूर्यसिद्धान्त चन्द्र ग्रहणाधिकार श्लोक १–३

परन्तु इस दिन सूर्यका बिम्ब ३२′३५·२″ होताहै, इसलिए अर्द्धविम्ब १६′१७·६″ होगा,

इसलिए ज्या $१६'१७·६'' = \frac{स}{क}$

परन्तु जब कोण बहुत छोटा होता है तब कोण और कोणकी ज्या के मानोंमें कोई अन्तर नहीं होता जब कि कोणका मान (Circular measure) में हो या ज्या का मान भारतीय* रीतिसे लिखा जाता हो।

$$\therefore \frac{स}{क} = १६'१७·६'' \text{ या } स = क \times १६'१७·६''$$

इसी प्रकार जब सूर्यका बिम्ब ३१′३०·″७ अथवा बिम्बार्द्ध १५′४५·४″ होता है तब यदि सूर्यकी अत्यन्त अधिक दूरी 'का' हो तो।

$$\frac{स}{का} = १५'४५·४'' \text{ या } स = का \times १५'४५·४''$$

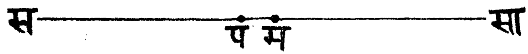
$$\therefore क \times १६'१७·६'' = का \times १५'४५·४''$$

$$\text{अथवा} \frac{क}{का} = \frac{१५'४५·४''}{१६'१७·६''} \cdots\cdots\cdots (१)$$

जिस स्थान पर सूर्य सबसे बड़ा देख पड़ता है उससे जब १८०° आगे जाता है तब सबसे छोटा देख पड़ता है। इसलिए ऊपर निकाली हुई क, का दूरियां एक रेखामें होती हैं। इसलिए यदि दिये हुए चित्र १७में प पृथ्वीका स्थान हो तो स और सा

* मध्यमाधिकारके ६०–६१ श्लोकोंका विज्ञान भाष्य देखो।

सूर्यके स्थान होंगे जब कि सूर्य क्रमानुसार सबसे बड़ा और सबसे छोटा देख पड़ता है अर्थात् जब प स = क और प सा=का



चित्र १७

समीकरण (१) का प्रत्येक पक्ष यदि १ मेंसे घटा दिया जाय तो,

$$१-\frac{\text{क}}{\text{का}} = १ - \frac{१५'४५\cdot४''}{१६'१७\cdot६''}$$

$$\text{वा } \frac{\text{का}-\text{क}}{\text{का}} = \frac{३२\cdot२''}{१६'१७\cdot''} \;\ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

और यदि समीकरण (१) के प्रत्येक पक्षमें १ जोड़ दिया जाय तो,

$$\frac{\text{का}+\text{क}}{\text{का}} = \frac{३२'३''}{१६'१७\cdot६''} \;\ldots\ldots\ldots\ldots(३)$$

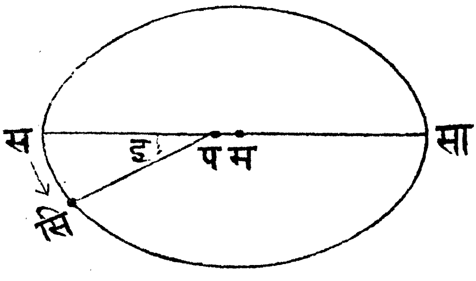
अब यदि समीकरण (२) को समीकरण (३) के समपक्षोंसे भाग देदें तो,

$$\frac{\text{का}-\text{क}}{\text{का}+\text{क}} = \frac{३२\cdot२''}{३२'३''} = \frac{३२\cdot२''}{१९२३''} = \frac{१}{६०} \text{ के लगभग}$$

इस सम्बन्धसे प्रकट होता है कि प उस दीर्घवृत्तकी नाभि है जिसका दीर्घ अक्ष स सा, केन्द्र स सा का मध्यबिन्दु म और च्युति (eccentricity) $\frac{१}{६०}$ है; क्योंकि किसी दीर्घवृत्तके केन्द्र से उसकी नाभि तक जो दूरी होती है उसको दीर्घ अक्षके

आधेसे भाग देने पर च्युतिका मान निकल आता* है। यहां का–क केन्द्रसे नाभिकी दूरीका दूना और का + क दीर्घ अक्ष की लम्बाई है।

इस प्रकार यदि स सा दूरी को दीर्घ अक्ष, प को उसकी एक नाभि तथा $\frac{१}{६०}$ को च्युति मानकर दीर्घवृत्त खींचा जाय तो किसी कर्ण (Radius vector) प सि की दूरी जो स प रेखाके साथ इ कोण बनाता है इस गुर† से जाना जा सकता है—



चित्र १८

$$\text{प सि} = \frac{\text{म स}(१ - \text{च}^{२})}{१ + \text{च} \times \text{कोज्या इ}}$$

जब कि च = $\frac{१}{६०}$ = ·०१६७ और मस सूर्य और पृथ्वीका मध्यम अंतर स्थिर है।

* आशुतोष मुखोपाध्यायकी Geometry of Conics, Chapter, II. proposition III.

† Loney's Elements of Coordinate Geometry pp. 307 and 229 (1910 edition.)

इसलिए $\frac{१}{पसि}$ का मान १ + च × कोज्या इ के माना-नुसार बदलता है जिसको संक्षेपमें यों लिखते हैं:—

$$\frac{१}{क} \propto १ + च \text{ कोज्या } इ$$

जहां क सूर्यका पृथ्वीसे अंतर (कर्ण या Radius vector) है। यह सम्बन्ध वेधसे ठीक उतरता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सूर्य दीर्घवृत्तमें चक्कर लगाता है और पृथ्वी इस दीर्घवृत्तकी नाभिपर है। इसकी जगह यह कहना अधिक शुद्ध है कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती हुई दीर्घवृत्तके आकारकी कक्षा बनाती है और सूर्य केन्द्र इस कक्षाकी नाभिपर रहता है।

इसका प्रमाण विज्ञान भाग १२ पृष्ठ ७५-७६, १८८-१८६, २०३ से २०७ में दिया गया है। यही केपलरका पहला नियम है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यकी तीव्रतम गति ६१′ १०″ और इसी समय इसका महत्तम बिम्ब ३२′ ३५″ होता है तथा मंदतम गति ५७′ १२″ और इसी समय न्यूनतम बिम्ब ३१′ ३१″ होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि तीव्रतम और मन्दतम गतियोंमें जो अंतर होता है वह मध्यम गतिका $\frac{३'४८''}{५६'११''}$ अथवा स्वल्पान्तरसे $\frac{१}{१५}$ के समान है और स्पष्ट बिम्बके महत्तम और न्यूनतम आकारोंमें जो अंतर होता है वह मध्यम बिम्बका $\frac{१'४''}{३२'३''}$ अथवा स्वल्पान्तरसे $\frac{१}{३०}$ के समान है। इसलिए स्पष्ट बिम्बके परिवर्तनका सम्बन्ध १ : १ + $\frac{१}{३०}$ और स्पष्ट गतिके परिवर्तनका सम्बन्ध १ : १ + $\frac{१}{१५}$ है।

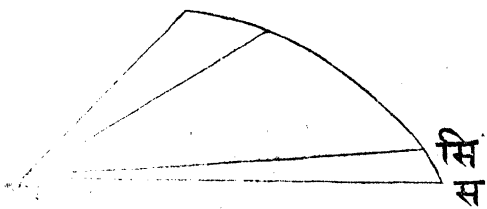
परन्तु $१ + \frac{१}{१५} = (१ + \frac{१}{३०})^२$ स्वल्पान्तर से

$\therefore$ गतिके परिवर्तनका सम्बन्ध $१ : (१ + \frac{१}{३०})^२$ है।

चाहे जिस समय देखा जाय यही पाया जायगा कि किसी ग्रहका कोणीय वेग स्पष्ट व्यासके वर्गके अनुसार बदलता है। परन्तु सूर्यका स्पष्ट व्यास सूर्यकी दूरीके प्रतिलोमके अनुसार बदलता है, जैसा कि पृष्ठ १२८, १२६ में बतलाया जा चुका है। इस लिए कोणीयवेग स्पष्ट व्यासके वर्गके अनुसार अथवा कर्णके वर्गके प्रतिलोमके अनुसार बदलता है। संक्षेपमें

$$\text{कोणीयवेग} \propto (\text{स्पष्ट व्यास})^२$$

$$\text{या} \qquad \propto \left(\frac{१}{\text{कर्ण}}\right)^२$$



चित्र १६

चित्र १६में प पृथ्वीका स्थान है, स सूर्यका स्थान है और स प सि वह कोण है जो सूर्य १ दिनमें चलता है। इसी प्रकार सा सूर्यका दूसरा स्थान है और सा प सी वह कोण है जो सूर्य १ दिनमें चलता है। स, सि या सा, सी परस्पर बहुत पास हैं इस लिए पस और पसि के मानोंमें इतना कम अंतर है कि दोनों समान समझे जा सकते हैं। इसी तरह प सा और प सी समान

समझे जा सकते हैं। ऐसी दशामें पससि त्रिभुज उस वृत्तका एक खंड समझा जा सकता है, जिसका केन्द्र प है और त्रिज्या पस या पसि है। इस लिए

$$\text{इस वृत्त खंडका क्षेत्रफल} = \angle \text{सपसि} \times \frac{(\text{पस})^२}{२}$$

$$= \text{स स्थानका कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पस})^२}{२}$$

$$\text{और सापसी का क्षेत्रफल} = \angle \text{सापसी} \times \frac{(\text{पसा})^२}{२}$$

$$= \text{सा स्थानका कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पसा})^२}{२}$$

परन्तु ऊपर बतलाया जा चुका है कि

$\text{कोणीयवेग} \propto \frac{१}{(\text{कर्ण})^२} = \text{अ} \times \frac{१}{(\text{कर्ण})^२}$ जब कि अ कोई अचल राशि है।

$$\therefore \frac{\text{सपसि वृत्त खंडका क्षेत्रफल}}{\text{सापसी वृत्त खंडका क्षेत्रफल}}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पस})^२}{२}}{\text{सा का कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पसा})^२}{२}}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीयवेग} \times (\text{पस})^२}{\text{सा का कोणीयवेग} \times (\text{पसा})^२}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीयवेग} \times (\text{स का कर्ण})^२}{\text{सा का कोणीयवेग} \times (\text{सा का कर्ण})^२}$$

$$= \frac{\text{अ} \times \dfrac{१}{(\text{स का कर्ण})^{२}} \times (\text{स का कर्ण})^{२}}{\text{अ} \times \dfrac{१}{(\text{सा का कर्ण})^{२}} \times (\text{सा का कर्ण})^{२}}$$

$$= १$$

इससे सिद्ध हुआ कि सपास और सापसी दोनों वृत्त खंड समान हैं। यही केपलरका दूसरा नियम है।

केपलरके तीसरे नियम से सूर्यसे सब ग्रहोंकी दूरियोंका सम्बन्ध जाना जा सकता है। जैसे शुक्र और पृथ्वीके भगण काल क्रमशः २२४·७ दिन और ३६५·३ दिन हैं, इसलिए इनके भगणकालोंके वर्गों का सम्बन्ध $= \frac{(३६५·३)^{२}}{(२२४·७)^{२}} = २·६४५$

परन्तु केपलरके तीसरे नियमके अनुसार

$$\frac{(\text{सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी})^{३}}{(\text{सूर्यसे शुक्रकी दूरी})^{३}} = \frac{(३६५·३)^{२}}{(२२४·७)^{२}} = २·६४५$$

यदि सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी १ मान ली जाय तो

$$\text{सूर्यसे शुक्रकी दूरी} = \left(\frac{१}{२·६४५}\right)^{\frac{१}{३}}$$

$$= (·३७८)^{\frac{१}{३}}$$

$$= \left(\frac{३७८}{१०००}\right)^{\frac{१}{३}} = \frac{१}{१०}(३७८)^{\frac{१}{३}}$$

$$= \frac{१}{१०} \times (७^{३} + ३५)^{\frac{१}{३}} = \frac{१}{१०} \times ७\left(१ + \frac{५}{४९}\right)^{\frac{१}{३}}$$

$$= \frac{७}{१०}(१ + ·१०२)^{\frac{१}{३}}$$

$$=\frac{७}{१०}\left\{१+\frac{१}{३}\times(\cdot१०२)+\frac{१}{\underline{|२}}\times\frac{१}{३}\left(\frac{१}{३}-१\right)(\cdot१०२)^{२}\right.$$
$$\left.+\frac{१}{\underline{|३}}\times\frac{१}{३}\times\left(\frac{१}{३}-१\right)\left(\frac{१}{३}-२\right)(\cdot१०२)^{३}+\cdots\right\}$$
$$=\frac{७}{१०}(१+\cdot०३४-\cdot००११६+\cdot००००६६$$

—एक वहुत सूक्ष्म संख्या)

$$=\frac{७}{१०}\times१\cdot०३२९=\frac{७\cdot२३०३}{१०}=\cdot७२३$$

केपलरने यह तीनों नियम ग्रहोंके सूक्ष्म निरूपणोंसे सं० १६६४–१६७४ वि० (१६०८-१६१८ ई०) में बनाये थे। उसको इस बातका पता नहीं था कि किन शक्तियोंसे ग्रहोंमें इन नियमोंके अनुसार गतियां होती हैं। कोई ७५ वर्ष तक इन नियमोंकी उपपत्ति नहीं बतलायी जा सकी। इसके पश्चात् न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण ही इन सबका कारण है। न्यूटनने जिन तीन नियमोंके आधार पर यह सिद्ध किया है वह गतिके नियम कहलाते हैं, उसीके नामसे प्रसिद्ध हैं और यह हैं:—

पहला नियम—यदि कोई बाहरी शक्ति न लगायी जाय तो प्रत्येक वस्तु या तो अपनी अचल दशामें, या सीधी रेखामें समान गतिसे चलती हुई दशा में, रहना चाहती है।

दूसरा नियम—गतिका परिवर्तन लगायी जाने वाली शक्तिके मानानुसार होता है और यह परिवर्तन उस सीधी रेखाकी दिशामें होता है जिस दिशामें शक्ति लगायी जा रही हो।

तीसरा नियम—प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है, जो परिमाणमें सदैव समान, परन्तु दिशामें विरुद्ध होती है अर्थात् प्रत्येक क्रियाके समान परन्तु उसके विरुद्ध दिशामें प्रतिक्रिया होती है।

यह नियम स्वयम् सिद्ध हैं। विशेष जानकारी के लिए गतिविज्ञान (Dynamics) के किसी ग्रन्थको पढ़ना चाहिये।

केपलरके पहले और दूसरे नियमोंसे न्यूटनने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक ग्रह एक ऐसी शक्तिके कारण चल रहा है, जिसकी दिशा सूर्यकी ओर है और जिसका परिमाण सूर्यसे ग्रहकी दूरीके वर्गके विलोम मानानुसार होता है। केपलरके तीसरे नियमसे न्यूटनने यह सिद्ध किया कि एक ग्रहकी गतिकी वृद्धि दूसरे ग्रहकी गतिकी वृद्धिसे क्या सम्बन्ध रखती है और इसीसे उसने विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त निकाला, जो यह है:—

द्रव्य (matter) का प्रत्येक कण दूसरे कणको उस शक्तिसे आकर्षित करता है, जो उन कणोंकी मात्राओंके गुणनफलके अनुसार तथा उन दोनोंके बीचकी दूरीके वर्गके विलोम मानानुसार बदलती है।

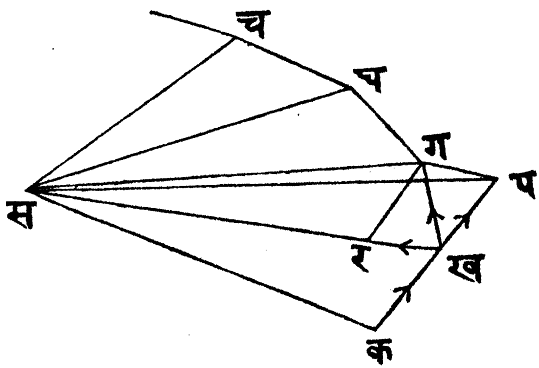
अब यह सिद्ध करना है कि यदि किसी स्थिर विन्दुसे किसी गतिमान कण तक रेखा खींची जाय और वह समान कालमें समान क्षेत्रफल बनावे तो वह कण जिस शक्तिसे चल रहा है उसकी दिशा उसी स्थिर विन्दुकी ओर है। यह बात चलनकलन (Differential Calculus) तथा गतिविज्ञानके आधार पर संक्षेपमें सिद्ध हो सकती है, जो पीछे दी जायगी। इस जगह साधारण गणितके ही आधार† पर कुछ विस्तारके साथ सिद्ध की जाती है।

---

† यह युक्ति Heroes of Science: Astronomers के पृष्ठ १७३–१७५ के आधार पर है।

मान लो कि 'स' एक स्थिर विन्दु है और किसी वस्तुका कोई कण स के चारों ओर घूमता हुआ क ख ग घ च बहुभुज क्षेत्र बना रहा है और क ख, ख ग, ग घ, या घ च भुज समान कालमें अथवा १ पलमें चलता है। यह भी मान लो कि इन भुजोंके मान भिन्न भिन्न हैं और जब तक कण किसी एक भुज-पर रहता है तब तक उसकी गति एकरूप (uniform) रहती है। स क ख, स ख ग, स ग घ, स घ च त्रिभुजोंके क्षेत्रफल भी समान समझ लेने चाहियें।

अब यह प्रत्यक्ष है कि समान कालमें वह कण स के चारों ओर घूमता हुआ समान क्षेत्रफल बनाता है। गतिके पहले नियमके अनुसार जब तक कण बहुभुज क्षेत्रकी कोई सीधी भुज बना रहा है तब तक उसपर कोई शक्ति काम नहीं कर रही है और वह अपनी प्राप्त शक्तिसे सीधी रेखामें जा रहा है, परन्तु एक भुजसे दूसरी भुजपर जैसे ही मुड़ने लगता है



चित्र—२०

वैसे ही क्षण भर के लिए कुछ न कुछ शक्ति उसपर अवश्य लगनी चाहिये, जिससे वह अपनी पहलेकी सीधी चालको बदल कर दूसरी सीधी चालपर आ जाय।

जिस समय कण ख पर है उस समयकी दशा पर ध्यान दो। यदि इस समय कोई शक्ति न लगे तो दूसरे पलमें वह क ख की ही सीधमें ख प राह पर जायगा और क ख प रेखा सीधी रेखा होगी तथा ख प और क ख समान होंगे क्योंकि गतिमें कोई अन्तर नहीं होगा। प को ग और स से मिला दो। स ख प त्रिभुजका आधार ख प है जो क ख के समान है और क ख की ही सीधी रेखामें है, इसलिए रेखा-गणितके अनुसार दोनों त्रिभुज स क ख और स ख प के क्षेत्रफल समान हैं। परन्तु यह आरम्भमें ही मान लिया गया है कि स क ख, स ख ग इत्यादि त्रिभुजोंके क्षेत्रफल समान हैं। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि स ख प और स ख ग त्रिभुज भी परस्पर समान हैं जो एक ही आधार स ख पर हैं इसलिए रेखा, गणितके अनुसार यह दोनों त्रिभुज स ख और ग प समानान्तर रेखाओंके बीचमें हैं अर्थात् ग प रेखा स ख के समानान्तर है। ख प के समानान्तर ग र रेखा खींचो जो स ख रेखासे र विन्दुपर मिले। तब ख प ग र समानान्तर चतुर्भुज क्षेत्र होगा। जिस समय कण ख पर था उस समय यदि कोई शक्ति न लगी होती तो वह विन्दु प पर पहुँचता; परन्तु शक्ति लगनेसे वह ग पर पहुंचा, इसलिए प्रकट है कि ख पर कणकी प्रथम गति ख प थी और शक्ति लगनेके कारण वह ख ग में बदल गयी। इसलिए गति विज्ञानके 'गतिके समानान्तर चतुर्भुज-नियम' (parallelogram of velocities) के अनुसार लगी हुई शक्तिके कारण कणमें

ख प की गतिके साथ ख र गतिका संयोग हो गया, अर्थात् ख विन्दु पर कणमें जो गति ख प दिशाकी ओर थी उसमें ख र की दिशामें ख र के समान ही दूसरी गति मिल गयी, जिससे वह कण ग विन्दु पर पहुँचा। इसलिए इस मिलने वाली शक्तिके कारण वह वस्तु स की ओर मुड़ी। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि बहुभुज क्षेत्रके कोण विन्दुओं ग, घ, च पर भी जो शक्ति लगती है वह स की दिशामें ही लगती है।

अब कल्पना करो कि यह बहुभुज क्षेत्र करोड़ों अत्यन्त छोटी छोटी भुजोंसे बना है और स के चारों ओर घूमने वाला कण प्रत्येक छोटी छोटी भुजको पलके करोड़वें भागमें चल कर पूरा करता है तो यह प्रकट है कि उस कण पर स की दिशामें करोड़ों बार शक्ति लगेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि कणने प्रायः वक्र (curved) मार्गको स की ओर ले जानेवाली एक अनवच्छिन्न (continuous) शक्तिके कारण पूरा किया। यदि कल्पनाको और बढ़ा दिया जाय और बहुभुज क्षेत्रकी भुज इतनी छोटी हो जांय कि उनकी कोई सीमा ही न बंध सके और उनकी संख्या असंख्य हो तब भी यही तर्क लागू हो सकता है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि यदि कोई कण किसी स्थिर विन्दुके चारों ओर ऐसे मार्ग पर चले कि उससे समान कालमें समान क्षेत्रफल बने तो इस कणपर जो शक्ति निरन्तर लगी हुई है वह उस स्थिर विन्दुकी दिशामें है अर्थात् वह स्थिर विन्दु उस कणको निरन्तर आकर्षित किये हुए है।

यदि स को सूर्यका केन्द्र मान लिया जाय और क, ख, ग इत्यादि को किसी ग्रहके स्थान, तो केपलरके दूसरे नियमसे सिद्ध होता है कि सूर्यके चारों ओर घूमनेवाले ग्रहोंको उनकी

थांभनेके लिए जो शक्ति काम कर रही है वह सूर्यकी ही आकर्षण शक्ति है। इसी प्रकार ग्रह भी अपने उपग्रहोंको खींच रहे हैं।

दक्षिणोत्तरतोऽप्येवं पातो राहुः स्वरंहसा।
विक्षिपत्येष विक्षेपं चन्द्रादीनामपक्रमात्॥ ६॥
उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्द्धगः।
ग्रहं प्राग्भगणार्द्धस्थो याम्यायामपकर्षति॥ ७॥

अनुवाद—(६) चन्द्रमा आदि ग्रहोंको इनके पात या राहु क्रान्तिवृत्तसे विक्षेपके समान उत्तर या दक्षिण भी अपने वेगसे हटा देते हैं। (७) जब पात ग्रहसे पच्छिम परन्तु ६ राशि या १८०° से कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्तसे उत्तर हटा देता है और जब वह ग्रहसे पूरब परन्तु ६ राशिसे कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण हटा देता है।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकोंका साधारण अर्थ यह है कि ग्रह और उसके पातके स्थानोंको देखकर समझना चाहिये कि ग्रह ठीक क्रान्तिवृत्त पर है अथवा उससे कुछ उत्तर या दक्खिन हटा हुआ है। यदि ग्रह और पात दोनों एक ही जगह हों तो समझना चाहिये कि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर है। यदि ग्रह पातसे आगे अर्थात् पूरब हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्तसे उत्तर हटा हुआ होगा और यदि ग्रह पातसे पीछे अर्थात् पच्छिम हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण हटा हुआ होगा। इसका कारण राहुका आकर्षण या अपकर्षण नहीं है वरन् यह है कि

किसी ग्रहकी कक्षा क्रान्तिवृत्तके समतलमें नहीं है इसलिए ग्रह सदैव क्रान्तिवृत्तपर नहीं रहता। ग्रहकी कक्षा और क्रान्तिवृत्त जिन दो विन्दुओं पर मिलते हुए जान पड़ते हैं उन्हींको पात कहते हैं जब ग्रह अपनी कक्षामें इन दो विन्दुओं पर रहता है तब क्रान्तिवृत्त पर देख पड़ता है अन्यथा क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्खिन ऊपर कहे हुए के अनुसार होता है। क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्खिन ग्रहकी जो दूरी होती है उसीको विक्षेप कहते हैं। यह उस वृत्तपर होता है जो क्रान्तिवृत्तसे समकोण बनाता हुआ कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) से होकर जाता है।

बुधभार्गवयोः शीघ्रात्तद्वत्पातो यदा स्थितः।
तच्छीघ्राकर्षणात्तौ तु विक्षेप्येते यथोक्तवत् ॥ ८ ॥

अनुवाद—(८) बुध और शुक्रके पात जब इनके शीघ्रोच्चोंसे उपर्युक्त (६, ७ श्लोकोंमें लिखे हुए) नियमके अनुसार होते हैं तब शीघ्रोच्चोंमें आकर्षण करके ग्रहोंको क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्खिन उसी प्रकार हटा देते हैं।

विज्ञान भाष्य—६, ७ श्लोकोंमें जो नियम बतलाया गया है वह केवल सूर्य, चन्द्रमा, मंगल गुरु और शनिके लिए लागू है। बुध और शुक्र दो ग्रहोंके स्थान जाननेके लिए यह देखना चाहिये कि इनके शीघ्रोच्च पातोंसे किधर और कितनी दूर है यदि शीघ्रोच्च पातसे पूरब परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्तसे उत्तर होगा और पच्छिम परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण होगा।

महत्त्वान्मण्डलस्यार्कः स्वल्पमेवापकृष्यते।
मण्डलाल्पतया चन्द्रस्ततो बह्वपकृष्यते ॥ ९ ॥

भौमादयोऽल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसंज्ञकैः ।
दैवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः ॥ १० ॥
अतो धनर्णं सुमहत्तेषां गतिवशाद्भवेत् ।
आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः॥११

अनुवाद—(९) सूर्यका मण्डल बहुत बड़ा है इसलिए वह अपने उच्च द्वारा बहुत कम खिंचता है। चन्द्रमाका मण्डल छोटा है इसलिए यह बहुत खिंचता है। (१०) मंगल आदि ग्रहोंके मण्डल बहुत छोटे हैं इसलिए इनके शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवता इनको बहुत दूरतक बड़े वेगसे खींच ले जाते हैं। (११) इसलिए इनमें धन और ऋण संस्कार इनकी गतिके कारण बहुत करना पड़ता है। इस प्रकार यह ग्रह अपने शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवताओंसे खिंचे हुए और प्रवह वायुका धक्का खाते हुए आकाशमें चलते हैं।

विज्ञान भाष्य—हमारे आचार्यों ने यह देखा कि सूर्यकी अपेक्षा चन्द्रमा अपने मध्यम स्थानसे पूरब या पच्छिम अधिक रहता है और मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इत्यादि तो अपने मध्यम स्थानसे कहीं अधिक पूरब या पच्छिम देख पड़ते हैं इसलिए उन्होंने इन ग्रहोंके मण्डलोंको चन्द्रमासे भी छोटा समझा जैसा कि यहप्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, और यह निश्चय किया कि इनके मण्डल बहुत छोटे हैं इसी लिए इनमें शीघ्रोच्चों और मन्दोच्चोंके आकर्षणका प्रभाव बहुत पड़ता है।

परन्तु ग्रहोंके मध्यम स्थानसे कुछ पूरब या पच्छिम देख पड़नेके यथार्थ कारण हैं ग्रहोंकी कक्षाओंके आकार। ग्रहोंकी

ग्रहों के नाम	विषुवद्वृत्तीय × अर्द्धव्यास			मात्रा (mass) जब कि पृथ्वी का १ माना जाय	मध्यम घनत्व जब पानी का १ माना जाय	गुरुत्वाकर्षण पृष्ठपर जब कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण १ माना जाय
	कोणात्मक†	मीलोंमें	जब कि पृथ्वी का १ माना जाय			
सूर्य	१६′१″·१८	४,३२,८६०	१०६·२	३,२६,३६०	१·४०	२७·६१
बुध	३″·३४	१,५०४	०·३८०	०·०५५?	५·५६?	०·३८
शुक्र	८″·४०	३,७८३	०·९५५	०·८०७	५·१४	०·८६
पृथ्वी	८″·८०	३,९६३	१·०००	१·०००	५·५६	१·००
मंगल	४″·६८	२,१०८	०·५३२	०·१०६	३·९२	०·३८
गुरु	१′३७″·३६	४३,८५०	११·०६	३१४·५०	१·३७	२·५७
शनि	१′२४″·७५	३८,१७०	९·६३	९४·०७	०·६४	१·०१
वरुण* uranus	३४″·२८	१५,४४०	३·९०	१४·४०	१·३५	०·७५
इन्द्र * Neptune	३६″·५६	१६·४७०	४·१५	१६·७२	१·२९	०·९७

† कोणात्मक अर्द्ध व्यास ग्रहके विम्बार्धका कोणात्मक मान है जब कि द्रष्टा ग्रह से उतनी दूरी पर हो जो सूर्य से पृथ्वी की मध्यम दूरी है। * यह नामकरण केतकरकी ज्योतिर्गणित के अनुसार है। ? जिस संख्या के सामने यह चिन्ह है उसका ठीक ठीक निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। × ग्रहोंके आकार भी पूर्ण गोल नहीं है उनमें भी ध्रुवों पर कुछ चपटा है जैसी हमारी पृथ्वी है इसलिए उनमें भी विषुवद्वृत्त होते हैं।

कक्षाओंके आकार। ग्रहोंकी कक्षाएं दीर्घवृत्तके आकारकी हैं जिनकी च्युति (eccentricity) के परिमाण एकसे नहीं हैं; इसीलिए मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें मुख्यतः अन्तर पड़ता है, ग्रहोंके मण्डलोंके आकारके कारण नहीं। इनके आकारोंका ज्ञान पिछले पृष्ठकी सारिणीसे स्पष्ट होगा जो राबर्ट बालकी स्फेरिकल एस्ट्रानोमी पृष्ठ ४६२ से ली गयी है। चन्द्रमाका अर्द्धव्यास १०७६ मील है।

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥१२॥
तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
ऋज्वीति पञ्चधाज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥१३॥

अनुवाद—(१२) वक्र, अनुवक्र, कुटिल, मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्रतर और शीघ्र नामक आठ प्रकारकी गतियां ग्रहोंमें होती हैं। (१३) इनमेंसे अति शीघ्र, शीघ्र, मन्द, मन्दतर और सम गतियां सीधी होती हैं अर्थात् जब ग्रहमें यह गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्रमें पच्छिमसे पूरबको जाता हुआ देख पड़ता है और वक्रके साथ जो अनुवक्र और कुटिल गतियां हैं वह वक्र गति कहलाती हैं क्योंकि जब ग्रहमें ऐसी गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्रमें पूरबसे पच्छिमको उलटा जाता हुआ देख पड़ता है। जब ग्रहमें सीधी गतियां होती हैं तब वह मार्गी और जब वक्र गतियां होती हैं तब वक्री कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—यह भिन्न भिन्न गतियां ग्रहमें कैसे हो जाती हैं इसका कारण हमारे सिद्धान्तोंमें कहीं नहीं बतलाया गया है; क्योंकि जब तक पृथ्वी अचल समझी जायगी तब तक इसका

कारण अच्छी तरह नहीं समझाया जा सकता। हां यदि पृथ्वीको भी अन्य ग्रहोंकी भांति सूर्यकी परिक्रमा करती हुई मान लिया जाय जो कई प्रयोगोंसे सिद्ध भी हो गया है तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि किसी ग्रहमें यह आठ गतियां कैसे देख पड़ती हैं; यद्यपि यथार्थमें ग्रह निरंतर पच्छिमसे पूरबको जाता हुआ सूर्यकी परिक्रमा कर रहा है। इस सम्बन्धमें मैंने विज्ञान भाग १३ पृष्ठ २६४-२६६ पर जो लिखा था वही यहां उद्धृत करता हूं।

यदि आप मैदानमें एक झंडा गाड़ दें और झंडेसे ४,७,१०,१५,५२,९५,१९२, और ३०० फर्लांगके अन्तर पर एक एक घेरा दो तीन फुट ऊँचा करवा दें; प्रत्येक घेरेके पास एक एक घुड़सवार नियुक्त कर दें; आप स्वयं झंडेके पास खड़े हो जायँ और घुड़सवारोंको आज्ञा दे दें कि प्रत्येक घुड़सवार अपने अपने घेरेके पास इस तरह खड़ा हो जाय कि सब एक ही सीध में दिखाई पड़ें और तदनन्तर सब सवार एक साथ ही घेरेका इस वेगसे चक्कर लगाने लगें कि सबसे पासवाला एक चक्कर ८८ सेकंडमें, इससे कुछ दूरवाला २२५ सेकंडमें, तीसरा ३६५ सेकंडमें, चौथा ६८७ सेकंडमें, पांचवां ४३३२ सेकंडमें, छठा १०७५९ सेकंडमें, सातवां ५१० मिनटमें और आठवां १००३ मिनटमें, चक्कर पूरा करने लगे, तो जिस प्रकार यह घुड़सवार सेकंडोंमें आपकी परिक्रमा करते हुये जान पड़ेंगे वैसेही सौर-मंडलमें ग्रह दिनोंमें सूर्यकी परिक्रमा करते हुये दिखाई पड़ते हैं। अंतर केवल इतना होगा कि सवार एक धरातलमें चक्कर लगावेंगे पर ग्रह कुछ उत्तर दक्खिन हट भी जाते हैं।

यदि आप झंडेके पास न खड़े होकर स्वयम् झंडेसे तीसरे घोड़ेपर सवार होकर पहले कहे हुये वेगसे चक्कर लगाने लगें तो आपको झंडे और घुड़सवार जैसे दिखाई पड़ेंगे वही दृश्य हम पृथ्वी निवासियोंको ग्रहोंके सूर्यका चक्कर लगानेमें दिखाई पड़ता है। कभी यह जान पड़ता है कि ग्रह आगे बढ़ते जा रहे हैं और कभी जान पड़ता है कि कोई पीछे हो रहे हैं और कभी ठहरे हुये भी दिखाई पड़ते हैं।

ऊपर सवारोंके उदाहरणसे आपको विदित हो गया होगा कि यदि सवार तीसरे घोड़ेपर बैठ कर झंडेकी परिक्रमा करे तो बाहर और भीतर दोनो ओर वाले घोड़ोंकी गतियोंमें वही 'वक्रानुवक्रा कुटिला' तथा 'शीघ्रा शीघ्रतरा' गतियोंकी विलक्षणता दिखाई देती है, जैसी पृथ्वी रूपी घोड़े पर सवार पृथ्वी निवासियोंको अन्य ग्रहोंकी गतियोंमें विलक्षणता दिखाई देती है। समझानेके लिये हमको दो उदाहरण लेने होंगे एक ऐसे ग्रहका जो पृथ्वी और सूर्यके बीचमें है और दूसरा ऐसे ग्रहका जो सूर्य और पृथ्वीके बाहर है। पहलेके लिये बुध और दूसरेके लिये मंगल २१ तथा २३ चित्रोंमें लिये गये हैं।

चित्र २१ में सबसे बड़ा वृत्त राशि-चक्र है, जिसपर घूमता हुआ सूर्य एक वर्षमें एक चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है। जहां वसंत-विषुव लिखा हुआ है वहाँ जब सूर्य दिखलाई पड़ता है तब वसंत ऋतुका आरम्भ होता है और इस दिन दिन रात समान होते हैं। यहींसे आरम्भ करके राशिचक्र बारह भागोंमें बांटा गया है। इसलिये जिस जिस भागपर मेष वृष इत्यादि लिखा हुआ है उसे सायन मेष, सायन वृष समझना चाहिये। सायन मेषका आरम्भ २१,२२

मार्चको होता है। सायन मेषसे २३ और आगे निरयन मेष मासका आरम्भ होता है यह १३,१४ अप्रेलको पड़ता है। सूर्य राशिचक्रमें मेषसे वृष, वृषसे मिथुन इत्यादि राशियोंमें जाता हुआ जानपड़ता है।

राशिचक्रसे छोटा वृत्त भूकक्षा है। इसीपर पृथ्वी चलती हुई 'स' सूर्यकी, जो केन्द्रमें है, एक वर्षमें एक परिक्रमा कर लेती है। सूर्य निवासियोंको पृथ्वी भी मेषसे वृष, वृषसे मिथुन, मिथुनसे कर्क, कर्कसे सिंह इत्यादि राशियोंमें भ्रमण करती दिखाई देती है। इसीके भ्रमणसे हम लोगोंको सूर्य भ्रमण करता हुआ जान पड़ता है। चित्र २१ में इसका भ्रमण प से आरम्भ होता हुआ दिखाया गया है और २, ३, ४, इत्यादि विन्दुओंपर घड़ीकी सुइयां जिस दिशामें चलती हैं उसके प्रतिकूल दिशामें पृथ्वी जाती है। चलनेकी दिशा तीरका दिशासे जानी जा सकती है। पृथ्वीकी दैनिक गति विषम होनेसे भूकक्षाके विन्दु असमान अंतरपर दिखाये गये हैं।

सबसे छोटा वृत बुध ग्रहकी कक्षा है। मान लीजिये कि बुध ब, से चलना आरंभ करता है और अपनी कक्षामें २, ३, ४ इत्यादि विन्दुओंपर घड़ीकी प्रतिकूल दिशामें तथा सूर्य निवासियोंको मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियोंमें जाता हुआ दिखाई देता है। चित्रमें ब, वहाँ लिखा है जहाँ बुध उस समय है जब कि पृथ्वी प, पर है। जब बुध विन्दु १ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु २ पर जाती है। जब बुध अपनी कक्षामें विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाती है। इसी तरह और

बिन्दुओंके लिये भी समझना चाहिये; जैसे जब बुध अपनी कक्षामें बिन्दु ७ पर होता है तब पृथ्वी अपनी कक्षामें बिन्दु ७ पर रहती है, इत्यादि। यदि यह देखना हो कि पृथ्वीसे बुध किस दिशामें राशि चक्रपर दिखाई देगा तो बुध और पृथ्वी उस समय जहाँ हो, उन बिन्दुओंको मिलाकर राशि-चक्र तक ले जाइये। जहां यह रेखा पहुँचेगी वहीं बुधका स्थान होगा। चित्रकी सरलताके लिये पृथ्वी और बुधको मिलानेवाली रेखाएं नहीं दिखाई गई हैं परंतु बुधसे राशि चक्र तक यह कटी रेखाओंसे प्रकटकी गयी हैं। जैसे जब पृथ्वी प$_1$ और बुध ब$_1$ बिन्दुओं पर होते हैं तब प$_1$, ब$_1$ को मिलाने वाली रेखा राशि चक्रमें १ बिन्दुपर पहुँचती है अर्थात् पृथ्वी निवासियोंको बुध राशि-चक्रके बिन्दु १ पर अथवा कुंभ राशिके अन्तमें दिखाई पड़ेगा। जब पृथ्वी प$_2$ पर पहुँचती है तब बुध ब$_2$ पर पहुँचता है और राशिचक्रमें बिन्दु २ पर अथवा मीन राशिमें दिखाई देता है। और प$_3$ (अर्थात् जब पृथ्वी अपनी कक्षामें बिन्दु ३ पर होती है) से बुध ब$_3$ पर होनेके कारण राशिचक्रमें बिन्दु ३ पर मीनके अन्तमें दिखाई देगा। जब बुध अपनी कक्षामें ४ पर होगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ४ पर होगी और पृथ्वी निवासियोंको बुध राशि-चक्रमें बिन्दु ४ पर अर्थात् ३ से कुछ ही आगे दिखाई पड़ेगा। जब बुध अपनी कक्षामें १ से २ तक आया तब पृथ्वी भी १ से २ पर अपनी कक्षामें आयी और हम लोगोंको बुध राशि चक्रमें कुंभसे मीनमें जाता हुआ दिखाई पड़ा। जब बुध २ से ३ पर अपनी कक्षामें गया तब पृथ्वी भी २ से ३ पर अपनी कक्षामें गयी और यहाँके निवासियोंको बुध राशि चक्रमें २ से ३ तक मीन राशिमें आगे

आता हुआ दीख पड़ा। इसबार बुध राशि चक्रमें उतना आगे नहीं बढ़ा जितना पहले बढ़ा था अर्थात् बुधकी चाल पहले से मन्द पड़ गयी। ३ से ४ तक पहुँचनेमें बुध राशि चक्रमें बहुत ही कम आगे बढ़ा, इसलिये यदि यह कहा जाय कि बुधकी चाल नहींके समान है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसी दशामें बुध कुछ ठहरा हुआ जान पड़ता है। अब बुध अपनी कक्षा में ४ से ५ पर जायगा, पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ४ से ५ पर जायगी और पृथ्वी निवासियोंको बुध राशि-चक्रमें उलटा ४ से ५ तक जाता हुआ दिखाई पड़ेगा अर्थात् बुध वक्री हो गया, ऐसा जान पड़ेगा। जब बुध ५ से ६ पर अपनी कक्षामें जायगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ५ से ६ पर जायगी और हम लोगोंको बुध राशि चक्रमें ५ से ६ तक उलटा मीनसे कुम्भ राशिमें जाता हुआ दिखाई पड़ेगा, परंतु चाल बहुत तीव्र हो जायगी। यहाँ भी बुध वक्री कहा जायगा, यद्यपि वह अपनी कक्षामें उसी क्रमसे जा रहा है। जब बुध ६ से ७ तक जाता है, राशि चक्रमें ६ से ७ तक उलटा जाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु अपनी कक्षामें ८ से ९ तक जाते जाते यह राशि चक्रमें ८ से ९ तक सीधा जाता दिखाई देगा अर्थात् बुधकी चाल मार्गी हो जायगी, परन्तु रहेगी बहुत मन्द। अब यह स्पष्ट होगया होगा कि यद्यपि सूर्यके विचारसे बुध और पृथ्वी दोनों एक ही दिशामें जाते हुए दिखाई पड़ते हैं तथापि पृथ्वी निवासियोंको बुध राशि चक्रमें एकसे ४ तक आगे बढ़ता हुआ जान पड़ता है और ४ से ७ तक पीछे हटता हुआ जान पड़ता है। जब आगे बढ़ता है तब मार्गी कहलाता है और पीछे हटता है तब वक्री हो जाता है। जब मार्गी रहता है तब भी

इसकी चाल एक सी नहीं दीखती वरन् कभी बहुत शीघ्र बढ़ती हुई जान पड़ती है, कभी मन्द पड़ जाती है और कभी ठहरी सी जान पड़ती है। और जब वक्री होता है तब भी चाल द्रुत द्रुततर, मंद, मंदतर तथा स्थिर सी जान पड़ती है।

यहां एक बात और जानने योग्य है। जब पृथ्वी प' पर होती है और बुध ब' पर तब सूर्य और पृथ्वीको मिलानेवाली रेखा मकरके अन्त पर पहुँचती है अर्थात् सूर्य मकरमें दिखाई देता है, परन्तु बुध कुम्भके अन्त में। इसलिए बुध सूर्यके पूरब रहता है और सूर्यास्तके बाद पच्छिममें दिखाई देता है। प² से सूर्य कुम्भ राशिके आदिमें दिखाई पड़ता है और बुध मीनके आदिमें, प³ से सूर्य कुम्भमें कुछ और आगे बढ़ा हुआ जान पड़ता है, परन्तु बुध मीनके अन्त तक पहुंचा हुआ दिखाई पड़ता है और इसीके पास सूर्य और बुधका अन्तर सबसे अधिक होता है। ऐसी दशामें यदि पृथ्वी और बुधको मिलाने वाली रेखा बढ़ायी जाय तो वह बुधकी कक्षाको स्पर्श करती हुई जायगी, और पृथ्वी और सूर्यको मिलाने वाली रेखासे जो कोण बनायेगी वह सबसे बड़ा होगा। इसीको सूर्य और बुधका महत्तम अन्तर (Greatest elongation) कहते हैं और यह अन्तर सूर्यके पूर्वकी ओर होता है। महत्तम अन्तरके कुछ दिन पीछे ही बुधकी गति वक्री हो जाती है और अन्तर घटने लगता है और घटते घटते बुध पृथ्वी और सूर्यके बीचमें आ जाता है अर्थात् अन्तर शून्य हो जाता है। ऐसी दशामें बुध सूर्यके साथ उदय और अस्त होता है। इसीको बुधकी भीतरी युति (Inferior conjunction) कहते हैं। जब सूर्यसे बुधका अन्तर १८° के लगभग हो जाता है तब सूर्यके निकट होनेसे

उसके प्रकाशके कारण कोरी आंखसे बुध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए कहा जाता है कि बुधका अस्त पच्छिममें हो जाता है क्योंकि बुध पच्छिममें ही दीखते दीखते छिप जाता है। भीतरी युतिके समयसे कुछ पहले वक्री होने पर बुध दाहिने हाथकी ओर जाता है और सूर्य बायें हाथकी ओर, इसलिये सूर्यसे बुध बहुत ही शीघ्र हटता है अर्थात् पच्छिममें अस्त होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें वह सूर्यसे पच्छिम चला आता है और सूर्योदयके पहले ही उदय होकर पूर्वमें दिखाई देने लगता है, तब कहते हैं कि बुधका पूर्वमें उदय हो गया। जब बुध १२° सूर्यसे पच्छिम हो जाता है तब फिर दिखाई पड़ने लगता है। तभी उसका उदय मानते हैं, गति भी वक्रीसे कुछ ही दिनोंमें मार्गी होने लगती है।

इस प्रकार मार्गी होनेके पीछे बुध क्रमशः सूर्यसे दूर होता जाता है और जब वह अपनी कक्षामें बिन्दु ७ और ८ के बीच-में जाता है तब भी सूर्यसे इसका अन्तर महत्तम हो जाता है। फिर बुध सूर्यके पास होता जाता है और डेढ़ महीनेमें सूर्य-के इतना पास हो जाता है कि आंखसे दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार जब अन्तर १४° का रह जाता है तब अस्त होना मानते हैं। जब बुध और सूर्यका अन्तर शून्य हो जाता है तब दोनों एक साथ क्षितिजके ऊपर आते हैं। ऐसी दशामें बुध और सूर्यकी बाहरी युति ("Superior conjunction) होती है। बाहरी युतिके समय बुध मार्गी रहता है।

बाहरी युतिके समय बुध और सूर्य दोनों बायीं ओर को आते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिये बुधको सूर्यसे दूर होनेमें अधिक दिन लगते हैं, अर्थात् जब बुध पूर्वमें अस्त होता है तब

पच्छिमके अस्तकालसे अधिक काल तक अस्त रहता है और पच्छिममें देरमें उदय होता है।

यह लिखा गया है कि पच्छिममें बुध तब अस्त होता है जब सूर्य और बुधका अन्तर १२° से कम हो जाता है और पूर्वमें अस्त तब होता है जब दोनोंका अन्तर १४° से कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि भीतरी युतिके समय बुध पृथ्वीसे बहुत पास रहता है इसलिये उसका बिम्ब बड़ा दिखाई पड़ता है और जब तक सूर्यसे १२° की दूरी तक नहीं हो जाता तब तक दिखाई पड़ता है। परन्तु बाहरी युतिके समय बुध सूर्यसे भी दूर हो जाता है इसलिये उसका बिम्ब छोटा दिखाई पड़ता है और जब उसकी दूरी १४° रहती है तभी छिप जाता है। शुक्र भी भीतरी युतिके समय सबसे बड़ा दीखता है और बाहरी युतिके समय सबसे छोटा।

इससे सिद्ध हो गया होगा कि ग्रह अस्त होनेके पीछे कहीं चले नहीं जाते वरन् सूर्यके इतने पास हो जाते हैं कि आंखसे दिखाई नहीं पड़ते। हाँ दूरबीनसे यह सूर्यके चाहे जितने पास हों दिखाई पड़ सकते हैं।

बुध और शुक्र दोनों ग्रहोंकी कक्षाएँ पृथ्वीकी कक्षाके भीतर हैं इसलिए जो बात बुधके लिए कही गयी है वह शुक्रके लिए भी लागू है। अन्तर केवल इतना है कि शुक्रकी कक्षा बुधकी कक्षासे बड़ी है इसलिए भीतरी युतिके समय शुक्र पृथ्वीसे अत्यन्त निकट हो जाता है। दूरबीनसे देखने पर बुध और शुक्र दोनोंमें उसी प्रकार कलायें दिखाई पड़ती हैं जैसी चन्द्रमा में बाहरी युतिके समय दोनों ग्रह पूर्ण गोल दीखते हैं, क्योंकि उस समय पूरा प्रकाशित बिम्ब हमारे सामने रहता है। जब

ग्रह कुछ बगलमें हो जाता है तब पूरा प्रकाशित भाग हम लोगोंको नहीं दीखता, दिन दिन बिम्ब कुछ खंडित होता जाता है। परंतु प्रकाश अधिक मिलता है, क्योंकि दूरी कम होती जाती है। इस लिए खंडित ग्रह भी पास होनेके कारण अधिक प्रकाश देता है। भीतरी युतिके समय ग्रहका प्रकाशित भाग सूर्यकी ओर होता है इसलिए हमको ग्रहसे ज़रा भी प्रकाश नहीं मिलता और वह एक ' ेधब्बेकी तरह दूरबीनमें दिखाई पड़ता है। शुक्रकी कलायें त्र २२ में दिखाई गई हैं।

चित्र २३ में राशि-चक्रका केवल वह भाग दिखाया गया है जहाँ मंगल वक्री और फिर मार्गी होता हुआ जान पड़ता है। स सूर्य केन्द्रमें है। पृथ्वी अपनी कक्षामें और मंगल अपनी कक्षामें सूर्यकी परिक्रमा इस प्रकार करते हैं कि वह राशि चक्रमें मेषसे वृष, वृषसे मिथुनमें जाते हुये (सूर्यसे) दिखाई देते हैं। सूर्यमें स्थित मनुष्यको कोई ग्रह वक्री होते हुये नहीं दीख सकते; उसे सब ग्रह एक ही तरफसे परिक्रमा करते हुये देख पड़ते हैं। हाँ पृथ्वी निवासियोंको मंगल मार्गी, शीघ्र गामी, मन्दगामी, स्थिर तथा वक्री, मन्द गामी, फिर मार्गी दिखाई पड़ता है। मंगलकी एक परिक्रमा ६८६ दिनमें पूरी होती है इसलिए १०° की परिक्रमा वह $\frac{६८६ \times १०}{३६०}$ दिन वा १९ दिनमें कर लेता है और इतने समयमें पृथ्वी १९° के लग-भग चलती है, क्योंकि पृथ्वीको एक परिक्रमा ३६५ दिनमें पूरी होती है अर्थात् १ दिनमें प्रायः १° परिक्रमा होती है।

मान लीजिये पृथ्वी अपनी कक्षामें बिन्दु १ पर है और मंगल भी अपनी कक्षामें बिन्दु १ पर है तब पृथ्वी निवासि-

योंको मंगल राशि चक्रमें १ विन्दु पर दिखाई देगा। जब पृथ्वी १६ दिनमें अपनी कक्षाके विन्दु २ पर पहुँचती है, मंगल भी १०° चलकर अपनी कक्षामें विन्दु २ पर पहुँचेगा और हम लोगोंको दिखाई पड़ेगा कि वह राशि चक्रमें विन्दु २ पर है। जब पृथ्वी अगले १६ दिनमें विन्दु ३ पर पहुँचेगी, मंगल भी विन्दु ३ पर अपनी कक्षामें पहुँचेगा और दिखाई पड़ेगा कि राशि चक्रमें वह २ विन्दुके पास ही ज़रा सा आगे हटा है। यहाँ मंगल कुछ दिनों तक स्थिर सा जान पड़ेगा, क्योंकि १६ दिनके भीतर राशिचक्रमें २ से ३ तक बहुत कम गया है। जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी कक्षामें विन्दु ४ पर पहुँचेंगे तब मंगल राशिचक्रमें विन्दु ४ पर अर्थात् पीछे हटा हुआ दिखाई पड़ेगा। इसीको कहते हैं कि मंगल वक्री है यद्यपि मंगलकी चाल अपनी कक्षामें वैसी ही सीधी है। ४ विन्दु पर पृथ्वी, मंगल और सूर्यके बीचमें हो जाती है, अर्थात् पृथ्वीके दहिने सूर्य होता है और बायें मंगल। इस प्रकार सूर्यका अन्तर ६ राशि या १८०° का हो जाता है। इसी स्थितिको कहते हैं कि मंगल सूर्यसे षडभान्तर पर (In opposition) है। जब सूर्य अस्त होता है तभी मंगल पूर्वमें उदय होता है और जब सूर्य उदय होता है तभी मंगल पच्छिममें अस्त होता है। इस स्थितिमें मंगल पृथ्वीसे अत्यन्त निकट होता है, इसलिए इसका बिम्ब बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है और दूरबीनसे देखने पर उसी समय मंगल ग्रहकी बहुत सी बातें दिखाई देती हैं।

जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी कक्षामें ५ विन्दु पर हैं तब हम लोगोंको मंगल राशि चक्रमें ५ विन्दु पर और

पीछे हटा हुआ देख पड़ता है। दोनों ग्रह अपनी अपनी कक्षा-में जब ६ विन्दु पर आते हैं तब मंगल राशि चक्रमें कुछ आगे खसका हुआ ६ विन्दु पर दिखाई देता है यहां भी मंगल कुछ देरके लिए स्थिर सा जान पड़ता है। फिर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है।

जब पृथ्वी और मंगलके बीचमें सूर्य होता है अर्थात् जब पृथ्वी ४ पर और मंगल 'म' पर होता तब मंगलकी दूरी पृथ्वी-से अत्यन्त अधिक होती है ऐसी स्थितिको 'मंगलकी सूर्यसे युति होती है', ऐसा कहते हैं। इस दशामें मंगलका बिम्ब बहुत छोटा दीखता है।

इन दोनों चित्रोंसे प्रकट है कि भूकक्षाके भीतरवाले ग्रह उस समय वक्री होते दिखाई देते हैं जब भीतरी युति होनेको होती है और भीतरी युतिके समय वह वक्री ही रहते हैं। परन्तु भू कक्षाके बाहरवाले ग्रह उस समय वक्री होते हैं जब वह सूर्यसे ६ राशि अथवा १८०° के लगभग दूरी पर होते हैं और जिस समय वह ठीक आमने सामने (In opposition) होते हैं, उस समय वक्री ही रहते हैं। भीतरी ग्रह (Inferior planets) प्रत्येक परिक्रमाकी भीतरी और बाहरी दोनों युति-योंके समय अस्त रहते हैं अर्थात् सूर्यके पास रहनेके कारण सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें कोरी आंखसे नहीं दिखाई देते हैं परन्तु बाहरी ग्रह (Superior planets) की एक परिक्रमामें केवल एक युति होती है, तभी यह अस्त हुए कहे जाते हैं।

इस प्रकार यह प्रकट है कि पृथ्वीको चलती हुई मान लेनेसे ग्रहोंकी विलक्षण गतियोंका समझना बड़ा ही सहज

है। यदि पृथ्वी अचला मानी जाय तो यह किसी प्रकार नहीं समझाया जा सकता कि ग्रहोंकी वक्री गति क्यों होती है।

तत्तद्गति वशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ॥१४॥

अनुवाद—(१४) इन इन गतियोंके वश होकर ग्रह जिस प्रकार दृक्तुल्यताको प्राप्त होते हैं अर्थात् वेधके स्थानमें पहुँचकर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं वही स्पष्ट करनेके (उसीको गणितसे जाननेके) नियम आदरके साथ कहता हूँ।

विज्ञान भाष्य—यह श्लोक बड़े महत्वका है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पुराने आचार्य ग्रहोंके स्पष्ट स्थान इसीलिए निकालते थे जिससे गणित और प्रत्यक्ष वेधमें कोई अंतर न पड़े। इसके लिए स्पष्टाधिकारमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म नियम बनाये गये। परन्तु जैसा कि मध्यमाधिकारके ६वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें मैं बतला चुका हूं कि चाहे यंत्र स्थूल हों चाहे सूक्ष्म, इनसे वेध करनेमें कुछ न कुछ प्रयोगात्मक अशुद्धि (Experimental error) रह ही जाती है इसलिए काल पाकर कुछ भेद पड़ जाता है, जिससे समय समय पर संशोधन करना पड़ता है। इसीको 'बीज' संस्कार कहते हैं। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि कोई घड़ी प्रति दिन एक सेकंड मंद होती हो तो ६० दिनमें वह १ मिनट और १ वर्षमें ६ मिनट पीछे हो जायगी। परन्तु व्यवहारमें यही कहा जायगा कि घड़ी बहुत शुद्ध है; क्योंकि ६० दिनमें १ मिनटका अंतर या प्रतिदिन एक सेकंडका अंतर नहींके समान है। यदि यह अंतर सदैव होता जाय और घड़ीमें संशोधन न किया जाय तो कई वर्षोंमें इतना

अंतर पड़ जायगा कि उसको भी नहीं के समान समझना असम्भव होगा और संशोधन करना ही पड़ेगा। जैसे घड़ीमें प्रति दिन १ सेकंडका अंतर कुछ कालमें बड़ा भारी रूप धारण कर सकता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहोंके भगण-कालोंमें १ पलका भी अंतर सैकड़ों वर्षोंमें बहुत बड़ा हो जाता है। इसीलिए बीज संस्कार करना पड़ता है। बीच बीचमें संशोधन करनेकी प्रथा हमारे प्राचीन आचार्योंको मान्य थी, जिनके अवतरण मैं नीचे दूंगा; परन्तु कुछ दिनोंसे इस विषय पर मतभेद हो गया है। एक पक्ष कहता है कि आर्ष ग्रन्थों पर किसी प्रकारकी टीका टिप्पणी करनेका अथवा संशोधन करनेका अधिकार नहीं है, उनमें जो कुछ है उसको वैसा ही मानना चाहिये। दूसरा पक्ष कहता है कि संशोधन करना सर्वथा उचित है। नीचे दोनों पक्षोंके तर्क मुझे जहां तक मिले हैं दिये जाते हैं:—

प्रयाग निवासी पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी ज्योतिष भूषण, इसी श्लोकके अनुवादके साथ साथ यह टिप्पणी देते हैं—

"यहां अनेक लोग "दृक्तुल्यतां" से दृश्य गणनाका अर्थ लगाते हैं; किन्तु यह उनका भ्रम है। पूर्वापरके देखनेसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दृक्तुल्यतांका अर्थ यहां जिस गणनाका वर्णन करते हैं उसके अनुसार अदृश्य दृष्टिसे अपने स्पष्ट किये हुए स्थान पर दिखाई देना है अन्यथा इस गणनाके अनुसार कभी भी दृश्य ग्रह सिद्ध नहीं हो सकते थे क्योंकि जितने संस्कार दृश्य ग्रहोंके लिए आज निकाले गये हैं ये ही सदा होने चाहिये थे यह गोल विद्याके जाननेवालोंको ज्ञात ही है"*

* प्रयागके हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे प्रकाशित सूर्यसिद्धान्त पृष्ठ ३५।

इस अवतरणका भावार्थ कदाचित यह है कि ग्रहोंका स्पष्ट स्थान निकालनेके लिए जो नियम इस ग्रन्थमें बतलाये गये हैं उनके अनुसार ग्रहोंका स्थान वही नहीं निकलता जो प्रत्यक्ष वेधसे देखा जाता है। इसलिए दृक्तुल्यताका अर्थ प्रत्यक्ष वेध नहीं है वरन् वह अदृश्य वेध है जिसे ऋषियों ने अपने योगबलके द्वारा जाना था।

इस पक्षके ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी जो आजकल लखनऊके नवलकिशोर विद्यालयके प्रधानाध्यापक हैं अपने सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्यायके 'प्रभा भाषा भाष्य'† पृष्ठ ६,७ में बहुत स्पष्ट शब्दोंमें यों लिखते हैं:—

"...दृष्टादृष्टभेदेन गणितस्य द्वैविध्यं तावच्चतुरस्रम्। तत्र 'अदृष्टफल-सिद्ध्यर्थं यथार्कायुक्तितः कुरु। गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्युद्भवतः सदा'॥ तथा 'अदृष्टफल सिद्ध्यर्थं निर्वीजार्कोक्तमेवहि।' इति तत्त्वविवेकीय कमला-करोक्त्या महर्षि दर्शित पथानुसारिण एव स्फुटाः खेटाः फलादेशायोप-युज्यन्ते नतु सांप्रतिकोपलब्ध संस्कार संस्कृताः। निर्वीजार्कोक्तमित्युक्त्या तन्निरासात्। फलविषयेऽनार्षगणिताङ्गीकारे बहुत्र श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानस-मयादिषु विप्लवः संजायते। तस्माद्धर्माभिमानिभिः सुधीभिः सकलं परीक्ष्य निष्कण्टकः पन्था अनुसरणीयः। तत्तत्संस्कारोत्पन्नाः खेटास्तु केवलं ग्रह-णोदयास्तादि दृष्टगणितएवोपयुज्यन्ते। दृष्टगणिताभिमानिनोऽदृष्टगणितोन्मूल नाय बहुधा विवदन्ते। परमुभयो. स्वीकारेणैव निर्वाहो नत्वन्यतरस्याङ्गीका-रेणेत्यन्यत्र विस्तरः।

"दृष्ट और अदृष्टके भेदसे गणित दो प्रकारका है। दृष्ट जो आंखोंसे देखा जाय, जैसे ग्रहण, उदयास्त, युति और शृङ्गोन्नति आदि। और अदृष्ट

---

† लखनऊके नवलकिशोर प्रेसमें १९११ ई०में प्रकाशित।

जो देखनेमें न आवे, जैसे तिथियोग आदि। ग्रहण आदिके देखनेसे ही उसका फल होता है। और व्रत उपवास आदि का फल बिना देखे ही होता है। फलका आदेश केवल ऋषियोंके अनुभव सिद्ध वाक्योंसे होता है। जो कुछ ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार फल लिखा उपलब्ध होगा, मनुष्य वही जान सकेगा। इस फलकी कल्पना ऋषियोंके सिवा कोई नहीं कर और जान सकता।

"आर्ष ग्रन्थोंमें जो ग्रह स्पष्ट बनानेकी रीति है उसी रीतिसे स्पष्ट किये ग्रह फलादेशमें उपयुक्त हैं। क्योंकि उन्हीं स्पष्ट ग्रहोंके आधार पर श्रौत और स्मार्त कर्मोंके समय बंटे हैं। इसलिए उसी गणितसे जो तिथि आदि सिद्ध हों उन्हीं से धर्म व्यवस्था और उसका आचरण करना उचित है।

"सांप्रतमें युरोपके विद्वानोंने सूक्ष्म यन्त्र द्वारा बहुत से नवीन संस्कार निश्चित किये हैं और उनका ग्रहोंमें उपयोग लाकर सूक्ष्म-स्पष्ट ग्रह सिद्ध करते हैं। इस स्पष्टविधिको लेकर अंग्रेजी गणित विद्या विशारद आजकल कई एक पञ्चाङ्गोंमें ग्रह स्पष्ट सिद्ध करके उनसे तिथि आदिका साधन करते हैं और उसीके अनुसार धर्म व्यवस्था करते हैं। परन्तु यह सर्वथा अनुचितऔर धर्ममें बाधा डालना है। क्योंकि आर्षगणितके अनुसार जब एकादशी आदिका उपवास आदि सिद्ध होगा उस कालमें इस नवीन सूक्ष्म गणितसे उसका सिद्ध होना असम्भव होगा। इस प्रकार ऋषियोंके बचनमें बाधा डालनेसे धर्मका विप्लव होगा। ऋषियोंके वाक्य उन्हींकी रीतिपर चलनेसे घट सकेंगे। इससे स्पष्ट है कि धर्म व्यवस्थाके लिए ऋषिप्रोक्त गणितका ही आश्रय उचित है।

"नवीन वेधसिद्ध संस्कारोंको ही प्राचीन ग्रन्थोंमें 'बीज' नामसे लिखा है। और वेधसे प्राचीनोंने इसका साधन भी किया है। परन्तु इस बी -

को ग्रहणादि दृष्टगणितके ठीक समयज्ञानके लिए उपयुक्त किया है। अदृष्ट गणितमें, आजकलकी तरह नहीं घुसेड़ा। इसलिए आजकलके यूरोपके नये संस्कार केवल दृष्टगणितमें उपयुक्त हैं। उसमें इसका उपयोग लेनेसे कोई बाधा नहीं है। क्योंकि इसकी व्यवस्था ही इसी प्रकारसे आचार्योंने की है।

जैसाः—'अदृष्ट फल सिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेवहि।

गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥'

अर्थात् अदृष्ट गणितके लिए केवल निर्बीज, सूर्योक्त, सूर्य-सिद्धान्तके गणितका आश्रय करना चाहिये और दृष्ट गणितके लिए जिससे ठीक आकाश और गणितका संवाद हो उसीसे सदा गणित करना चाहिये।

"इस प्रकार निष्पक्षपात और धर्मबुद्धिसे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक विचारशील पुरुषों को, दृष्ट और अदृष्ट गणित उक्त नियमोंके अनुसार मानना चाहिये। केवल दृष्टमात्रको ही चार्वाकोंकी तरह सर्वत्र मानना महा अनुचित और सत्यका अपलाप करना है।"

इस लम्बे अवतरणमें प्रमाणके लिए संस्कृतका जो श्लोक दिया हुआ है वह आचार्य कमलाकरके सिद्धान्त-तत्वविवेकका है जो शक १५८० तथा विक्रमीय १७१५में लिखा गया था। इस ग्रन्थमें आचार्य कमलाकरजीने सूर्य सिद्धान्तका कहीं कहीं अनुचित पक्ष किया है। जिसका प्रमाण म० म० सुधाकर द्विवेदीके शब्दोंमें यह हैः—

"अत्र यावच्छक्यं सूर्यसिद्धान्तमत मण्डनं भास्कर मुनीश्वरादीनां खंडनं च कृतं ग्रन्थ कृता। बहुत्र परदूषणाभिलाषेणान्यथैव भास्कर कृतोदयान्तर कर्म्मादि खण्डनमस्य गोले गणितेचाद्वितीय पण्डितस्यानेककल्पनाकुशलस्य न शोभते।"*

* गणक तरंगिणी पृष्ठ ६८

इस पक्षमें और भी कोई प्राचीन मत है या नहीं इसका मुझे ज्ञान नहीं। यदि कोई महानुभाव बतलानेकी कृपा करेंगे तो मैं बड़ा अनुगृहीत हूंगा और धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करूँगा। इस पर यह भी जाननेकी अभिलाषा है कि आचार्य कमलाकरजीके इस नियमको कि 'निर्बीजार्कोक्त' ग्रह स्पष्ट ही धर्मके कामोंमें व्यवहार करना चाहिये किसी ने स्वीकार भी किया है या नहीं क्योंकि इनके पहलेसे ही सैकड़ों वर्षोंसे मकरंद सारिणी और ग्रहलाघव इत्यादि ज्योतिषके करण ग्रन्थ ही पंचांगादि बनानेके लिए व्यवहारमें आते हैं; जिनमें 'बीज संस्कार' किया गया है। इसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं:—

(१) "ज्योतिषके करण ग्रन्थ कई हैं; परन्तु पठनपाठनमें जितना ग्रहलाघवका प्रचार है उतना औरोंका नहीं। उसके आधार पर कई देशोंमें पञ्चाङ्ग बनते हैं और उनके अनुसार सब लोग बेखटके श्रौत स्मार्त कर्म करते हैं। यह सौर पक्षीय करण ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें ग्रन्थकर्ता ने आर्य पक्ष और ब्रह्मपक्षका भी किसी अंशमें आश्रयण किया है। इस समय ही नहीं बहुत प्राचीन कालसे सौरपक्षका ही प्राधान्य चला आता है। आर्य ब्रह्मपक्षका गणित तो आचार्य वराह मिहिर (शक ४२७) के समयमें ही गड़बड़ हो चुका था। कहीं कहीं ब्रह्मपक्षीय पंचांग भी प्रचलित हैं। जैसे जोधपुरका चंड नामक ज्योतिषीका चलाया 'चंडू' पंचांग परन्तु अनार्ष-मूलक होनेसे मान्य नहीं है।"†

मकरंद सारिणीमें बीज संस्कारके विषयमें यह अवतरण प्रमाण है।

---

† उल्लिखित पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी द्वारा १६८० वि० के कार्तिक-की 'माधुरी' पृष्ट ५०५ में लिखा गया।

(२)"...कलिगतस्य सहस्रांशों १००० शादि ४ । ४२। ४६ शनि बीज धनं ॥ एतत्र्यंशे १ । ३५ । १४ सहितं जातं बुधोच धनं ६। १७। १ शनिबीज त्र्यंशोन रहितं जातं ३ । ८ । ३१ ऋणांगुरोः शनिबीजं शुक्रोच ऋणं ४। ४२ । ४६ बीज संस्कृतं बुधोच्चं..."*

प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित अपने मराठी भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ १८४ तथा २५७ में लिखते हैं :—

(३) "मकरंदग्रथांत सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहादिकांस बीज संस्कार आहे" ...;"मकरंदकारानें सूर्यसिद्धांतास बीजसंस्कार दिला आहे, त्या विषयीं पूर्वी लिहिलेंच आहे"

इन अवतरणोंसे सिद्ध है कि सैकड़ों वर्षोंसे मकरंद-सारिणी अथवा ग्रहलाघवके अनुसार जितने पंचांग बनते हैं सबमें बीज संस्कारके अनुसार संशोधन रहता है। इसलिए कमलाकर जीकी उक्ति व्यवहारमें कभी नहीं मानी गयी, ऐसा मेरा विचार है।

कमलाकर जी ने आचार्य वशिष्टके इस श्लोकको "इत्थं माण्डव्य संक्षेपादुक्तं शास्त्रमयोदितं। विस्रस्ती रविचन्द्राद्यैर्भ-विष्यति युगे युगे" के 'विस्रस्ती' पदको 'विस्तृती' कहकर श्लोकका अर्थ कुछ और कर दिया है परन्तु यह सर्वथा अवैज्ञानिक, भ्रमजनक तथा प्राचीन वैज्ञानिक पद्धतिके विरुद्ध है और केवल अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिए लिखा गया है।

अब मैं दूसरे पक्षके समर्थनमें जो कुछ प्रायः डेढ़ हजार वर्षोंसे कहा गया है वह लिख रहा हूं, जिससे सिद्ध होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषी ज्योतिषके आर्ष ग्रन्थोंको किस

---

* मकरंद सारिणी पृष्ठ ३९, बंबईकी छपी।

दृष्टिसे देखते रहे हैं और इनको समय समय पर संशोधन करनेके पक्षमें कौन कौन सी युक्तियां लिख गये हैं।

जिस समय सूर्यांश पुरुष मयासुरको सूर्य-सिद्धान्तका उपदेश देने लगे उस समय कहा था,

"शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोत्र केवलं॥"

यह मध्यमाधिकारका ९वां श्लोक है; जिसकी व्याख्या की जा चुकी है।

फिर जब ऋषियोंने मयासुरसे ज्योतिषका उपदेश ग्रहण किया था तब पहले मयासुरने जो कुछ सूर्यांश पुरुषसे सीखा था वह सब कह कर अन्तमें बीजोपनयनाध्यायका उपदेश २१ श्लोकोंमें दिया जिसका कारण यह बतलाया था,

"चक्रानुपातजोमध्यो मध्यवृत्तांशजः स्फुटः।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते॥ ५॥
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्य परमं स्फुटं।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम्॥ २१॥"

अर्थात् काल पाकर दृक्तुल्यता नहीं होती है इसलिए बीज क्रियाकी रीति बतलायी जाती है। बीज क्रियासे संस्कृत स्फुट ग्रहोंसे ही यात्रा विवाह तथा अन्य शुभ काम फलदायक होते हैं।

परन्तु खेद है कि पहले पक्षके पंडित इस अध्यायको क्षेपक मानते हैं। मेरी समझमें तो यह बात आती है कि सूर्यांश पुरुषने जो कुछ कहा था उसके अनुसार यह अवश्य क्षेपक है। क्योंकि यह मयासुरका बीज संस्कार है नकि

सूर्यांश पुरुषका। परंतु यदि यह मान लिया जाय कि मयासुरने ऋषियोंसे जैसा कहा था वैसा ही ऋषियोंका पाया हुआ सूर्यसिद्धान्त इस समय प्रचलित है तब इसको क्षेपक माननेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। बात भी यथार्थमें यही है कि प्रचलित सूर्यसिद्धान्त वही है जिसका उपदेश मयासुरने ऋषियोंको दिया था। इसमें बीजोपनयनाध्याय अंतमें इसलिए कहा जिसमें यह स्पष्ट रहे कि मयासुरको सूर्यांश पुरुषसे क्या उपदेश मिला था और मयासुरने स्वयं अपने अनुभव से क्या बढ़ाया था।

दृक्तुल्यताके सम्बन्धमें ब्रह्मगुप्त जी शक ५५०, संवत ६८५ वि०, में लिखते हैं:—

"प्रतिदिवस विसंवादाद् ग्रह तिथि करणर्क्ष दिवसमासानाम्। ग्रहण-ग्रहयोगादिषु पादं पादेन कः स्पृशति ॥ ५७ ॥

तन्त्रभ्रन्शे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः।
कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ॥

इन दोनों श्लोकोंके तिलकमें म० म० सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं:—

"ग्रह-तिथि-करण-ऋक्ष-दिवस मासानां तथा ग्रहण-ग्रह योगादिषु च प्रतिदिवस विसंवादात् प्रत्यहं दृग्विरोधात् पादं करणाधमं कः पादेनापि स्पृशति अर्थाद्यथाऽङ्गेषु अधोवर्त्तित्वात् पादोऽधमस्तथा दृग्गणितयोरसाम्यात् पादमधमं यत् करणं तत् पादेनापि स्पर्शानर्हं 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'-इतिन्यायात्"

"तन्त्रभ्रंशे सति तदीयतन्त्रगणनया दृग्विरोधे सति एवं पूर्वोक्तं प्रतिदिनं स्पष्टीकरणार्थं वेधादिना विज्ञाय तस्मिन् तन्त्रे बीजादिना तथा यत्नः कार्यो यथा

दृग्गणितैक्यं भवति। एवं यस्मिन् तन्त्रे सदा दृग्गणितैक्यं भवति तदेव तन्त्रमादरणीयमिति।"*

ऊपरके अवतरणमें ग्रह, युति इत्यादिके साथ साथ तिथि, करण, ऋक्ष (नक्षत्र) शब्द भी आये हैं; जिससे प्रकट है कि जिसको पंडित गिरिजाप्रसाद जीने अदृष्ट कहा है उसके लिए भी दृग्गणितैक्यका विधान है और बीज संस्कार करनेकी आवश्यकता बतलायी गयी है। इसलिए दृकतुल्यताके लिए संस्कार करना ब्रह्मगुप्तजी शास्त्र विरुद्ध या आर्ष वचनोंके विरुद्ध नहीं समझते थे। जिसको इन्होंने शास्त्र विरुद्ध समझा था उसका बड़े जोरोंसे खण्डन किया है।

प्रसिद्ध भास्कराचार्य जी शक १०७२ संवत् १२०७ वि० में लिखते हैं:—

"यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वं। स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या।"†

जिसका अर्थ यह है कि यात्रा विवाह उत्सव जातक इत्यादि कामोंके लिए ग्रह स्पष्ट करनेसे अधिक फल होता है और ग्रह स्पष्ट करनेकी रीति वही शुद्ध है जिससे दृग्गणितैक्य हो।

ऊपर इस बातका प्रमाण दिया गया है कि आज कल ग्रहलाघव कितना मान्य समझा जाता है। इसी ग्रहलाघवके कर्ता

* तन्त्रपरीक्षाध्याय पृष्ठ १६६-१७०, म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त।

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ४६।

आचार्य गणेश दैवज्ञके पिता आचार्य केशवने प्राचीन ग्रन्थोंमें संशोधन करनेके पक्षमें शक १४१८ संवत् १५५३ वि० में ग्रह-कौतुक नामक ग्रन्थमें यों लिखा है:—

"ब्राह्मार्यभट सौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदंतरं अंकतया दृश्यते। मंदे आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेऽस्ते च पंच भागा अधिकाः प्रत्यक्षमंतरं दृश्यते।......एवं क्षेपेष्वंतरं वर्ष भोगेष्वपि अंतरमस्ति। एवं बहुकाले बह्वंतरं भविष्यति। यतो ब्राह्माद्येष्वपि भगणानां सावनादीनां च बह्वंतरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वंतर भवत्येव।......एवं बह्वंतरं भविष्यैः सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभि वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यैर्ग्र गणितानि कार्याणि। यद्वा तत्काल क्षेपक वर्ष भोगान् प्रकल्प्य लघु करणानि कार्याणि।...... एवं मया परम फल स्थाने चंन्द्र ग्रहण तिथ्यंताद् विलोमविधिना मध्यश्चंद्रोज्ञातः तत्र फल ह्रास वृद्ध्यभावात्। केन्द्रगोलादि स्थाने ग्रहण तिथ्यंताद्विलोम विधिना चंद्रोच्चमाकलितं। तत्र फलस्य परम ह्रास वृद्धित्वात्। तत्र चंद्रः सूर्यपक्षात्पंचकलोनो दृष्टः। उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितं। सूर्यः सर्वपक्षेपीषदंतरः स सौरो गृहीतः। अन्ये ग्रहा नक्षत्र ग्रहयोगास्तोदयादिभिर्वर्तमानघटनामवलोक्य साधिताः। तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ घटतः। ब्राह्मो बुधः। ब्राह्मार्यमध्य शुक्रः। शनिः पक्षत्रयात्पंचभागाधिको दृष्टः। एवं वर्तमान घटनामवलोक्य लघुकर्मणा ग्रह गणितं कृतं।"*

इस लम्बे अवतरणसे यह अच्छी तरह स्पष्ट होता है कि वर्तमान आकाशीय घटनाओंको किस प्रकार वेध द्वारा देखकर

---

* मराठी भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृष्ठ २५६ में उद्धृत।

सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहोंके भगण-कालोंका संशोधन करना चाहिये। भविष्यके लिए भी ऐसा करनेको आदेश किया गया है। इस अवतरणमें सूर्यसिद्धान्तका भी स्पष्ट उल्लेख है। पिताके इन्हीं वेधों और बीजोंके आधारपर आचार्य गणेश दैवज्ञने ग्रहलाघव बनाया जिसके मध्यमाधिकारके १६ वें श्लोकमें शक १४४२, संवत् १५७७ वि० में लिखा है।

"सौरोर्कोऽपि विधूच्चमङ्क कलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो, ऽसृग राहु च कर्ज ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषुभागः शनिः। शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यतां, सिद्धैस्तैरिह पर्व धर्म नय सत्कार्यादिकं त्वादिशेत्॥" *

जिससे प्रकट है कि गणेशजी पर्व धर्म, उत्सव इत्यादि सभी शुभ काम दृग्गणितैक्यसे ही निश्चय करनेका आदेश करते हैं न कि 'निर्बीज' सूर्यसिद्धान्तसे।

इसकी टीकामें मल्लारिजी शक १५४७ संवत् १६८२ वि० में लिखते हैं, "...इति तेभ्यः पक्षेभ्यः साधिता इमे ग्रहाः दृशितुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति......इहास्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्व धर्मनयसत्कार्यादिकमादिशेत्। पर्व ग्रहण धर्म्मो यज्ञानुष्ठानैकादशी व्रतादिकम्। नयो नीतिः। राजनीति दण्डनीत्यादिकः। सत्कार्यं शुभं कार्यंव्रतबन्ध विवाहादि। एभ्यो ग्रन्थेभ्य एवदुत्पन्न तिथ्यादेरेवादिशेत् अयं भावः। यतो यस्मिन यस्मिन काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेवग्राह्यं घटमानत्वात।"†

* म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित ग्रहलाघव पृष्ठ ७०।

† वही ग्रहलाघव पृष्ठ ७०।

फिर मल्लारिजी कहते हैं, "अहर्गणात्साधितो यो ग्रहः स मध्यमो यतो यन्त्रवेधेनाकाशे विलोक्यमाने तावान् ग्रहो न दृष्टः किञ्चिदंतरं दृष्टं प्रत्यहं गतेर्विसदृशत्वात् । एवं प्रत्यहं ग्रहान् गोलेन चक्रयन्त्रेण वा विद्ध्वा अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह वेधित स्पष्टग्रहयोरन्तराणि साधितानि ।"*

मल्लारिजी एक जगह और लिखते हैं "एवं ग्रहभगणभोगपर्यन्तं ग्रहगतीरानीय तासु मध्ये या परमाधिका गतिर्याच परमाल्पा तयोर्योगार्धं मध्यगतिरेवाङ्गी कृता । सा दुःसाध्या सूक्ष्माणां विकला कोट्यंशा-दीनामलक्ष्यत्वात् । सा स्थूला जाता सैवाङ्गीकृता । एवं किय-त्यपि काले जाते वसिष्ठादिभिर्विलोक्यमाने गतेरन्तरं दृष्टम् । एवमन्यैरपि ।……………अस्मिन्काले एतेदृग्गोचराः एवम ग्रेऽपि भविष्यन्महागणकैर्नलिकाबन्धादिना ग्रहवेधं कृत्वाऽन्त-राणि लक्षयित्वा ग्रहकरणानि कार्याणीत्यग्रे ग्रन्थ समाप्तावा-चार्येणाप्युक्तमस्ति ।"†

इस अवतरणमें जिस तर्कसे मल्लारि जीने काम लिया है उसको सिद्ध करनेके लिए वराह-मिहिर, वशिष्ठ, सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त सभीके अवतरण दिये हैं जो इस जगह छोड़ दिये गये हैं; क्योंकि इनको मैंने पहले ही दे दिये हैं । दृकतुल्य-ताके लिए वेध करके ही परीक्षा ली जा सकती है इसलिए गणित और वेधमें जब समता हो तभी नियम शुद्ध कहा जा सकता है । मल्लारि जी की यह बात १६ आने पावरत्ती ठीक है कि वेध द्वारा प्राप्त हुई संख्याओंमें कुछ न कुछ स्थूलता 'विक-

* वही ग्रहलाघव पृष्ठ ७२ ।

† वही ग्रहलाघव पृष्ठ ५५ ।

ताकोर्ट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्' रह ही जाती है, जिसके लिए समय समयपर वर्तमान घटनाओंको देखकर संशोधन करना चाहिये।

अनेक लम्बे अवतरणोंसे पाठक ऊब गये होंगे; इसलिए मैं आचार्य गणेश दैवज्ञकी पुस्तक बृहत्तिथिचिंतामणिसे अवतरण न दूंगा। यद्यपि इसमें संक्षेपमें ब्रह्माचार्य, वशिष्ठ, कश्यप, मयासुर, आर्यभट, दुर्गसिंह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, केशव, इत्यादि सबके अवलोकनोंकी चर्चा करते हुए बतलाया गया है कि इनमें अंतर क्यों पड़ गया और उनको नये ग्रन्थके बनानेकी उस समय क्यों आवश्यकता पड़ी तथा जब आगे आवश्यकता पड़ेगी तब कैसे संशोधन करना चाहिये। फिर भी अन्तका १ श्लोक दिये बना रहा नहीं जाता जो यों है:—

"कथमपि यदिदं चेद्भूरिकाले श्लथंस्यात्,
मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु ग्रहाद्युग्रयोगम्।
सदमलगुरुतुल्यप्राप्तबुद्धिप्रकाशैः
कथित सदुपपत्त्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये॥"*

इन अवतरणोंको पढ़कर कौन ऐसा होगा जो न मानेगा कि हमारे पुराने आचार्य वैज्ञानिक और युक्तियुक्त तर्कोंसे यह आवश्यकता दिखला गये हैं कि दृग्गणितैक्यके लिए समय समयपर सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भी संशोधन करनेकी आवश्यकता है और इसी संशोधनके साथ तिथि, योग, करण, नक्षत्र इत्यादि जानकर सभी लौकिक काम करने चाहियें? आजकल

* म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित गणकतरंगिणी पृष्ठ ६१।

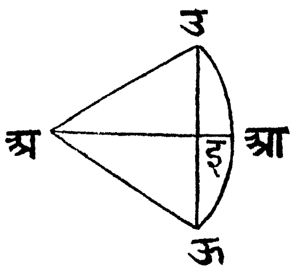
का कोई "अंग्रेज़ी गणितविद्याविशारद" भी अपने पक्षके समर्थनमें पुराने आचार्य जो कुछ कह गये हैं उससे अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं समझ सकता।

राशिलिप्ताष्टमोभागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते।
तत्तद्विभक्त लब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम्॥१५॥
आद्येनैवं क्रमात् पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनसंयुता।
खण्डकाःस्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्धपिण्डाःक्रमादमी१६

अनुवाद—(१५) एक राशिमें जितनी कलाएं होती हैं उसके आठवें भागको पहली 'ज्या' कहते हैं। इसका इसीसे भाग देकर लब्धिको इसीमें से घटाकर शेषको इसीमें (पहली ज्यामें) जोड़ देनेसे दूसरी ज्या निकल आती है। (१६) इसी प्रकार आदिसे लेकर सब ज्याओंको पहली ज्यासे भाग देकर भागफलोंको जोड़कर, योगफलको पहली ज्यामेंसे घटाकर शेषको अन्तिम ज्यामें जोड़ दो तो जो योगफल मिलेगा वही अगली ज्या होगी। इस प्रकार क्रमसे २४ ज्याओंके पिंड होंगे।

विज्ञान भाष्य—ज्या किसको कहते हैं और इसका मान रेखागणितसे कैसे निकाला जाता है इसका विवेचन मध्यमाधिकारके ६० वें श्लोकके विज्ञानभाष्यमें किया गया है। उस श्लोकके नीचे जो दूसरा चित्र दिया गया है उसको देखना चाहिये। ऊपर १५वें श्लोकमें 'ज्या' के स्थानमें 'ज्यार्ध' शब्दका प्रयोग हुआ है, इससे भ्रममें न पड़ना चाहिये। दोनोंके अर्थ समान माने गये हैं। 'ज्या' के लिए 'ज्यार्ध' इसलिए कहा गया है कि किसी कोण उ अ आ की 'ज्या' जाननेके लिए सबसे सरल रीति यह है कि एक ऐसा वृत्तखंड (Sector) व अ उ

बनाओ जिसका केन्द्रीय कोण अ अभीष्ट कोणका दूना हो, फिर इस वृत्तखंडकी जीवा या ज्या उ ऊ खींच लो और उसका



चित्र २४

आधा कर दो। बस इसी जीवाका आधा (ज्यार्ध) उ इ अभीष्ट कोणकी ज्या है। इसी लिए ज्यार्ध और ज्या समानार्थवाची हैं। (चित्र २४)

इस श्लोकसे यह भी पता चलता है कि आचार्य ने एक राशिके ८वें भाग अर्थात् ३$\frac{३}{४}$ अंश या २२५ कलाके धनु (arc) और ज्या (line) में कोई अन्तर नहीं समझा है। इसके बाद ३$\frac{३}{४}$ अंशके दूने, तिगुने, चौगुने, इत्यादि अंशोंकी ज्याएं कैसे ज्ञातकी जाती हैं इसकी रीति बतलायी गयी है। संक्षेपमें, बीज गणितकी भाषामें, रीति यों लिखी जा सकती है:—

यदि प=३$\frac{३}{४}$ अंश=२२५′

तो ज्या प=२२५′

$$\text{ज्या } ७\tfrac{१}{२} \text{ अंश}=\text{ज्या } २ \text{ प}=\text{ज्या प}+\text{ज्या प}-\frac{\text{ज्या प}}{\text{ज्या प}}=२२५'+२२५'$$
$$-१'=४४९';$$

$$\text{ज्या } ११\tfrac{१}{४} \text{ अंश} = \text{ज्या } ३\text{ प} = \text{ज्या } २\text{ प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या } २\text{ प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= ४४९' + २२५' - ३ = ६७१';$$

$$\text{ज्या } १५^\circ = \text{ज्या } ४\text{ प} = \text{ज्या } ३\text{ प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या } २\text{ प} + \text{ज्या } ३\text{ प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= ६७१' + २२५ - (१ + २ + ३) = ८९०';$$

इसी प्रकार ज्या (स + १) प

$$= \text{ज्या (स प)} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या } २\text{ प} + \cdots \text{ज्या (स प)}}{\text{ज्या प}}$$

इसकी उपपत्ति महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्रीजीके अनुसार* यह हैः—

कल्पना करो, $\text{ज्या प} - \text{ज्या}० = \text{त}_१$,

$\text{ज्या}२\text{प} - \text{ज्या प} = \text{त}_२$,

$\text{ज्या}३\text{प} - \text{ज्या } २\text{ प} = \text{त}_३$,

$\text{ज्या}\text{नप} - \text{ज्या (न} - १\text{)प} = \text{त}_\text{न}$

और $\text{ज्या (न} + १\text{) प} - \text{ज्या न प} = \text{त}_{\text{न}+१}$

तब, $\text{त}_१ - \text{त}_२ = २ \text{ ज्या प} - \text{ज्या } २\text{प}$

$= २ \text{ ज्या प} - २ \text{ ज्याप कोज्या प}$ †

$= २ \text{ ज्या प } (१ - \text{कोज्या प})$

$= २ \text{ ज्या प} \times \text{उज्या प}$ ‡ ....(१)

---

* देखो सूर्य सिद्धान्तका बापूदेवजी शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद पृष्ठ ?

† कोज्या = कोटिज्या = cosine

‡ उज्या = उत्क्रमज्या = versed sine = (1 − cosine) = १−कोज्या

$$त_२ - त_३ = २ \text{ ज्या } २ \text{ प} — \text{ज्या प} — \text{ज्या } ३ \text{ प}$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} — \text{ज्याप} — (३ \text{ ज्या प} — ४ \text{ ज्या}^३ \text{प})$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} — ४ \text{ ज्या प} + ४ \text{ ज्या}^३ \text{ प}$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} — ४ \text{ ज्या प}(१ - \text{ज्या}^२\text{प})$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} - ४ \text{ ज्या प} \times \text{कोज्या}^२\text{प}$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} - २ \text{ ज्या प} \times \text{कोज्या प} \times २ \text{ कोज्या प}$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} - २ \text{ ज्या } २ \text{ प} \times \text{कोज्या प}$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प}(१ - \text{कोज्या प})$$
$$= २ \text{ ज्या } २ \text{ प} \times \text{उज्या प} \cdots\cdots\cdots \qquad (२)$$

$$त_३ - त_४ = २ \text{ ज्या } ३ \text{ प} - \text{ज्या } २ \text{ प} - \text{ज्या } ४ \text{ प}$$
$$= २ \text{ ज्या } ३ \text{ प} - (\text{ज्या } २ \text{ प} + \text{ज्या } ४ \text{ प})$$
$$= २ \text{ ज्या } ३ \text{ प} - २ \text{ ज्या } ३ \text{ प} \times \text{कोज्या प}*$$
$$= २ \text{ ज्या } ३ \text{ प}(१ - \text{कोज्या प})$$
$$= २ \text{ ज्या } ३ \text{ प} \times \text{उज्या प} \cdots\cdots\cdots \qquad (३)$$

इसी प्रकार
$$त_न - त_{न+१} = २ \text{ ज्या नप} - \text{ज्या } (न - १)\text{प} - \text{ज्या } (न + १)\text{प}$$
$$= २ \text{ ज्या नप} - \{\text{ज्या } (न - १) \text{ प} + \text{ज्या } (न + १)\text{प} \}$$
$$= २ \text{ ज्या नप} - २ \text{ ज्या नप कोज्या प}$$
$$= २ \text{ ज्या नप } (१ - \text{कोज्या प})$$
$$= २ \text{ ज्या नप} \times \text{उज्या प} \cdots\cdots\cdots\cdots (न)$$

अब (१), (२), (३)⋯(न) समीकरणोंके सम पक्षोंको जोड़नेसे

* देखो Hell and Knight's Trigonometry page 113.

$$त_{१} - त_{न+१} = २ \text{ उज्या } प \text{ (ज्या } प + \text{ ज्या } २ प + \text{ ज्या } ३ प + \cdots \text{ ज्या } नप)$$

परन्तु $त_{१} - त_{न+१} = \text{ज्या } प + \text{ज्या } नप - \text{ज्या } (न + १)प$

$$\therefore \text{ ज्या } प + \text{ ज्या } नप - \text{ ज्या } (न + १)प = २ \text{ उज्या } प \times (\text{ज्या } प + \text{ ज्या } २ प + \cdots \text{ ज्या } नप)$$

$$\therefore \text{ ज्या } (न + १)प = \text{ज्या } नप + \text{ज्या } प - २ \text{ उज्या } प (\text{ज्या } प + \text{ ज्या } २ प + \cdots \text{ ज्या } नप)$$

यहां $प = ३^{\circ} ४५' = २२५'$

$$\therefore २ \text{ उज्या } प = २ \text{ उज्या } २२५' = २ \text{ (१ — कोज्या } २२५')$$

$$= २ \text{ (१} - \cdot ९९७८) = २ \times \cdot ००२२ = \frac{४४}{१००००} = \frac{१}{२२७}$$

$$= \frac{१}{२२५} \text{ स्वल्पान्तरसे}$$

$$\therefore \text{ ज्या } (न + १)प = \text{ज्या } नप + \text{ज्या } प - \frac{१}{२२५} \times (\text{ज्या } प + \text{ ज्या } २प + \cdots \text{ ज्या } नप)$$

तत्त्वाश्विनोऽङ्काब्धिकृता रूपभूमिधरर्तवः ।
खाङ्काष्टौ पञ्चशून्येशा बाणरूपगुणेन्दवः ॥१७॥
शून्यलोचनपञ्चैकाश्छिद्ररूपमुनीन्दवः ।
वियच्चन्द्रातिधृतयो गुणरन्ध्राम्बराश्विनः ॥१८॥
मुनिषड्यमनेत्राणि चन्द्राग्निकृतदस्रकाः ।
पञ्चाष्टविषयाक्षीणि कुञ्जराश्विनगाश्विनः ॥१९॥

रन्ध्रपञ्चाष्टकयमा वस्वश्यङ्कयमास्तथा ।
कृताष्टशून्यज्वलना नगाद्रिशशिवह्नयः ॥२०॥
षट्पञ्चलोचन गुणाश्चन्द्रनेत्राग्नि वह्नयः ।
यमाद्रिवह्निज्वलना रन्ध्रशून्यार्णवाग्नयः ॥२१॥
रूपाग्निसागरगुणा वस्वग्निकृतवह्नयः ।
प्रोह्योत्क्रमेणव्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः २२

अनुवाद—(१७) २२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५; (१८) १५२०, १७१९, १९१०, २०९३; (१९) २२६७, २४३१, २५-८५, २७२८; (२०) २८५९, २९७८, ३०८४, ३१७७; (२१) ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९; (२२) ३४३१, ३४३८ कलाएं क्रम से ३$\frac{३}{४}$ अंश, ७$\frac{१}{२}$ अंश, ११$\frac{१}{४}$ अंश, १५ अंश इत्यादि एक समकोण के २४ पिंडों की ज्याएं हैं। यदि इनको उलटे क्रम से (उत्क्रम से) एक त्रिज्या की कलाओं से अर्थात् ३४३८ से घटा दो तो एक समकोण के २४ पिंडों की क्रम से उत्क्रमज्याएं ज्ञात हो जायंगी। इनके मान भी आगे के पांच श्लोकों में दिये हुए हैं।

विज्ञान भाष्य—इस सम्बन्धमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। अगले पांच श्लोकोंके बाद इन ज्याओं और उत्क्रमज्याओंके मानोंकी तुलना आजकलकी रीतिसे निकाले हुए मानोंसे की जायगी।

उत्क्रमज्याके मान जाननेके लिए जो नियम लिखा गया है वह बहुत ही सरल और मौलिक है। यदि ३४३८ मेंसे अंतिम संख्या ३४३८ घटायी जाय तो शून्य बचेगा जो शून्य अंशकी उत्क्रमज्या है और यदि ३४३१ घटाया जाय तो ७ बचेगा जो

२२५ कलाकी उत्क्रमज्या है। इसको रेखा गणितके आधार पर इस प्रकार जान सकते हैं—चित्र २४ में यदि उ अ आ २२५' कलाका कोण हो तो उ आ का मान २२५', उ इ का २२५' (स्वल्पान्तर से) अ इ का ३४३१' और इ आ का ७' है। यही इ आ का मान उ अ इ कोणकी उत्क्रमज्या है। इसी प्रकार अन्य पिण्डोंकी ज्याएं और उत्क्रमज्याएं जानी जा सकती हैं।

मुनयो रन्ध्रयमला रसषट्का मुनीश्वराः।
द्व्यष्टका रूपषड्दस्राः सागरार्थहुताशनाः ॥२३॥
खर्तुवेदा नवाद्र्यर्था दिङ्नगास्त्र्यर्थकुञ्जराः।
नगाम्बरवियच्चन्द्रा रूपभूधरशङ्कराः ॥२४॥
शरार्णवहुताशैका भुजङ्गाक्षि शरेन्दवः।
नवरूपमहीध्रैका गजैकाङ्कनिशाकराः ॥२५॥
गुणाश्विरूपनेत्राणि पावकाग्निगुणाश्विनः।
वस्वर्णवार्थयमलास्तुरङ्गर्तुनगाश्विनः ॥२६॥
नवाष्टनवनेत्राणि पावकैकयमाग्नयः।
गजाग्निसागरगुणा उत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२७॥

अनुवाद—(२३) ७, २६, ६६, ११७, १८२, २६१, ३५४; (२४) ४६०, ५७६, ७१०, ८५३, १००७, ११७१; (२५) १३४५, १५२८, १७१६, १९१८; (२६) २१२३, २३३३, २५४८, २७६७; (२७) २९८९, ३२१३, और ३४३८ कलाएं क्रमसे उत्क्रमज्याओंके पिंड हैं।

नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें ऊपरके ग्यारह श्लोकोंका सार है:—

पिंडों का क्रम	धनु अथवा कोण	भारतीय रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या = ३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या = ३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या = १	भारतीय रीति से उत्क्रमज्या के मान जब त्रिज्या = ३४३८	आजकल की रीति से उत्क्रमज्या के मान जब त्रिज्या = १
१	३°४५′	२२५	२२४·८५	·०६५४	७	·००२२
२	७°३०′	४४६	४४८·६५	·१३०५	२६	·००८६
३	११°१५′	६७१	६७०·७२	·१९५१	६६	·०१९२
४	१५°	८९०	८८९·८२	·२५८८	११७	·०३४१
५	१८°४५′	११०५	११०५·०१	·३२१४	१८२	·०५३१
६	२२°३०′	१३१५	१३१५·०५	·३८२७	२६१	·०७६१
७	२६°१५′	१५२०	१५२०·५८	·४४२३	३५४	·१०३१
८	३०°	१७१९	१७१९·००	·५०००	४६०	·१३४०
९	३३°४५′	१९१०	१९१०·०५	·५५५५	५७९	·१६८५
१०	३७°३०′	२०९३	२०९३·०५	·६०८८	७१०	·२०६६

* देखिये चित्र १८ पृष्ठ १६६ विज्ञान भाग १८ संख्या ४

११	४१°१५′	२२६७	२२६७·०२	·६५६४	८५३	·२४८१
१२	४५°०	२४३१	२४३१·०१	·७०७१	१००७	·२६२६
१३	४८°४५′	२५८५	२५८४·७०८	·७५१६	११७१	·३४०६
१४	५२°३०′	२७२८	२७१७·५५	·७६३४	१३४५	·३६१२
१५	५६°१५′	२८५६	२८५८·५५	·८३१५	१५२८	·४४४५
१६	६०°०	२९७८	२९७७·३१	·८६६०	१७१९	·५०००
१७	६३°४५′	३०८४	३०८३·४५	·८९६९	१९१८	·५५७७
१८	६७°३०′	३१७७	३१७६·३७	·९२३९	२१२३	·६१७३
१९	७१°१५′	३२५६	३२५५·७५	·९४६९	२३३३	·६७८६
२०	७५°०	३३२१	३३२०·८५	·९६५९	२५८४	·७४१२
२१	७८°४५′	३३७२	३३७१·९५	·९८०८	२७६७	·८०४९
२२	८२°३०′	३४०९	३४०८·७५	·९९१४	२९८९	·८६९५
२३	८६°१५′	३४३१	३४३०·८५	·९९७८	३२१३	·९३४६
२४	९०°०′	३४३८	३४३८·००	१·००००	३४३८	१·००००

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्तमें त्रिकोणमितिके इतने ही सम्बन्ध (ratios) दिये हुए हैं। इनसे कोटिज्या (cosine) जाननेके लिए यह नियम व्यवहारमें लाया गया है कि यदि किसी कोणकी ज्या दी हुई हो तो उस कोणको ९०°मेंसे घटाने पर जो कोण होता है उसकी कोटिज्याका मान भी वही होता है अर्थात् किसी कोणकी ज्या उसके पूरक कोणकी कोटिज्याके समान होती है। किसी कोण की स्पर्शरेखा (tangent) का मान आजकलकी तरह नहीं दिया मिलता है, परन्तु इसका व्यवहार अप्रत्यक्ष रूपसे कोणको ज्याको उसकी कोटिज्यासे भाग देकर किया गया है।

यदि कोणका मान ऐसा है कि ऊपर दिये हुए दो पिंडोंके बीचमें पड़ता है तो उसकी ज्या, कोटिज्या या उत्क्रमज्या त्रैराशिक (proportional parts) से जाननेकी विधि अगले ३१-३४ श्लोकोंमें बतलायी गयी है। इसी प्रकार यदि ज्याका मान ज्ञात हो तो उससे धनु (कोण) निकालनेकी रीति भी इन्हीं श्लोकोंमें है।

भास्कराचार्य जी ने ज्या, कोटिज्या जाननेकी रीति और सूक्ष्म रीतिसे बतलायी है।

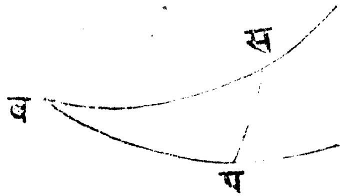
ज्याके पर्याय क्रमज्या, भुजज्या, बाहुज्या, अर्द्धज्या इत्यादि तथा कोटिज्याके लम्बज्या भी प्रयोग किये गये हैं।

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः।
तद्गुणाज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते ॥२८॥

अनुवाद—(२८) परमक्रान्ति ज्याका मान १३९७ कला है। इसको (भोगांशकी) ज्यासे गुणा करके, फलको त्रिज्यासे भाग

देने पर जो आवे वह जिस धनु (कोण) की ज्या हो वही क्रान्ति-का मान होता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकमें दिखलाया गया है कि 'ज्या' का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। साथ ही साथ यह नियम भी बतलाया गया है कि किसी समकोण गोलीय त्रिभुज (Right angled Spherical triangle) के भुजों और कोणोंमें परस्पर सम्बन्ध क्या होता है। परमक्रान्तिज्याका मान १३९७ कला बतलाया गया है: जिससे जान पड़ता है कि परमक्रान्ति-का मान २४° है; क्योंकि २४° की ज्याका मान ही उपर्युक्त रीति-से १३९७ कला होता है; यद्यपि शुद्ध गणनासे वह २३°५८'३१" की ज्या है।



चित्र २५

दिये हुए चित्र २५में ब वसंत-सम्पात ब स क्रान्तिवृत्तका खंड और ब प विषुवद्वृत्तका खंड है। स प ध्रुवप्रोत वृत्तका खंड है अर्थात् उस वृत्तका खंड है जो ध्रुवसे होकर जाता है और विषुवद्वृत्तके विन्दु प पर समकोण बनाता है। स ब प कोण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण (obliquity of the ecliptic) है जो उपर्युक्त श्लोकके अनुसार २४° है। वसंत संपातसे सकी दूरी ब स, क्रान्तिवृत्तके 'स' विन्दुका भोगांश

और विषुवद्वृत्तसे सकी दूरी जब कि स प ब कोण समकोण हो, अर्थात् स प, स बिन्दुकी क्रान्ति कहलाती है। इसीको अपक्रम भी कहते हैं। दिये हुए नियमके अनुसार,

$$\frac{\text{ज्या (व स)} \times १३९७}{३४३८} = \text{ज्या (सप)}$$

$$\text{अथवा ज्या (वस)} \times \frac{\text{ज्या (स व प)}}{\text{त्रिज्या}} = \text{ज्या (सप)}$$

यदि त्रिज्याको ३४३८की जगह १ मान लिया जाय, जैसी कि आजकलकी प्रथा है तो १३९७ कला की जगह ·४०६७ रखना होगा। इससे गुणा भाग में कुछ सरलता हो जायगी और तब इस सूत्रका रूप केवल यह होगा

$$\text{ज्या (व स)} \times \text{ज्या (स व प)} = \text{ज्या (सप)}$$

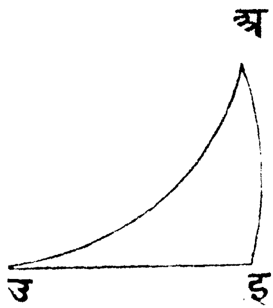
यही कुछ भेदके साथ आजकल नेपियरके एक नियमसे प्रसिद्ध है, जिसे नेपियर* नामक गणितज्ञने एडिनबरासे १६१४ ई० अथवा १६७१ वि०में अपने ग्रन्थ 'मिरिफिसी लागेरिथमोरम कैनोनिस डेसक्रिपशिओ' Mirifici Logarithmorum Canonis Descriptio में प्रकाशित किया था। नेपियरके नियम याद रखनेके लिए यह युक्ति है:-

किसी समकोण गोलीय त्रिभुजके समकोणको छोड़कर, समकोण बनाने वाली दो भुजों, कर्णके पूरक, तथा अन्य दो कोणोंके पूरकोंको त्रिभुजके गोल खड (circular parts) कहते हैं। इस प्रकार किसी समकोण गोलीय त्रिभुजके ५ गोल

---

* देखो टाडहंटर और लेथेमकी गोलीय त्रिभुज (Spherical Trigonometry) १९११ की छपी पृष्ठ ४०

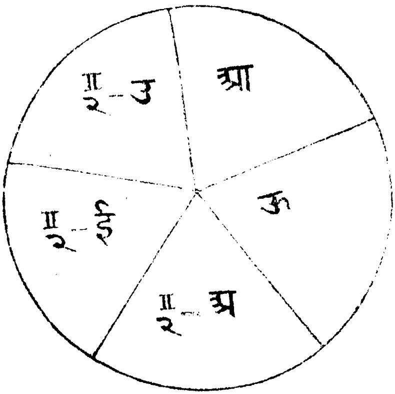
खंड होते हैं। यह पांचों खंड एक वृत्तके चारों ओर उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रमसे यह त्रिभुजमें रहते हैं।



चित्र २६

मानलो अ इ उ एक गोलीय त्रिभुज है। अ, इ, उ, वह बिन्दु हैं जिनपर त्रिभुजकी भुजें इ अ, उ अ; अ इ, उ इ; और अ उ, इ उ मिलती हैं। उ अ इ, अ इ उ और अ उ इ कोणोंको संक्षेपमें अ, इ, उ अक्षरों से प्रकट करते हैं। इसी तरह अ कोणके सामने वाले भुज इउ को 'आ' से, इ कोणके सामने वाले भुज अ उ को ई से और उ कोणके सामने वाले भुज अ इ को ऊ से प्रकट करते हैं। साधारण नियम यह है कि त्रिभुजके कोणोंको ह्रस्व स्वरों से और उनके सामनेके भुजोंको उसी प्रकारके दीर्घ स्वरोंसे प्रकट किया जाता है। गोलीय त्रिभुज के भुजोंको भी कोणात्मक मानोंसे ही नापते हैं। यदि इ समकोण हो तो यह त्रिभुज समकोण गोलीय त्रिभुज कहा जाता है। तब इसके सामनेके भुज ई को कर्ण कहते हैं। [देखिये चित्र २६]

नेपियरके नियममें समकोण गोलीय त्रिभुजके समकोणको छोड़कर इसके पासवाले दो भुज आ, ऊ, अ कोणका पूरक $\frac{\pi}{२}$ − अ, ई कर्णका पूरक $\frac{\pi}{२}$ − ई, उ कोणका पूरक $\frac{\pi}{२}$ − उ, गोलीय खंडोंको चित्र द्वारा इस प्रकार लिखते हैं। [देखिये चित्र २७]



चित्र २७

इन पांचोंमेंसे किसी एकको चुन लो और उसका नाम मध्य खंड रख लो। जिसको मध्य खंड माना उसके बगलके दो खंडोंको आसन्न खंड कहो; शेष जो दो खंड रह जाते हैं उनको सन्मुख खंड कहो। अब नेपियर के नियमोंको इस प्रकार लिख सकते हैं:—

(१) मध्य खंडकी ज्या = आसन्न खंडोंकी स्पर्श रेखाओंका गुणनफल।

(२) मध्य खंडकी ज्या = संमुख खंडोंकी कोटिज्याओंका गुणनफल।

यही दूसरा नियम उपर्युक्त श्लोकमें नेपियरसे कमसे कम एक हजार वर्ष पहले प्रयोग किया गया है।

ग्रहं संशोध्यमन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च।
शेषं केन्द्र पदं तस्माद्भुजज्याकोटिरेव च ॥२९॥
गताद्भुजज्या विषमे गम्यात्कोटिः पदे भवेत्।
युग्मेतुगम्याद्बाहुज्याकोटिज्यातु गताद्भवेत्३०॥

अनुवाद—(२९) किसी ग्रहके मन्दोच्च और शीघ्रोच्चके स्थानोंमें से उसके मध्यम स्थानको घटा देनेसे जो शेष होते हैं उन्हें क्रमसे मन्दकेन्द्र और शीघ्र केन्द्र कहते हैं। इनसे पद बनावे और पद जानकर भुजज्या और कोटिज्या बनावे। (३०) विषम पदमें जो भाग गत रहता है उसकी ज्याको भुजज्या और जो भाग गम्य होता है उसकी ज्या को कोटिज्या कहते हैं; परन्तु समपदमें गम्य भागकी ज्या को भुजज्या और गत भागकी ज्याको कोटिज्या कहते हैं।

विज्ञानभाष्य—इसी अध्यायके चौथे और पांचवें श्लोकोंमें बतलाया गया है कि १८०° तक पूर्वमें स्थित मन्दोच्च या शीघ्रोच्च अपने ग्रहको मध्यम स्थानसे अपनी ओर अर्थात् पूर्वकी ओर आसन्नताके अनुसार खींच लेता है, जिससे मध्यम ग्रहमें धन संस्कार करनेसे स्पष्ट ग्रहका स्थान जाना जा सकता है, इत्यादि। ऊपरके २९वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि मन्दोच्च या शीघ्रोच्चसे मध्यम ग्रहकी दूरी कैसे

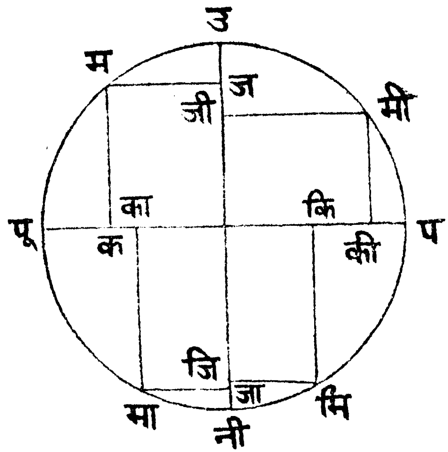
निकालनी चाहिये। किसी परिधिके दो विन्दुओं का अन्तर दो प्रकारसे प्रकट किया जा सकता है। यदि चित्र १५ में उ से तीरकी दिशामें चलते हुए म, मा, मि और मी विन्दुओंके अन्तर नापे जायँ तो यह क्रमसे उम, उमा, उमि, और उमी होंगे। परन्तु यदि उ से उलटी दिशामें चलकर इन विन्दुओंके अन्तर नापे जायँ तो उ से म का अन्तर ३६०°—उम, मा का अन्तर ३६०°—उमा, मि का अन्तर ३६०°—उमि और मी का अन्तर ३६०°—उमी होंगे। चित्रमें जो दिशा तीरके अग्रसे सूचित होती है उसे संस्कृत ग्रन्थोंमें अनुलोम या अपसव्य दिशा कहते हैं, आजकल इसको 'धनात्मक' या 'घड़ीकी विरुद्ध दिशा' कहते हैं। विषुवत् रेखासे उत्तरमें रहनेवाले मनुष्योंको सूर्य, चन्द्रमा औरग्रह इत्यादि अपनी कक्षामें इसी दिशामें चलते हुए देख पड़ते हैं। इसके प्रतिकूल दिशाको संस्कृतमें विलोम, प्रतिलोम, सव्य तथा आजकल 'ऋणात्मक' या 'घड़ीकी दिशा' कहते हैं। पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारे इत्यादि उत्तर गोलमें रहनेवाले मनुष्योंको इसी दिशामें चलते हुए जान पड़ते हैं। सूर्यसिद्धान्तमें शीघ्रोच्च या मन्दोच्चसे ग्रहोंका अन्तर जिसे क्रमसे शीघ्रकेन्द्र या मन्दकेन्द्र कहते हैं विलोम या ऋणात्मक दिशामें ही नाप कर जाननेकी रीति बतलायी गयी है। इसीलिए कहा गया है कि शीघ्रोच्च या मन्दोच्चमेंसे मध्यम ग्रहको घटाना चाहिये। परन्तु ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य इत्यादि कई अन्य आचार्योंने मन्दोच्चसे मध्यम ग्रहका अन्तर अनुलोम दिशामें और शीघ्रोच्चसे मध्यम ग्रहका अन्तर विलोम दिशामें नापनेको लिखा है। इसका कारण यह है कि मध्यम ग्रह मन्दोच्चसे तीव्रगामी

होनेके कारण अनुलोम दिशामें ही आगे बढ़ता है और शीघ्रोच्च मध्यम ग्रहसे तीव्रगामी होनेके कारण अनुलोम दिशामें बढ़ता है; इसलिए मध्यम ग्रह शीघ्रोच्चसे विलोम दिशा में जाता है। चाहे जिस तरह मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र नापा जाय दोनोंका अर्थ एक ही होता है। भास्कराचार्यकी रीति स्वाभाविक है और सूर्यसिद्धान्तकी कुछ भ्रमजनक।

जब ग्रहका मन्दकेन्द्र और शीघ्रकेन्द्र मालूम हो गया तब यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती है कि इनकी ज्या और कोटिज्या क्या हैं; क्योंकि इनकी आगे आवश्यकता पड़ती है। जो लोग आजकलकी त्रिकोणमितिसे परिचित हैं वह सीधे ही जान सकते हैं क्योंकि उनको मालूम है कि शून्यसे ३६०° तककी ज्या, कोटिज्या इत्यादि कैसे जानी जा सकती हैं। परन्तु प्राचीन कालमें शून्यसे ३६०° तकके किसी कोणकी ज्या निकालनेके लिए पहले यह देखते थे कि वह किस पद (quadrant) में है। यदि मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र शून्य और ९०° के भीतर हो तो विषमपदमें, ९०° के ऊपर परन्तु १८०° से कम हो तो समपद में, १८०° से ऊपर और २७०° से कम हो तो विषमपदमें और २७०° से अधिक हो तो समपद-में होता है। संक्षेपमें पहले और तीसरे पदोंको विषमपद तथा दूसरे और चौथे पदोंको समपद कहते हैं।

यह जाननेके लिए कि ग्रह किस पदमें है, मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्रको ९०° से भाग देना चाहिये। यदि लब्धि शून्य या २ आवे तो विषमपद और यदि १ या ३ आवे तो समपद समझना चाहिये। जो शेष बचे वही गत भाग कहलाता है।

इस शेषको ९०° में घटा देनेसे जो आता है उसे गम्य भाग कहते हैं। विषमपद हो तो गत भागकी और समपद हो तो गम्य भागकी ज्या निकाले। इसीको भुजज्या कहते हैं। परन्तु विषमपद हो तो गम्य भागकी और समपद हो तो गत भागकी ज्या को कोटिज्या कहते हैं।



चित्र २८

यह बात चित्र २८ से सुगमतापूर्वक समझमें आ सकती है। दिया हुआ वृत्त किसी ग्रहका कक्षावृत्त है। 'उ' शीघ्रोच्च या मन्दोच्चका स्थान है। मी, मि, मा, म किसी ग्रहके मध्यम स्थान हैं। इसलिए विलोम दिशामें चलते हुए उमी, उमि, उमा और उम ग्रहके मन्दकेन्द्र हुए जो क्रमसे पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे पदोंमें अथवा विषम, सम, विषम और सम पदोंमें हैं। पहले

पदमें उमी गत है और मीप गम्य है; इसलिए उमीकी ज्या अर्थात् मीजीको भुजज्या और मीप की ज्या अर्थात् मीकीको कोटिज्या कहते हैं। दूसरे पदमें पमि गत है और मिनी गम्य, इसलिए पमिकी ज्या अर्थात् मिकिको कोटिज्या और मिनीकी ज्या अर्थात् मिजिको भुजज्या कहेंगे। तीसरे पदमें 'नीमा' गत और 'मापू' गम्य हैं इसलिए नीमाकी ज्या अर्थात् माजाको भुजज्या और मापूकी ज्या अर्थात् माकाको कोटिज्या कहेंगे। इसी प्रकार चौथे पदमें पूम गत है और मउ गम्य, इसलिए पूमकी ज्या 'मक' को कोटिज्या और मउ को ज्या 'मज' को भुजज्या कहते हैं।

इसको संक्षेपमें यों कहना चाहिये कि उच्चसे जो रेखा मध्य विन्दुपर होती हुई खींची जाती है उस रेखासे अर्थात् नीचोच्च रेखासे मध्यम ग्रहके अन्तरको भुजज्या कहते हैं। इस रेखासे समकोण बनाती हुई जो रेखा मध्य विन्दु पर होती हुई जाती है उससे मध्यमग्रहका जो अन्तर होता है उसे कोटिज्या कहते हैं। यदि त्रिज्या ३४३८ इकाइयोंके समान हो तो इन्हीं इकाइयोंमें मीजी, मिजि, माजा और मजकी जो नाप होगी उन्हें भुजज्या और मीकी, मिकि, माका, और मककी जो नाप होगी उन्हें कोटिज्या कहेंगे।

आगेके दो श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि किसी अंश की ज्या कैसे निकालनी चाहिये।

लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्।
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्त्वलोचनैः ॥३१॥
तदवाप्तफलंयोज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके।
स्यात्क्रमज्याविधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः ॥३२॥

अनुवाद—(३१) जिस अंशकी ज्या जानना हो उसकी कला बनाकर २२५ से भाग दे दे. जो लब्धि आवे वही गत ज्यापिण्ड है; जो शेष बचे उसे गत ज्यापिण्ड और गम्य (अगले) ज्यापिण्ड की ज्याओं के अंतरसे गुणा करदे और गुणनफलको २२५ से भाग दे दे । (३२) जो लब्धि आवे उसे गत ज्यापिंड की ज्या में जोड़ देनेसे जो आवेगा वही इष्ट अंश की ज्या होगी । इसी प्रकार उत्क्रमज्या भी निकालनी चाहिये ।

विज्ञान भाष्य—इस अध्यायके १७—२२ श्लोकों में २४ ज्यापिंडोंकी ज्याएं बतला दी गयी हैं । इनके अतिरिक्त यदि किसी बीच वाले कोण की ज्या जानना हो तो ३१—३२ श्लोकोंसे जानना चाहिये । मानलो ६६° की ज्या जानना है । पहले यह देखना चाहिये कि ६६° किस पिंडमें है । २२५′ कला या ३°४५′ या ३¾ अंश के अन्तर पर पिंड बांधे गये हैं, इसलिए ६६° की कला बनाकर २२५ से भाग देना चाहिये अथवा ६६° को ३¾ से भाग देना चाहिये । श्लोक में कला बनाने की ही रीति बतलायी गयी है, इसलिये

६६°=६६ × ६०′=३९६०′

३९६०′ ÷ २२५=१७ १३५/२२५

इसलिए गत पिंड १७ और गम्यपिंड १८ है ।

१८ वें पिंड की ज्या=३१७७′

१७ वें पिंड की ज्या=३०८४′

∴ गतगम्यान्तर=९३′

अब त्रैराशिकसे यह जानना चाहिये कि जब गत और गम्य पिंडों का अंतर २२५′ होता है तब इनकी ज्याओं में ९३′ का अंतर होता है, इसलिए जब गत पिंड से इष्ट अंश १३५′

अधिक है तो गत पिंड की ज्यासे इष्ट अंश की ज्या में क्या अंतर होगा। अर्थात्

२२५ : १३५ : : ९३ : अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर = $\frac{१३५ \times ९३}{२२५} = \frac{३ \times ९३}{५}$

$= \frac{२७९}{५}$

=५६′ स्वल्पान्तरसे।

इसीको गतपिंडकी ज्यामें अर्थात् ३०८४′ में जोड़ देनेसे ३१४०′ हुई। यही ६६° की ज्या है।

यदि कोण का मान पूर्ण अंशों में हो तो बिना कला बनाये ही ज्या बनानेमें सुभीता होगा, जैसे उपर्युक्त उदाहरण में ६६° की ज्या यों निकाली जा सकती है:—

$६६° \div ३\frac{३}{४} = २२ \times \frac{४}{५} = \frac{८८}{५} = १७\frac{३}{५}$

१७ वें और १८ वें पिंडोंकी ज्याओंका अन्तर

= ९३′

$\therefore ९३ \times \frac{३}{५} = \frac{२७९}{५} = ५६'$

१७ वें पिंड की ज्या = ३०८४′

$\therefore$ ६६° की ज्या=३१४०′

अगले श्लोकमें यह बतलाया गया है कि यदि ज्या दी हुई हो तो कोण कैसे जाना जा सकता है।

ज्यां प्रोज्मय शेषं तत्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्।
सङ्ख्यातत्वाश्वि संवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ॥३३॥

अनुवाद—(३३) यदि यह जानना हो कि दी हुई ज्या किस अंश (धनु) की है तो पहले देखो कि २४ पिंडों की ज्याओं में से सबसे बड़ी कौन है जो दी हुई ज्या में से घटाई जा सकती है। इसीको घटाकर जो शेष आवे उसको २२५ से गुणा करो और गुणनफल को गत और गम्य ज्याओंके अंतर से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उसे उस गुणनफलमें जोड़ दो जो उस पिंड को २२५ से गुणा करने पर आता है जिस पिंड की ज्या घटायी गयी है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकमें ज्या ज्ञात हो तो कोण जानने की रीति बतलायी गयी है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। मान लो किसी कोण की ज्या ३१४०′ है, अब यह जानना है कि कोण क्या है।

१७—२२ श्लोकोंके अनुसार १७वें पिंडकी ज्या ३०८४′ और १८वें पिंड की ज्या ३१७३′ है। इसलिए ३१४०′ में से ३०८४′ घटाया तो शेष बचा ५६′। गत, गम्य पिंडोंकी ज्याओं का अंतर ८९′ है,

८९′ : ५६′ :: २२५′ : इष्टकला

$$\therefore \text{इष्टकला} = \frac{५६ \times २२५}{८९} = \frac{४२००}{३१} = १३५' \text{ स्वल्पान्तरसे}$$

१७ वें पिंडकी कला=१७ × २२५= ३८२५′

∴ दोनोंका यो। फल= ३९६०′

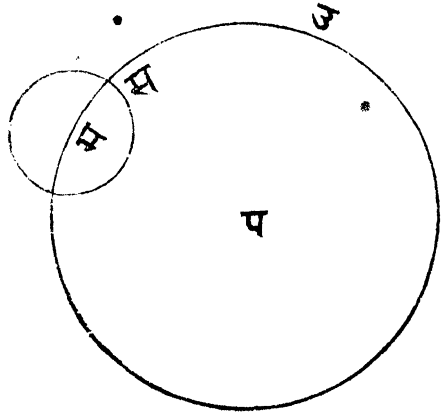
∴ जिस कोणकी ज्या ३१४०′ है वह ३९६०′ अथवा ६६° है।

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगो रदाः ।
युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः ।।३४।।
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्नी सुराः सूर्या नवार्णवाः ।
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः।।३५।।
कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ।
गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ।।३६।।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः ।
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ।।३७।।

अनुवाद—(३४) सम पदोंके अंतमें सूर्यकी मंदपरिधि १४° और चन्द्रमाकी ३२° होती है। विषम पदोंके अंतमें प्रत्येककी मंदपरिधि २० कला कम होती है। (३५) मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिकी मन्दपरिधियां समपदोंके अंतमें क्रमसे ७५°, ३०°, ३३°, १२° और ४९° तथा विषमपदोंके अंतमें क्रमसे ७२°, २८°, ३२°, ११° और ४८° होती हैं। (३६) इन पांच ग्रहोंकी शीघ्र परिधियां समपदोंके अंतमें क्रमसे २३५°, १३३°, ७०°, २६२°, और ३९° तथा (३७) विषमपदोंके अंतमें २३२°, १३२°, ७२°, २६०° आर ४०° होती हैं जो शीघ्रकर्मके लिए कही गयी हैं।

विज्ञान भाष्य—मन्दोच्चके कारण ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें जो अंतर होता है वह मन्दफल और शीघ्रोच्चके कारण मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें जो अंतर होता है वह शीघ्रफल कहलाता है। यह मन्दोच्च या शीघ्रोच्चकी दूरीके अनुसार घटता बढ़ता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रहोंमें जो सबसे

अधिक अंतर होता है वह मंदोच्चके कारण हुआ तो परम मन्दफल और शीघ्रोच्चके कारण हुआ तो परम शीघ्रफल कहलाता है। यह बेधसे अर्थात् नलिका यंत्र द्वारा देखनेसे जाना जाता है। परम मन्दफलकी ज्याको अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे मन्दपरिधि कहते हैं। इसी तरह परम शीघ्रफलकी ज्याको अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे शीघ्रपरिधि या चल-परिधि भी कहते हैं। यदि एक



चित्र २६

वृत्त खींचकर उसके मध्यमें पृथ्वी मान ली जाय और परिधि पर मध्यम ग्रह भ्रमण करता हुआ माना जाय तो परिधिको ग्रहका कक्षावृत्त या कक्षामण्डल कहते हैं। यदि इस कक्षावृत्तके ३६० समान भाग किये जांय तो ऐसे १४ भागोंके समान सूर्यकी मंदपरिधिका विस्तार, समपदोंके अंतमें होगा। ऐसे ही अन्य ग्रहोंकी मन्द और शीघ्रपरिधियोंके परिमाण के बारेमें

समझना चाहिये। इसे यों भी लिख सकते हैं कि सूर्यकी मन्द परिधि कक्षावृत्तका $\frac{१४}{३६०}$ होती है। चित्र २८ में यदि प पृथ्वीका स्थान, उ म स किसी ग्रहका कक्षावृत्त तथा म और स उसके मध्यम और स्पष्ट स्थान हों जब कि मसका मान परम हो तो मस धनुको ग्रहका परममन्दफल तथा इसकी ज्याको जो मसके बीचकी रेखात्मक दूरी है परममन्दफल ज्या कहते हैं। मसको अर्द्ध व्यास और मको मध्य मान कर जो छोटी परिधि खींची गयी है वह मन्दपरिधि है। यदि कक्षा वृत्तका विस्तार ३६० भाग माना जाय तो ऐसे जितने भागके समान मंदपरिधिका विस्तार होता है उतने ही अंशकी वह परिधि कहलाती है। इसी प्रकार शीघ्रपरिधिकी लम्बाईके बारेमें समझना चाहिये। यह परिमाण भी भिन्न भिन्न आचार्योंके मतसे भिन्न भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि परम मंदफलका मान सर्वदा एकसा नहीं रहता, शनैः शनैः बदलता जा रहा है। सूर्यका परम मन्दफल एक हजार वर्षमें ३ कला घटता जा रहा है। इस समय सूर्यका परम मंदफल $१^{\circ}५५'$ है। सूर्य सिद्धान्तमें सूर्यका परम मंदफल $२^{\circ}१३'४१''$ है। इसमें वेधकी स्थूलताके कारण भी अशुद्धि है।

ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता।
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ॥३८॥

अनुवाद—(३८) विषम और समपदोंके अंतकी मन्द या शीघ्रपरिधियोंके अंतरको मंदकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्रकी भुजज्यासे गुणा करके त्रिज्यासे भाग दे दो। यदि मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र समपदमें हो और विषमपदके अंतकी मंद या शीघ्र परिधिसे

समपदके अंतकी मंद या शीघ्रपरिधि कम हो तो उस लब्धिको समपदान्त परिधिमें जोड़ दो तो इष्ट केन्द्रकी स्फुट मंद या शीघ्रपरिधि होगी। परन्तु यदि विषमपदके अंतकी परिधिसे समपदके अंतकी परिधि अधिक हो तो उस लब्धिको सम पदान्त परिधि में घटा देनेसे स्फुट परिधि निकल आवेगी।

विज्ञान भाष्य—सूर्यसिद्धान्तका मत है कि मन्दपरिधि या शीघ्रपरिधिका मान मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्रकी भुजज्याके अनुसार बदलता रहता है। किस जगह इसका परिमाण क्या है यह त्रैराशिकसे निकालना चाहिए। क्योंकि यह दिया हुआ है कि सम और विषमपदोंके अंतमें इसके मान क्या हैं। बीचके किसी स्थानके मानको जाननेके लिए यह तर्क करना चाहिए कि जब त्रिज्या (भुजज्याका परम मान) के अंतर पर परिधियोंका अंतर दिया हुआ है तो इष्ट केन्द्रकी भुजज्याके अंतर पर कितना होगा। इस नियमको संक्षेपमें यों लिख सकते हैं—

स्फुट मंदपरिधि

$$= \text{मंदपरिधि} \pm \text{विषम और समपदोंके अंतकी परिधियोंका अंतर} \times \frac{\text{इष्ट केन्द्रकी भुजज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

जैसे सूर्यकी समपदान्त मन्दपरिधि ८४०′, विषम और समपदान्तोंके मंदपरिधियोंका अन्तर २०′ है, इसलिए यदि अभीष्ट मन्दकेन्द्र 'अ' हो तो स्फुट मन्दपरिधि होगी

$$८४०' - २०' \times \frac{\text{अ की भुजज्या}}{३४३८'}$$

क्योंकि समपदान्त मन्दपरिधि अधिक है।

इसी तरह अन्य ग्रहोंकी स्फुट मन्दपरिधि तथा शीघ्र परिधि निकालनी चाहिए।

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम् ॥३९॥

अनुवाद—(३९) स्फुट मन्द परिधिको क्रमसे भुजज्या और कोटिज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्दपरिधि अंशोंमें हो) या २१६०० से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओं-में हो) भाग दे दो। लब्धि क्रमसे भुजफल और कोटिफल (कलाओंमें) होगी। भुजफल जिस धनु (कोण) की ज्या होगी उसे ही मंदफल कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस नियमको संक्षेपमें यों लिख सकते हैं:—

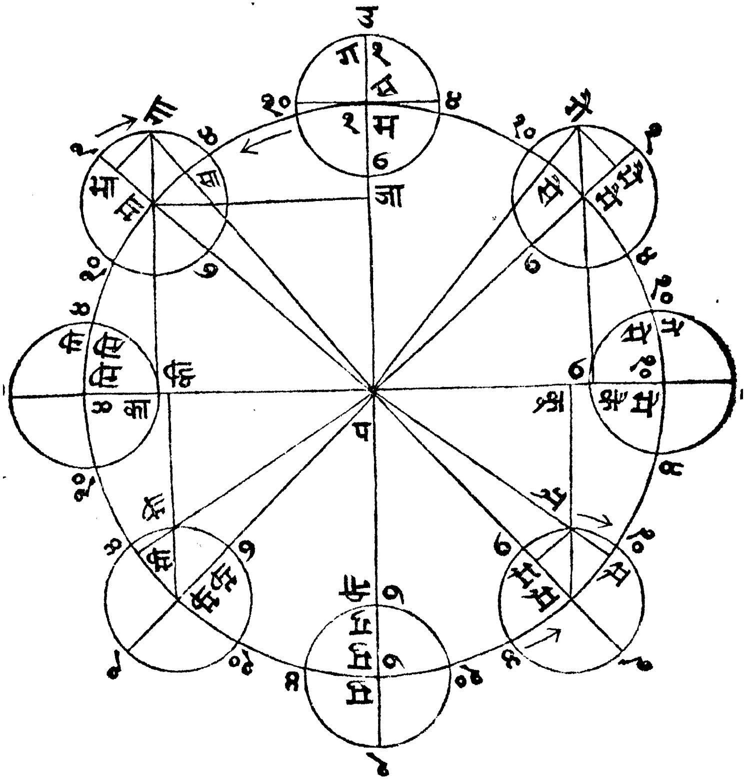
$$\text{भुजफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{भुजज्या}}{३६०}$$

$$\text{कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{कोटिज्या}}{३६०}$$

भुजफल जिस अंश (धनु) की ज्या हो वही मन्दफल कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणोंमें ३६० उसी समय होगा जब कि मन्दपरिधि अंशोंमें हो। यदि मन्दपरिधि कलाओंमें हो तो ३६०की जगह २१६०० रखना होगा।

इसकी उपपत्ति यों है:—ग्रहके मध्य और स्पष्ट स्थानोंका अंतर क्या होता है यह जानने के लिए हमारे आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गतिसे अनु-लोम दिशामें पृथ्वीकी परिक्रमा करता रहता है और स्पष्टग्रह मन्दपरिधि पर जिसके मध्यमें मध्यमग्रह रहता है, विलोम दिशामें इस प्रकार चल रहा है कि जितने समयमें मध्यम

ग्रह अपनी कक्षामें (कक्षावृत्तमें) पूरा चक्कर कर लेता है, उतने ही समयमें स्पष्टग्रह मन्दपरिधि पर अपना चक्कर कर लेता है। मन्दपरिधि पर चक्कर लगाते हुए स्पष्टग्रह कक्षावृत्तमें जहां देख पड़ता है उसी विन्दुको स्पष्टग्रहका स्थान कहते हैं। यह बात चित्र ३० से भली भांति समझमें आजायगी इसमें प पृथ्वीका केन्द्र है। प को केन्द्र मान कर पम त्रिज्या से जो बड़ा वृत खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यमग्रह अनुलोमदिशामें मध्यम गतिसे भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रहके आठ स्थान हैं म वह स्थान है जहां मध्यम और स्पष्ट ग्रहोंका अंतर शून्य होता है। अर्थात् इसी दिशामें ग्रहका मन्दोच्च होता है। कक्षावृत्तमें इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यहीं मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं और इसी जगहसे आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशामें तीन तीन राशिके अंतर पर चार पदोंमें बांटा गयाहै। इसीलिए पहले पदके अंतमें ४, दूसरे पदके अंतमें ७ और तीसरे पदके अंतमें १०के अंक लिखे गये है। म, मा, मि, इत्यादि मध्यम ग्रहके स्थानोंको मध्यमानकर ग्रहकी मन्दपरिधिके मानानुसार जो छोटे छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुटमन्द परिधि है। चित्र को स्पष्ट करनेकेलिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षावृत्तके विस्तार उसी अनुपातमें नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपातमें यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थोंमें दिये है। मंदपरिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियोंके मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। प म, प मा, प

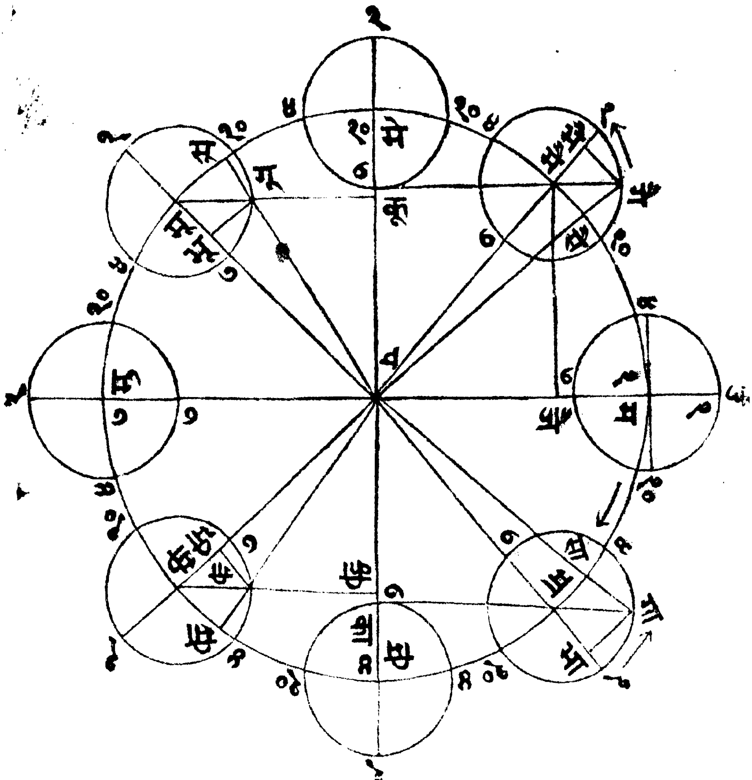


चित्र ३०

मि इत्यादि रेखाएं मंद परिधि के दूर वाले बिन्दुपर जहां पहुँ-
चती है वहां भी मंद परिधिपर १ के अंक लिखे हुए हैं।
यहांसे आरंभ करके मंद परिधि पर तीन तीन राशि या नब्बे
नब्बे अंशके अंतर पर विलोम दिशामें ४, ७, १० के अंक लिखे

गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है उस समय स्पष्टग्रह मंद परिधिके उस विन्दु पर रहता है जहां १ लिखा हुआ है। यही ग्रहके मन्दोच्चका स्थान है; इसलिए वहां उ भी लिखा हुआ है। जितने समयमें मध्यम ग्रह कक्षावृत्तपर म से मा तक आता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंदपरिधि पर १ से गा तक आता है; क्योंकि मध्यमग्रहका कक्षावृत्तपर और स्पष्ट-ग्रहका मंदवृत्त (मंदपरिधिको मंदवृत्त भी कहते हैं) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखाके जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलाने वाली रेखाको मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वीके मध्यसे स्पष्टग्रहकी दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षावृत्तको सा विन्दु पर काटता है, इसलिए स्पष्टग्रह कक्षावृत्तमें सा विन्दु-पर ही देख पड़ता है। इसी बिन्दुको स्पष्ट ग्रहका स्थान कहते हैं। सामा धनु अथवा सापमा कोणको मंदफल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोणको मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते हैं; इसलिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्रका अंतर मंदफल कहलाता है। मासे नीचोच्च रेखा प म पर माजा लम्ब है यही ममा मन्द्रकेन्द्रकी भुजज्या है। मासे माका लम्बको ममाकी कोटिज्या कहते हैं। यह उस रेखा पर लम्ब है जो प म से समकोण बनाती हुई प बिन्दु पर खींची गयी है। गा से पमा पर जो लम्ब गा भा डाला गया है उसे भुजफल और मा भा को कोटिफल कहते हैं।

इसी प्रकार जब मध्यम ग्रह मि, मी, मु,, मू, इत्यादि कक्षा-वृत्त के विन्दुओंपर रहता है तब स्पष्टग्रह क्रमसे गि, गी, गु, गू, इत्यादि मन्दवृत्तके विन्दुओंपर रहता है। ऐसी दशामें



स्पष्टग्रह कक्षा वृत्तके सि, सी, सु, सू, विन्दुओं पर देख पड़ता है। इन विन्दुओं पर भी भुजज्या, कोटिज्या, भुजफल, कोटि फल, इत्यादिके लिए वैसा ही समझना चाहिये जैसा पहले कहा गया है।

चित्र ३१

जब मन्दकेन्द्र तीन राशि या ९०° के समान होता है तब मध्यमग्रह मि पर होता है ऐसी दशामें स्पष्टग्रह मध्यमग्रह से परम अंतर मिसि पर होता है। यही परम मंदफल कहलाता है। जब मन्दकेन्द्र ६ राशि या १८०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मु पर और स्पष्टग्रह गु पर होता है; इसलिए स्पष्टग्रह कक्षावृत्तके सु विन्दु पर देख पड़ता है। इस जगह मन्दफल शून्य तथा मन्दकर्ण प गु सबसे छोटा होता है। जब ग्रह गु पर होता है, तब पृथ्वीसे अत्यन्त निकट होता है। इसी स्थान-को ग्रहका नीच कहते हैं।

जब मंदकेन्द्र ९ राशि या २७०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मे पर और स्पष्ट ग्रह गे पर होते हैं। इस जगह भी मध्यम और स्पष्ट ग्रहोंका अंतर परम होता है। चित्रमें, मे से परम मन्द फल है।

सूर्यसिद्धान्तके अनुसार मन्द केन्द्र विलोम दिशामें नापा जाता है; इसलिए इस पद्धतिके अनुसार कक्षावृत्त और मंदवृत्त पर १,४,७,१० के अंक इस प्रकार लिखे जाने चाहियें जैसे ३१ चित्रमें हैं। इससे शीघ्रकेन्द्रके सम्बन्धकी सब बातें भी जानी जा सकती हैं। इसीलिए सूर्य सिद्धान्तमें दोनों बातोंको एक ही चित्र द्वारा समझाया गया है। परन्तु इससे समझनेमें कुछ कठिनता पड़ती है। भास्कराचार्य ने इस चित्रको केवल शीघ्र-केन्द्र और इसीके सम्बन्धकी सब बातें जैसे शीघ्रफल शीघ्रकर्ण इत्यादिको जाननेके लिए प्रयोग किया है। दो चित्रोंसे भ्रम नहीं होता। इन दो चित्रोंकी सहायतासे ३९,४०,४१,४२ और ४५ वें श्लोकोंकी उपपत्ति सहज ही समझमें आ सकती है।

३९ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{भुजज्या}}{360}$$

$$\text{और}\quad \text{कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{कोटिज्या}}{360}$$

क्योंकि जब मध्यम ग्रह मा पर रहता है तब माजा भुजज्या, माका कोटिज्या, गाभा भुजफल और भामा कोटिफल कहलाते हैं। ऊपर यह समझाया गया है कि $<$ गामाभा $= <$ मापजा

और $<$ गाभामा $= <$ माजाप, **क्योंकि दोनों समकोण हैं।**

इसलिए $\triangle$ गा भा मा **और** $\triangle$ मा जा प **सजातीय** (Similar) हैं।

$\therefore$ गाभा : गामा :: माजा : माप

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{माजा}}{\text{माप}}$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}}$$

परन्तु गा मा स्फुट मंदपरिधिकी त्रिज्या है और माप कक्षा वृत्तकी त्रिज्या है, और दो वृत्तोंकी त्रिज्याओंमें परस्पर वही सम्बन्ध होता है जो उनकी परिधियोंमें होता है, इसलिए

$$\frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{मन्द परिधि (स्फुट)}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{अथवा}\ \frac{\text{भुजफल}}{\text{भुजज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{या भुजफल} = \frac{\text{भुजज्या} \times \text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}} \cdots (1)$$

यदि स्फुटपरिधि अंशोंमें हो तो कक्षावृत्तका मान ३६० होगा और यदि कलाओंमें हो ता कक्षावृत्तका मान २१६०० होगा।

इसी तरह भामा : गामा :: पजा : माप

$$\therefore \frac{\text{भामा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{पजा}}{\text{माप}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{भामा}}{\text{पजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{वा } \frac{\text{कोटिफल}}{\text{कोटिज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{वा कोटिफल} = \frac{\text{कोटिज्या} \times \text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}} \quad \cdots\cdots(२)$$

इस प्रकार ३६वें श्लोकके नियमकी उपपत्ति सिद्ध हो गयी। इस प्रकार जो भुजफल निकलता है वह जिस कोणकी ज्या होता है उस कोणको मन्दफल कहते हैं। चित्र २४ में गाभा भुजफलका कोण गापभा है, इसलिए गापभा कोण ही मंदफल है। इस कोणका मान भारतीय रीतिसे जानने के लिए त्रैराशिकसे पहले यह जानना चाहिये कि सामा जीवाका मान क्या है। △ पभागा और △ पमासा सजातीय हैं।

$$\text{इसलिए } \frac{\text{सामा}}{\text{साप}} = \frac{\text{गाभा}}{\text{गाप}}$$

$$\text{अथवा सामा} = \frac{\text{साप} \times \text{गाभा}}{\text{गाप}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{मंदकर्ण}} \qquad (३)$$

इस समीकरणसे जो कुछ आवे वह ज्या मन्दफलकी ज्या है, जिससे ज्याओंकी सारिणीसे मंदफल जाना जा सकता है। परंतु श्लोकमें भाके धनुको ही मन्दफल मान लिया गया है और समीकरण (३) की आवश्यकता नहीं बतलायी गयी है, इसका कारण यह है कि किसी ग्रहकी मन्द परिधिका मान इतना कम होता है कि मंद कर्ण गाप और त्रिज्या सापमें बहुत कम अंतर होता है जिसके कारण स्थूल रूपसे भुजफलके धनुको ही मंदफल मान लिया गया है। यदि सूक्ष्म गणना करना चाहे तो समीकरण (३) में जो कुछ बतलाया गया है वह संस्कार भी करना होगा: जैसा कि अगले ४०-४२ श्लोकोंमें शीघ्रफलके लिए नियम है; क्योंकि शीघ्रपरिधिके बड़े होनेसे शीघ्र कर्ण और त्रिज्याका अन्तर बहुत अधिक होता है; जिससे शीघ्र भुजफल और शीघफलके मानोंमें बहुत अंतर होता है। इसलिए ३९ वें श्लोकके अनुसार शीघ्र भुजफलको ही शीघ्रफल मान लेनेमें बहुत अशुद्धि रह जाती है।

शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्कादौ कोटिजं फलम् ॥४०॥
तद्बाहुफल वर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्ण विभाजितम् ॥४१॥
लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम्।
एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि ॥४२॥

अनुवाद—(४०)यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के ऊपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफलको त्रिज्यामें

जोड़े, परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र ३ राशिके ऊपर और ६ राशिके भीतर हो तो कोटिफलको त्रिज्यामेंसे घटावे; (४१) जो कुछ आवे उसका वर्ग करके भुजफलके वर्गमें जोड़ दे और योगफल का वर्गमूल निकाले, जो आवे वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्याको भुजफलसे गुण करके चलकर्णसे भाग दे दे, (४२) लब्धि जिस धनु (कोण) की ज्या होगी वही शीघ्रफल कह लाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पांच ग्रहोंके पहले और चौथे संस्कारके लिए काम में आता है।

विज्ञान भाष्य—३९ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यके अंतमें जिस समीकरण (३) की चर्चा है वह शीघ्रफल जाननेके लिए बड़ा आवश्यक है। शीघ्रफलके लिए इस समीकरण का रूप यह होगाः—

$$\text{ज्या मा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$$ इसमें जो भुजफल आया है वह तो ३९वें श्लोकसे ही जाना जा सकता है, त्रिज्याका मान पहलेसे नियत है, केवल शीघ्रकर्णका मान जानना रह गया जिसका नियम ४० वें और ४१ वें श्लोकके पूर्वार्द्धमें बतलाया गया है। चित्र ३१ से प्रकट है कि गाप, गीप, गूप और गैप चलकर्ण है। इनमेंसे

$$\text{गाप} = \sqrt{(\text{भाप})^2 + (\text{गाभा})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{भामा} + \text{माप})^2 + (\text{गा भा})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

इसी तरह $$\text{गैप} = \sqrt{(\text{भैमै} + \text{मैप})^2 + (\text{गैभै})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

परन्तु गीप $= \sqrt{(\text{भीप})^2 + (\text{गी भी})^2}$

$= \sqrt{(\text{मीप}-\text{मी भी})^2 + (\text{गी भी})^2}$

$= \sqrt{(\text{त्रिज्या}-\text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

और गूप $= \sqrt{(\text{मूप}-\text{मू भू})^2 + (\text{गू भू})^2}$

$= \sqrt{(\text{त्रिज्या}-\text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

इस प्रकार यह प्रकट है कि यदि शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदोंमें अर्थात् ३ राशिके भीतर और ९ राशिके ऊपर हो तो त्रिज्यामें कोटिफलको जोड़ना चाहिये परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदोंमें अर्थात् ३ राशिसे ऊपर और ९ राशिके भीतर हो तो त्रिज्यामें कोटिफलको घटाना चाहिये, फिर जो कुछ आवे उसके वर्गको भुजफलके वर्गमें जोड़कर वर्ग मूल निकालना चाहिये तो चलकर्ण ज्ञात हो जायगा। इन चारों समीकरणोंको एक समीकरणमें यों लिखा जा सकता है:-

चलकर्ण $= \sqrt{(\text{त्रिज्या} \pm \text{कोटिफल})^2 + \text{भुजफल})^2}$

इसमें धनात्मक चिह्न तब प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदोंमें हो और ऋणात्मक चिह्न उस समय प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदोंमें हो।

कर्क चौथा राशि है और मकर १०वीं, इसलिए 'कर्कादौ' का अर्थ है चौथी राशिसे ९वीं राशि और 'मकरादौ' का अर्थ

है १०वीं राशिसे ३री राशि तक। मकरादि और कर्कादि शब्दोंसे यह भ्रम हो सकता है कि जब ग्रह इन राशियोंमें हो तो उपर्युक्त धन या ऋण चिह्न प्रयोग करना चाहिये। इसलिए मैंने अनुवादमें राशिकी जगह पदोंका व्यवहार किया है जो मेरी समझमें अधिक स्पष्ट है।

जब चलकर्ण ज्ञात हो गया तब शीघ्रफल जाननेके लिए ३६वें श्लोकके समीकरण (२) का रूप यह होगा:—

$$\text{सामा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{शीघ्र भुजफल}}{\text{चलकर्ण}}$$

सामा जिस धनु (कोण) की ज्या है वही शीघ्रफल कहलाता है।

४२वें श्लोकके उत्तरार्द्धमें यह बतलाया गया है कि शीघ्रफलकी आवश्यकता केवल मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जानने के लिए पड़ती है, सूर्य और चन्द्रमाके लिए नहीं। सूर्य और चन्द्रमाके स्पष्ट स्थान तो केवल मंदफलके संस्कारसे आ जाते हैं जैसा कि अगले (४३वें) श्लोकमें बतलाया गया है।

यदि ३६-४१ श्लोकोंको बीज गणितके अनुसार एक ही समीकरणसे प्रकट करना चाहें तो उसका रूप यह होगा:—

$$\text{चलकर्ण} = \left\{ \left(३४३८ \pm \frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{कोटिज्या}}{२१६००} \right)^२ + \left(\frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{भुजज्या}}{२१६००} \right)^२ \right\}^{\frac{१}{२}}$$

इसमें शीघ्रकेन्द्रकी ज्या और कोटिज्या भारतीय रीतिसे निकाल कर उपर्युक्त ग्रहके 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' के लिए

लिखना चाहिये। शीघ्र स्फुट परिधि ३८वें श्लोकके अनुसार जानना चाहिये और इसे कलाओंमें लिखना चाहिये।

मान्दं कर्म कमर्केन्दो भैमादीनामथोच्यते।
शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात् ॥४३॥

अनुवाद—(४३) सूर्य और चन्द्रमा मन्दफलके केवल एक संस्कारसे स्पष्ट होते हैं; परन्तु मंगल आदि पांच ग्रहोंमें शीघ्रफलका एक संस्कार करनेके पीछे मंदफलके दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्रफलका संस्कार करना होता है।

विज्ञान भाष्य—हमारे प्राचीन आचार्योंने चंद्रमा का स्पष्ट स्थान जाननेके लिए केवल मंदफलका संस्कार करनेकी रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तवमें चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिंड है कि इस पर सभी ग्रहोंका प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गतिमें बहुत सी भिन्नताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस लिए आजकल छोटे छोटे कोई ४० संस्कार करनेसे चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारोंमें पांच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। इनकी चर्चा संक्षेपमें आगे उस स्थान परकी जायगी जहां आजकलकी पद्धतिसे ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेकी रीति बतलायी जायगी।

मंगल आदि पांच ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेके लिए जिन चार संस्कारोंकी चर्चा इस श्लोकमें है उनकी रीति अगले ४४वें श्लोकमें बतलायी गयी है।

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्र्यमेव च ॥४४॥

अनुवाद—(४४) मध्यम ग्रहको शीघ्रोच्चमेंसे घटा कर शीघ्रकेन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाले। इस शीघ्रफलका आधा मध्यम ग्रहमें जोड़े (यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशिसे कम हो) और घटावे (यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशिसे अधिक हो): जोड़ने या घटानेसे जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है। इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रहको मन्दोच्चमेंसे घटावे, शेषको मन्दकेन्द्र समझ कर, मंदफल बनावे। इस मंदफलका आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रहमें जोड़ने या घटानेसे जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है। दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रहको मन्दोच्चमेंसे फिर घटावे और शेषको दूसरा मन्दकेन्द्र मान कर दूसरा मंदफल बनावे। इस मंदफलको मध्यम ग्रहमें जोड़ने या घटानेसे जो आता है वही मन्द स्पष्ट ग्रह कहलाता है। मन्द स्पष्ट ग्रहको शीघ्रोच्चमेंसे घटाकर शीघ्रकेन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफलको मन्द स्पष्ट ग्रहमें जोड़ने या घटानेसे जो कुछ आवे वही स्पष्ट ग्रह कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—इस नियमको बीज-गणितकी रीतिसे यों लिख सकते हैं:—

शीघ्रोच्च − मध्यम-ग्रह = शीघ्रकेन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है।

पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{शीघ्रफल (पहला)}}{२}$$

मन्दोच्च – पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = संस्कृत मन्द केन्द्र, जिसका मंदफल प्रथम संस्कृत मंदफल है।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह =

$$\text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{मंदफल (प्रथम संस्कृत)}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{(पहला) शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{(पहला) मंदफल}}{२}$$

मन्दोच्च – दूसरा संस्कारयुक्त मध्यमग्रह = दूसरा संस्कृत मन्दकेन्द्र जिसका मंदफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है।

मंद स्पष्ट ग्रह = मध्यम ग्रह ± दूसरा (संस्कृत) मंदफल।

शीघ्रोच्च – मंदस्पष्टग्रह = दूसरा शीघ्रकेन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मंद स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल
= मध्यम ग्रह ± दूसरा मंदफल
± दूसरा शीघ्रफल

यह तो सूर्य सिद्धान्तके शब्दोंमें स्पष्ट ग्रह जाननेकी रीति हुई। परन्तु व्यवहारमें इससे बहुत झंझट करना पड़ता है, इसलिए इसीके सहारे सरल नियम इस प्रकार बनाया जा सकता है।

नीचे लिखी परिभाषाएं याद रखनी चाहियेः—

१ ली परिभाषा मंदोच्च – मध्यमग्रह = मंदकेन्द्र

२ री " शीघ्रोच्च – मध्यमग्रह = शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्रसे जो शीघ्रफल निकलता है वह पहला शीघ्रफल है।......(१)

$$\text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} = \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \;......(२)$$

प्रथम संस्कृतमंदकेन्द्र

$$= \text{मन्दोच्च} - \text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह}$$

$$= \text{मन्दोच्च} - \left(\text{मध्यमग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}\right)$$

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यमग्रह}) \mp \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}$$

$$= \text{मंदकेन्द्र} \mp \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \;..............(३)$$

इससे प्रकट है कि प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्र जाननेके लिए समीकरण (२) की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्दकेन्द्रमें पहले शीघ्रफलका आधा चिन्ह उलट कर (बीज गणितके अनुसार*) जोड़ देनेसे ही काम चल जायगा। इससे जो मंदफल बनाया जायगा वही पहला मंदफल या प्रथम संस्कृत मंदफल होगा।

---

* बीज गणितके अनुसार जोड़नेका अर्थ यह है कि यदि एक संख्या धनात्मक हो और दूसरी ऋणात्मक तो ऋणात्मक संख्याको धनात्मक संख्यासे घटाने पर जो कुछ आता है वह भी ऋणात्मक और धनात्मक संख्याओंका योगफल ही कहलाता है, यद्यपि अंकगणितमें इस योगफलको दोनोंका अंतर ही कहेंगे।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला मंदफल}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मंदफल}}{२} \cdots\cdots(४)$$

दूसरा संस्कृत मंद केन्द्र

$$= \text{मन्दोच्च} - \text{दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह}$$

$$= \text{मन्दोच्च} - \left(\text{मध्यमग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मंदफल}}{२}\right)$$

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यमग्रह}) \mp \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \mp \frac{\text{पहला मन्दफल}}{२}$$

$$= \left(\text{मंद केन्द्र} \mp \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}\right) \mp \frac{\text{पहला मन्दफल}}{२}$$

$$= \text{प्रथम संस्कृत मंद केन्द्र} \mp \frac{\text{पहला मन्दफल}}{२} \cdots\cdots(५)$$

जिससे सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र जाननेके लिए प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्रमें पहले मंदफलका आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (४) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मंदकेन्द्रसे जो मंदफल बनाया जायगा वही दूसरा मंदफल है।

$$\text{मंद स्पष्ट ग्रह} = \text{मध्यमग्रह} \pm \text{दूसरा मंदफल} \cdots\cdots(६)$$

दूसरा शीघ्रकेन्द्र = शीघ्रोच्च − मंद स्पष्ट ग्रह
= शीघ्रोच्च − (मध्यम ग्रह
± दूसरा मंदफल)
= (शीघ्रोच्च − मध्यम ग्रह) ∓ दूसरा मंदफल
= शीघ्रकेन्द्र ∓ दूसरा मंदफल ···(७)

इससे सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्रकेन्द्र जाननेके लिए, शीघ्रकेन्द्रमें दूसरा मंदफल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (६) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्रकेन्द्रसे जो शीघ्रफल बनेगा वही दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मंद स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल
= मध्यम ग्रह ± दूसरा मंदफल
± दूसरा शीघ्रफल······(८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रहमें दूसरे मंदफलको और दूसरे शीघ्रफलको बीजगणितके अनुसार जोड़ दो अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़ो और जो ऋणात्मक हो उसको घटाओ। दूसरा मंदफल और दूसरा शीघ्रफल समीकरण (५) और (७) से जानना चाहिए।

संक्षेपमें नियम यह हुआ:—

(१) शीघ्रफलका आधा चिह्न उलट कर मंदकेन्द्रमें (बीजगणितके अनुसार) जोड़ दो तो प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्र आ आवेगा। इसीका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल या पहला मंदफल है।

(२) प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्रमें पहले मंदफलका आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो तो दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र आ

जावेगा। इसीका मंदफल दूसरा संस्कृत मंदफल या दूसरा मन्दफल है।

(३) शीघ्रकेन्द्रमें दूसरा मंदफल चिह्न उलट कर जोड़ दो तो संस्कृत शीघ्रकेन्द्र आवेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्र-फल है।

(४) मध्यम ग्रहमें दूसरा मंदफल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटे जोड़ दो तो स्पष्ट ग्रह आ जावेगा।

सूर्य सिद्धान्तमें स्पष्ट ग्रह जाननेका यही नियम है। अन्य आचार्यों ने इससे कुछ भिन्न रीतिसे काम लिया है, जिनकी तुलना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसे पेंचदार नियम केवल इसलिए बनाये गये थे कि स्पष्ट ग्रहका स्थान ठीक ठीक ज्ञात हो जाय। इसलिए जिस जिस नवीन संस्कारसे स्पष्ट ग्रहका स्थान प्रायः ठीक ठीक जाना जा सकता था वह सब काममें लाये जाते थे। इसी लिए आचार्योंके मतोंमें भिन्नता है। केवल इतने ही नियमोंसे यथार्थ स्थान नहीं जाना जा सकता है, इसकी परीक्षा आजकल कोई भी कर सकता है; इसलिए मेरा विचार है कि जिन जिन संस्कारोंसे यह बात ठीक हो सकती है उनका प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टिसे मैं उन नवीन रीतियोंको भी विज्ञान भाष्यमें लिखूंगा जिनसे वेध और गणितमें समानता आ सकती है। परन्तु पहले कुछ उदाहरण दे देना चाहिये, जिनसे यह सहज ही जाना जा सके कि इन नियमोंसे स्पष्ट ग्रह कैसे जाना जा सकता है। इसके लिए मैं सूर्य, बुध और गुरु तीन ग्रहोंके उदाहरण दूंगा।

उदाहरण १—१९७९ वि०की वसंत पंचमीकी अर्द्ध रात्रि-को उज्जैनमें सूर्य, बुध और गुरुके स्पष्ट स्थान क्या थे ?

पहले इनके मन्दोच्चके स्थान जानना है—

सृष्टिके आरंभसे १९७९ वि०की मेष संक्रान्ति तक १,९५,५८,८५,०२३ सौर वर्ष बीते (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ ५६) एक कल्पमें सूर्यके मन्दोच्चके ३८७ भगण होते हैं; इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति तक

$$\frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{३८७}}{\text{४,३२००,००,०००}} = \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{४३}}{\text{४८,००,००,०००}}$$

$$= \frac{\text{८४१०.३०५५९८९}}{\text{४८}}$$

= १७५ भगण २ राशि १७ अंश १७′३१″.१७०३

अर्थात् १९७९ वि०की मेष संक्रान्तिके दिन सूर्यके मन्दोच्च-का स्थान था २रा१७ १७′३१″.१७०३। मन्दोच्चकी गति इतनी कम (सूर्य सिद्धान्तके अनुसार) होती है कि मन्दोच्चका यह स्थान कई वर्ष तक यही माना जा सकता है।

इसी तरह बुधके मन्दोच्चका स्थान

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{३६८}}{\text{४३२} \times \text{१०}^{\text{७}}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{\text{४४९८.५३५५५२९}}{\text{२७}} \text{ भगण}$$

$$= \text{१६६}^{\text{भ}}\text{७}^{\text{रा}}\text{१०}^{\circ}\text{२८}'\text{२६.}''\text{५४}$$

∴ १९७९ वि०में बुधके मन्दोच्चका स्थान ७रा१०°२८′२६.″५४ है।

इस समय गुरुके मन्दोच्चका स्थान

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times ९००}{४३२ \times १०^{७}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{१९५५८·८५०२३}{४८} \text{ भगण}$$

$$= ४०७^{भ} ५^{र} २१^{\circ} २२' ३६·'' २१$$

∴ १९७९ वि०में गुरुके मन्दोच्चका स्थान $५^{रा} २१^{\circ} २२' ३६·'' २१$ है ।

इन ग्रहोंके मध्यम स्थान जाननेके लिए कलियुगके आदिसे अहर्गण निकाल कर गणना करनी चाहिये, जैसा कि मध्यमाधिकारके ५६ वें श्लोकमें बतलाया गया है ।

कलियुगके आदिसे १९७९ वि०की वसंत पंचमीकी अर्द्ध रात्रि तकके अहर्गण (मध्यमाधिकार पृष्ठ ५०–६० के अनुसार निकाला तो) १८,३४,९७७ हुए ।

जब एक महायुगीय सावन दिनमें अर्थात् ५७,७९,१७,८२८ सावन दिनमें सूर्यके ४३,२०,००० भगण होते हैं तब १८,३४,९७७ सावन दिनमें भगण

$$= \frac{१८,३४,९७७ \times ४३२ \times १०^{४}}{१५७७९१७८२८}$$

$$= ५०२३^{भ} ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$$

∴ सूर्यका मध्यम स्थान $= ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$

इसी तरह गुरुका मध्यम स्थान

$$= \frac{१८३४९७७ \times ३६४२२०}{१५७७९१७८२८}$$

$$= ४२३^{भ} ६^{रा} १९^{\circ} ५२' ३७''$$

$$= ६^{रा} १९^{\circ} ५२' ३७''$$

और बुधके शीघ्रोच्चका स्थान

$$= \frac{१८,३४,९७७ \times १,७९,३७,०६०}{१,५७,७९,१७,८२८}$$

$$= १०८५९^{भ} २^{रा} ९^{\circ} २९' १७''$$

$$= २^{रा} ९^{\circ} २९' १७''$$

अब पहले सूर्यका स्पष्ट स्थान जानना चाहियेः- इस अध्यायके श्लोक २९ के अनुसार, सूर्यका मन्दकेन्द्र
=सूर्यके मन्दोच्चका स्थान — सूर्यका मध्यम स्थान

$$= २^{रा} १७^{\circ} १७' ३१'' - ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$$

$$= ५^{रा} ९^{\circ} ५' २२''$$

$$= १५९^{\circ} ५' २२''$$

यहां २ राशि ९ राशिसे कम है इसलिए २ में १२ राशि (१ भगण) जोड़कर योगफलमें से ९ राशि घटायी गयी है। ऐसी ही क्रिया जहां कहीं आवश्यकता पड़े करनी चाहिये।

मन्दकेन्द्र ३ राशिसे अधिक और ६ राशिसे कम है इसलिए दूसरे पदमें है और गत भाग ६९°५'२२" तथा गम्य भाग (९०° मेंसे गत भाग घटानेपर) २०°५४'३८" है। इसलिए ३०वें श्लोकके अनुसार गम्यकी ज्या अर्थात् २०°५४'३८" की ज्या भुजज्या होगी और ६९°५'२२" की ज्या कोटिज्या होगी।

$$२०^{\circ} ५४' ३८'' = २०^{\circ} ५५' \text{ स्वल्पान्तरसे}$$

$$= २० \times ६० + ५५ \text{ कला}$$

$$= ११५५'$$

३१वें श्लोकके अनुसार १२५५′ को २२५ से भाग देने पर गतपिंड ५ और ६ठें पिंडमें १३०′ आया।

$$\text{५वें पिंडकी ज्या} = \text{११०५}'$$
$$\text{६ठें} \;\;\text{"}\;\;\;\text{"} = \text{१३१५}'$$
$$\text{दोनों ज्याओंका अन्तर २१०}'$$

अब २२५ : १३०′ :: २१० : अभीष्ट

$$\therefore \text{अभीष्ट ज्या का अन्तर} = \frac{\text{१३०} \times \text{२१०}}{\text{२२५}}$$
$$= \frac{\text{३६४}}{\text{३}}$$
$$= \text{१२१}'$$

इसलिए ३२ वें श्लोकके अनुसार जब १२१′ को ५ व पिंड की ज्या अर्थात् ११०५′ में जोड़ा तो आया १२२६′; यही इष्ट भुजज्या है।

३४ वें श्लोकके अनुसार सूर्यकी मन्द परिधि समपदके अन्तमें १४° और विषमपदके अंतमें २०′ कम होती है, इसलिए जब भुजज्या १२२६′ होगी तब ३८ वें श्लोकके अनुसार मंद परिधि $\frac{\text{२०}' \times \text{१२२६}'}{\text{३४३८}'}$ अर्थात् स्वल्पान्तरसे ७′ कम होगी,

$$\therefore \text{स्फुट मन्द परिधि} = \text{१४}^\circ - \text{७}'$$
$$= \text{१४} \times \text{६०} - \text{७ कला}$$
$$= \text{८३३}'$$

इसलिए ३९ वें श्लोकके अनुसार,

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{८३३} \times \text{१२२६}}{\text{२१६००}} \text{ कला}$$

$$= \frac{१०२११२५८}{२१६००}$$

= ४७′ स्वल्पान्तर से

इसी भुजफलको मन्दफल मान लिया जाता है। यदि और सूक्ष्म गणना करनी होतो ४० – ४२ श्लोकोंकी क्रिया भी करनी चाहिये जैसा कि ३९ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यके समीकरण (३) में दिखलाया गया है। परन्तु ऐसा करने में गणित बहुत करना पड़ता है और अन्तर बहुत कम होता है, इसलिए मन्दफलके लिए ४० – ४२ श्लोकोंकी क्रिया करनेकी आवश्यकता नहीं है।

यही मन्दफल सूर्यके मध्यम स्थान में जोड़ना चाहिये क्योंकि मंदकेन्द्र पहले दो पदोंमें है, जैसा कि ५वें और आगे आनेवाले ४५ वें श्लोकोंमें बतलाया गया है। इसलिए सूर्यका स्पष्टस्थान उज्जैनमें वसंत पंचमीकी मध्यम अर्द्धरात्रिको ९रा ८° १२′ ९″ + ४७′ अर्थात् ९रा ८° ५९′ ९″ होगा।

गुरुका स्पष्ट स्थान जानने के लिए—

गुरुका मन्दकेन्द्र = गुरुका मन्दोच्च – गुरुका मध्यम स्थान

= ५रा २१° २२′ ३६″ – ६रा १९° ५२′ ३७″

= ११रा १° ३०′ स्वल्पान्तरसे

गुरुका शीघ्रकेन्द्र = गुरुका शीघ्रोच्च – गुरुका मध्यम स्थान

= सूर्यका मध्यम स्थान – गुरुका मध्यम स्थान

= ९रा ८° १२′ ९″ – ६रा १९° ५२′ ३७″

= २रा १८° १९′ ३२″

= २रा १८° २०′ स्वल्पान्तरसे

= ७८° २०′

शीघ्रकेन्द्र २ राशिसे कम है इसलिए विषमपदमें है; इसलिए ७८° २०′ की ज्या शीघ्र भुजज्या और ११° ४०′ की ज्या शीघ्र कोटिज्या हुई।

$$\text{७८}^\circ\ \text{२०}' = \text{७८} \times \text{६०} + \text{२०}\ \text{कला}$$

$$= \text{४७००}\ \text{कला}$$

$$\frac{\text{४७००}}{\text{२२५}} = \text{२०}\ \text{पिंड} + \text{२००}\ \text{कला}$$

२० वें पिंड की ज्या = ३३२१′

२१ वें पिंड की ज्या = ३३७२′

दोनोंकी ज्याओंका अन्तर = ५१′

२२५ : २०० : : ५१ : अभीष्ट अन्तर

$$\therefore \text{अभीष्ट अन्तर} = \frac{\text{२००} \times \text{५१}}{\text{२२५}} = \frac{\text{१३६}}{\text{३}} = \text{४५}'$$

$$\therefore \text{शीघ्रभुजज्या} = \text{३३२१}' + \text{४५}' = \text{३३६६}'$$

$$\text{११}^\circ\ \text{४०}' = \text{११} \times \text{६०} + \text{४०} = \text{७००}'$$

$$\frac{\text{७००}}{\text{२२५}} = \text{३}\ \text{पिंड} + \text{२५}$$

३ रे पिंडकी ज्या = ६७१′

४ थे पिंडकी ज्या = ८९०′

दोनोंका अंतर = २१९

२२५ : २५ : : २१९ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{अभीष्ट अंतर} = \frac{\text{२५} \times \text{२१९}}{\text{२२५}} = \text{२४}'$$

∴ शीघ्र कोटिज्या = ६७१′ + २४′ = ६९५′ । गुरुकी शीघ्र परिधि विषम पदान्तमें ७२° और सम पदान्तमें ७०° हैं, इस लिए दोनोंका अंतर २° है और ३८ वें श्लोकके अनुसार

$$\text{स्फुट शीघ्र परिधि} = ७०° + \frac{२° \times ३३१६}{३४३८}$$

= ७०° + २° स्वल्पान्तरसे

= ७२°

$$\therefore \text{शीघ्र भुजफल} = \frac{७२ \times ३३६६}{३६०}$$ [श्लोक ३९ ।

= ६७३′

$$\text{और शीघ्र कोटिफल} = \frac{७२ \times ६९५}{३६०}$$

= १३९′

शीघ्र केन्द्र पहले पदमें है इसलिए शीघ्र कोटिफल ४० वें श्लोकके अनुसार त्रिज्यामें जोड़ना चाहिये, इसलिए शीघ्रकर्ण

$= \sqrt{(३४३८ + १३९)^२ + ६७३^२}$ [श्लोक ४१ उत्तरार्ध

$= \sqrt{३५७७^२ + ६७३^२}$

$= \sqrt{१,२७,९४,९२९ + ४,५२,९२९}$

$= \sqrt{१,३२,४७,८५८}$

= ३६४०′ स्वल्पान्तरसे

$$\text{शीघ्रफल} = \frac{३४३८ \times ६७३}{३६४०}$$ कला [श्लोक ४१ का उत्तरार्द्ध, ४२का पूर्वार्द्ध]

= ६३६ कला

यह पहला शीघ्रफल हुआ। यह धनात्मक है, क्योंकि शीघ्र केन्द्र पहले पदमें है। यदि सूर्य सिद्धान्तके अनुसार आगेकी क्रियाएं करनी हों तो ४४ वें श्लोकके अनुवादमें जो कुछ लिखा गया है उसके अनुसार करना चाहिये। परन्तु यह बहुत लम्बी रीति है इसलिए इस श्लोकके विज्ञान भाष्यके अंतमें जो संक्षिप्त नियम लिखे गये हैं उन्हींके अनुसार क्रिया करता हूँ:—

नियम (१) के अनुसार +६३६′ का आधा, चिह्न उलटने से −३१८′ अर्थात् −५° १८′ हुआ। इसको गुरुके मंदकेन्द्र ११रा १° ३०′ में बीज गणितके अनुसार जोड़ा तो आया १०रा २६° १२′। यही प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्र हुआ। इसका मन्द फल प्रथम संस्कृत मंदफल हुआ।

१०रा २६° १२′ नव राशिसे अधिक है इसलिए चौथे पदमें है, जिसका १रा २६° १२′ अर्थात् ५६° १२′ गत और ३३° ४८′ गम्य है।

$$३३° ४८′ = ३३ \times ६० + ४८ \text{ कला}$$
$$= २०२८ \text{ कला}$$
$$= ९ \text{ पिंड} + ३′$$

९ वें पिंडकी ज्या = १९१०′

१० वें ” ” = २०९३′

∴ दोनों ज्याओंका अंतर १८३′

२२५ : ३′ :: १८३′ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{ अभीष्ट अंतर} = \frac{३ \times १८३}{२२५} = २′$$

$$\therefore \text{ मंद भुजज्या} = १९१०′ + २′ = १९१२′$$

बृहस्पति की मन्द परिधियों का अंतर १° है इसलिये ३८ वें श्लोकके अनुसार,

$$\text{मन्द स्फुट परिधि} = ३३^\circ - \frac{१^\circ \times १९१२}{३४३८}$$

$$= ३३^\circ - ३३'$$

$$= १९४७'$$

$$\therefore \text{प्रथम संस्कृत मंदफल} = \frac{१९४७ \times १९१२}{२१६००} \text{ (श्लोक ३९)}$$

$$= १७२'$$

यह ऋणात्मक है, क्योंकि मंदकेन्द्र चौथे पदमें है; इसका आधा, चिह्न उलटनेसे + ८६′ होगा। नियम (२) के अनुसार

$$\text{दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र} = १०^{रा} २६^\circ १२' + ८६'$$

$$= १०^{रा} २७^\circ ३८'$$

इसका मंदफल दूसरा संस्कृत मंदफल होगा।

अब $१०^{रा} २७^\circ ३८'$ चौथे पदमें है, जिसका $१^{रा} २७^\circ ३८'$ गत और $१^{रा} २^\circ २२'$ गम्य है।

$$१^{रा} २^\circ २२' = ३२^\circ २२' = ३२ \times ६० + २२ \text{ कला}$$

$$= १९४२' = ८ \text{ पिंड} + १४२'$$

८ वें पिंडकी ज्या = १७१९

९ वें पिंडकी ज्या = १९१०

अंतर १९१′

२२५′ : १४२′ : : १९१ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{अभीष्ट अंतर} = \frac{१४२ \times १९१}{२२५} = १२१'$$

$\therefore$ मंद भुजज्या = १७१६ + १२१ = १८४०′

$\therefore$ मंद स्फुट परिधि = ३३° − $\frac{१° \times १८४०}{३४३८}$

= ३३° − ३२′

= १६४८′

$\therefore$ दूसरा संस्कृत मंदफल = $\frac{१६४८ \times १८४०}{२१६००}$

= १६६′ = २°४६′ ...(१)

यह भी ऋणात्मक है। इसलिए इसका चिह्न उलट कर, नियम (३) के अनुसार शीघ्र केन्द्रमें जोड़ देनेसे संस्कृत शीघ्र-केन्द्र आवेगा।

इसलिए संस्कृत शीघ्र केन्द्र = ७८°२०′ + २°४६′

= ८१°६′

यह प्रथम पदमें है, इसलिए इसकी ज्या शीघ्र-भुजज्या और ८°५४′ की ज्या शीघ्र-कोटिज्या होगी।

८१°६′ = ८१ × ६० + ६ कला

= ४८६६ कला

= २१ पिंड १४१′

२१ वें पिंडकी ज्या = ३३७२′

२२ वें पिंडकी ज्या = ३४०९′

दोनोंका अंतर ३७′

२२५ : १४१ :: ३७ अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर = $\frac{१४१ \times ३७}{२२५}$ = २३′

∴ शीघ्र भुजज्या = ३१७२' + २३'

= ३१९५'

८° ५४' = ८ × ६० + ५४ कला

= ५३४ कला = २ पिंड ८४'

२रे पिंडकी ज्या = ४४९

३रे पिंडकी ज्या = ६७१

अंतर = २२२'

∴ २२५ : ८४ :: २२२ : अभीष्ट अन्तर

∴ अभीष्ट अन्तर = $\frac{\text{८४} \times \text{२२२}}{\text{२२५}}$ = ८३'

∴ शीघ्रकोटिज्या = ४४९ + ८३'

= ५३२'

गुरुकी शीघ्रपरिधि विषम पदान्तमें ७२° है, इसलिए पहलेकी तरह इस बार भी स्फुट शीघ्र परिधि ७२° ही होगी।

∴ शीघ्र भुजफल = $\frac{\text{७२} \times \text{३१९५}}{\text{३६०}}$ कला

= ६७९'

और शीघ्र कोटिफल = $\frac{\text{७२} \times \text{५३२}}{\text{३६०}}$

= १०६'

यह शीघ्रकोटिफल त्रिज्यामें जोड़ा जायगा।

इसलिए, शीघ्रकर्ण = $\sqrt{(\text{३४३८} + \text{१०६})^{\text{२}} + \text{६७९}^{\text{२}}}$

= $\sqrt{\text{३५४४}^{\text{२}} + \text{६७९}^{\text{२}}}$

= ३६०८'

$$\therefore \text{दूसरा शीघ्रफल} = \frac{\text{३४३८} \times \text{६७९}}{\text{३६०८}}$$ [श्लोक ४१,४२

$$= \text{६४७ कला}$$

$$= +\text{१०}^{\circ}\text{४७}' \cdots\cdots\cdots (\text{२})$$

$\therefore$ नियम (४) के अनुसार,

स्पष्ट गुरु = मध्यम गुरु + दूसरा मंदफल + दूसरा शीघ्रफल।

$$= \text{६}^{\text{रा}}\text{१९}^{\circ}\text{५२}'\text{३७}'' - \text{२}^{\circ}\text{४६}' + \text{१०}^{\circ}\text{४७}'$$

$$= \text{६}^{\text{रा}}\text{२७}^{\circ}\text{५३}'\text{३७}''$$

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक ग्रह-को स्पष्ट करनेके लिए दो बार शीघ्रफल और दो बार मन्दफल निकालना पड़ता है और प्रत्येकके लिए भुजज्या, कोटिज्या, स्फुट-परिधि भुजफल, कोटिफल शीघ्रकर्ण तथा शीघ्रफल निकालना होता है। यदि शून्यसे ९०° तकके एक एक अंश या आधे आधे अंश की ज्या और कोटिज्या की सारिणी दी हुई हो तो भुजज्या और कोटिज्या सारिणी देखकर जानी जा सकती है। यह सारिणी सब ग्रहोंके लिए काममें आ सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रहके मन्दफल और शीघ्रफल की भी सारिणी बनायी जा सकती है जिससे स्पष्ट करनेकी लम्बी क्रिया बहुत संक्षिप्त हो जायगी और गुणा भाग करनेका भी झंझट मिट जायगा। व्यवहारमें ऐसा होता भी है। आजकल मकरंद सारिणी अधिक काममें आती है।

इसी प्रकार बुधका भी स्पष्ट स्थान जाना जा सकता है। मध्यम बुधका स्थान वही होता है, जो सूर्यका। शीघ्रोच्चका स्थान जानना होता है। और बातें सब उसी प्रकार करनी

पड़ती हैं जैसी गुरुके लिए की गयी हैं। उदाहरण देकर पुस्तकका आकार बढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

अजादि केन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्मणि।
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च ॥४५॥

अनुवाद—(४५) जब शीघ्रकेन्द्र या मन्दकेन्द्र ६ राशिसे कम हो तो शीघ्रफल या मन्दफल धनात्मक होता है, इसलिए सब कामोंमें जोड़ा जाता है और जब शीघ्रकेन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशिसे अधिक होता है तब घटाया जाता है।

विज्ञान भाष्य—अज या मेष पहली राशिका नाम है इसलिए अजादि केन्द्रका अर्थ है पहली राशिसे ६ राशि तकका केन्द्र और तुलादि केन्द्रका अर्थ है सातवीं राशिसे १२ वीं राशि तकका केन्द्र जैसा कि ४० वें श्लोकमें कर्कादि और मकरादिके लिए समझाया गया है। जोड़ने और घटानेका कारण ५ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें तथा और कई स्थानोंमें बतलाया गया है (देखो चित्र १५)।

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत् ॥४६॥

अनुवाद— (४६) सूर्यके भुजफल (मंदफल) को ग्रहकी दैनिक स्पष्टगतिसे गुणा करके गुणनफलको १२ राशिकी कलाओंसे अर्थात् २१६०० कलाओंसे भाग देने पर जो आवे उसको ग्रहके स्पष्टमें जोड़ो (यदि सूर्यका मन्दफल धनात्मक हो) और घटाओ (यदि सूर्यका मंदफल ऋणात्मक हो) ऐसा करनेसे स्पष्ट अर्द्धरात्रि कालका ग्रह स्पष्ट होगा।

विज्ञानभाष्य—जिस समय मध्यम सूर्य याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस समय मध्यम मध्यान्ह और जिस समय स्पष्ट सूर्य याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस समय स्पष्ट मध्यान्ह होता है। इसी प्रकार जिस समय मध्यम सूर्य पातालमें (याम्योत्तर वृतके उस भागमें जो क्षितिजके नीचे होता है) होता है उस समय मध्यम अर्द्धरात्रि और जिस समय स्पष्ट सूर्य पातालमें होता है उस समय स्पष्ट अर्द्धरात्रि होती है। इससे यह प्रकट है कि स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्यसे जितना पहले या पीछे याम्योत्तर वृत या पातालमें आवेगा उतना ही पहले या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी। परन्तु स्पष्ट और मध्यम सूर्यके अंतरको मंदफल कहते हैं; इसलिए जितने समयमें मंदफलके समान क्रान्तिवृत्तका खंड याम्योत्तर उल्लंघन करेगा उतने ही समय आगे या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी।

इतने समय में ग्रह जितना चलेगा उतना जानकर मध्यम अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रहमें जोड़ने या घटाने से स्पष्ट अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रह होगा। सूक्ष्म गणना करनेके लिए पहले यह जानना चाहिये कि मंदफलके समान क्रान्तिवृतका खंड याम्योत्तरवृतका उल्लंघन कितनी देरमें करेगा परन्तु ऐसा न करनेसे भी अशुद्धि बहुत कम होती है। इसलिए संक्षेपमें इतना ही करना बस है कि जितने समयमें पूरा भूचक्र याम्योत्तर वृतका उल्लंघन करता है उतने समयमें ग्रह अपनी दैनिक गतिके समान आगे बढ़ता है इसलिए जितने समयमें मंदफलके समान क्रान्तिवृत याम्योत्तर वृत्तका उल्लंघन करता है उतने समयमें ग्रहको गति क्या होगी।

इस सम्बन्धमें कुछ विशेष चर्चा आगे की जायगी जब 'काल समीकरण' पर लिखा जायगा।

स्वमन्दभुक्ति संशुद्धा मध्यभुक्तिर्निशापतेः।
दोर्ज्यान्तरादिकं कृत्वा भुक्तावृणधनं भवेत् ॥४७॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः ॥४८॥
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृता कलाः।
कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥४९॥

अनुवाद— (४७) चन्द्रमाकी मध्यम दैनिक गतिसे इसके मंदोच्चकी दैनिक गति घटा कर आगे (४८-४९ श्लोकोंमें) बतलायी जाने वाली क्रियासे चन्द्रमाका मंद गति फल निकाल कर दैनिक मध्यम गतिमें घटाने या जोड़नेसे चन्द्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति निकलती है। (४८) अन्य ग्रहोंकी मध्यम दैनिक गतिसे ही मंदगतिफल ग्रहके मंदफल जाननेकी क्रियाकी तरह जानना चाहिए जिसकी रीति यह यह है—मध्यम दैनिक गतिको गत और गम्य भुजज्याओंके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलको २२५ से भाग दे दो; (४९) लब्धिको मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांशसे (यदि मंदपरिधि अंशों में हो तो ३६० से और यदि कलाओंमें हो तो २१६०० से) भाग दे दो. लब्धि कलाओंमें होगी। यदि मंदकेंद्र दूसरे और तीसरे पदोंमें (कर्कादि पदों में) हो तो जोड़ो और पहले या चौथे पदोंमें (मकरादि पदोंमें) हो तो घटाओ। ऐसा करनेसे सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति तथा अन्य ग्रहोंकी मन्द स्पष्ट दैनिक गति ज्ञात होती है।

विज्ञान भाष्य—किसी ग्रहकी मध्यम दैनिक गतिमें से उसके मन्दोच्चकी दैनिक गति घटा देनेसे उसके मन्दकेन्द्रकी दैनिक गति ज्ञात होती है। इसेही ग्रहकी केन्द्र गति कहते हैं। परंतु चन्द्रमाके सिवा अन्य ग्रहोंके मंदोच्चकी गति इतनी कम होती है कि उसके छोड़ देनेसे कोई अशुद्धि नहीं हो सकती इस लिए अन्य ग्रहोंकी मध्यम दैनिक गति ही केन्द्र गति समझ ली गयी है, केवल चन्द्रमाके लिए केन्द्रगति जाननेका विधान है। जैसे मध्यम ग्रहमें मन्दफलका संस्कार देनेसे मन्दस्पष्ट ग्रह निकलता है वैसे ही मध्यम दैनिक गतिमें गतिके मन्दफल अथवा मन्द गति फलका संस्कार देनेसे मन्द स्पष्ट गति ज्ञात होती है। सूर्य चन्द्रमाके लिए यही स्पष्ट दैनिक गतिहो जाती है। अन्य ग्रहोंके लिए अगले ५०—५२ श्लोकोंमें बतलायी जानेवाली क्रिया भी करनी चाहिए। इस नियमकी उपपत्ति यों है:—

एक दिनमें स्पष्ट ग्रह जितना चलता है वही ग्रहकी स्पष्ट दैनिक गति है। इस लिए स्पष्ट दैनिक गति जाननेके लिए केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि किसी दिनके आरंभ और अंतमें स्पष्ट ग्रहके स्थान क्या थे; इन्हींका अंतर स्पष्ट दैनिक गति है। परन्तु दिनके आरंभ और अंतमें स्पष्ट ग्रहोंके स्थान जाननेमें बहुत गुणा भाग करना पड़ेगा इस लिए उपर्युक्त सरल क्रिया भी हो सकती है जिसकी उपपत्ति यह है:—

दैनिक स्पष्ट गति

= (दिनके) अंतका स्पष्ट ग्रह—(दिनके) आरंभका स्पष्टग्रह

= (अंतका मध्यम ग्रह $\pm$ अंतका मन्दफल)—(आरंभका मध्यमग्रह $\pm$ आरंभका मन्दफल)

= (अंतका मध्यम ग्रह—आरंभका मध्यम ग्रह) ± (अंतका मन्दफल—आरंभका मन्दफल)

= मध्यम दैनिक गति ± (अंतका मन्दफल – आरम्भका मंदफल)……(१)

परन्तु (दिनके) अंतका मंदफल

$= \frac{\text{मंद परिधि} \times \text{अंतके केन्द्रकी भुजज्या}}{३६०}$ का धनु [श्लोक ३९

और (दिनके) आरम्भका मंदफल

$= \frac{\text{मंद परिधि} \times \text{आरम्भके केन्द्रकी भुजज्या}}{३६०}$ का धनु

इसलिए इन दोनोंका अन्तर (स्थूल रीतिसे)

$= \frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०} \left\{ \text{अंतके केन्द्रकी भुजज्या – आरम्भके केन्द्रकी भुजज्या} \right\}$ ……(२

परन्तु (दिनके) अंतके केन्द्रकी भुजज्या= (दिनके आरम्भका केन्द्र + केन्द्रकी दैनिक गति) की भुजज्या

= दिनके आरम्भके केन्द्रकी भुजज्या

$+ \frac{\text{गत और गम्य पिंडोंकी ज्याओंका अंतर} \times \text{दैनिक केन्द्र गति}}{२२५}$

[श्लो ३१-३२

इसको समीकरण (२) में उत्थापन करनेसे तथा समान धन और ऋण पदोंको छोड़ देनेसे,

अंतका मन्दफल – आरम्भ का मंदफल

$= \frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{गत और गम्य पिंडोंका ज्याओंका अन्तर} \times \text{दैनिकगति}}{२२५}$ (३)

यही समीकरण (३), ४८वें श्लोकके उत्तरार्द्ध और ४९वें श्लोकके पूर्वार्द्धका रूप है, जिसमें 'गत और गम्य पिंडोंकी ज्याओंके अंतर' की जगह संक्षेपमें 'दोर्ज्यान्तर' कहा गया है।

समीकरण (३) को समीकरण (१) में उत्थापन करने से

दैनिक स्पष्ट गति = मध्यम दैनिक गति

$$\pm \frac{\text{मंद परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{गत गम्य ज्या पिण्डोंका अन्तर} \times \text{मध्यम दैनिक गति}}{२२५} \quad \cdots\cdots\cdots (४)$$

कर्कादि केन्द्रमें धन और मकरादिमें ऋण करनेका कारण यह है कि जब मन्दकेन्द्र ३ राशिसे अधिक और ९ राशिसे कम होता है तब स्पष्ट दैनिक गति मध्यम दैनिक गतिसे अधिक अन्यथा कम होती है। (देखो चित्र २९ और ३०)। मध्यम ग्रह जितने समयमें मि से मु अथवा मु से मे तक पहुँचता है उतने समयमें स्पष्ट ग्रह सि से सु अथवा सु से 'से' तक पहुँचता है अर्थात् समान कालमें स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रहसे अधिक जाता है; इसलिए स्पष्ट ग्रहकी दैनिक गति भी मध्यम ग्रहकी दैनिक गतिसे अधिक होगी। इत्यादि।

मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्च भुक्तितः।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः॥५०॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम्।
ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत्॥५१॥

अनुवाद—(५०) मन्द स्पष्ट दैनिक गतिको शीघ्रोच्चकी दैनिक गतिसे घटाकर शेषको त्रिज्या और शीघ्र कर्णके अंतर

से गुणा कर दो, गुणनफलको शीघ्र कर्ण से भाग दे दो, लब्धि को मंद स्पष्ट गतिमें जोड़ दो यदि त्रिज्यासे कर्ण अधिक हो और यदि कम हो तो घटा दो। यदि लब्धि ऋणात्मक हो और मंद स्पष्ट गतिसे अधिक हो तो शेष भी ऋणात्मक होगा। यह दैनिक वक्रगति होगी।

विज्ञान भाष्य—इस नियमको बीज गणितके अनुसार यों लिख सकते हैं:—

$$\text{स्पष्ट दैनिक गति} = \text{मंद स्पष्ट गति} \pm \frac{(\text{शीघ्रोच्चगति} - \text{मन्दस्पष्टगति})\,(\text{शीघ्रकर्ण} \backsim \text{त्रिज्या})^{*}}{\text{शीघ्रकर्ण}} \quad (५)$$

उदाहरण—सूर्य और गुरुकी स्पष्ट दैनिक गति (१९७९ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्धरात्रिको) निकालना।

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′ ८″ है। इसलिए समीकरण (४) में अनुसार [देखो उदा० १] सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति

$$= ५९'८'' \pm \frac{८३३}{११६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८''$$

(यहां मंद केन्द्र दूसरे पदमें है इसलिए धन चिह्न लेनेसे)

---

* यह चिह्न ∽ अंतर प्रकट करने का चिह्न है। जिन दो संख्याओं के बीचमें यह चिह्न हो उनमें से जो बड़ी हो उसमेंसे छोटी संख्याको घटाना चाहिये।

$$= ५६'८'' + \frac{८३३}{२१६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५६'८''$$

$$= ५६'\ ८'' + २'७''\cdot७$$

$= ६१'\ १६''$ स्वल्पान्तर से

गुरु की मध्यम दैनिक गति

$$= ४'\ ५९''$$

गुरुकी मन्द स्पष्ट गति

$$= ४'\ ५९'' \pm \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ४'\ ५९''$$

यहां मंदकेन्द्र चौथे पदमें है इसलिए ऋण चिह्न लेना चाहिए।

$\therefore$ गुरुकी मंद स्पष्ट गति

$$= ४'५९'' - \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ५'$$

$$= ४'५९'' - २५''$$

$$= ४'३४''$$

गुरुके शीघ्रोच्चकी गति = सूर्यकी मध्यमगति = ५९′८″। शीघ्रकर्ण = ३६०८

इसलिए इन सब मानोंको समीकरण (५) में उत्थापन करनेसे और धनात्मक चिह्न लेनेसे क्योंकि शीघ्रकर्ण त्रिज्यासे अधिक है,

गुरुकी स्पष्ट गति

$$= ४'३४'' + \frac{(५९'८'' - ४'३४'')(३६०८ - ३४३८)}{३६०८}$$

$$= ४'३४'' + \frac{५४'३४'' \times १७०}{३६०८}$$

$$= ४'३४'' + २'३४''$$

$$= ७'८''$$

दूरस्थितः स्वशीघ्रोच्चाद्ग्रहः शिथिलरश्मिभिः ।
सव्येतराकृष्टतनुर्भवेद्वक्र गतिस्तदा ॥५२॥
कृततुर्चन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥५३॥
भवन्ति वक्रिणस्तैस्तु स्वैः स्वैश्चक्राद्विशोधितैः ।
अवशिष्टांश तुल्यैः स्वैः केन्द्रैरुज्झन्ति वक्रताम् ५४
महत्वाच्छीघ्रपरिधेः सप्तमे भृगुभूसुतौ ।
अष्टमे जीव शशिजौ नवमे तु शनैश्चरः ॥५५॥

अनुवाद—(५२) जब ग्रह अपने शीघ्रोच्चसे दूर (तीन राशिसे अधिक अंतर पर) हो जाता है तब शीघ्रोच्च जिन रस्सियोंसे उसको खींचता है वह ढीली पड़ जाती है। इस कारण ग्रह विलोम दिशामें खिच जाता है और गति वक्र हो जाती है अर्थात् उलट जाती है। (५३) जब मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके अंतिम शीघ्रकेन्द्र (जिससे दूसरा शीघ्रफल निकाला जाता है क्रमसे १६४, १४४, १३०, १६३, और ११५ अंश होते हैं (५४) तब इनकी वक्रगतिका आरम्भ होता है और जब शीघ्रकेन्द्र क्रमसे वह होते हैं जो उपर्युक्त शीघ्रकेन्द्रोंको ३६०° से घटाने पर आते हैं (अर्थात् १९६, २१६, २३०, १९७ और २४५ अंश) तब वक्रगतिका अंत होता है अर्थात् तब ग्रह फिर

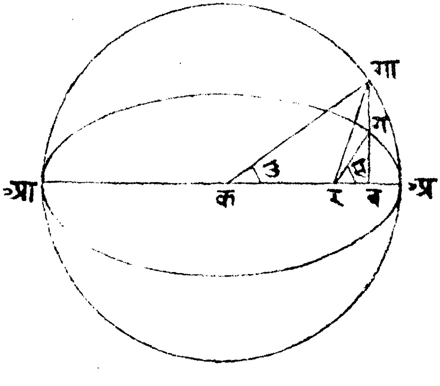
मार्गी होते हैं। (५५) शीघ्रपरिधिके बड़ी होनेसे शुक्र और मङ्गलकी वक्रगति उसी समय रुक जाती है जब शीघ्रकेन्द्र सातवीं राशिमें होता है, बुध और गुरुकी उस समय जब शीघ्रकेन्द्र आठवीं राशिमें होता है और शनिकी उस समय जब शीघ्रकेन्द्र ९ वीं राशिमें होता है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहोंकी वक्र गतिका यथार्थ कारण १२-१३ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें विस्तारके साथ बतलाया गया है। यहां इतना और बतलाया गया है कि वक्रगतिका आरम्भ और अन्त कब होता है और गणितसे कैसे जाना जा सकता है। शीघ्र केन्द्रके जो अङ्क ऊपर दिये गये हैं वह मध्यम मानके अनुसार हैं इसलिए यथार्थ में कुछ भिन्नता देख पड़ती है। ५५वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि शीघ्र परिधिके विस्तारके अनुसार जब शीघ्रकेन्द्र सातवीं, आठवीं या ९वीं राशिमें होता है तब वक्रगतिका अन्त होता है। यह बात चित्र ३० के देखनेसे स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट ग्रह शीघ्र परिधि पर भ्रमण करते हुए ऐसे दो स्थानोंपर भी पहुँचता है जहां शीघ्र-कर्ण शीघ्र परिधिको स्पर्श करता है। ऐसी दशामें शीघ्रकर्ण, शीघ्रवृत्तकी त्रिज्या और कक्षावृत्तकी त्रिज्या, इन तीन रेखाओंसे समकोण त्रिभुज बन जाता है। इस त्रिभुजका वह कोण जो शीघ्रवृत्तके मध्य विन्दुपर बनता है शीघ्र परिधिकी त्रिज्याके अनुसार छोटा बड़ा होता है। इसी तरह वक्रगतिके आरम्भ और अन्तके लिए भी शीघ्रकेन्द्रका मान घटता बढ़ता है।

यहां तक तो भारतीय रीतिसे ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेकी रीति बतलायी गयी। भास्कराचार्य तथा अन्य कई आचार्योंने एक और रीति भी बतलायी है जिससे ग्रहोंका स्पष्ट स्थान

ठीक इसी प्रकार निकलता है परन्तु वह विस्तारके भयसे नहीं लिखी गयी है। अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि नवीन पद्धतिके अनुसार पाश्चात्य देशोंके ज्योतिषी ग्रहोंके स्पष्ट स्थान कैसे निकालते हैं।

केपलरके नियमके अनुसार किसी ग्रहका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए पहले यह देखना पड़ता है कि ग्रह अपने कक्षा-वृत्तमें जो दीर्घ वृत्तके आकारका होता है और जिसकी नाभि पर सूर्य स्वयम् होता है, कहां है। फिर यह जानना पड़ता है कि उस समय वह ग्रह पृथ्वीसे कहां देख पड़ेगा।



चित्र ३२

मान लो अगआ किसी ग्रहका दीर्घवृत्तकार कक्षावृत्त है और र, ग्रहके आकर्षक रविका स्थान है जो दीर्घवृत्तकी नाभि-पर है। जिस समय ग्रह सूर्यसे निकटतम अंतर पर अर्थात् अ पर हो उसी समयसे ग्रहके भगणकालका आरम्भ माना जाय और उस समयसे 'द' दिनके अन्तरपर ग्रह ग स्थानपर

देख पड़े तो अरग कोण ग्रहका स्पष्ट मंद केन्द्र कहलाता है जिसे आगे स अक्षरसे सूचित किया जायगा।

क को केन्द्र मानकर क अ या क आ त्रिज्यासे जो वृत्त खींचा जाता है वह दीर्घवृत्तको अ, आ विन्दुओं पर स्पर्श करता है। ऐसे वृत्तको दीर्घवृत्तका सहायक वृत्त (Auxiliary circle) कहते हैं। यदि ग से दीर्घ अक्षपर ग ब लम्ब गिराया जाय तो यह बढ़ाने पर सहायक वृत्तको गा विन्दु पर काटेगा। यदि गा को सामान्य केन्द्र क से मिलाया जाय तो अकगा कोणको ग का उत्केन्द्र (eccentric anomaly) कहते हैं। उत्केन्द्रको उ अक्षरसे सूचित किया जायगा। स और उ चापीय मानोंमें नापे जाते हैं। यदि ग्रहकी दैनिक मध्यम गति 'भ' चापीय मानमें हो तो $\frac{२\pi}{भ}$ दिन ग्रहका भगणकाल होगा क्योंकि एक भचक्र कोणात्मक मानमें ३६०° और चापीय मानमें २π होता है। यदि ग्रहकी दैनिक गति सदैव 'भ' के समान होती तो द दिन पीछे अ से ग्रहका अंतर द × भ होता। द × भ को मध्यम मन्द केन्द्र कहते हैं जिसे आगे 'म' से सूचित किया जायगा। यदि ग्रहका कोणीय वेग स्थिर होता तो मध्यम मन्द केन्द्र ही स्पष्ट केन्द्र भी होता।

दीर्घवृत्तके गुणोंके आधार पर मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र तथा स्पष्ट मन्द केन्द्र और उत्केन्द्रके सम्बन्ध इस प्रकार जाने जा सकते हैं:—

केपलरके दूसरे नियमके अनुसार,

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{दीर्घवृत्तका क्षेत्रफल}} = \frac{\text{द}}{\text{भगणकाल}}$$

$$=\frac{\text{द}}{\frac{\text{२}\pi}{\text{भ}}}$$

$$=\frac{\text{द}\times\text{भ}}{\text{२}\pi}$$

$$\text{परन्तु}\ \frac{{}^{*}\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{क्षेत्रफल अरगा}}=\frac{\text{थ}}{\text{त}}$$

$$=\frac{\text{ग. त. थ}}{\text{ग. त. त}}$$

$$=\frac{\text{दीर्घवृत्तका क्षेत्रफल}}{\text{सहायक वृत्तका क्षेत्रफल}}$$

यहां त, थ क्रमानुसार दीर्घवृत्तके दीर्घ और लघु अक्ष हैं ।

$$\therefore\ \frac{\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{दीर्घवृत्तका क्षेत्रफल}}=\frac{\text{क्षेत्रफल अरगा}^{*}}{\text{सहायक वृत्तका क्षेत्रफल}}$$

$$=\frac{\text{क्षेत्रफल अरगा}}{\text{गत}^{\text{२}}}$$

परन्तु अरगा का क्षेत्रफल=क्षेत्रफल अकगा−क्षेत्रफल रकगा

$$=\frac{\text{त}^{\text{२}}}{\text{२}}\text{उ}-\frac{\text{बगा}\times\text{कर}}{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{त.}^{\text{२}}\text{उ}}{\text{२}}-\frac{\text{त.ज्याउ}\times\text{त.च}}{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{त}^{\text{२}}}{\text{२}}(\text{उ}-\text{चज्याउ})$$

यहां च दीर्घवृत्तकी केन्द्र-च्युति (eccentricity) है ।

---

* देखो Askwith's Pure Geometry pp. 205. 206.

पहले सिद्ध किया गया है कि

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{दीर्घ वृत्तका क्षेत्रफल}} = \frac{\text{द. भ}}{२\pi}$$

$$\therefore \frac{\text{द. भ}}{२\pi} = \frac{\frac{\text{त}^२}{२}(\text{उ}-\text{च ज्या उ})}{\pi\,\text{त}^२}$$

या भ. द = उ–च ज्या उ ....(१)

यह समीकरण मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्रका सम्बन्ध प्रकट करता है।

स्पष्ट केन्द्र और उत्केन्द्रका सम्बन्ध स्थापित करनाः—

दीर्घ वृत्तका ध्रुवीय समीकरण(Polar equation) है,

$\text{रग} = \frac{\text{त}\,(१-\text{च}^२)}{१+\text{च कोज्या स}}$ जहां रग, र नाभिसे ग ग्रहका अन्तर है। परन्तु दीर्घवृत्तकी परिभाषाके अनुसार,

रग = च × नियामक रेखा (directrix) से गका अंतर

= च × ब से नियामक रेखा का अंतर

= च × (केन्द्रसे नियामक रेखाका अन्तर–केन्द्रसे ब का अंतर)

$$= \text{च} \times \left(\frac{\text{त}}{\text{च}} - \text{बक}\right)$$

$$= \text{च} \times \left(\frac{\text{त}}{\text{च}} - \text{त कोज्या उ}\right)$$

= त – च × त कोज्या उ

∴ कर्ण = त (१–च कोज्या उ)......(२)

$$\therefore \frac{\text{त}(१-\text{च}^२)}{१+\text{च कोज्या स}} = \text{त}(१-\text{च कोज्या})$$

अर्थात् $$\frac{१-\text{च}^२}{१+\text{च कोज्या स}} = १-\text{च कोज्या उ}$$

वा $$१+\text{च कोज्या स} = \frac{१-\text{च}^२}{१-\text{च कोज्या उ}}$$

वा $$\text{च कोज्या स} = \frac{१-\text{च}^२}{१-\text{च कोज्या उ}} - १$$

$$= \frac{\text{च}(\text{कोज्या उ}-\text{च})}{१-\text{च कोज्या उ}}$$

$$\therefore \text{कोज्या स} = \frac{\text{कोज्या उ}-\text{च}}{१-\text{च कोज्या उ}}$$

$$\therefore १-\text{कोज्या स} = १-\frac{\text{कोज्या उ}-\text{च}}{१-\text{च कोज्या उ}}$$

$$= \frac{१-\text{च कोज्या उ}-\text{कोज्या उ}+\text{च}}{१-\text{च कोज्या उ}}$$

और $$१+\text{कोज्या स} = \frac{१-\text{च कोज्या उ}+\text{कोज्या उ}-\text{च}}{१-\text{च कोज्या उ}}$$

$$\therefore \frac{१-\text{कोज्या स}}{१+\text{कोज्या स}} = \frac{१-\text{च कोज्या उ}-\text{कोज्या उ}+\text{च}}{१-\text{च कोज्या उ}+\text{कोज्या उ}-\text{च}}$$

$$= \frac{(१-\text{कोज्या उ})(१+\text{च})}{(१+\text{कोज्या उ})(१-\text{च})}$$

$$= \frac{१+\text{च}}{१-\text{च}} \times \frac{१-\text{कोज्या उ}}{१+\text{कोज्या उ}}$$

$$\therefore * \text{ स्परे}^2 \frac{\text{स}}{2} = \frac{1+\text{च}}{1-\text{च}} \times \text{स्परे}^2 \frac{\text{उ}}{2}$$

$$\text{अथवा स्परे} \frac{\text{स}}{2} = \sqrt{\frac{1+\text{च}}{1-\text{च}}} \times \text{स्परे} \frac{\text{उ}}{2} \cdots\cdots (3)$$

यह समीकरण स्पष्ट मंद केन्द्र और उत्केन्द्रके सम्बन्ध प्रकट करता है।

समीकरण (१), (२) और (३) से उ के किसी मानको जान कर स्पष्ट मन्द केन्द्र, मन्दकर्ण और द के मान जान सकते हैं। परन्तु व्यवहारमें इससे सरलता नहीं होती। यदि मध्यम मन्द केन्द्रका मान जान कर स्पष्ट मन्दकेन्द्र और कर्णका मान जाना जा सके तो अधिक उपयोगी होता है। इसके लिए समीकरण (३) को त्रिकोण मितिकी रीतिसे फैलाना पड़ता है जो यों किया जाता है:—

लोनीकी त्रिकोणमिति भाग २ अथवा टाडहंटरकी त्रिकोण मिति या म० म० सुधाकर द्विवेदीके चलन कलन पृष्ठ ४२ से यह स्पष्ट है कि

$$\text{स्परे} \frac{\text{स}}{2} = \frac{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{2}\sqrt{-1}} - \text{इ}^{-\frac{\text{स}}{2}\sqrt{-1}}}{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{2}\sqrt{-1}} + \text{इ}^{-\frac{\text{स}}{2}\sqrt{-1}}} \times \frac{1}{\sqrt{-1}},$$

यहां इ नेपिएरियन लघुरिक्थका आधार है, जिसका मान बीज गणितके अनुसार है

* किसी कोणकी ज्याको उसकी कोटिज्यासे भाग देने पर जो कुछ आता है वह उस कोणकी स्पर्श रेखा कहलाता है। संक्षेपमें किसी कोण म की स्पर्श रेखाको स्परे म लिखते हैं।

$१ + १ + \frac{१}{\underline{|२}} + \frac{१}{\underline{|३}} + \frac{१}{\underline{|४}} + \cdots$ इत्यादि जब कि $\underline{|४}$ का अर्थ है $४ \times ३ \times २ \times १$, $\underline{|३}$ का अर्थ है $३ \times २ \times १$, $\underline{|११}$ का अर्थ है $११ \times १० \times ९ \times \cdots २ \times १$।

इसी प्रकार स्पर्श $\frac{\text{उ}}{२} = \frac{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}} - \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}}}{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}} + \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}}} \times \frac{१}{\sqrt{-१}}$

∴ (३) समीकरणका रूप होगा,

$$\frac{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{२}\sqrt{-१}} - \text{इ}^{\frac{-\text{स}}{२}\sqrt{-१}}}{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{२}\sqrt{-१}} + \text{इ}^{\frac{-\text{स}}{२}\sqrt{-१}}} = \sqrt{\frac{१ + \text{च}}{१ - \text{च}}} \times \frac{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}} - \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}}}{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}} + \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{२}\sqrt{-१}}}$$

अथवा

$$\frac{\text{इ}^{\text{स}\sqrt{-१}} - १}{\text{इ}^{\text{स}\sqrt{-१}} + १} = \sqrt{\frac{१ + \text{च}}{१ - \text{च}}} \times \frac{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-१}} - १}{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-१}} + १} \quad \cdots\cdots\cdots(\text{क})$$

समीकरण (क) के प्रत्येक पक्षमें १ जोड़ा जाय तो

$$\frac{\text{२}\,\text{इ}^{\text{स}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\text{स}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}}=$$

$$\frac{\sqrt{\text{१}+\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}-\text{१}\right)+\sqrt{\text{१}-\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}\right)}{\sqrt{\text{१}-\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}\right)}\;\ldots\ldots(\text{ख})$$

और यदि समीकरण (क) का प्रत्येक पक्ष १ में से घटाया जाय तो

$$\frac{\text{२}}{\text{इ}^{\text{स}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}}$$

$$=\frac{\sqrt{\text{१}-\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}\right)-\sqrt{\text{१}+\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}-\text{१}\right)}{\sqrt{\text{१}-\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}\right)}\;\ldots\ldots(\text{ग})$$

समीकरण (ख) के बायें पक्ष को समीकरण (ग) के बायें पक्षसे तथा (ख) के दाहने पक्ष को (ग) के दाहने पक्ष से भाग देने से

$$\text{इ}^{\text{स}\sqrt{-\text{१}}}=\frac{\sqrt{\text{१}+\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}-\text{१}\right)+\sqrt{\text{१}-\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}\right)}{\sqrt{\text{१}-\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}+\text{१}\right)-\sqrt{\text{१}+\text{च}}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}-\text{१}\right)}$$

$$=\frac{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}\left(\sqrt{\text{१}-\text{च}}+\sqrt{\text{१}+\text{च}}\right)+\sqrt{\text{१}-\text{च}}-\sqrt{\text{१}+\text{च}}}{-\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}\left(\sqrt{\text{१}+\text{च}}-\sqrt{\text{१}-\text{च}}\right)+\sqrt{\text{१}-\text{च}}+\sqrt{\text{१}+\text{च}}}$$

$$= \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - \frac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}}{१ - इ^{उ\sqrt{-१}} \times \frac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}}$$

यदि $\frac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}$ के स्थान पर प रखा जाय

तो इस समीकरण का रूप होगा

$$इ^{स\sqrt{-१}} = \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - प}{१ - इ^{उ\sqrt{-१}} \times प}$$

$$= \frac{१ - \frac{प}{इ^{उ\sqrt{-१}}}}{१ - प \times इ^{उ\sqrt{-१}}} \times इ^{उ\sqrt{-१}}$$

$$= इ^{उ\sqrt{-१}} \times \frac{१ - प इ^{-उ\sqrt{-१}}}{१ - प इ^{उ\sqrt{-१}}}$$

प्रत्येक पक्ष का लघुरिक (logarithm) लेने से,

$$लरि\ इ^{स\sqrt{-१}} = लरि\ इ^{उ\sqrt{-१}} +$$

$$लरि\ (१-प इ^{-उ\sqrt{-१}}) - लरि\ (१-प इ^{उ\sqrt{-१}}) \cdots (घ)$$

परन्तु लगि $(१-प इ^{उ\sqrt{-१}}) = -प इ^{उ\sqrt{-१}} -$

$$\frac{(प इ^{उ\sqrt{-१}})^२}{२} - \frac{(प इ^{उ\sqrt{-१}})^३}{३} - \frac{(प इ^{उ\sqrt{-१}})^४}{४} - \ldots$$

और लगि $(१-प इ^{-उ\sqrt{-१}}) = -प इ^{-उ\sqrt{-१}} -$

$$\frac{(प·इ^{-उ\sqrt{-१}})^२}{२} - \frac{(प·इ^{-उ\sqrt{-१}})^३}{३} - \ldots\ldots\ldots$$

पहले को दूसरे में से घटाने पर,

$$प\left(इ^{उ\sqrt{-१}} - इ^{-उ\sqrt{-१}}\right) + \frac{प^२}{२} \times \left(इ^{२\sqrt{-१}\,उ} - इ^{-२\sqrt{-१}\,उ}\right) + \frac{प^३}{३} \left(इ^{३\sqrt{-१}\,उ} - इ^{-३\sqrt{-१}\,उ}\right) + \ldots\ldots\ldots$$

∴ समीकरण (ण) का रूप होगा,

$$स\sqrt{-१} = उ\sqrt{-१} + प\left(इ^{उ\sqrt{-१}} - इ^{-उ\sqrt{-१}}\right) + \frac{प^२}{२}\left(इ^{२\sqrt{-१}\,उ} - इ^{-२\sqrt{-१}\,उ}\right) + \frac{प^३}{३}\left(इ^{३\sqrt{-१}\,उ} - इ^{-३\sqrt{-१}\,उ}\right) + \ldots\ldots\ldots$$

अथवा $स = उ + प \times \dfrac{इ^{उ\sqrt{-१}} - इ^{-उ\sqrt{-१}}}{\sqrt{-१}}$

$$+\frac{\text{प}^{२}}{२}\times\frac{\text{इ}^{२\text{उ}\sqrt{-१}}-\text{इ}^{-२\text{उ}\sqrt{-१}}}{\sqrt{-१}}$$

$$+\frac{\text{प}^{३}}{३}\times\frac{\text{इ}^{३\text{उ}\sqrt{-१}}-\text{इ}^{-३\text{उ}\sqrt{-१}}}{\sqrt{-१}}+\cdots\cdots$$

परन्तु $$\frac{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-१}}-\text{इ}^{-\text{उ}\sqrt{-१}}}{२\sqrt{-१}}=\text{ज्या उ},$$

$$\frac{\text{इ}^{२\text{उ}\sqrt{-१}}-\text{इ}^{-२\text{उ}\sqrt{-१}}}{२\sqrt{-१}}=\text{ज्या २ उ, इत्यादि}$$

इसलिये $$\text{स}=\text{उ}+\text{प}\times २\text{ज्याउ}+\frac{\text{प}^{२}}{२}\times २\text{ज्या}२\text{उ}$$

$$+\frac{\text{प}^{३}}{३}\times २\text{ज्या}३\text{उ}+\cdots\cdots\cdots$$

अथवा $$\text{स}=\text{उ}+२\left(\text{प ज्याउ}+\frac{\text{प}^{२}}{२}\text{ज्या }२\text{उ}+\frac{\text{प}^{३}}{३}\text{ज्या}३\text{उ}\right.$$

$$\left.+\frac{\text{प}^{४}}{४}\text{ज्या}४\text{उ}+\cdots\cdots\cdots\right)\quad(\text{च})$$

यदि समीकरण (च) में उ, ज्या उ, ज्या २ उ, इत्यादिके स्थान पर इनके मान ऐसे रखे जायं जिनमें उ न रहे वरन भ, द रहे जो समीकरण (१) से सम्भव है तो ऐसा समीकरण मिल जायगा जिसमें केवल स, भ और द रहेंगे और जो व्यवहारके लिए बहुत ही उपयोगी होगा। परन्तु उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादिके मान भ और द के रूपमें तभी ज्ञात हो सकते हैं जब लैग्रेंजके सिद्धान्त Lagrange's Theorem के अनुसार उ, ज्या उ,

ज्या २ उ इत्यादिका विस्तार किया जाय। इस लिए संक्षेपमें पहले यह बतलाना चाहिये कि लैग्रेंजका सिद्धान्त क्या है। यह सिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदीके चलनकलन पृष्ठ १०७ ११० में तथा विलियमसनके डिफ़रेंशल कैलकुलस पृष्ठ १५१—१५३ में दिया हुआ है। इस सिद्धान्तका रूप यह है:—

यदि र = ह + य. फ (र) ऐसा समीकरण हो जिसमें ह और य स्वतंत्र राशि हों और फ (र) ऐसा फल function हो ओ र के मान पर आश्रित हो तो र का कोई अन्यफल

$$\text{फि}\,(\text{र}) = \text{फि}\,(\text{ह}) + \text{य}\cdot\text{फ}\,(\text{ह}).\ \text{फि}'\,(\text{ह})$$

$$+ \frac{\text{य}^{२}}{|\text{२}} \cdot \frac{\text{ता}}{\text{ताह}} \left\{ [\text{फ}(\text{ह})]^{२}\ \text{फि}'(\text{ह}) \right\}$$

$$+ \frac{\text{य}^{३}}{|\text{३}} \cdot \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताह}^{२}} \left\{ [\text{फ}(\text{ह})]^{३}\ \text{फि}'(\text{ह}) \right\} + \cdots\cdots\cdots$$

$$+ \frac{\text{य}^{\text{न}}}{|\text{न}} \cdot \frac{\text{ता}^{\text{न}-१}}{\text{ता}(\text{ह})^{\text{न}-१}} \left\{ [\text{फ}(\text{ह})]^{\text{न}}\ \text{फि}'(\text{ह}) \right\} + \cdots$$

यहाँ फि′ (ह), फि (ह) का पहला तात्कालिक सम्बन्ध $\frac{dy}{dx}$ है, तथा $\frac{\text{ता}}{\text{ताह}}, \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताह}^{२}}, \frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताह}^{३}}$, इत्यादि आगे कोष्ठोंमें लिखे हुए पदोंके पहले, दूसरे, तीसरे तात्कालिक सम्बन्ध हैं।

समीकरण (१) का रूप है,

भ.द = उ — च ज्याउ

वा उ = भ.द + च ज्याउ

= म + च ज्याउ, जहां म = भद।

जो उसी रूपमें है जिस रूपमें

$$र = ह + य . फ (र)$$

जहां र, ह और य क्रमानुसार उ, म और चके समान हैं।

यदि फि (उ) = उ तो फि (म) = म और फि' (म) = १

$$\therefore उ = म + च . ज्याम . १ + \frac{च^२}{|२} \cdot \frac{ता}{ताम} \left\{ [ज्याम]^२ \cdot १ \right\}$$

$$+ \frac{च^३}{|३} \cdot \frac{ता^२}{ताम^२} \left\{ (ज्याम)^३ \right\} + \frac{च^४}{|४} \cdot \frac{ता^३}{ताम^३} \left\{ [ज्याम]^४ \, १ \right\}$$

$$+ \frac{च^५}{|५} \cdot \frac{ता^४}{ताम^४} \left\{ [ज्याम]^५ \cdot १ \right\} + \frac{च^६}{|६} \cdot \frac{ता^५}{ताम^५} \left\{ [ज्याम]^६ \cdot १ \right\} + \cdots$$

इत्यादि

लोनीकी त्रिकोणमिति भाग २के अनुसार ज्या मके किसी घात $(ज्या\ म)^न$ का विस्तार यदि न सम है तो यह होगाः—

$$ज्या^न म = \frac{१}{२^{न-१} \times (-१)^{\frac{न}{२}}} \left\{ कोज्या\ नम — न\ कोज्या\ (न — २)म \right.$$

$$+ \frac{न (न — १)}{|२} कोज्या\ (न — ४)\ म - \frac{न (न-१) (न-२)}{|३} कोज्या (न-६)\ म$$

$$\left. + \cdots\cdots इत्यादि \right\}$$

यदि न विषम हो तो,

$$ज्या^न म = \frac{१}{२^{न-१} (-१)^{\frac{न-१}{२}}} \left\{ ज्यानम - नज्या\ (न — २)म \right.$$

$$+\frac{\text{न}\,(\text{न}-\text{१})}{\underline{|\text{२}}}\;\text{ज्या}\,(\text{न}-\text{४})\,\text{म}-\frac{\text{न}\,(\text{न}-\text{१})\,(\text{न}-\text{२})}{\underline{|\text{३}}}$$

$$\text{ज्या}\,(\text{न}-\text{६})\,\text{म}\;+\cdots\cdots\cdots\text{इत्यादि}\;\Big\}$$

$$\therefore\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left\{[\text{ज्या म}]^{\text{२}}\right\}=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\frac{\text{१}-\text{कोज्या२म}}{\text{२}}\right)=\text{ज्या२म},$$

$$\frac{\text{ता}^{\text{२}}}{\text{ताम}^{\text{२}}}\left(\text{ज्या}^{\text{३}}\text{म}\right)=\frac{\text{ता}^{\text{२}}}{\text{ताम}^{\text{२}}}\left(\frac{\text{३ज्याम}-\text{ज्या३म}}{\text{४}}\right)$$

$$=\frac{\text{९ज्या३म}-\text{३ज्याम}}{\text{४}}$$

$$=\frac{\text{३}}{\text{४}}\left(\text{३ज्या३म}-\text{ज्याम}\right)$$

$$\frac{\text{ता}^{\text{३}}}{\text{ताम}^{\text{३}}}\left(\text{ज्या}^{\text{४}}\text{म}\right)=$$

$$\frac{\text{ता}^{\text{३}}}{\text{ताम}^{\text{३}}}\left\{\frac{\text{१}}{\text{२}^{\text{३}}(-\text{१})^{\text{२}}}\right.$$

$$\left.\times\left(\text{कोज्या४म}-\text{४कोज्या२म}+\frac{\text{२}\times\text{३}}{\underline{|\text{२}}}\times\text{१}\right)\right\}$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{८}}\left(\text{४}^{\text{३}}\text{ज्या४म}-\text{४}\times\text{२}^{\text{३}}\text{ज्या२म}\right)$$

$$=\text{४}\left(\text{२ज्या४म}-\text{ज्या२म}\right)$$

$$\frac{\text{ता}^{\text{४}}}{\text{ताम}^{\text{४}}}\left(\text{ज्या}^{\text{५}}\text{५}\right)=\frac{\text{ता}^{\text{४}}}{\text{ताम}^{\text{४}}}\left\{\frac{\text{१}}{\text{२}^{\text{४}}(-\text{१})^{\text{२}}}\right.$$

$$\left.\times\left(\text{ज्या५म}-\text{५ज्या३ म}+\frac{\text{५}\times\text{४}}{\underline{|\text{२}}}\text{ज्याम}\right)\right\}$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{२}^{\text{४}}}\left(\text{५}^{\text{४}}\text{ज्या५म}-\text{५}\times\text{३}^{\text{४}}\text{ज्या३म}+\text{१०ज्याम}\right.$$

$$\frac{\text{ता}^{५}}{\text{ताम}^{५}}(\text{ज्या}^{६}५) = \frac{\text{ता}^{५}}{\text{ताम}^{५}}\left\{\frac{१}{२^{५}(-१)^{३}}\left(\text{कोज्या}६\text{म} - ६\text{कोज्या}४\text{म} + \frac{६\times५}{|\underline{२}}\text{कोज्या}२\text{म} - \frac{६\times५\times४}{|\underline{३}}\times\frac{१}{२}\right)\right\}$$

$$= \frac{१}{२^{५}}\left(६^{५}\text{ज्या}६\text{म} - ६\times४^{५}\text{ज्या}४\text{म} + १५\times२^{५}\text{ज्या}२\text{म}\right.$$

$$\therefore \text{ज} = \text{म} + \text{च ज्याम} + \frac{\text{च}^{२}}{२}\text{ज्या}२\text{म} + \frac{\text{च}^{३}}{|\underline{३}}\times\frac{३}{४}(३\text{ज्या}३\text{म} - \text{ज्याम})$$

$$+ \frac{\text{च}^{४}}{|\underline{४}}\times४(२\text{ज्या}४\text{म} - \text{ज्या}२\text{म}) + \frac{\text{च}^{५}}{|\underline{५}}\times\frac{१}{२^{४}}$$

$$+ (५^{४}\text{ज्या}५\text{म} - ५\times३^{४}\text{ज्या}३\text{म} + १०\text{ज्याम})$$

$$+ \frac{\text{च}^{६}}{|\underline{६}}\times\frac{१}{२^{५}}(६^{५}\text{ज्या}६\text{म} - ६\times४^{५}\text{ज्या}४\text{म}$$

$$+ १५\times२^{५}\text{ज्या}२\text{म}) + \cdots\cdots\cdots$$

यदि ज्याम, ज्या२म इत्यादि अलग करके एकत्र कर दिये जायं तो

$$\text{ज} = \text{म} + \left(\text{च} - \frac{१}{८}\text{च}^{३} + \frac{१}{१९२}\text{च}^{५}\right)\text{ज्याम} + \left(\frac{\text{च}^{२}}{२} - \frac{\text{च}^{४}}{६}\right.$$

$$\left. + \frac{\text{च}^{६}}{४८}\right)\text{ज्या}२\text{म} + \left(\frac{३\text{च}^{३}}{८} - \frac{२७\text{च}^{५}}{१२८}\right)\text{ज्या}३\text{म}$$

$$+ \left(\frac{\text{च}^{४}}{३} - \frac{४\text{च}^{६}}{१५}\right)\text{ज्या}४\text{म} + \frac{१२५\text{च}^{५}}{३८४}\text{ज्या}५\text{म} + \cdots\cdots$$

इस समीकरण में ज्या६म तथा इसके आगे की ज्याओंके गुणक और वे पद जिनमें च के छठें घातके आगेकी संख्या वर्तमान है छोड़ दिये गये क्योंकि इनके मान नहींके समान हैं।

समीकरण (१) को इस प्रकार भी लिख सकते हैं:-

$$\text{च ज्याउ} = \text{उ} - \text{म}$$

$$\text{तब ज्याउ} = \frac{\text{उ} - \text{म}}{\text{च}}$$

जिसका यह अर्थ हुआ कि यदि उ के विस्तारमें से म घटाया जाय और शेषको च से भाग दे दिया जाय तो ज्याउ का विस्तार हो जायगा। इसलिए

$$\text{ज्याउ} = \left(१ - \frac{१}{८}\text{च}^{२} + \frac{१}{१९२}\text{च}^{४}\right)\text{ज्याम}$$

$$+ \left(\frac{\text{च}}{२} - \frac{\text{च}^{३}}{६} + \frac{\text{च}^{५}}{४८}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+ \left(\frac{३}{८}\text{च}^{२} - \frac{२७}{१२८}\text{च}^{४}\right)\text{ज्या३म}$$

$$+ \left(\frac{\text{च}^{३}}{३} - \frac{४}{१५}\text{च}^{५}\right)\text{ज्या४म} + \frac{१२५}{३८४}\text{च}^{४}\,\text{ज्या५म} + \cdots$$

यदि फि(उ) = ज्या२उ तो फि(म) = ज्या२म और फि′(म) = २कोज्या२म,

इसलिए लैग्रेंजके सिद्धान्तके अनुसार

$$\text{ज्या२उ} = \text{ज्या२म} + \text{च ज्याम} \times \text{२कोज्या२म}$$

$$+ \frac{\text{च}^{२}}{|\underline{२}}\,\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{ज्या}^{२}\text{म} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$+ \frac{\text{च}^{३}}{|\underline{३}}\,\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\text{ज्या}^{३}\text{म} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$+ \frac{\text{च}^{४}}{|\underline{४}}\,\frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताम}^{३}}\left(\text{ज्या}^{४}\text{म} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$+\frac{\text{च}^{५}}{\lfloor ५}\,\frac{\text{ता}^{४}}{\text{ताम}^{४}}\left(\text{ज्या}^{५}\text{म} + \text{२कोज्या२म}\right) + \cdots\cdots$$

जिसमें $\text{ज्याम} \times \text{२कोज्या२म} = \text{ज्या३म} - \text{ज्याम},$

$$\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{ज्या}^{२}\text{म} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\frac{१ - \text{कोज्या२म}}{२} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{कोज्या२म} - \text{कोज्या}^{२}\text{२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{कोज्या२म} - \frac{१ + \text{कोज्या४म}}{२}\right)$$

$$= \text{२ज्या४म} - \text{२ज्या२म},$$

$$\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\text{ज्या}^{३}\text{म} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\frac{\text{३ज्याम} - \text{ज्या३म}}{४} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\frac{\text{३ज्याम कोज्या२म} - \text{ज्या३म कोज्या२म}}{२}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left\{\frac{३}{४}\left(\text{ज्या३म} - \text{ज्याम}\right) - \frac{१}{४}\left(\text{ज्या५म} + \text{ज्याम}\right)\right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left\{\frac{१}{४}\left(\text{३ज्या३म} - \text{४ज्याम} - \text{ज्या५म}\right)\right\}$$

$$= \frac{१}{४}\left(-३^{२}\text{ज्या३म} + \text{४ज्याम} + ५^{२}\text{ज्या५म}\right),$$

$$\frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताम}^{३}}\left(\text{ज्या}^{४}\text{म} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताम}^{३}} \left\{ \tfrac{१}{८}(\text{कोज्या४म} - \text{४कोज्या२म} + ३)\,\text{२कोज्या२म} \right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}} \left\{ \tfrac{१}{८}\,(\text{२कोज्या४म कोज्या२म} - ४\cdot\text{२कोज्या}^{२}\,\text{२म} + \text{६कोज्या२म}) \right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताम}^{३}} \left\{ \tfrac{१}{८}\,(\text{कोज्या६म} + \text{कोज्या२म}) - \tfrac{४}{८}(१ + \text{कोज्या४म}) + \tfrac{६}{८}\,\text{कोज्या२म} \right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताम}^{३}} \left\{ \tfrac{१}{८}\,(\text{कोज्या६म} - \text{४कोज्या४म} + \text{७कोज्या२म} - ४) \right\}$$

$$= \tfrac{१}{८}\,(६^{३}\text{ज्या६म} - ४^{३}\text{ज्या४म} + ७ \times २^{३}\,\text{ज्या२म})$$

$$\therefore\ \text{ज्या२त} = \text{ज्या२म} + \text{च}(\text{ज्या३म} - \text{ज्याम}) + \frac{\text{च}^{२}}{२}\,(\text{२ज्या४म} - \text{२ज्या२म})$$

$$+ \frac{\text{च}^{३}}{|३} \times \frac{१}{४}\,(\text{२५ज्या५म} - \text{२७ज्या३म} + \text{४ज्याम})$$

$$+ \frac{\text{च}^{४}}{|४} \times \frac{१}{८}\,(\text{२१६ज्या६म} - \text{२५६ज्या४म} + \text{५६ज्या२म}) + \cdots\cdots$$

$$= \left(-\text{च} + \frac{\text{च}^{३}}{६} \right) \text{ज्याम} + \left(१ - \text{च}^{२} + \frac{\text{७च}^{४}}{२४} \right)$$

$$\text{ज्या२म} + \left(\text{च} - \frac{\text{९च}^3}{\text{८}}\right)\text{ज्या३म} + \left(\text{च}^2 - \frac{\text{४च}^3}{\text{३}}\right)$$

$$\text{ज्या४म} + \frac{\text{२५च}^3}{\text{२४}}\,\text{ज्या५म} + \cdots\cdots\cdots$$

यदि फि (उ) = ज्या३उ तो फि (म) = ज्या३म और फि′ (म) = ३कोज्या३म, इसलिए लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार,

$$\text{ज्या३उ} = \text{ज्या३म} + \text{च ज्याम} \times \text{३कोज्या३म}$$

$$+ \frac{\text{च}^2}{|\text{२}}\,\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\{\text{ज्या}^2\text{म} \times \text{३कोज्या३म}\}$$

$$+ \frac{\text{च}^3}{|\text{३}}\,\frac{\text{ता}^2}{\text{ताम}^2}\{\text{ज्या}^3\text{म} \times \text{३कोज्या३म}\} + \cdots\cdots$$

$$= \text{ज्या३म} + \frac{\text{३}}{\text{२}}\,\text{च}\,(\text{ज्या४म} - \text{ज्या२म}) + \frac{\text{च}^2}{\text{२}} \times \frac{\text{३}}{\text{४}}$$

$$(\text{५ज्या५म} - \text{६ज्या३म} + \text{ज्याम})$$

$$+ \frac{\text{च}^3}{\text{६}} \times \frac{\text{३}}{\text{८}}\,(\text{३६ज्या६म} - \text{४८ज्या४म} + \text{१२ज्या२म}) + \cdots$$

$$= \frac{\text{३च}^2}{\text{८}}\,\text{ज्याम} - \left(\frac{\text{३च}}{\text{२}} - \frac{\text{३च}^3}{\text{४}}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+ \left(\text{१} - \frac{\text{९च}^2}{\text{४}}\right)\text{ज्या३म}$$

$$+ \left(\frac{\text{३च}}{\text{२}} - \text{३च}^3\right)\text{ज्या४म} + \frac{\text{१५च}^2}{\text{८}}\,\text{ज्या५म}$$

$$+ \frac{\text{९च}^3}{\text{४}}\,\text{ज्या६म} + \cdots\cdots\cdots$$

इसी तरह, $ज्या ४उ = ज्या ४म + च ज्याम \times ४कोज्या ४म$

$$+ \frac{च^२}{२} \frac{ता}{ताम} \{ज्या^२म \times ४कोज्या ४म\}$$

$$= ज्या ४म + २ च (ज्या ५म - ज्या ३म)$$

$$+ \frac{च^२}{२} (६ज्या ६म - ८ज्या ४म + २ज्या २म)$$

$$= च^२ ज्या २म - २च ज्या ३म$$

$$+ (१ - ४च^२) ज्या ४म + २च ज्या ५म + \cdots\cdots$$

और $ज्या ५उ = ज्या ५म + \frac{५}{२} च (ज्या ६म - ज्या ४म) + \cdots\cdots$

$$= - \frac{५च}{२} ज्या ४म + ज्या ५म + \frac{५च}{२} ज्या ६म + \cdots$$

इस प्रकार समीकरण (च) के उ, ज्याउ, ज्या २उ इत्यादि के मान तो आ गये परन्तु इसके प, $प^२$, $प^३$ इत्यादि के मान जानना रह गये। यहां प

$\frac{\sqrt{१ + च} - \sqrt{१ - च}}{\sqrt{१ + च} + \sqrt{१ - च}}$ के लिए रखा गया है।

इसके किसी घातका विस्तार लैग्रैंजके सिद्धान्त के अनुसार जाना जा सकता है। परन्तु पांच छः घात तकके विस्तार जिनमें $च^७$ से अधिकके अंक लानेकी आवश्यकता नहीं है द्वियुक्पद सिद्धान्त (Binomial Theorem) से भी जाने जा सकते हैं जो यहां दिखलाये जाते हैं:—

$$प = \frac{\sqrt{१ + च} - \sqrt{१ - च}}{\sqrt{१ + च} + \sqrt{१ - च}}$$

$$= \frac{१ - \sqrt{१ - च^२}}{च}$$

$$=\frac{१}{च}(१-\sqrt{१-च^{२}})$$

$$=\frac{१}{च}\left\{१-(१-च^{२})^{\frac{१}{२}}\right\}$$

$$=\frac{१}{च}\left(\frac{च^{२}}{२}+\frac{च^{४}}{८}+\frac{च^{६}}{१६}+\cdots\cdots\right)$$

$$=\frac{च}{२}+\frac{च^{३}}{८}+\frac{च^{५}}{१६}+\cdots\cdots$$

$$प^{२}=\left(\frac{च}{२}+\frac{च^{३}}{८}+\frac{च^{५}}{१६}\right)$$

$$=\frac{च^{२}}{४}+\frac{च^{४}}{८}+\frac{५च^{६}}{६४}+\cdots\cdots$$

$$प^{३}=\left(\frac{च}{२}+\frac{च^{३}}{८}+\frac{च^{५}}{१६}\right)\left(\frac{च^{२}}{४}+\frac{च^{४}}{८}+\frac{५च^{६}}{६४}\right)$$

$$=\frac{च^{३}}{८}+\frac{३च^{५}}{३२}+\frac{९च^{७}}{१२८}+\cdots\cdots$$

$$प^{४}=\left(\frac{च^{२}}{४}+\frac{च^{४}}{८}+\frac{५}{६४}च^{६}\right)^{२}$$

$$=\frac{च^{४}}{१६}+\frac{च^{६}}{१६}+\cdots\cdots$$

$$प^{५}=\left(\frac{च^{४}}{१६}+\frac{च^{६}}{१६}\right)\left(\frac{च}{२}+\frac{च^{३}}{८}+\frac{च^{५}}{१६}\right)$$

$$=\frac{च^{५}}{३२}+\cdots\cdots\cdots$$

अब समीकरण (च) में प, प², प³ इत्यादि तथा उ, ज्याउ, ज्या२उ इत्यादिके विस्तृत मान उत्थापन किये जायं तो इसका रूप यह होगा:—

$$स = म + \left(च - \frac{च^{३}}{८} + \frac{च^{५}}{१९२}\right)ज्याम + \left(\frac{च^{२}}{२} - \frac{च^{४}}{६} + \frac{च^{६}}{४८}\right)ज्या२म + \left(\frac{३च^{३}}{८} - \frac{२७च^{५}}{१२८}\right)ज्या३म$$

$$+ \left(\frac{च^{४}}{३} - \frac{४च^{६}}{१५}\right)ज्या४म + \frac{१२५च^{५}}{३८४}ज्या५म + \cdots$$

$$+ २\left\{\left(\frac{च}{२} + \frac{च^{३}}{८} + \frac{च^{५}}{१६}\right)\left[\left(१ - \frac{च^{२}}{८} + \frac{च^{४}}{१९२}\right) \times ज्याम + \left(\frac{च}{२} - \frac{च^{३}}{६} + \frac{च^{५}}{४८}\right)ज्या२म\right.\right.$$

$$+ \left(\frac{३च^{२}}{८} - \frac{२७च^{४}}{१२८}\right)ज्या३म + \left(\frac{च^{३}}{३} - \frac{४च^{५}}{१५}\right) \times ज्या४म + \frac{११५च^{४}}{३८४}ज्या५म + \cdots\cdots\Big]$$

$$+ \frac{१}{२}\left(\frac{च^{२}}{४} + \frac{च^{४}}{८} + \frac{५च^{६}}{६४}\right)\Bigg[\left(-च + \frac{च^{३}}{६}\right)ज्याम + \left(१ - च^{२} + \frac{७च^{४}}{२४}\right)ज्या२म$$

$$+ \left(च - \frac{९च^{३}}{८}\right)ज्या३म + \left(च^{२} - \frac{४च^{४}}{३}\right) \times ज्या४म + \frac{२५च^{३}}{२४}ज्या५म + \cdots\cdots\Bigg]$$

$$+\frac{१}{३}\left(\frac{च^३}{८}+\frac{३च^५}{३२}\right)\left[\frac{३च^२}{८}ज्याम-\left(\frac{३च}{२}-\frac{३च^३}{४}\right)\times\right.$$

$$ज्या२म+\left(१-\frac{९च^२}{४}\right)ज्या३म+\left(\frac{३च}{२}-३च^३\right)\times$$

$$\left.ज्या४म+\frac{१५च^२}{८}ज्या५म+\frac{९च^३}{४}ज्या६म+\cdots\cdots\right]$$

$$+\frac{१}{४}\left(\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}\right)\left[च^२ज्या२म-२चज्या३म\right.$$

$$\left.+(१-४च^२)ज्या४म+२चज्या५म\right]$$

$$\left.+\frac{१}{५}\times\frac{च^५}{३२}\left[-\frac{५च}{२}ज्या४म+ज्या५म+\frac{५च}{२}ज्या६म\right]\right\}$$

स के इस मानमें ज्या६मके आगेके पद तथा वह सब पद जिनके गुणक $च^६$ या उससे अधिक हैं छोड़ दिये गये हैं क्यों कि इससे कोई विशेष अशुद्धि नहीं हो सकती। इस मानको सरल करने पर ऐसे पद भी मिलेंगे जिनके गुणक $च^६$ से अधिक हैं। इनको भी छोड़ देने तथा ज्याम, ज्या२म इत्यादिके गुणक एकत्र करने पर

$$स=म+\left(२च-\frac{१}{४}च^३+\frac{५}{९६}च^५\right)ज्याम$$

$$+\left(\frac{५}{४}च^२-\frac{११}{२४}च^४+\frac{१७}{१९२}च^६\right)ज्या२म$$

$$+\left(\frac{१३}{१२}च^३-\frac{४३}{६४}च^५\right)ज्या३म$$

$$+\left(\frac{१०३}{९६}च^{४}-\frac{४५१}{४८०}च^{६}\right)ज्या४म$$

$$+\frac{१०९७}{९६०}च^{५}ज्या५म\text{ .... }(छ)$$

मध्यम और स्पष्ट ग्रहका सम्बन्ध प्रकट करनेके लिए यही प्रधान समीकरण है। इससे यह जाना जाता है कि यदि द्रष्टा सूर्यके मध्यमें हो तो किसी ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थान अपने अपने कक्षावृत्तमें किस समय क्या होते हैं। जिस ग्रहकी केन्द्रच्युति च के स्थानमें रखी जायगी उसी ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंका सम्बन्ध समीकरण (छ) से जाना जा सकता है। व्यवहारमें सुविधाके लिए ज्याम, ज्या२म इत्यादिके गुणकोंको च का यथार्थ मान रख कर सरल करके एक संख्या में प्रकट किया जा सकता है। जैसे गुरुकी केन्द्रच्युति* ०.०४८२५४ है, इसलिए

$$च = ०.०४८२५४$$

$$च^{२} = ०.००२३२८४$$

$$च^{३} = ०.०००११२४$$

$$च^{४} = ०.००००० ५४$$

$च^{५}$, $च^{६}$ के मान जाननेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि दशमलवके छठे स्थानमें यदि ५ का अंक हो और वह छोड़ दिया जाय तो १ विकलाकी अशुद्धि हो सकती है। इसलिए,

*केन्द्रच्युति कई कारणोंसे स्थिर नहीं रहती वरन् अत्यन्त मंदगतिसे बदलती रहती है, इसलिए भिन्न भिन्न कालमें इसका मान कुछ भिन्न होता है। यह केन्द्रच्युति संवत् १९५६ वि० के अंतकी है।

स = म + (·०९६५०८ − ·००००२८१) ज्याम
+ (·००२९१०६ — ·०००००२५) ज्या२म
+ ·०००१२१८ ज्या३म + ·००००० ५८ ज्या४म

अथवा स = म + ·०९६४७९९ ज्याम + ·००२९०८१
ज्या२म + ·०००१२१८ ज्या३म
+ ·००००० ५८ ज्या४म ....(ज)

यह समीकरण सूर्यकेन्द्र गत गुरुका स्पष्ट स्थान जानने के लिए पर्याप्त है। यदि म, २म, ३म इत्यादिकी ज्याएं भारतीय रीतिसे कला या विकलामें प्रयोगकी जायं तो समीकरण (ज) के दाहिने पक्षमें म के अतिरिक्त जो कुछ आवेगा वह कला या विकलामें होगा और सूर्यके मध्यसे यही गुरुका मंदफल होगा। यदि ज्याओंको आजकलकी रीतिसे भिन्नमें प्रकट किया जाय तो सरल करने पर म के अतिरिक्त जो संख्या दशमलव भिन्नमें आवेगी वह रेडियनमें होगी जिसकी कला या विकला बनानेके लिए ३४३७·७५ या २०६२६५ से गुणा करना होगा। दोनों रीतियोंसे फल एक ही होगा।

गुरुके लिए जिस तरह समीकरण (ज) प्राप्त किया गया है उसी तरह प्रत्येक ग्रहके लिए उसकी केन्द्रच्युतिको समीकरण (छ) में उत्थापन करनेसे एक सरल सूत्र प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक ग्रहकी केन्द्रच्युति तथा अन्य आवश्यक बातें आगे एक सारिणीमें दे दी जायेंगी।

सूर्यके मध्यसे ग्रहकी दूरी किस समय क्या होती है यह जाननेके लिए एक समीकरण है जो समीकरण (१) अर्थात् कर्ण = त (१ − च कोज्याउ) से लैग्रेंज सिद्धान्तके अनुसार १ − च

कोज्याउ का मान जान लेनेसे आ जाता है। लैग्रेंज सिद्धान्तके अनुसार,

$$१ - च कोज्या उ = (१ - च कोज्या म) + च ज्या म \frac{ता}{ताम}$$

$$(१ - च कोज्या म) + \frac{च^२}{२} \cdot \frac{ता}{ताम} \left\{ ज्या^२ म \times च ज्या म \right\}$$

$$+ \frac{च^३}{३} \cdot \frac{ता^२}{ताम^२} \left\{ ज्या^३ म \times च ज्या म \right\}$$

$$= १ - च कोज्या म + \frac{च^२}{२} - \frac{च^२}{२} कोज्या २म$$

$$+ \frac{३}{८} च^३ कोज्या म - \frac{३}{८} च^३ कोज्या ३म - \frac{च^४}{३}$$

$$कोज्या ४म + \frac{च^४}{३} कोज्या २म + \cdots\cdots\cdots\cdots$$

$$= \left(१ + \frac{च^२}{२}\right) - च\left(१ - \frac{३}{८} च^२\right) कोज्या म$$

$$- \frac{च^२}{२}\left(१ - \frac{२}{३} च^२\right) कोज्या २म$$

$$- \frac{३}{८} च^३ कोज्या ३म + \cdots\cdots\cdots$$

$$\therefore कर्ण = त \left\{ \left(१ + \frac{च^२}{२}\right) - च\left(१ - \frac{३}{८} च^२\right) कोज्या म \right.$$

$$\left. - \frac{च^२}{२}\left(१ - \frac{२}{३} च^२\right) कोज्या २म - \frac{३}{८} च^३ कोज्या ३म \right\} \cdots (ऋ)$$

गुरुके कर्णके लिए समीकरण (ऋ) का रूप होगा,

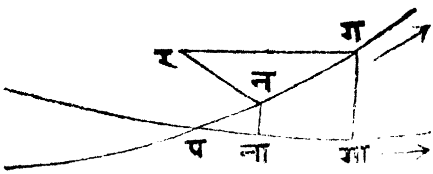
५२०२·८{(१ + ·००११६४२) — (·०४८२५४ — ·००००४२१)
कोज्याम — (·००११६४२ — ·००००१८) कोज्या२म
— ·००००४२१ कोज्या३म}

अथवा ५२०२·८(१·००११६४२ — ·०४८२११६ कोज्याम
— ·००११६२४ कोज्या२म — ·००००४२१ कोज्या३म)

अथवा ५२०८·८६ — २५१·०६ कोज्याम — ६·०५
कोज्या२म — ·२२ कोज्या३म

५२०२·८ सूर्यसे गुरुका मध्यम कर्ण है जब कि पृथ्वीका मध्यम कर्ण १००० समझा जाय। इसी तरह अन्य ग्रहोंके कर्ण जाननेका सूत्र सरल हो सकता है।

समीकरण (छ) से ग्रहका जो स्पष्टकेन्द्र आता है वह उसके नीच (Perihelion) से कक्षावृत्तमें ग्रहकी दूरी होता है। यदि ग्रहका कक्षावृत्त पृथ्वीके कक्षावृत्त अर्थात् क्रान्तिवृत्तके ही धरातलमें होता तो यही क्रान्तिवृत्तमें भी ग्रहकी दूरी होता। परन्तु प्रत्येक ग्रहके कक्षावृत्तका धरातल क्रान्तिवृत्तके धरातलसे कुछ कोण बनाता है जिसे ग्रहका परम शर कहते हैं और जिसकी चर्चा पहले अध्यायमें अंतिम तीन चार श्लोकों में की गयी है इसलिए कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्रमें कुछ संस्कार करनेसे क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र आता है।



चित्र ३३

मान लो प ग ग्रहका कक्षावृत्त और प गा क्रान्तिवृत्त है, प ग्रहका उत्तर पात है र सूर्यका मध्य है तथा न ग्रहका नीच (Perihelion) है। ग ग्रहका स्पष्ट स्थान और ग गा क्रान्तिवृत्त पर लम्ब है अर्थात् गा ग वृत्त क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। तब <न र ग कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्र तथा र ग की दूरी ग्रहका स्पष्ट कर्ण हैं जो (छ) और (झ) समीकरणोंके अनुसार जाने जाते हैं। न से न ना लम्ब भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। क्रान्तिवृत्तमें ना और गा विन्दुओंके बीचकी जो दूरी है वही ग का क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र कहलाती है। नेपियरके नियमोंके अनुसार प ना और प गा दूरियोंको सहज ही जान सकते हैं। फिर दोनोंका अन्तर जान लेनेसे ना गा दूरी (क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र) जानी जा सकती है। परन्तु व्यवहारमें सरलता उस समय होती है जिस समय केवल यह जानना रहता है कि प न या प ग में क्या घटाया बढ़ाया जाय कि प ना और प गा का मान निकल आवे। जितना घटाने या बढ़ानेसे, पातसे ग्रहकी क्रान्तिवृत्तीय दूरी निकलती है उसको परिणति कह सकते हैं। इसलिए यह जानना चाहिये कि परिणति कैसे निकालते हैं। परिभाषाके अनुसार नीच परिणति

$$= प न - प ना$$

$$ग्रह\ परिणति = प ग - प गा$$

ग गा को ग्रहका इष्टकालिक शर, <ग प गा को ग्रहका परमशर, प ग को पात से ग्रहकी दूरी या विपात ग्रह कहते हैं। <ग गा प समकोण है इसलिए ग प गा गोलीय समकोण त्रिभुज है और नेपियरके नियमोंके अनुसार,

(१) ज्या (९०° − प ग) = कोज्या (ग गा) × कोज्या प गा

(२) ज्या (ग गा) = कोज्या (९०° − ग प गा) × कोज्या (९०° − प ग)

(३) स्परे (ग गा) = ज्या (प गा) × स्परे (ग प गा)

(४) स्परे (प गा) = कोज्या (ग प गा) स्परे (प ग)

ज्या (प ग − प गा) = ज्या (प ग) कोज्या (प गा)

− कोज्या (प ग) ज्या (प गा)·········(ट)

पहले चार सूत्रोंसे कोज्या (प गा) और ज्या (प गा) के मान परमशर, इष्टकालिकशर और विपात ग्रहमें स्थापित करना चाहिए। सूत्र (३) से

$$\text{ज्या (प गा)} = \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

सूत्र (४) से, $\frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (प गा)}}$ = कोज्या (ग प गा) स्परे(पग

$$\therefore \text{कोज्या (प गा)} = \frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{स्पर (प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (गगा)}}{\text{स्परे(गप गा)}} \times \frac{\text{१} \qquad \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{ज्या (प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (पग)}}{\text{ज्या (पग)}}$$

ज्या (प गा) और कोज्या (प गा) के मानोंको समीकरण (ट) में उत्थापन करनेसे,

ज्या (प ग—प गा) = ज्या (प ग)

$$\times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (प ग)}}$$

$$-\text{कोज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)} \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} - \frac{\text{कोज्या (प ग)} \times \text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा) कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \left\{ \text{१—कोज्या (ग प गा)} \right\}$$

$$= \frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \text{उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$

परन्तु सूत्र(२)से, $\frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} = \text{ज्या (प ग)}$

$$\therefore \text{ज्या (प ग—प गा)} = \frac{\text{ज्या(प ग) कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \text{उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$

बुधको छोड़ कर सब ग्रहोंका परमशर ३°·४ से अधिक नहीं है इस लिए इनका इष्ट कालिक शर और भी छोटा होगा; जिससे यह मान लेनेमें कोई अशुद्धि नहीं है कि कोज्या (ग गा) एकके समान है। ऐसी दशा में,

$$\text{ज्या (प ग—प गा)} = \text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग)} \times \text{उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$

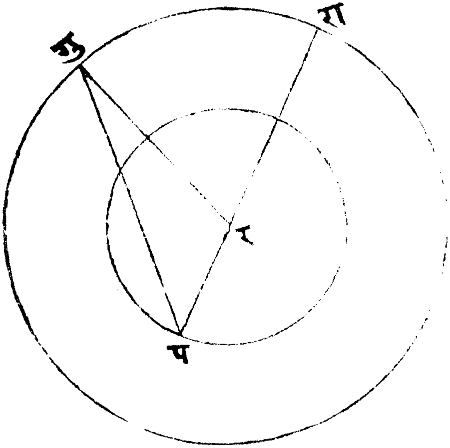
$$= \tfrac{1}{2}\ \text{ज्या २ (प ग) उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$

अर्थात् ज्या (परिणति) = ½ परमशरोत्क्रमज्या × ज्या २ (विपातग्रह)......... (ठ)

इस समीकरणसे ग्रह और उसके नीच दोनोंकी परिणति जानकर क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र जाना जा सकता है।

अब यह जानना रह गया कि पृथ्वीके मध्यसे ग्रह किस दिशामें और कितनी दूर देख पड़ता है। यह तो स्वयं सिद्ध

है कि पृथ्वीसे किसी ग्रहकी दिशा और दूरी जाननेके लिए यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी स्वयं कहां है।



चित्र ३४

यह समीकरण (छ) से ही जाना जाता है क्योंकि इसीकी कक्षाके धरातलमें तो अन्य ग्रहोंकी परिणति करनी पड़ती है। अब पृथ्वीका स्थान निश्चित होगया तब सूर्यका स्थान सहज ही जाना जा सकता है; क्योंकि सूर्यसे पृथ्वी जिस दिशामें देख पड़ती है उससे १८०° पर पृथ्वीसे सूर्य दीखेगा। इस लिए पृथ्वीके स्पष्टकेन्द्रमें १८०° जोड़ने या घटानेसे सूर्यका स्थान निकल आता है। ग्रहके क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्रसे सूर्यका स्थान घटा देने पर शीघ्र-केन्द्र जाना जा सकता है। चित्र ३४ में र प और गु क्रमसे पृथ्वी और बृहस्पतिके स्थान है। र वह विन्दु है जहां सूर्य पृथ्वीके मध्यसे देख पड़ता है; इसलिए रा

र गु कोण बृहस्पतिका शीघ्रकेन्द्र हुआ। प र गु कोण १८०°−रा र गु कोणके समान है। इसलिए प र गु त्रिभुजके दो भुज प र और गु र ज्ञात हैं, क्योंकि यह सूर्यसे पृथ्वी और गुरुकी दूरी अर्थात् पृथ्वी और गुरुके स्पष्ट कर्ण हैं और इनके बीचका कोण प र गु भी ज्ञात है। इसलिए प गु, <र प गु और <प गु र भी जाने जा सकते हैं; क्योंकि लोनीकी त्रिकोणमिति भाग १ पृष्ठ १०४ अथवा हाल और नाइटकी त्रिकोणमिति पृष्ठ १७१ से स्पष्ट है कि

$$\text{स्पर्श}\,\frac{\text{र प गु} - \text{र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु} - \text{र प}}{\text{र गु} + \text{र प}}\,\text{स्पर्श}\,\frac{\text{र प गु} + \text{र गु प}}{२}$$

$$\text{परन्तु} \angle\,\text{र प गु} + \angle\,\text{र गु प} = \angle\,\text{रा र गु} = \text{शीघ्रकेन्द्र}$$

$$\therefore\ \text{स्पर्श}\,\frac{\text{र प गु} - \text{र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु} - \text{र प}}{\text{र गु} + \text{र प}}\,\text{स्पर्श}\,\frac{\text{शीघ्रकेन्द्र}}{२}$$

जिससे र प गु—र गु प ज्ञात हो सकता है। और <र गु प +<र प गु ज्ञात ही है; इसलिए इन दोनोंको जोड़कर आधा कर देनेसे र प गु कोण जाना जा सकता है। यही कोण बृहस्पति और सूर्यके बीचका कोण है; जो पृथ्वीसे देख पड़ता है। इसीको इनान्तर कहते हैं क्योंकि इन सूर्यका पर्याय है।

पृथ्वीसे गुरुकी दूरी पगु जिसे शीघ्रकर्ण कहते हैं त्रिकोणमितिके अनुसार इस प्रकार जान सकते हैं:—

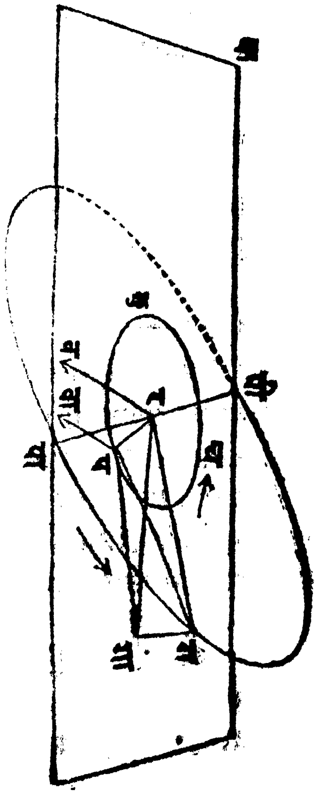
$$\frac{\text{गु प}}{\text{ज्या} \angle\,\text{प र गु}} = \frac{\text{गु र}}{\text{ज्या} \angle\,\text{र प गु}}$$

$$\text{परन्तु ज्या प र गु} = \text{ज्या रा र गु} = \text{ज्या शीघ्रकेन्द्र}$$

$$\therefore\ \text{शीघ्रकर्ण} = \text{ज्या शीघ्रकेन्द्र} \times \text{ग्रहका मंदकर्ण} \times \frac{१}{\text{ज्या इनान्तर}} \quad \cdots(९)$$

यह इनान्तर और शीघ्रकर्ण क्रान्तिवृत्तीय धरातल के हैं अर्थात् उस दशाके हैं यदि ग्रह क्रान्तिवृत्तमें देख पड़ता परन्तु यथार्थमें ग्रह कुछ उत्तर या दक्खिन रहता है। इसलिए शीघ्र-कर्णको यदि ग्रहके इष्टकालिक शरकी कोटिज्यासे भाग दे दिया जाय तो यथार्थ शीघ्रकर्ण ज्ञात हो जायगा। इसी प्रकार

चित्र ५४



क्रान्ति वृत्तीय इनान्तर में भी संस्कार करनेसे यथार्थ इनान्तर जाना जाता है। चित्र ३५ से जो गाडफ्रे की एस्ट्रोनोमी पृष्ठ २७४के अनुसार है यह सब बातें एक साथ ही स्पष्ट होती हैं:-

क ख क्रान्तिवृत्तीय धरातल है, जिसमें पृथ्वीकीकक्षा अर्थात् क्रान्तिवृत प च छ है। कक्षावृत पा ग पी है, जो क्रान्तिवृत्तीय धरातलको पा पी विन्दुओं पर काटता है। पा उत्तर पात और पी दक्षिण पात हैं। र, प और ग क्रमसे सूर्य, पृथ्वी और ग्रहके यथार्थ स्थान हैं; ग से गगा क्रान्तिवृत्तीय धरातल पर लम्ब गिराया गया है; व वसंत संपात विन्दु है; <गरगा और वरगा ग्रहके सूर्य केन्द्रीय शर और भोगांश (Longitude) हैं। <ग प गा और <वा प गा ग्रह के भूकेन्द्रीय शर और भोगांश है। पवा, रव समानान्तर हैं। <वरप सूर्यकेन्द्रकीय पृथ्वीका भोगांश है: इसलिए <वरप+१८० भूकेन्द्रीय सूर्यका भोगांश है। र प गा त्रिभुज चित्र ३४ के त्रिभुज र प गु से मिलता है। प गा ग्रहका क्रान्तिवृतीय शीघ्र कर्ण और <र प गा क्रान्तिवृत्तीय इनान्तर है;प ग यथार्थ शीघ्रकर्ण और < र प ग यथार्थ इनान्तर है।

$$\text{पग} = \frac{\text{पगा}}{\text{कोज्या} \angle \text{ग प गा}}$$

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञानके अनुसार ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेकी जो रीति बतलायी गयी है वह दिग्दर्शन मात्र है। इस क्रियासे जो स्पष्ट स्थान जाना जाता है उसमें और प्रत्यक्ष वेध द्वारा जाने गये स्थानोंमें कुछ सूक्ष्म अंतर देख पड़ता है। इसका कारण यह है कि किसी ग्रह पर केवल सूर्यका ही आकर्षण नहीं होता वरन अन्य ग्रह और उपग्रहोंका भी होता है जिनके कारण वह उस स्थानसे कुछ विचलित देख पड़ता

है जो उपर्युक्त रीतिसे जाना जाता है। इसलिए सूक्ष्मतापूर्वक शुद्ध स्थान जानना हो तो अन्य ग्रहोंके आकर्षणके कारण जो परिवर्तन होता है उसका संस्कार भी करना चाहिये। परन्तु यह विषय बहुत गंभीर है। इसकी पूरी जानकारी के लिए भौतिक ज्योतिर्विज्ञान (Physical astronomy) गति विज्ञान (Dynamics), चलन कलन, चलराशिकलन इत्यादि उच्च गणितकी जानकारी भी आवश्यक है। इसलिए विस्तार भयसे उसका विचार यहां नहीं किया जायगा।

ऊपर बतलायी गयी रीतिसे यदि चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान निकाला जाय तो देखा जाता है कि बेध द्वारा जाना गया स्थान उससे कभी कभी तीन तीन अंश आगे पीछे होता है। इसका कारण यह है कि चंद्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमते हुए इसके साथ साथ सूर्यकी परिक्रमा भी एक वर्षमें कर लेता है; इसलिए चंद्रमा पर पृथ्वीके आकर्षणके साथ साथ सूर्यके आकर्षणका प्रभाव भी बहुत पड़ता है जिससे चंद्रमाकी विचलन बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है। इसलिए चंद्रमाके सम्बन्धमें कुछ मुख्य संस्कार करनेकी आवश्यकता पड़ती है जिनकी चर्चा संक्षेपमें की जाती है।

सबसे पहले केपलरके नियमके अनुसार जो मंदफल संस्कार करना चाहिए उसका सरल रूप बतला देना आवश्यक है। चंद्रमाकी केन्द्रच्युति* १८५४ ई० के आरंभ में ०.०५४८४४२ थी।

* देखो Loomis practical astronomy पृष्ठ ४६२।

इसलिए च = ०·०५४८८४४१

$च^{२}$ = ·००३००७६

$च^{३}$ = ·०००१६४६६

$च^{४}$ = ·००००००६०५

$च^{५}$ या इसके आगेकी संख्याओंके मान जाननेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अत्यन्त छोटे हैं। च के घातोंके इन मानोंको समीकरण (छ) में उत्थापन करनेसे चंद्रमाके मंदफल संस्कारका रूप यह होगा:—

स=म + (·१०९६८८४ — · ००००४१२४) ज्या म

+ (·००३७५९९ — ·०००००४१५) ज्या २ म

+ · ०००१७८७ ज्या ३ म

+ · ००००००९७ ज्या ४ म

=म + ·१०९६४७१६ ज्या म + ·००३७५५७५ ज्या २ म

+ ·०००१७८७ ज्या ३ म + ·००००००९७ ज्या ४ म

यदि म २ म, ३ म की ज्याओंको आधुनिक रीतिसे दशमलव भिन्नमें लिखा जाय तो ज्या म, ज्या २ म के गुणकोंको जो रेडियनमें हैं, कलाओं या विकलाओंमें लिखनेके लिए ३४३७·७५ या २०६२६५से गुणा कर देनेसे और भी सरलता होगी क्योंकि एक रेडियन ३४३७·७५ कला या २०६२६५ विकलाके लगभग होती है। ऐसा करनेसे इसका रूप यह होगा:—

स=म + ३७६′५६″·४ ज्या म + १२′५४″·७ ज्या २ म

+ ३६″·९ ज्या ३ म + २″·० ज्या ४ म

यहाँ यह याद रखना चाहिये कि म मन्दकेन्द्र आजकलकी रीत्यनुसार नीच (perigee) से समझा गया है। यदि मंदकेन्द्र पुरानी परिपाटीके अनुसार उच्च से समझा जाय तो

स = म — ३७६ ′ ५६″·४ ज्याम + १२′५४″·७ म ज्या २ म

— १६″·६ ज्या ३ म + २″·० ज्या ४ म

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके प्रधान समीकरणके ज्याम, ज्या २ म, इत्यादिके गुणकोंको कलाओं या विकलाओंमें लिखा जा सकता है।

इस समीकरणके दाहने पक्षमें म मंदकेन्द्र अर्थात् उससे मध्यम चंद्रका भोगांश है, शेष मंदफल है जिसका संस्कार मंदकेंद्रमें करनेसे स्पष्ट चंद्र सिद्ध होता है। यह स्पष्ट है कि इस मंदफलमें पहला पद अर्थात् ३७६′५६″·४ ज्याम बहुत बड़ा है इसके पीछे दूसरा पद १२′५४″·७ ज्या २ म है। परन्तु जिस समय म का मान ६०° होता है उस समय ज्याम का मान १ और ज्या २ म का मान शून्य होता है इस लिए परम मंदफलका मान पहले ही पद पर अवलंबित रहता है और प्रायः ३७७′ अर्थात् ६°१७′ के समान होता है। परंतु हमारे ज्योतिषियोंने चंद्रमाके परम मंदफलका मान ५° के लगभग माना है इस लिए यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इतना अंतर क्यों है।

जब परम मंदफलका मान ३७६′५६″·४ ज्याम समझकर चंद्रमाका स्पष्ट स्थान निकाला जाता है तब इसको वेध करके मिलाने पर देख पड़ता है कि प्रत्यक्ष स्थान और गणित-सिद्ध स्थानमें कभी कभी अधिकसे अधिक अंतर १° २०′ का होता है। कई वर्ष तक निरंतर बेध करने पर यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि अमावस या पूर्णिमा के दिन जब चंद्रमा मंदोच्च से ६०° के लगभग दूर रहता है तब मंदफल संस्कृत स्पष्ट

चन्द्रसे बेध-सिद्ध चंद्रमा १°२०′ आगे रहता है और जब चंद्रमा मंदोच्चसे २७०° अथवा मोच्चसे ९०° आगे रहता है तब मंदफल-संस्कृत-स्पष्ट-चंद्रसे बेध-सिद्ध चंद्रमा १°२०′ पीछे रहता है। पहली दशामें मंदफलका संस्कार – ३७९′५९″·४ अथवा – ६°१९′५९″·४ होता है अर्थात् मध्यम ग्रहमें ६°१९′ ५९″·४ घटानेसे मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रह आता है। परन्तु इससे बेध-सिद्ध ग्रह १°२०′ आगे रहता है इसलिए मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रहमें १°२०′ जोड़ना चाहिए। इसलिए यदि ६°१९′५९″·४ घटाने और १°२०′ जोड़नेकी जगह इन दोनोंका अंतर अर्थात् ४°५९′५९″·४ ही घटाया जाय तो भी वही फल होगा। इसलिए यदि परम मंदफल ६°१९′५९″·४ की जगह ४°५९′५९″·४ मान लिया जाय तो कोई हानि नहीं समझ पड़ती। दूसरी दशामें ६°१९′५९″·४ जोड़ना पड़ता है और १°२०′ घटाना पड़ता है जिसकी जगह यदि इन दोनोंका अंतर अर्थात् वही ४°५९′५९″·४ जोड़ा जाय तो कोई फेर नहीं पड़ेगा। जब पूर्णिमाके दिन चंद्रमा उच्च पर भी रहता है तब तो मंदकेन्द्र शून्य होनेसे मंदफल संस्कार शून्य होता है उस समय मध्यम और स्पष्ट चंद्रमाके स्थानोंमें कोई अंतर ही नहीं रहता। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णमासी या अमावसके दिन बेध करके परम मंदफलका मान जाननेमें ५° के लगभग ही आवेगा जो हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें दिया हुआ है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि परम मंदफलका मान ५° ही ठीक है ६°१९ नहीं। परन्तु बेधसे यह भी जाना गया है कि प्रत्येक पक्षकी अष्टमीके लगभग जब चंद्रमा मंदोच्च से ९०° पर रहता है तब ५° का मंदफलका संस्कार देने पर भी चंद्रमा कोई ३

अंश पीछे रहता है अर्थात् वेध-सिद्ध चंद्रमा मध्यम चंद्रमासे कोई आठ अंश पीछे रहता है। और यदि अष्टमी के दिन चंद्रमा नीचसे ९०° पर रहता है तब मध्यम चंद्रसे वेध-सिद्ध-चंद्रमा ५° नहीं वरन् ८° के लगभग आगे रहता है। इस लिए यह मानना पड़ेगा कि परम मंदफल ५° मान लेनेसे पूर्णिमा या अमावास्याके दिन तो कोई हानि नहीं होती परंतु अष्टमीके लगभग ३° का अंतर देख पड़ता है। हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंको इस बातका पता इस लिए नहीं लगा कि वे, मेरी समझमें, ग्रहण-कालसे मध्यम और स्पष्ट चंद्रमाका अंतर निकाल कर मंदफल निकालते थे जैसा कि केशवाचार्यके उद्धरणसे प्रकट होता है जो इसी अध्यायके १४वें श्लोकके भाष्य पृष्ठ १६७ में दिया गया है। इस उद्धरणसे यह भी पता लगता है कि केशवाचार्यको सूर्य सिद्धान्तके अनुसार स्पष्ट किये हुए चंद्रमासे वेध द्वारा देखा गया चंद्रमा ५' कम देख पड़ा जैसाकि पहले दिखाया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्याको मंदफल और च्युति संस्कार मिलकर ४°५७' होते हैं। इस लिए केशवाचार्यका वेध बहुत सूक्ष्म सिद्ध होता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि इस भेदका कारण किसी और जगह देखा जाय। यह तो स्पष्ट है कि यह भेद चंद्रमा के उच्चसे विशेष सम्बन्ध रखता है और यह भी देखा गया है कि यह सदैव इतना ही नहीं रहता वरन् घटते घटते कभी शून्य हो कर ऋणात्मक हो जाता है और कभी धनात्मक हो जाता है इस लिए यह नियत-कालिक (periodical) भी है। इसे यूनानी ज्योतिषी टालमी ने विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें ही निश्चय कर लिया था, परन्तु इसके कारणका पता निउटनके

पहले किसीने नहीं लगा पाया था। निउटनने आकर्षण सिद्धान्तसे सिद्ध किया कि चंद्रमापर पृथ्वीका ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रहोंका भी पड़ रहा है और उपर्युक्त महान् अंतरका कारण सूर्यका आकर्षण है। भौतिक ज्योतिर्विज्ञानने गणितसे सिद्ध कर दिया है कि यह अंतर सूर्यके आकर्षणसे पड़ता है और इस संस्कारका मुख्य रूप जब मंदकेन्द्रकी गणना नीचसे की जाय तो यह है +१° २०′ २६·″५ × ज्या [२ (चन्द्रमा — सूर्य) — चन्द्र मन्दकेन्द्र]। इसके आगेके पद जो बहुत सूक्ष्म हैं छोड़ दिये गये हैं।

टालमी ने इस संस्कारका नाम इवेक्शन् (evection) रखा था जो अब तक प्रचलित है। स्वर्गीय वेंकटेश बापू जी केतकर ने अपने ज्योतिर्गणितमें इसको च्युति संस्कार कहा है। इस पदमें चंद्रमा — सूर्य का अर्थ है सूर्यसे चंद्रमाका अंतर जो हमारे यहां तिथिके नामसे प्रकट किया जाता है। जिस समय अमावस या पूर्णिमा होती है उस समय चंद्र — सूर्य का मान शून्य या १८०° होता है इसलिए इस पद का रूप १° २०′ २६″·५ ज्या (— चंद्र मंदकेन्द्र) या — १° २०′ २६″·५ ज्याम होता है जो मंदफल संस्कारके रूपमें है और जब मंदफल जोड़ा जाता है तब यह घटाया जाता है और जब मंदफल घटाया जाता है तब यह जोड़ा जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि यदि मंदफल को इन दोनोंके अंतर के समान समझ लिया जाय तो कोई हानि नहीं होती।

चूंकि मंदफल च्युतिके मानपर आश्रित होता है इसलिए मंदफलके घटनेसे यह सूचित होता है कि चंद्रकक्षा की च्युति घट गयी है और बढ़ने से च्युतिके बढ़नेकी सूचना मिलती

है। अर्थात् इस घट बढ़से यह अनुमान दृढ होता है कि चंद्र-कक्षाका आकार सदैव एक-सा नहीं रहता। यह बात आकर्षण सिद्धान्त से भी पूरी तरह मेल खाती है जैसा कि आगे दिखाया जायगा।

परन्तु जब चंद्र—सूर्य ९०° या २७०° होता है अर्थात् अष्टमी होती है तब इसका रूप १°२०′ २९·५″ ज्या [२ × ९०° —चन्द्र मन्दकेन्द्र] अथवा १° २०′ २९″-५ ज्या म होता है जो है तो मन्दफल संस्कार के ही रूप का परंतु यदि मंदफल धनात्मक होता है तो यह भी धनात्मक होता है और मंदफल ऋणात्मक होता है तो यह भी ऋणात्मक होता है। इसलिए मंदफल ५° मानने से कभी ३° आगे पीछे का अंतर पड़ जाता है। इसी कारण सप्तमी, अष्टमी और नवमीके जो समय भारतीय रीति से बनाये गये पंचागों में लिखे रहते हैं वह आधुनिक रीति से जाने गये कालोंसे कभी कभी १४, १५ घड़ी आगे पीछे रहते हैं। यह बात बापूदेव शास्त्रीके पंचांग और काशी के मकरंद सारिणी से बनाये गये पंचागों से भी प्रकट हो सकती है।

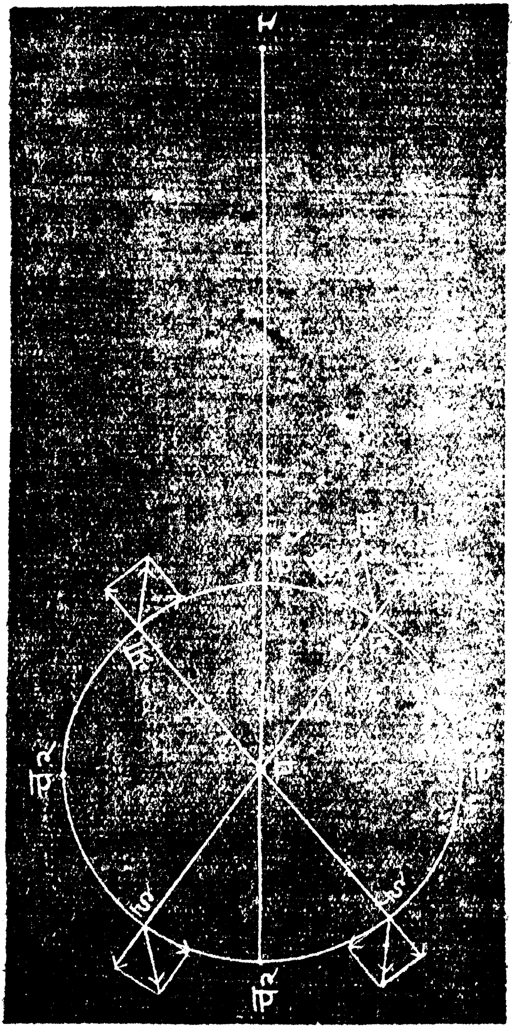
निउटन ने इसका कारण जिस तरह समझाया है वह संक्षेपमें* यह है:—चंद्रमा और पृथ्वी की कक्षाओंके बीचका कोण केवल ५° के लगभग है इसलिए दोनोंको एक ही धरातल में मान लेने से विशेष हानि नहीं होगी परन्तु सरलता आ जायगी।

---

* Heroes of Science: Astronomers के आधार पर

मान लो र सूरज, प पृथ्वी और $च_१$, $च_२$, $च_३$, $च_४$ चंद्रमाकी कक्षा है। यहां यह न भूल जाना चाहिये कि प र, अर्थात् सूर्य से पृथ्वी का अंतर प $च_१$, अर्थात् पृथ्वी से चंद्रमाकी दूरी का कोई ४०० गुना है। यह भी समझे रहना आवश्यक है कि चंद्रमाका विचलन इसलिए होता है कि सूर्य पृथ्वी और चंद्रमा दोनोंको असमान रूपसे आकर्षित कर रहा है इसलिए इन दोनोंके आकर्षणके अंतरके कारण यह विचलन हो रहा है। यदि यह अंतर न होता अर्थात् सूर्यका आकर्षण चंद्रमा और पृथ्वी पर समान होता तो विचलन कदापि न होता क्योंकि तब तो दोनों साथ ही साथ आगे पीछे होते और चंद्रमाकी सापेक्ष गतिमें भिन्नता न पड़ती।

चित्र ३६ से यह स्पष्ट है कि जबतक चंद्रमा $च_४$ से $च_१$ होता हुआ $च_२$ तक चलता है तब तक यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यके निकट रहता है अर्थात् कृष्ण-पक्षकी अष्टमी से लेकर शुक्ल पक्षकी अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वीकी अपेक्षा सूर्यके निकट रहता है और शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे कृष्ण पक्षकी अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यसे दूर रहता है। इसलिए आकर्षण सिद्धान्तके अनुसार पहली दशा में सूर्यका आकर्षण चंद्रमा पर अधिक होता है अर्थात् सूर्यकी ओर अधिक खिंचने के कारण चंद्रमा पृथ्वीसे कुछ दूर हो जाया करता है जिससे जान पड़ता है कि विचालकशक्ति (perturbing force) चंद्रमा को पृथ्वीसे दूर खींचे जा रही है। चूँकि र बहुत दूर है इस लिए यह शक्ति प र के प्रायः समानान्तर दिशामें र की ओर काम कर रही है। दूसरी दशामें पृथ्वी अधिक खिंचती है, इसलिए चंद्रमा पीछे रह जाता है जिससे जान पड़ता है कि

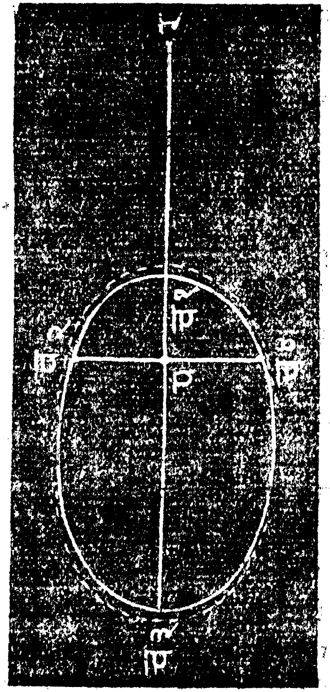


चित्र ३३

विचालक शक्ति सूर्यसे विरुद्ध दिशामें चंद्रमा को धक्का देकर पृथ्वीसे दूर कर रही है। यह पहले ही कहा गया है कि सूर्य बहुत दूर है इसलिए विचालक शक्ति चंद्रमाको प र के समानान्तर दिशा में र से दूर ढकेले जा रही है। इस लिए यह सिद्ध है कि यह शक्ति चंद्रमा और पृथ्वी को सदैव परस्पर दूर कर रही है, प र के प्रायः समानान्तर काम कर रही है, और इसका प्रभाव उस समय शून्य होता है जब चंद्रमा च, या च, के पास रहता है क्योंकि उस समय चंद्रमा और पृथ्वी दोनों सूर्यसे समान दूर होते हैं।

मानलो यह जानना है कि जिस समय चंद्रमा च, और च, के बीचमें अ पर है और नीच पृथ्वी और सूर्यकी रेखा पर है। उस समय विचालक शक्ति किस प्रकार काम कर रही है। विचालक शक्तिको अ क रेखासे प्रकट किया जा सकता है और 'गतिके समानान्तर चतुर्भुज नियम' के अनुसार इस शक्तिको विभक्त करके अ ख और अ ग रेखाओंमें प्रकट कर सकते हैं जब कि अ ख रेखा अ पर स्पर्श-रेखा है अर्थात् चंद्रमा की गतिकी दिशामें है और अ ग रेखा मंदकर्ण (radius vector) की सीधमें है और बाहरकी ओर पृथ्वीके विरुद्ध काम कर रही है। विचालक शक्तिका जो भाग (resolved part) अ ग दिशामें काम कर रहा है वह चंद्रमाको पृथ्वीसे दूर कर रहा है और जिस समय चंद्रमा च, पर अर्थात् सूर्यकी सीधमें आ जाता है उस समय यह भाग ही प्रधान हो जाता है और दूसरा भाग शून्य हो जाता है। इसलिये विचालक शक्तिके इस भागसे चंद्रमा चाहे अ, आ, इ, ई पर जहां हो पृथ्वीसे दूर ही होता जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि चंद्रकक्षा

अधिक लम्बी हो जाती है जैसा कि चित्र १७ से प्रकट होता है:—



चित्र १७

पूर्ण रेखा से वास्तविक चंद्र-कक्षा प्रकट होती है और कटी रेखासे चन्द्र कक्षाका नया रूप प्रकट होता है जो विघात्मक शक्तिके कारण हो गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती

है कि चंद्रकक्षाकी च्युति बढ़ गयी क्योंकि दीर्घवृत्तिकी च्युति अधिक होनेसे इसका आकार लम्बा हो जाता है और कम होनेसे कुछ गोला हो जाता है। यह बात प्रत्यक्ष वेधसे भी देखी जाती है जिसका संकेत पहले किया गया है।

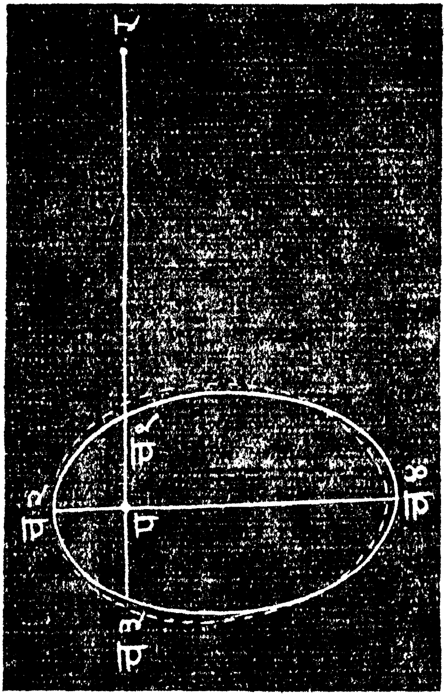
समीकरण 'छ' से यह भी सिद्ध है कि मंदफल संस्कार का मुख्य पद च्युति के मान पर कितना अवलम्बित है। यदि च्युति अधिक हो तो मंदफल भी अधिक होता है और च्युति कम हो तो मंदफल भी कम होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि इस विचालक शक्तिके कारण चन्द्रकक्षाकी च्युति यदि नीच सूर्यकी सीधमें हो तो अधिक हो जायगी जिससे मन्दफल संस्कार भी बढ़ जायगा। मन्दफल संस्कार यथार्थसे जितना बढ़ जाता है उसीको च्युति संस्कार (evection) कहा गया है।

इसके विरुद्ध यदि नीच सूर्यसे ९०° आगे या पीछे हो तो (देखो चित्र ३८) चन्द्रकक्षाका आकार कुछ गोल हो जायगा और च्युति कम पड़ जायगी, जिससे मन्दफल संस्कार यथार्थ से उतना ही कम हो जायगा जितना पहली स्थितिमें बढ़ गया है। ऐसी दशामें च्युति संस्कार ऋणात्मक हो जायगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि विचालक शक्तिके उस भाग से जो चन्द्रमाके मन्द-कर्णकी दिशामें चन्द्रकक्षाके बाहरकी ओर काम कर रहा है चन्द्रमामें इतना विचलन (deviation) हो जाता है कि च्युति-संस्कारकी आवश्यकता पड़ती है।

अब इसके उस भागकी ओर ध्यान देना चाहिये जो चन्द्र-कक्षाकी स्पर्श रेखाकी दिशामें काम कर रहा है। इससे यह फल होता है कि जब तक चन्द्रमा (देखो चित्र ३९) च, और

$च_1$ के बीच अथवा $च_2$ और $च_3$ के बीच रहता है तब तक चन्द्रमाकी साधारण गतिकी दशामें ही विचालक शक्ति भी अपना काम करती है और उसकी साधारण गति (जो पृथ्वीके



चित्र ५८

आकर्षणके कारण होती है) को कुछ तीव्र कर देती है। परन्तु जब चन्द्रमा $च_1$ और $च_2$ अथवा $च_3$ और $च_4$ के बीचमें रहता है तब विचालक शक्ति चंद्रमाकी साधारण गतिके विरुद्ध

काम करती हुई उसको कुछ मन्द कर देती है। यह बात चान्द्र-मासके प्रत्येक पक्षकी चौथ और एकादशीको बहुत देख पड़ती है, इसलिए इन तिथियोंके कालोंमें कुछ परिवर्तन कर देती है। इस विषमताके कारण चन्द्रमामें एक और संस्कार भी करना पड़ता है जिसे पाक्षिक-संस्कार (variation) कहते हैं। ज्योतिर्गणित में इसे तिथि-संस्कार कहा गया है। इसके भी कई पद हैं जिनमें मुख्य पदका रूप यह है।

३५′ ४१″·६ ज्या २ (चंद्र — सूर्य)

अब यह बात निश्चित हो गयी कि पृथ्वीकी परिक्रमा करने के कारण चंद्रमाकी दूरी सूर्यसे कभी कम हो जाती है और कभी अधिक जिससे चंद्रमामें विचलन हो जाता है जो च्युति और पाक्षिक संस्कारों से जाना जा सकता है, तब यह समझना कुछ कठिन नहीं है कि सूर्यकी दूरी पृथ्वीसे जो वर्ष भरमें घटती बढ़ती रहती है उससे भी चंद्रमाके स्थानमें कुछ अंतर पड़ जाता है और उपर्युक्त दो संस्कारोंसे पूरा नहीं होता। इसलिए एक और संस्कारकी भी आवश्यकता पड़ती है जिसे वार्षिक संस्कार कहते हैं इसका मुख्य रूप यह है।

११′ ११″-९७ ज्या (सूर्य-मंद-केंद्र)

इस प्रकार चंद्रमाके चार मुख्य मुख्य संस्कारोंकी चर्चा संक्षेपमें हो गयी और यह भी सूत्र रूपमें बतलाया गया कि इनके कारण क्या हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लघु संस्कार भी हैं जो उच्च-गणित की अच्छी जानकारी बिना समझमें नहीं आ सकते और जिनका आविष्कार गत सौ वर्षोंमें हुआ है जब कि गणित और वैज्ञानिक यंत्रों की सूक्ष्मता हुई है।

पहले बतलाया गया है कि च्युति-संस्कारका आविष्कारक टालमी है जो विक्रमकी दूसरी शताब्दी में यूनानमें रहा है। परंतु इसका कारण निउटन के पहले नहीं मालूम हो पाया था। पाक्षिक-संस्कार तथा वार्षिक-संस्कारका आविष्कार टाइको ब्राही ने (Tycho Brahe जन्म १४ दि० १५४६ मृत्यु २४ अक्टूबर १६०१ ई०) अपनी अपूर्व निरूपण-शक्तिसे किया था। इसका कारण उसको भी नहीं मालूम हो सका था क्योंकि उस समय तक उच्च गणित का तथा आकर्षण सिद्धान्तका अच्छा ज्ञान नहीं था। तिथि संस्कारका कुछ संकेत अबुल वफ़ा नामक मुसलमान ज्योतिषी ने भी किया था।

प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने मंदफल संस्कार के अतिरिक्त अन्य किसी संस्कारकी ओर ध्यान नहीं दिया था। मुंजाल * ने (८५४ शक वि० ९८९ वि०) च्युति संस्कारकी तरह एक संस्कार तथा एक पाक्षिक-संस्कारकी चर्चा की है और नित्यानन्दजी† ने (शक १५६१ वि० १६९६ में) पाक्षिक संस्कार

---

* अयं संस्कारश्च "इवेक्शन् वेरियेशन् नामक संस्कारवत् प्रतिभाति। तत्र श्लोकौच।

इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुणो व्यर्केन्दु दोः कोट्यो रूप पञ्चाप्तयोः क्रमात् ॥
फले शशाङ्क तद गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्ण साम्यवधेऽन्यथा ॥

अत्र व्याख्याकारः "अयं संस्कारस्थिति भ योग साधने न क्रियते पूर्वैरुपेक्षितत्वात्" (गणक तरङ्गिणी पृष्ठ २१ पाद टिप्पणी)

† अत्र मन्दफलातिरिक्तः पाक्षिक नामक संस्कारश्च मध्यम रवि चन्द्रान्तर वशातश्चन्द्रे देयस्तथाऽनेन विधिना जातश्चन्द्रो विमण्डलस्थो भवति" (उपर्युक्त ग्रन्थ, पृष्ठ १०१)

और पात संस्कारकी चर्चा की है; परन्तु इनका प्रचार नहीं हुआ। सिद्धान्त-दर्पणसे प्रकट होता है कि म० म० चन्द्र शेखर सामन्त ने भी संस्कारोंकी चर्चा की है।

इन चारों संस्कारोंके साथ चन्द्रमा संबन्धी प्रधान समीकरणका रूप यह होगाः—

स=म

+ ३७६′५६″४ ज्या म
+ १२′५४″.७′ ज्या २ म
+ ३६″ ·९ ज्या ३ म
+ २.″० ज्या म
} मंदफल संस्कार

+ १°२०′२९″.५ज्या [२ (चंद्र–रवि)–म] च्युति संस्कार

+ ३५′४१″·६ ज्या २ (चंद्र — रवि) पाक्षिक संस्कार

+ ११′११·९७ ज्या (सूर्य मन्द केन्द्र) वार्षिक संस्कार

यहां स चन्द्रमा का स्पष्टकेन्द्र और म चंद्रमा का मंदकेन्द्र है, जब कि मन्द केन्द्रकी गणना नीच (perigee) से की गयी है। ज्योतिर्गणितमें च्युति और पाक्षिक संस्कारके और पद भी दिये गये हैं जो यहाँ नहीं दिये जाते। च्युतिके मंद परिवर्तन के कारण अङ्कोंमें एकाध कलाका अंतर पड़ता जाता है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

आधुनिक ज्योतिषका इतना परिचय देना मेरी समझमें पर्याप्त है। उदाहरण देनेसे विस्तार बहुत हो जायगा; इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते।

कुजार्किगुरुपातानां ग्रहवच्छीघ्रजं फलम्।
वामं तृतीयकं मान्दं बुधभार्गवयोः फलम् ॥५६॥

स्वपातोनाद्ग्रहाज्जीवा शीघ्राद्भृगुजसौम्ययोः।
विक्षेपघ्न्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः ॥५७॥

अनुवाद—(५६) मंगल, शनि और गुरुके पातोंके स्थानोंमें प्रत्येकके दूसरे शीघ्रफलका संस्कार उसी प्रकार करो जिस प्रकार ग्रहके साथ किया जाता है अर्थात् यदि यह धनात्मक हो तो जोड़ दो और ऋणात्मक हो तो घटा दो। ऐसा करनेसे इन तीन ग्रहोंके पातोंके स्पष्ट स्थान ज्ञात हो जायंगे। परन्तु बुध और शुक्रके पातोंके स्थानोंमें प्रत्येकके दूसरे मन्दफलका, जो ग्रहको स्पष्ट करनेके लिए तीसरे संस्कारमें काम आता है उलटा संस्कार करो अर्थात् यदि धनात्मक हो तो घटा दो और ऋणात्मक हो तो जोड़ दो। ऐसा करनेसे बुध और शुक्रके स्पष्ट पात ज्ञात हो जांयगे। (५७) मंगल, शनि और गुरु प्रत्येकके स्पष्ट स्थानमेंसे अपने अपने पातके स्पष्ट स्थानको घटा दो जो शेष हो उसकी ज्या निकालो और इस ज्याको ग्रहके मध्यम विक्षेपसे गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्णसे भाग दे दो तो स्पष्ट विक्षेप या शर ज्ञात हो जायगा। परन्तु बुध और शुक्रके शीघ्रोच्चके स्थानोंमेंसे इनके स्पष्ट पात घटाकर शेषकी ज्या निकालनी चाहिये और इस ज्याको बुध और शुक्रके मध्यम विक्षेपसे गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्णसे भाग देना चाहिये। चन्द्रमाका स्पष्ट शर (विक्षेप) जाननेके लिए स्पष्ट चन्द्रके स्थानमेंसे पात (राहु) का स्थान घटाकर शेषको चन्द्रमाके मध्यम विक्षेपसे गुणा करके त्रिज्यासे भाग दे देनेसे ही काम हो जाता है।

विज्ञान भाष्य—उदाहरणके लिए गुरुका स्पष्ट शर जाननेकी रीति लिखी जाती है। १९७९ वि० की बसंत पंचमीकी अर्द्ध-

रात्रिको उज्जैनमें गुरुका स्पष्ट स्थान गणनासे जो कुछ आया वह ६रा २७° ५३' ३७" है (देखो पृष्ठ २२७)

इसलिए इसी समय का गुरुका स्पष्ट शर निकालना सुगम होगा। एक कल्पमें बृहस्पतिका पात १७४ भगण करता है, इसलिए १९७९ वि० की वसंत पंचमी के दिन जब कि सृष्टि के आदि से १, ९५, ५८, ८५, ०२३ सौर वर्ष बीते हैं (देखो पृष्ठ ५८)† बृहस्पतिके पातका स्थान

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times १७४}{४,३२,००,००,०००}$$

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times २९}{७२,००,००,०००}$$

$$= ७८^{भ}\ ९^{रा}\ १०^{\circ}\ १९'\ ५८{\cdot}२''$$

या ९रा १०° १९' ५८·२" क्योंकि पूरे भगण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु पातों की गति विलोम दिशा में अथवा पच्छिम दिशा में होती है। इसलिए ऊपर जो स्थान पात के लिए आया है वह ऋणात्मक है। इसको १२ राशि में से घटाने पर गुरुके पात का स्थान (भोगांश) साधारण रीति के अनुसार आ जायेगा। इसलिए गुरुके पातका स्थान = २रा १९° ४०' २"†

उपर्युक्त ५६वें श्लोकके अनुसार इसीमें दूसरे शीघ्रफलका संस्कार ग्रहकी तरह करना चाहिये। वसंत पंचमीके दिन

† यह १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के समयका है परन्तु पातकी गति अत्यन्त मन्द होने से इसी को वसंत पचमीके दिन का भी मान लेने में कोई हानि नहीं है।

† सूर्यसिद्धान्त-मध्यमाधिकार (विज्ञान परिषद्)

बृहस्पतिका दूसरा शीघ्रफल + १०° ४७′ और अंतिम शीघ्र कर्ण ३६०८ है (देखो पृष्ठ २२७)।

इसलिये दूसरा शीघ्रफल संस्कृत पात

= २रा १९° ४०′ २″ + १०° ४७′

= ३रा ०° २७′ २″

परंतु गुरुका स्पष्ट स्थान = ६रा २७° ५३′ ३७″

∴ ५७ वें श्लोक के अनुसार पातसे गुरुका अंतर

= ६रा २७° ५३′ ३७″ − ३रा ०° २७′ २″

= ३रा २७° २६′ ३५″

यही वसंत पंचमी के दिन गुरुका विक्षेप केन्द्र हुआ।

इसी विक्षेप केन्द्रकी ज्याको गुरुके मध्यम विक्षेपसे जो मध्यमाधिकारके ६९-७० श्लोकोंके अनुसार १° या ६०′ है गुणा करके अन्तिम शीघ्र कर्ण से भाग देने पर गुरु का स्पष्ट विक्षेप या शर आ जायगा।

३रा २७° २६′ ३५″ दूसरे अर्थात् समपद में है इसलिए इसकी ज्या दूसरे पादके गम्य भागकी ज्या के समान होती है।

∴ ज्या ३रा २७° २६′ ३५″ = ज्या २रा २° ३३′ २५″

= ज्या ६२° ३३′ २५″

= ३०५० कला

∴ गुरुका स्पष्टशर = $\frac{३०५० \times ३०}{३६०८}$ कला

= ५०′ ४३″

विक्षेप केन्द्र १८०° से कम है, इसलिए गुरु क्रान्तिवृत्त से उत्तर है और ५०′ ४३″ गुरुका उत्तर शर हुआ।

इसी प्रकार मंगल और शनिके भी शर जाने जा सकते हैं। बुध और शुक्रके लिए कुछ भिन्नता करनी पड़ती है अर्थात् इनका विक्षेप केन्द्र जानने के लिए इनके पातों में दूसरे मंद फलका जो तीसरे कर्ममें काम आता है उलटा संस्कार करके शीघ्रोच्चों के स्थानों में से घटाना पड़ता है। इसके बाद जो कुछ करना पड़ता है वह उपर्युक्त रीति की तरह होता है।

चंद्रमाका स्पष्ट शर जानने के लिए यह सब झंझट करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसमें शीघ्र कर्म का संस्कार नहीं करना पड़ता। इसलिए इसके लिए वही नियम लागू है जो २८ वें श्लोकमें सूर्यके लिए बतलाया गया है, अर्थात् चंद्रमाके विक्षेप केन्द्र (राहुसे स्पष्ट चंद्रका अंतर) की ज्या को चंद्रमाके परम विक्षेप अर्थात् ४°३०′ से गुणा करके ३४३८ कलासे जो त्रिज्याका मान है भाग दे तो चंद्रमाका स्पष्ट शर ज्ञात हो जायगा। यदि विक्षेप केन्द्र १८०° से कम हो तो उत्तर शर होगा अन्यथा दक्षिण शर (देखो श्लोक ७ और उसका विज्ञानभाष्य तथा पृष्ठ ३५, ३६ मध्य० और उसके सामनेका चित्र ४)। पृष्ठ १८१ चित्र २५ में व को राहुका स्थान, व प को क्रान्तिवृत्त और वस को चंद्रकक्षा मान लिया जाय तो स प चंद्रमाका उत्तर शर होगा।

विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेप संयुता।
दिग्भेदे वियुता स्पष्टा भास्करस्य यथागता ॥५८॥

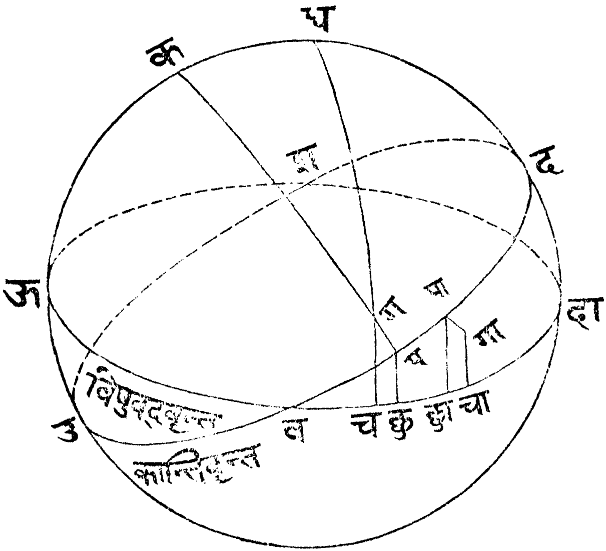
अनुवाद—(५८) किसी ग्रहकी स्पष्ट क्रान्ति जाननेके लिए उस ग्रहके स्पष्ट शर (विक्षेप) को उसी ग्रहकी (मध्यम) क्रान्तिमें जोड़ दो यदि शर और क्रान्ति दोनों एक ही प्रकारकी

हों, अर्थात् यदि शर और क्रान्ति दोनों उत्तर हों या दोनों दक्षिण हों। परन्तु यदि इनकी दिशाओंमें भिन्नता हो तो इन दोनोंका जो अन्तर होगा वही स्पष्ट क्रान्ति होगी। सूर्यकी स्पष्ट क्रान्ति जाननेके लिए जो नियम पहले (२८वें श्लोकमें) बतलाया गया है वही पर्याप्त है (क्योंकि सूर्य क्रान्ति-वृत्तपर ही भ्रमण करता है)।

विज्ञान भाष्य—स्पष्ट ग्रहसे क्रान्तिवृत्तका जो अन्तर कदम्ब-प्रोत-वृत्त पर होता है उसे उस ग्रहका स्पष्ट विक्षेप कहते हैं (देखो पृष्ठ ३५,३६ मध्य० तथा श्लोक ७,८) और स्पष्ट ग्रहसे विषुवद् वृत्तका जो अन्तर ध्रुवप्रोत वृत्त पर होता है उसे उस ग्रहकी स्पष्ट क्रान्ति कहते हैं।

दिये हुए चित्रमें व द श उ क्रान्तिवृत्त, व दा श ऊ विषुवद् वृत्त, क कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) और ध ध्रुव है। ग किसी ग्रहका स्थान अपने कक्षावृत्तमें है जो चित्रमें सरलताके विचार से नहीं दिखाया गया है। ग्रह इस समय क्रान्तिवृत्तके उत्तर दिखलाया गया है। यदि ग्रह गा बिन्दु पर हो तो क्रान्तिवृत्तके दक्षिण होगा। क ग प कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त पर समकोण बनाता है और ध ग च ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद् वृत्तपर समकोण बनाता है। प छ भी ध्रुवप्रोतवृत्तका खंड है और विषुवद्वृत्त पर समकोण बनाता है। ग प, ग का उत्तर विक्षेप, प छ, ग की उत्तर मध्य क्रान्ति और ग च, ग की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। इसी प्रकार गा पा, गा ग्रहका दक्षिण विक्षेप, पा छा, गा ग्रहकी उत्तर मध्य क्रान्ति और गा चा, गा की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। पहली दशामें मध्य क्रान्ति और विक्षेप दोनों उत्तर हैं, इस लिए इन दोनोंको जोड़नेसे नियमानुसार स्पष्ट उत्तर क्रान्ति

आयेगी। परन्तु दूसरी स्थितिमें विक्षेप दक्षिण और मध्य क्रान्ति उत्तर है, इसलिए इन दोनोंके अन्तरसे स्पष्ट उत्तर क्रान्ति ज्ञात होगी।

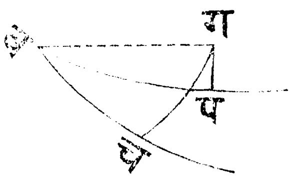


चित्र ३६

यहां एक बात विचारणीय है। ग प कदम्ब-प्रोतवृत्तका खण्ड है और प छ ध्रुव-प्रोतवृत्तका; इसलिए इन दोनोंका योग ग च के समान नहीं होगा वरन कुछ भिन्न होगा। परन्तु आचार्य ने ऐसा ही लिखा है। इससे यह समझना चाहिये कि आचार्यके विचारमें यह भिन्नता इतनी कम समझी गयी है कि इससे जो स्थूलता हो जाती है वह नहींके समान

समझ ली गयी है। भास्कराचार्यजी ने इसीलिए इस रीतिको अयुक्त* कह कर अयन वलन संस्कार करनेका आदेश दिया है+ जो विस्तार भयसे यहां न लिख कर नेपियरके नियमोंके आधारपर इस संस्कारकी एक सरल रीति लिखी जाती है। सुविधाके लिए चित्र ३९ का सरल रूप चित्र ४० लिया जाता है—

इस चित्रमें ग ग्रहका स्पष्ट स्थान, गप ग्रहका स्पष्ट विक्षेप, गच ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति, वप ग्रहका सायन भोगांश, वच ग्रहका विषुवांश, और वग परमवृत्त का धनु है। इसलिए स्पष्ट है कि △ गपव और △ गचव समकोण गोलीय त्रिभुज हैं और पवच कोण क्रान्ति वृत्त और विषुववृत्तके बीच-का कोण है जिसे २८वें श्लोकमें परम अपक्रम कहा गया है।



चित्र ४०

यदि ग्रहका सायन भोगांश वप और स्पष्ट विक्षेप गप ज्ञात हो तो नेपियर के नियम (२) के अनुसार समकोण △ गवप में,

---

* विक्षेपः कदम्बाभिमुखो भवति। ध्रुवाभिमुख्या क्रान्त्या सह कथं तस्य भिन्न दिक्कस्य योग वियोगावुचितौ। तयोर्यद्भिन्नदिक्त्वं तदायन वलन वशात्।.........

सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ २१५

† गणिताध्याय पृष्ठ २१७।

कोज्या (व ग) = कोज्या (ग प) × कोज्या(व प)...(१)

नियम (१) के अनुसार,

ज्या (व प) = स्पर्श रेखा (ग प) × कोटि स्पर्श रेखा (ग व प)

अथवा कोटि स्पर्श रेखा (ग व प) = ज्या (व प) ×

कोटि स्पर्श रेखा (ग प)......(२)

इन दोनों समीकरणोंसे व ग धनु और ग व प कोण जाने जा सकते हैं। फिर समकोण △ ग व च में, नियम (२) के अनुसार

ज्या (ग च) = ज्या (वग) × ज्या (<गवप + <पवच)...(३)

और नियम (१)के अनुसार

स्पर्श रेखा (व च) = स्पर्श रेखा (व ग) × कोज्या

(<ग व प + <प व च)......(४)

समीकरण (१), (२) और (३) से किसी ग्रह या तारे का विक्षेप और सायन भोगांश ज्ञात हो तो उसकी क्रान्ति जानी जा सकती है और समीकरण (४) की सहायता से उसका विषुवांश जाना जा सकता है।

इसी प्रकार यदि विषुवांश और क्रान्ति ज्ञात हों तो सायन भोगांश और विक्षेप भी जाने जा सकते हैं।

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः।

चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥५९॥

अनुवाद—(५९) ग्रह जिस राशि में हो वह जितने प्राणोंमें उदय होती हो उसको ग्रहकी दैनिक गतिसे गुण करके १८०० से भाग देने पर जो कुछ आवे उसको पूरे चक्रके असुओं में जोड़ दिया जाय तो योगफल ग्रहके अहोरात्र का परिमाण होता है।

विज्ञान भाष्य—मध्यमाधिकारके ११-१३ श्लोकों में नाक्षत्र-अहोरात्र, घड़ी, पल, प्राण, सावन दिन इत्यादिकी चर्चा विस्तारके साथ की गयी है। वहां यह बतलाया गया है कि एक नाक्षत्र अहोरात्र २१६०० असुओं या पलों का होता है और सावन दिन नाक्षत्र अहोरात्रसे प्रायः ४ मिनट या १० पल या ५९ प्राण अधिक होता है क्योंकि सूर्य प्रति दिन प्रायः १ अंश पूर्वकी ओर बढ़ता है जब कि नक्षत्र या तारे एक ही जगह स्थिर रहते हैं। जैसे एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं उसी प्रकार किसी ग्रहके पूर्वमें उदय होनेके समयसे दूसरे दिन फिर उदय होने तकके समयको उस ग्रहका अहोरात्र कहते हैं। यदि ग्रह मार्गी हुआ तो उसका अहोरात्र नाक्षत्र-अहोरात्रसे अधिक और वक्री हुआ तो कम होगा। नाक्षत्र अहोरात्रसे ग्रहका अहोरात्र कितना अधिक या कम होगा यही जाननेकी रीति इस श्लोक-में बतलायी गयी है। ग्रह दिन भर में जितना आगे चलेगा या पीछे हटेगा उसीके अनुसार ग्रहका अहोरात्र नाक्षत्र-अहोरात्र-से अधिक या कम होगा। त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायमें ४१-४३ श्लोकोंमें यह विस्तारके साथ बतलाया जायगा कि कौन राशि किस जगह कितने समय में उदय होती है। जितने समय में जो राशि जहां क्षितिजके ऊपर आती है अर्थात् उदय होती है उसी समयको (नाक्षत्र कालके अनुसार) उस जगह उस राशिके उदय-प्राण या उदयासु कहते हैं। इसलिए यह त्रैराशिकसे सहज ही जाना जा सकता है कि जब राशिका उदय उदयप्राण के समान समयमें होता है तो उस राशिमें ग्रह जितना दिन भरमें हटता है उतनेका उदय

कितने प्राणमें होगा। बस नाक्षत्र अहोरात्रकी अपेक्षा इतने ही प्राण अधिक बीतने पर मार्गी ग्रह दूसरे दिन क्षितिजमें फिर आ जायगा। एक राशि ३० अंश या ३० × ६० या १८०० कला के समान होती है। ग्रहकी दैनिक गति भी कलामें ही साधारणतः प्रकटकी जाती है, इसलिए यह अनुपात हुआ—

१८०० कलाः ग्रहकी दैनिक गति

:: राशिका उदय प्राणः इष्ट अन्तर

$$\therefore \text{इष्ट अंतर} = \frac{\text{राशिका उदयप्राण} \times \text{ग्रहकी गति}}{\text{१८०० कला}}$$

बस यही अंतर नाक्षत्र अहोरात्रमें जो २१६०० प्राणोंका होता है जोड़नेसे (यदि ग्रह मार्गी हुआ) और घटानेसे (यदि ग्रह वक्री हुआ) ग्रहका अहोरात्र ज्ञात होता।

इस नियममें थोड़ीसी स्थूलता है। यदि ग्रह क्रान्तिवृत्तपर जिसमें कि राशियां होती हैं भ्रमण करता होता तो यह नियम बिल्कुल ठीक होता परन्तु वह तो अपने कक्षावृत्तमें घूमता है, जिसके कारण वह या तो क्रान्तिवृत्तके उत्तर होता है या दक्षिण। यदि उत्तर हुआ तो कुछ पहले ही उदय होगा और यदि दक्खिन हुआ तो कुछ पीछे। यदि ग्रहके प्रतिदिनके उदय-कालके विषुवांश ५८ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यके समीकरण (४) के अनुसार जान लिए जांय और विषुवांशोंके अंतरको प्राणोंमें बदल दिया जाय तो इसको २१६०० प्राणोंमें जोड़नेसे ग्रहके उदयप्राण ठीक ठीक निकलेंगे।

आगेके कई श्लोकोंमें यह जाननेकी रीति बतलायी गयी है कि अहोरात्र-मानमेंसे कितने समय तक ग्रह क्षितिजके ऊपर रहेगा और कितने समय तक क्षितिजके नीचे अर्थात्

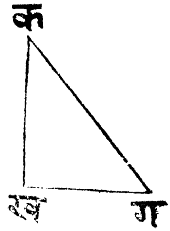
ग्रहका दिनमान और रात्रिमान कितने कितने समयके होते हैं। इसके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रहका चरप्राण कितना है जो नीचे लिखे श्लोकोंके अनुसार जाना जाता है:—

क्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये द्वे कृत्वा तत्रोत्क्रमज्यया।
हीना त्रिज्या दिनव्यासदलं तद्दक्षिणोत्तरम्॥६०॥
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता।
त्रिज्यागुणाहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजासवः॥६१॥

अनुवाद—(६०) ग्रहकी स्पष्ट क्रान्तिकी ज्या और उत्क्रमज्या दोनों जानकर उत्क्रमज्याको त्रिज्या अर्थात् ३४३८ कलामेंसे घटा दे तो अहोरात्र-वृत्तका व्यासार्द्ध निकल आता है। इसको द्युज्या भी कहते हैं। यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध दक्षिण होता है और यदि क्रान्ति उत्तर होती है तो उत्तर होता है। (६१) क्रान्तिज्या को पलभा से गुणा करके १२ से भाग देने पर क्षितिज्या आती है जिसको त्रिज्यासे गुणा करके अहोरात्र-वृत्तके व्यासार्धसे भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे चरज्या कहते हैं। चरज्याके धनुकी कलाको चरप्राण कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकोंमें त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायका सार भरा हुआ है इसलिए इनमें जो पारिभाषिक शब्द आये हैं उनका विस्तृत विवेचन उसी अध्यायमें मिलेगा। परन्तु इन दो श्लोकोंका अर्थ समझानेके लिए यह आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्दों तथा कुछ अन्य बातोंकी संक्षेपमें चर्चा की जाय।

पलभा—जिस दिन सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है अर्थात् जिस दिन सूर्य सायन मेष या सायन तुला विन्दुओं पर आता है उस दिन समतल भूमि पर सीधे गड़े हुए १२ अंगुलके शंकुकी छाया जितनी बड़ी होती है उसीको पलभा कहते हैं।



चित्र ४१

चित्र ४१ में समतल भूमि के ख विन्दु पर क ख शंकु सीधा गड़ा है और क ख की नाप १२ अंगुल है तो सायन मेष संक्रान्ति के दिन क ख की छाया यदि ख ग हो तो ख ग की नापको ही ख स्थानकी पलभा विषुवद्भा, अक्षभा इत्यादि कहेंगे। इस पलभाका मान सब जगह एक सा नहीं होता वरन् अक्षांशके अनुसार बढ़ता घटता है। विषुवत् रेखा पर जहां अक्षांश शून्य होता है सायन मेष संक्रान्तिके दिन ख ग का मान शून्य होता है। विषुवत् रेखासे ज्यों ज्यों उत्तर या दक्खिन जाइये त्यों त्यों पलभाका मान बढ़ता जायगा। उत्तर गोलमें पलभा शंकुसे उत्तर दिशामें होगी और दक्षिण गोलमें दक्षिण दिशामें; इसलिए पलभासे किसी स्थानका अक्षांश सहज ही जाना जा सकता है। हमारे देशमें इसी लिए अक्षांश अंशोंमें प्रकट करनेकी जगह पलभाकी नापमें जो अंगुलोंमें ली जाती है प्रकट करनेकी परिपाटी है। ख क ग कोण को ख स्थानका अक्षांश* कहते हैं, इसलिए,

---

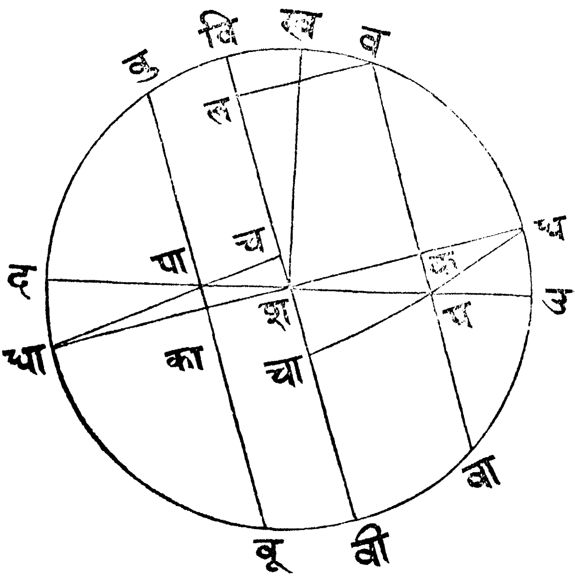
*ऐसा मान लेनेसे लम्बनके कारण तनिक सी अशुद्धि रह जाती है, जिसका विवेचन तीसरे अध्यायमें किया जायगा। परन्तु इस अशुद्धिसे कोई हर्ज नहीं हो सकता।

अक्षांशकी स्पर्श रेखा = $\frac{\text{खग}}{\text{खक}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ ...... (१)

इससे स्पष्ट है कि पलभाके ज्ञानसे अक्षांशका मान कैसे जाना जा सकता है।

हमारे ग्रन्थोंमें ज्या कोज्या, और उत्क्रमज्याके सिवा अन्य त्रिकोणमितीय अनुपातोंकी चर्चा नहीं है; परन्तु अन्य अनुपातोंका काम और रीतिसे लिया जाता है जैसे अक्षांश-की स्पर्शरेखाका काम $\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$ से लिया जाता है।

द्युज्या, कुज्या और चरज्याको समझनेके लिए नीचे लिखे चित्रको देखो—



चित्र ४२

श वह स्थान है जहांके लिए देखना है कि ग्रह कितने समय तक क्षितिजके ऊपर रहता है। ङ श द रेखा श स्थानकी क्षितिज रेखा तथा ध श धा निरक्ष देशकी क्षितिज रेखा है। ध, आकाशीय उत्तरी ध्रुव और धा आकाशीय दक्षिणी ध्रुव है। उधखद धा याम्योत्तर वृत्त और ख, श का ख का स्वस्तिक है। पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण ग्रह, नक्षत्र, सूर्य इत्यादि जिस जिस वृत्तपर घूमते हुए दिनमें एक परिक्रमा करते देख पड़ते हैं उस उस वृत्त को उस ग्रह, नक्षत्र, या सूर्यका अहोरात्र वृत्त—(Diurnal cirle) कहते हैं। यह अहोरात्र-वृत्त विषुवत्-वृत्तके समानान्तर* होते हैं। तीन अहोरात्रवृत्तोंके व्यास चित्र ४२ में व वा, वि वी और वु वू रेखाओंसे प्रकट किये गये हैं। वि वी अहोरात्र-वृत्तका व्यास विषुवत् वृत्तसे मिल जाता है। इस पर वही तारे या ग्रह चलते देख पड़ते हैं जो ठीक विषुवत्वृत्त पर होते हैं। सायन विषुव संक्रान्तिके दिन सूर्य भी (यदि इसकी क्रान्तिकी गति थोड़ी देरके लिए स्थिर मान ली जाय) इसी अहोरात्र-वृत्तपर चलता हुआ देख पड़ता है। यदि किसी ग्रहकी उत्तर क्रान्ति व वि धनुके समान हो तो उस ग्रहके अहोरात्रवृत्तका व्यास व वा होगा। इसी तरह यदि ग्रहकी दक्षिण क्रान्ति वि वु के समान हो तो उसके अहोरात्रवृत्तका व्यास वु वू होगा।

चित्रसे प्रकट है कि ध श धा रेखासे जो निरक्ष देशकी क्षितिज रेखा है सभी अहोरात्रवृत्तके व्यास दो समान भागोंमें

---

* तारेका अहोरात्रवृत्त विषुवद्वृत्तके बिलकुल समानान्तर होता है। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके अहोरात्रवृत्तोंकी दिशामें तनिक सा, अन्तर इसलिये पड़ जाता है कि इनकी क्रान्ति सदैव कुछ बदलती रहती है।

कट जाते हैं। निरक्ष देशमें जब तक सूर्य, तारा या ग्रह ध श घा रेखासे ऊपर रहता है तब तक वह देख पड़ता है या उदय रहता है और जब तक वह इस रेखासे नीचे रहता है तब तक नहीं देख पड़ता अथवा अस्त रहता है। इसलिए निरक्ष देशमें जहां यह रेखा क्षितिज बनाती है सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सभी—क्रान्ति चाहे जो हो—१२ घंटे तक उदय और बारह घण्टे तक अस्त रहते हैं। इस बारह घण्टेके समयमें ६ घंटे तक तो यह पूर्व क्षितिजसे निकल कर ऊपर चढ़ते हुए याम्योत्तर-वृत्तपर पहुँचते हैं और ६ घंटे तक याम्योत्तर वृत्तसे नीचे उतरते हुए पश्चिम क्षितिजमें जा लगते हैं। (प्रकाश वक्रीभवन के कारण जो थोड़ा सा अन्तर पड़ जाता है उसका विचार सुविधाके लिए यहां नहीं किया गया है)। निरक्ष देशसे उत्तर या दक्षिणके स्थानोंमें केवल वही ग्रह या तारा आधे दिन तक उदय आर आधे दिन तक अस्त रहता है जो विषुवत्वृत्त पर रहता है अर्थात् जिसके अहोरात्रवृत्तका व्यास वि वी से मिलता जुलता है। परन्तु जिस ग्रह या तारेकी क्रान्ति उत्तर होती है वह उत्तर गोलमें आधे दिनसे अधिक समय तक क्षितिजके ऊपर रहता है और जिसकी क्रान्ति दक्षिण होती है वह आधे दिनसे कम समय तक क्षितिजके ऊपर रहता है। दक्षिण गोलमें इसका ठीक उलटा होता है। आधे दिनसे कितना अधिक या कम समय तक ग्रह क्षितिजके ऊपर रहता है यह उसकी क्रान्तिके मानपर आश्रितहै। यदि क्रान्ति अधिक हुई तो यह अन्तर अधिक होता है और कम हुई तो कम। चित्रमें जिस ग्रह की उत्तर क्रान्ति व वि है वह श स्थान पर जिसका अक्षांश ध श उ कोणके समान है

उस समय तक क्षितिजके ऊपर रहेगा जितने समय तक यह प से व तक ऊपर चढ़ेगा और फिर वहांसे उतना ही नीचे उतर कर पच्छिम क्षितिजके नीचे चला जायगा। ऊपर बतलाया गया है कि क से व तक जानेमें इसको ६ घण्टे लगेंगे; इसलिए प से क तक ऊपर चढ़नेमें जितना समय लगेगा ६ घण्टेसे उतना ही अधिक इसको प से व तक जानेमें लगेगा क्योंकि क्रान्ति उत्तर होनेके कारण ग्रह क्षितिज पर उस समय आवेगा जिस समय वह प विन्दु पर पहुँचेगा। उसके प्रतिकूल यदि दक्षिण क्रान्ति होनेसे ग्रहके अहोरात्रवृत्तका व्यास वु वू हुआ तो जितनी देर तक वह का से पा तक जायगा ६ घण्टेसे उतना ही पीछे वह क्षितिजके विन्दु पा पर पहुँचेगा। अहोरात्रवृत्तके व्यासके प क या पा का खंडको कुज्या या क्षितिज्या और इतना चढ़नेमें जितना समय लगता है उसे चर-काल कहते हैं। काल प्रायः पलों या प्राणोंमें प्रकट किया जाता है इसलिये चर-काल को चरपल, चरप्राण अथवा चरअसु कहते हैं। अहोरात्रवृत्तके व्यासार्ध क व, श वि, या का वु को द्युज्या कहते हैं क्योंकि द्यु के अर्थ हैं दिन, अहोरात्र या प्रकाश। चा श खंडको उत्तर क्रान्ति वाले ग्रहकी चरज्या और च श खंडको दक्षिण क्रान्ति वाले ग्रहकी चरज्या कहते हैं। चरज्या के धनु को चरखंड और इस धनुकी कलाको चरप्राण कहते हैं क्योंकि एक चक्रमें ३६० × ६० कलाएं अथवा २१६०० कलाएं और एक नाक्षत्र अहोरात्र में इतने ही प्राण होते। यहां यह याद रखना चाहिए कि ध प चा अथवा धा पा च वृत्तपाद विषुवद्वृत्तसे समकोण बनाता हुआ खींचा गया है।

अब देखना है कि चित्र ४२ की सहायतासे ६०,६१ श्लोकोंका नियम कैसे सिद्ध होता है।

बि श त्रिज्या है, व क द्युज्या, व श वि कोण या व वि धनु ग्रहकी क्रान्ति;

इसलिये क्रान्तिज्या = व ल = क श

क्रान्तिकी उत्क्रमज्या = वि ल (देखो १७६–१७७ पृष्ठ और चित्र २४)

द्युज्या = व क = ल श = श वि – वि ल

= त्रिज्या – क्रान्तिकी उत्क्रमज्या.....(२)

यही ६०वें श्लोकका अर्थ है। दाहिने पक्षका मान क्रान्ति-कोटिज्याके समान है,

∴ द्युज्या = क्रान्ति-कोटिज्या

त्रिभुज क श प में,

क श = व ल = क्रान्तिज्या

< क श प = श स्थान का अक्षांश

$$\therefore \text{अक्षांश स्पर्श रेखा} = \frac{\text{क प}}{\text{क श}} = \frac{\text{क्षितिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}} \cdots (३)$$

परन्तु ऊपर समीकरण (१) में बतलाया गया है कि

$$\text{अक्षांश स्पर्शरेखा} = \frac{\text{पल भा}}{१२}$$

$$\therefore \frac{\text{पल भा}}{१२} = \frac{\text{क्षितिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$\text{अर्थात् क्षितिज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \cdots\cdots (४)$$

परन्तु ध प चा और ध क श दोनों व क और त्रिश पर लम्ब हैं इसलिए कप और व क का परस्पर जो सम्बन्ध है वही चा श और शवि का भी है, अर्थात्—

व क : कप : : त्रिश : शचा

$$\text{या शचा} = \frac{\text{क प} \times \text{त्रि श}}{\text{व क}}$$

$$= \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

चा श को चरज्या भी कहते हैं, इसलिए

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (५)$$

समीकरण (४) और (५) से ६१ वें श्लोकका नियम सिद्ध होता है।

चरज्याका कलात्मक धनु चरप्राण कहलाता है।

यदि समीकरण (५) में क्षितिज्या और द्युज्या की जगह समीकरण (२) और (४) के आधार पर इनके मान उत्थापित किये जांय तो समीकरण (५) का सरल रूप यह होगा:—

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{प ल भा}}{१२} \times \frac{१}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{प ल भा}}{१२} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \text{क्रान्ति स्पर्श रेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्श रेखा} \times \text{त्रिज्या} \cdots (६)$$

अर्थात् किसी स्थान के अक्षांश की स्पर्शरेखाको ग्रहकी क्रान्तिकी स्पर्शरेखा से गुणा करके त्रिज्या से गुणा कर दो तो चरज्या आ जायेगी। यदि चरज्या का मान दशमलव

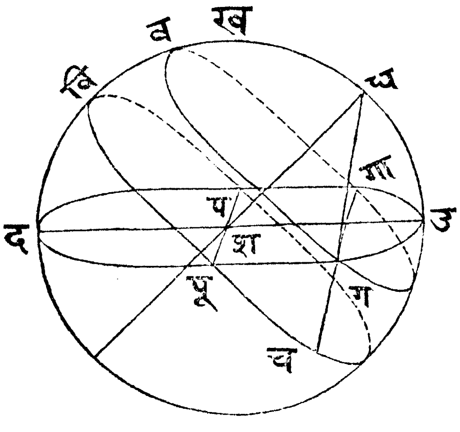
भिन्न में आजकल की रीति के अनुसार हो तो समीकरण (६) के दाहने पक्षमें त्रिज्या से गुणा करने की आवश्यकता न पड़ेगी और चरज्याका सरल रूप यह होगा—

चरज्या=क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्श रेखा............(७)

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि क्रान्ति और अक्षांश ज्ञात हो तो चरज्या सहज ही जानी जा सकती है और द्युज्या, कुज्या इत्यादि जाननेके झंझटकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

समीकरण (७) की उपपत्ति नेपियर के प्रथम नियमके आधार पर इस प्रकार है:—

चित्र ४३ में श उत्तर गोलमें एक स्थान है जिसका अक्षांश ∠ उ श ध या उध धनु है। उ पू द प, श का क्षितिज-वृत्त है जिसके उत्तर, पूर्व, दक्खिन और पच्छिम विन्दु क्रमसे उ, पू,



चित्र ४३

द और प विन्दु है। ख खस्वस्तिक, पू वि प विषुववृत्त और ग व गा उस ग्रह या तारेके अहोरात्र-वृत्त का वह खंड है जो क्षितिज के ऊपर रहता है जब ग्रहकी क्रान्ति वि व धनुके समान होती है।

ग्रहका उदय-विन्दु ग उस वृहद् वृत्त (great circle) पर है जो आकाशीय ध्रुव ध से विषुववृत्त के च विन्दु पर लम्ब है। इसलिए जितने समयमें ग्रह ग विन्दुसे उदय होकर याम्योत्तर वृत्त के व विन्दुपर पहुँचेगा उतने ही समय में च विन्दु च से आगे वढ़ता वि तक पहुँचेगा। परंतु जब तक च पूर्व-विन्दु पू पर नहीं पहुंच जायगा तब तक यह क्षितिज के नीचे रहेगा। जब वह पू विन्दु पर आवेगा तब से ६ घंटे पीछे वि पर पहुँचेगा। जितने समयमें च विन्दु च से पू तक जायगा उतना ही पहले ग्रह का उदय ग पर हो चुका रहेगा। इसलिए च पू धनु की ज्या ग्रह की चरज्या होगी। इसका परिमाण जाननेके लिए नेपियरका पहला नियम बहुत उपयुक्त है क्योंकि ग च प एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका ग च पू कोण समकोण है, ग च ग्रहकी कान्ति ज्ञात है और ग पू च कोण द पू वि कोण अथवा विद धनुके समान है जो विख धनु अथवा अक्षांश का पूरण कोण है। इसलिए—

ज्या (पूच)=स्पर्श रेखा (गच) × कोटि स्पर्श रेखा∠गपूच, अथवा चरज्या=क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्श रेखा।

तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहानी पृथक्स्थिते।
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ॥६२॥
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे।
विक्षेप युक्तोनितया क्रान्त्याभानामपि स्वके ६३

अनुवाद—(६२) उपर्युक्त रीतिसे जो चरज्या निकले उसके कलात्मक धनुको यदि क्रान्ति उत्तर हो तो ग्रहके अहोरात्रके असुओं के चौथे भागमें जोड़ने से दिन का आधा और घटानेसे रात्रिका आधा होगा। (६२) यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो इसके विपरीत होगा अर्थात् चौथे भागमें चर कला घटानेसे दिनका आधा और जोड़नेसे रात्रिका आधा होगा। दिन या रात्रिके आधेको दुगुना कर देनेसे दिनमान और रात्रिमान ज्ञात हो जायँगे। इसी प्रकार किसी नक्षत्र अर्थात् तारेका भी दिनमान या रात्रिमान जानने के लिए उसकी मध्य क्रान्तिमें विक्षेपको जोड़ या घटा कर जैसी उसकी दिशा हो स्पष्ट क्रान्ति निकालनी चाहिए और स्पष्ट क्रान्तिसे चर-काल ज्ञान कर दिनमान या रात्रिमान जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंको विशेष समझानेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनके पहलेके श्लोकोंकी जो व्याख्या की गयी है और उसके लिए जो चित्र दिये गये हैं उनसे इस नियमकी उपपत्ति सहज ही सिद्ध हो सकती है। अंतिम पंक्तिमें नक्षत्रोंकी चरज्या और दिनमान तथा रात्रिमान जाननेके लिए भी यही नियम दिया गया है जो कि विज्ञान भाष्यमें पहले ही आ चुका है। हां स्पष्ट क्रान्ति जाननेके लिए विक्षेपको जोड़ने घटानेकी बातमें वही भूल होगी जो पहले बतलायी गयी है। इसलिए किसी तारेकी स्पष्ट क्रान्तिका ज्ञान भी चित्र ४० के आधार पर बतलायी हुई रीतिसे करना चाहिए।

उदाहरण—मान लो किसी तारेकी उत्तर क्रान्ति २२°३०′ है तो प्रयागमें उसके दिनमान तथा रात्रिमान क्या होंगे?

(१) सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे—

प्रयाग की पलभा* = ५ अंगुल ४१ व्यंगुल

= ५·७ अंगुल (स्थूल रीतिसे)

तारेकी क्रान्ति = २२° ३०′

∴ क्रान्तिज्या = १३१५′ [विज्ञान भाष्य पृष्ठ १७८

और क्रान्तिकी उत्क्रमज्या = २६१′ "

∴ द्युज्या = ३४३८′ − २६१′ = ३१७७′

$$\text{क्षितिज्या} = \frac{१३१५ \times ५\cdot७}{१२}$$

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

$$= \frac{१३१५ \times ५\cdot७}{१२} \times \frac{३४३८}{३१७७}$$

$$= \frac{२५७६५२९}{३८१२४}$$

$$= ६७६'$$

∴ चर कला = ६८१′

∴ चर काल = ६८१ प्राण = ११३ पल ३ प्राण

= १ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

इसको १५ नाक्षत्र घड़ीमें जोड़ा क्योंकि क्रान्ति उत्तर है तो

दिनमानका आधा = १६ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

पूर्ण दिनमान = ३३ घड़ी ४७ पल

पूर्ण रात्रिमान = २६ घड़ी १३ पल

---

* प्रयागकी पलभा और अक्षांश ज्योतिर्गणित पृष्ठ ७६ के अनुसार लिये हैं।

यदि सूर्यका दिनमान या रात्रिमान जानना हो तो सूर्यके अहोरात्रके असुओंके चौथे भागमें चरप्राण जोड़कर दूना करनेसे दिनमानकेअसु और घटाकर दूना करनेसे रात्रिमान के असु ज्ञात होंगे यदि क्रान्ति उत्तर हो। सूर्यके अहोरात्रके असु ५६ वें श्लोकके अनुसार जानना चाहिये।

इसी प्रकार ग्रहके अहोरात्रके असुओंके चौथे भागमें चरप्राण जोड़कर दूना करनेसे दिनमानके असु, और घटाकर दूना करनेसे रात्रिमानके असु निकलेंगे यदि क्रान्ति उत्तर हो।

यह याद रखना चाहिये कि इस प्रकार जो दिनमान या रात्रिमान निकलेंगे वह नाक्षत्रकालकी इकाइयोंमें होंगे। सावन दिनकी इकाइयोंमें बदलनेके लिए अलग क्रिया करनी पड़ेगी। एक नाक्षत्र-अहोरात्र २१६०० प्राणोंका होता है जबकि एक मध्यम सावन दिन २१६५९·१४ प्राणोंका होता है।

(२) नवीन रीति से—

प्रयागका अक्षांश २५° २५′

तारेकी क्रान्ति २२°३०′

∴ चरज्या = अक्षांश स्पर्शरेखा × क्रान्ति स्पर्शरेखा

= स्पर्श रेखा २५°२५′ × स्पर्श रेखा २२°३०′

= ·४७५२ × ·४१४२

= ·१९६८

∴ चर = ११°२१′

= ११३ पल ३ प्राण

पृथ्वीकी १° गति ४ मिनट, १० पल या ६० प्राणोंमें होती है। इस लिए ११°२१′ चर, ११३ पल और ३ प्राणोंके समान रखा गया है।

स्पष्ट है कि नवीन रीतिके अनुसार काम लेनेमें द्युज्या, क्षितिज्या इत्यादिकी आवश्यकता नहीं पड़ती। हां स्पर्श रेखाकी सारिणीकी आवश्यकता अवश्य पड़ती है जो ज्या और कोटिज्याकी सारिणियोंकी तरह बनायी जा सकती है।

नक्षत्र जाननेकी रीति

भभोगोऽष्टशती लिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः।
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम् ॥६४

अनुवाद—(६४) एक नक्षत्रका भोग ८०० कलाओंका और एक तिथिका भोग ७२० कलाओंका होता है। ग्रहके भोगकी कला बनाकर एक नक्षत्र भोग अर्थात् ८०० कलासे भाग देने पर लब्धि गत नक्षत्रोंकी संख्या होती है और शेष आगेके नक्षत्रकी गत कला होती है। यदि यह जानना हो कि ग्रह वर्तमान नक्षत्रमें कब आया है तो गत कलाको ग्रहकी दैनिक गतिसे भाग दे देनेसे दिन घड़ी आदिकी संख्या निकल आवेगी। ८०० कलामेंसे गत कलाको घटाकर शेषको दैनिक गतिसे भाग देने पर यह ज्ञात होगा कि ग्रह वर्तमान नक्षत्रमें कब तक रहेगा।

विज्ञान भाष्य—११वें पृष्ठमें बतलाया गया है कि नक्षत्र क्रान्तिवृत्तके २७वें भागको भी कहते हैं। क्रान्तिवृत्तका चक्र ३६० अंशों या ३६० × ६० अर्थात् २१६०० कलाओंके समान होता है इसलिए एक नक्षत्र २१६००÷२७ = ८०० कलाके समान होता है) सुविधाके लिए प्रत्येक नक्षत्रका नाम रखा गया है—

१	अश्विनी	१५	स्वाती
२	भरणी	१६	विशाखा

३ कृत्तिका	१७ अनुराधा
४ रोहिणी	१८ ज्येष्ठा
५ मृगशिरा	१९ मूल
६ आर्द्रा	२० पूर्वाषाढ़
७ पुनर्वसु	२१ उत्तराषाढ़
८ पुष्य	२२ श्रवण
९ आश्लेषा	२३ धनिष्ठा
१० मघा	२४ शतभिषा
११ पूर्वाफाल्गुनी	२५ पूर्वाभाद्रपद
१२ उत्तराफाल्गुनी	२६ उत्तराभाद्रपद
१३ हस्त	२७ रेवती
१४ चित्रा	

इन २७ नक्षत्रोंके अतिरिक्त अभिजित् नक्षत्रकी भी किसी किसी जगह आवश्यकता पड़ती है। यह उत्तराषाढ़ और श्रवणके बीचमें पड़ता है। उत्तराषाढ़का अंतिम चौथा भाग और श्रवणका पहला पन्द्रहवां भाग अभिजित्का भोग समझा जाता है। इस प्रकार अभिजितका भोग* २५३$\frac{१}{३}$ कलाका हुआ।

प्राचीन कालमें २७ नक्षत्रोंकी जगह अभिजित्को लेकर २८ नक्षत्रोंके मान भिन्न भिन्न थे। भास्कराचार्यजी† कहते हैं कि पुलिश, वशिष्ठ, गर्ग आदि ज्योतिषी विवाह यात्रा आदिके फलकी सिद्धिके लिए नक्षत्रोंके सूक्ष्म मान यह बतला गये हैं:—

* वैश्व प्रांत्यांत्रिः श्रुति तिथिभागतो ऽभिजित्स्यात् ।
मुहूर्त चिंतामणि विवाह प्रकरण श्लोक ५५

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १००-१०१

चन्द्रमाकी मध्यम दैनिक गति ७९०′३५″ मानी गयी है। इसका ड्योढ़ा ११८५′५२·″५ और आधा ३९५′१७″·५ होते हैं।

विशाखा पुनर्वसु रोहिणी तीनों उत्तरा	प्रत्येकका भोग ११८५′५२·″५
आश्लेषा आर्द्रा स्वाती भरणी ज्येष्ठा शतभिज	प्रत्येकका भोग ३९५′१७·″५

शेष १५ नक्षत्रोंमें प्रत्येकका भोग ७९०′३५″ है। इन सबके भोगोंको जोड़ कर २१, ६०० कलामें से घटाने पर जो आता है वही अभिजित्‌का भोग है। इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रोंके भोग मिलकर $६ \times \frac{३}{२} + ६ \times \frac{१}{२} + १५ \times १$ अथवा २७ मध्यम दैनिक गतियोंके समान है, जो = २७ × ७९०′३५″

$$= २७ \times (८०० - ९'२५'')$$

$$= २१६००'' - २५४'१५''$$

इस तरह सिद्ध है कि अभिजित्‌का भोग २५४″ १५″ है जो मुहूर्त चिंतामणिके मानसे ४५″ अधिक है।

इन सब बातोंसे समझ पड़ता है कि नक्षत्रोंके मान प्राचीन कालमें चंद्रमाकी मध्यम गतिके अनुसार तथा नक्षत्र सूचक चमकीले ताराओंको देख कर निश्चित किये गये थे। परन्तु पीछेसे जैसे जैसे ज्योतिषका विकास हुआ तैसे ज्ञान

पड़ा होगा कि वह विभाग मेल नहीं खाते; इसलिए सुविधाके लिये केवल २७ नक्षत्रोंमें क्रान्तिवृत्तका विभाग किया गया और प्रत्येक भाग ८०० कला का माना गया।

उदाहरण—मान लो यह जानना है कि वसंत पंचमी (१९७४ वि०) के दिन गुरु किस नक्षत्रमें थे।

गुरु का स्पष्ट भोग= ६ $^{\text{रा}}$ २७°५३′३७″

[पृष्ठ २२७]

= २०७°५४′ स्थूल रूपसे

= १२४७४′

इसको ८०० से भाग देने पर लब्धि १५ और शेष ४७४′ होते हैं।

इसलिए गुरु १५वें नक्षत्र को पार करके १६वें नक्षत्र विशाखामें है और विशाखाका ४७४′ भोग चुका है तथा ३२६ कला शेष है। यह जाननेके लिए कि बृहस्पति विशाखामें कब तक रहेगा। नियम के अनुसार ३२६ कलाको गुरु की दैनिक गति से भाग देना चाहिये। परन्तु बृहस्पति तथा अन्य मंद-गामी ग्रहोंके लिए यह नियम सूक्ष्म नहीं है क्योंकि ३२६ कला चलनेके लिए बृहस्पतिको बहुत दिन चाहियें जिसमें उसकी गति एकसी नहीं रहेगी। इसलिए अधिक सूक्ष्म विचारकी आवश्यकता है।

तिथिके विषयमें पृष्ठ १२ में जो कुछ लिखा है वही पर्याप्त है। आगे के ६६वें श्लोकमें विशेष चर्चाकी जायगी।

योग लानेकी रीति

रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिताः ।
गता गम्याश्च षष्टिघ्ना भुक्तियोगाप्त नाडिकाः ॥६५॥

अनुवाद—(६५) सूर्य और चन्द्रमाके स्पष्ट स्थानों (निरयन भोगांशों) को जोड़कर उनकी कला बनाकर ८०० से भाग देनेपर गत योगोंकी संख्या निकल आती है । शेषसे यह जाना जाता है कि वर्तमान योगकी कितनी कला बीत गई है । यदि इस शेषको ८०० कलामें घटा दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग की कितनी कला रह गयी है । इस गत वा गम्य कलाको ६०से गुणा करके सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गतियोंके योगसे भाग दे दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग कितनी घड़ी पहले आरंभ हुआ और कितनी घड़ी पीछे समाप्त होगा ।

विज्ञान भाष्य—अश्विनीके आरंभसे जब सूर्य और चंद्रमा दोनों मिलकर ८०० कला आगे चल चुकते हैं तब १ योग बीतता है, जब १६०० कला आगे चल चुकते हैं तब दूसरा योग बीतता है, इत्यादि । इसी तरह जब दोनों मिलकर ३६०° या २१६०० कला अश्विनीसे आगे चल चुकते हैं तब २७ वां योग बीतता है । फिर पहले योगका आरंभ होता है । २७ योगोंके नाम यह हैं:—

१ विष्कम्भ	१० गंड	१९ परिघ
२ प्रीति	११ वृद्धि	२० शिव
३ आयुष्मान्	१२ ध्रुव	२१ सिद्ध
४ सौभाग्य	१३ व्याघात	२२ साध्य

५ शोभन	१४ हर्षण	२३ शुभ
६ अतिगंड	१५ वज्र	२४ शुक्र
७ सुकर्मा	१६ सिद्धि	२५ ब्रह्मा
८ धृति	१७ व्यतीपात	२६ इन्द्र या ऐन्द्र
९ शूल	१७ वरीयान्	२७ वैधृति

नियम समझनेके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। मान लो यह जानना है कि सम्वत् १९८१ वि० की मेष संक्रान्तिके दिन कौन योग वर्तमान था, उसका किस समय आरंभ और किस समय अंत हुआ।

पहले मेष संक्रान्तिके दिनके सूर्य और चंद्रमाके स्थान तथा दैनिक गतियां स्पष्ट करनी पड़ेगी।

कलियुगके आरंभसे १९८१ वि० की स्पष्ट मेष संक्रान्तिके समय तक ५०२५ सौर वर्ष तथा १८,३५,४२३·०८०६२५ मध्यम सावन दिन होते हैं। कलियुगका आरंभ उज्जैनमें गुरुका मध्य रात्रिसे हुआ, इसलिए उज्जैनमें शनिवारकी मध्यरात्रिके ·०८०६२५ दिन उपरान्त १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति हुई। सुविधाके लिए मध्यरात्रिके समयके सूर्य और चंद्रमा स्पष्ट करना अच्छा होगा।

जिस रीतिसे पृष्ठ २१९–२२० पर सूर्यका स्पष्ट स्थान निकाला गया है उसी तरह सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको स्पष्ट करना चाहिये। गणनाका सार यह है:—

	सूर्यका स्थान	चंद्रमाका स्थान	दोनोंका योगफल
शनिवार(मध्यरात्रि)	३५९°५५'१६"	९५°२८'५३'	९५°१४'९"
रविवार(मध्यरात्रि)	०°५३'५९"	१०८°१६'५६"	१०९°१०'५५"
दैनिक गति	५८'४३"	१२°३८'३"	१३°१६'४६"

पहला योगफल ३६०° से अधिक हो जाता है इसलिए ३६०° छोड़ दिया गया और ६५°३४′६″ ले लिया गया

अब ६५°३४′६″ = ५७३४′६″

इसको ८०० से भाग देने पर ७ लब्धि और १३४′६″ शेष होते हैं। इसलिए मेष संक्रान्तिकी अर्द्धरात्रिको आठवां योग धृति वर्तमान है और इसका १३४′६″ बीत चुका है और ६६५′५१″ शेष है।

६० घड़ीमें सूर्य और चन्द्रमाकी गति मिलकर १३°१६′४६″ या १३°·६१२८ होती है।

१३४′६″ = २°१४′६″ = २°·२३५८

६६५′५१″ = ११°५′५१″ = ११°·०६७५

१३·६१२८ : २·२३५८ :: ६० घड़ी : इष्ट काल

$$\therefore \text{ इष्ट काल} = \frac{२·२३५८ \times ६०}{१३·६१२८} = \frac{२२३५८ \times ६०}{१३६१२८}$$

= ६ घड़ी ५१ पल

इसलिए शनीचर की मध्यरात्रिसे ६ घड़ी ५१ पल पहले उज्जैनमें धृति योगका आरंभ हुआ।

१३·६१२८ : ११·०६७५ :: ६० : इष्ट काल

$$\therefore \text{ इष्ट काल} = \frac{११०६७५ \times ६०}{१३६१२८} = \text{४८ घड़ी ५५ पल}$$

इस लिए शनिचरकी मध्यरात्रिसे ४८ घड़ी ५५ पल उपरान्त रविवारको धृति योगका अंत और शूल योगका आरंभ होगा।

यह गणना मध्यम कालके अनुसार किया गया है। स्पष्ट कालके अनुसार करनेके लिए काल-समीकरण संस्कार तथा अन्य स्थानके लिए उज्जैन से उस स्थानका देशान्तर संस्कार

भी करना होगा। काल-समीकरण संस्कारकी चर्चा तीसरे अधिकारमें विशेष रूपसे की जायगी। सूर्योदयसे काल गणना करना हो तो चर संस्कार भी करना होगा।

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः।
गतागम्याश्चषष्टिघ्नानाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः॥६६॥

अनुवाद—(६६) चन्द्रमाके स्पष्ट स्थानमें सूर्यका स्पष्ट स्थान घटानेसे जो आवे उसकी कला बना कर एक तिथिके भोग अर्थात् ७२० कलासे भाग दे दो, लब्धि गत तिथि होगी, शेष जो बचेगा वह वर्तमान तिथिकी गत कला होगी। इसको ७२० कलामेंसे घटाने पर वर्तमान तिथिकी गम्य कला आवेगी। वर्तमान तिथिकी गत और गम्य कलाओंको ६०से गुणा करके सूर्य और चंद्रमाकी दैनिक स्पष्ट गतियोंके अंतरसे भाग देने पर यह ज्ञात हो जायगा कि वर्तमान तिथिका आरंभ और अंत कब हुआ।

विज्ञान भाष्य—इस कामके लिए भी सूर्य और चंद्रमाको स्पष्ट करना पड़ता है। देखना है कि १६८१ की मेष संक्रान्ति के निकट शनिश्चरकी मध्यरात्रिको कौन तिथि वर्तमान थी।

शनिवारकी मध्यरात्रिको चंद्रमाके स्पष्ट स्थानमेंसे सूर्यका स्पष्ट स्थान घटानेसे नहीं घटता है इसलिए चंद्रमाके स्थानमें ३६०° जोड़कर योगफलमें से सूर्यका स्थान घटाया तो ९५°४३′३७″ आया। इसी तरह इतवारकी मध्यरात्रिके स्थानों का अंतर १०७° २२′ ५७″ है। दोनोंकी दैनिक गतियोंका अंतर ११° ३९′ २०″ है।

७२० कला या १२° की एक तिथि होती है इसलिए ९५° ४३′ ३७″ को १२° से भाग दिया तो लब्धि ७ और शेष

११° ४३′ ३७′ होता है। इससे प्रकट होता है कि मध्यरात्रिके समय आठवीं तिथि अर्थात् अष्टमी वर्तमान है जिसका ११° ४३′ ३७″ बीत चुका है और १६′ २३″ शेष है। इस १६′ २३″को ६० से गुणा करके ११° ३९′ २०″ से भाग दिया तो १ घड़ी २४ विपल आया। इसलिए शनीचरकी मध्य रात्रिसे १ घड़ी २४ पल उपरांत अष्टमीका अंत हुआ।

किसी अन्य स्थानमें सूर्योदयसे तिथिका अंतकाल जानने के लिए वही संस्कार करने पड़ते हैं जो योगके सम्बन्धमें कहा गया है।

तिथि योग इत्यादि जानने के लिए जो नियम बतलाये गये हैं वह बड़े कठिन हैं इसलिए व्यवहारके लिए सारणियोंका उपयोग किया जाता है जिनसे तिथि योग इत्यादिका आरंभ या अंतकाल जानना बड़ा सुगम हो जाता है। विस्तार भयसे सारणी बनानेका सिद्धान्त यहां नहीं बतलाया जा सकता। यदि आवश्यकता समझ पड़ेगी तो अंतमें परिशिष्टमें बतला दिया जायगा।

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ॥६७॥
बवादीनि ततः सप्त चराख्य करणानि च।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणानां प्रवर्तते ॥६८॥
तिथ्यर्ध भोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत्।
एषा स्फुटगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥६९॥

अनुवाद—(६७) शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न चार स्थिर करण प्रत्येक कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीके उत्तरार्द्धसे आरम्भ हो कर आधी आधी तिथि तक क्रमानुसार रहते हैं। (६८) उसके बाद बवादि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गरज, वणिज, विष्टि) सात चर करण क्रमानुसार मासमें आठ फेरा करते हैं। (६९) प्रत्येक करणका भोग आधी तिथिके समान समझना चाहिये। यहां तक सूर्यादि ग्रहोंको स्पष्ट करनेकी रीति कही गयी।

विज्ञान भाष्य—स्थिर करणोंका जो क्रम यहां बतलाया गया है प्रचलित पंचांगोंमें उससे कुछ विपरीत रहता है। इनमें शकुनिके बाद चतुष्पद तब नाग और किंस्तुघ्न लिखे मिलते हैं। इसका कारण क्या है और कबसे इस क्रमका आरम्भ हुआ यह विचारणीय है। विष्टिका दूसरा नाम भद्रा है जो शुभ कामोंमें अशुभ समझी जाती है। प्रत्येक चांद्रमासमें किस तिथिको कौन करण भोग करता है यह नीचेकी तालिकासे प्रकट होगा:—

प्रत्येक चांद्र मासके करणोंका क्रम (सूर्य सिद्धान्तके अनुसार)

	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
तिथि	तिथिका पूर्वार्द्ध	तिथिका उत्तरार्द्ध	तिथिका पूर्वार्द्ध	तिथिका उत्तरार्द्ध
१	किंस्तुघ्न	बव	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	तैतिल	गरज
३	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	बव	बालव

५	बव	बालव	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
७	गरज	वणिज	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	तैतिल	गरज
१०	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	बव	बालव
१२	बव	बालव	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
१४	गरज	वणिज	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	नाग	चतुष्पद

शुक्लपक्षकी १५वीं तिथिको पूर्णिमा और कृष्ण पक्षकी १५वीं तिथिको अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमाको १५ और अमावास्याको ३० से सूचित करते हैं।

सूर्य-सिद्धान्तके स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

त्रिप्रश्नाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१-४ श्लोक—समतल भूमिमें खड़ा शंकु गाड़कर दिशा सूचित करनेवाली रेखाएं खींचना। ५ श्लोक—शंकुकी छाया और उसकी नोकसे पूर्व-पश्चिम रेखाका अंतर जान कर छायाकी दिशा जानना। ६ श्लोक—सममंडल, उन्मंडल और विषुवन्मण्डलकी परिभाषा। ७ श्लोक—अग्राकी परिभाषा। ८ श्लोक—शंकु और उसकी छायाका परिमाण जानकर छाया-कर्ण जानना। ९-१० श्लोक—अयनांश जानकर ग्रहों की क्रांति, छाया, चर इत्यादि जानना। ११ श्लोक—अयनान्त या विषुवत् दिन को सूर्यका वेध करके अयनांश जांचना। १२ श्लोक—पलभाकी परिभाषा। १३ श्लोक—पलभा से लम्बांश और अक्षांश जानना। १४-१५ श्लोक—मध्याह्न-कालिक सूर्यका नतांश और क्रान्ति जानकर अक्षांश जानना। १६ श्लोक—अक्षांशसे पलभा जानना। १७-१९ श्लोक—अक्षांश और मध्याह्नकालिक सूर्यके नतांशसे सूर्यकी क्रान्ति जानना और सूर्यकी क्रान्तिसे सूर्यका स्पष्ट सायन भोग जानना और मंदफलका संस्कार देकर मध्य सायन भोग जानना। २०-२१—अक्षांश और सूर्यकी क्रांतिसे नतांश जानकर मध्याह्न कालिक छाया और छायाकर्ण जानना। २२ श्लोक—सूर्यकी उदय-कालिक अग्रा जानकर इष्टकालकी अग्रा जानना। २३-२४ श्लोक—अग्रा और पलभासे छायाका भुज जानना। २५ श्लोक—जब सूर्य सममंडलमें हो तब छायाकर्ण जाननेकी रीति। २६ श्लोक—जब सूर्यकी उत्तर क्रान्ति अ-क्षांशसे कम हो तब सममंडल सूर्यका छायाकर्ण जानना। २७ श्लोक-अग्रा जाननेकी दूसरी रीति। २८-३१ श्लोक—करणी और फलके ज्ञानसे सूर्यका उन्नतांश जानना जब सूर्य अग्निकोण या नैऋत्य कोणमें हो। ३२

श्लोक—उन्नतांश जानकर नतांश जानना। ३३ श्लोक—उन्नतांश और नतांशसे छाया और छायाकर्ण जानना। ३४-३५ श्लोक—चरज्या और नतकालसे छेद जानकर दृग्ज्या अर्थात् नतांशज्या जानना और उससे पहलेकी तरह छाया और छायाकर्ण जानना। ३६-३८ श्लोक—छाया और छायाकर्णसे नतकाल जानना। ३६ और ४० का पूर्वार्द्ध—अग्रासे क्रान्ति जानकर सूर्यका भोगांश जाननेकी दूसरी रीति। ४० का उत्तरार्द्ध और ४१ का पूर्वार्द्ध—भाभ्रम रेखा खींचना। ४१ का उत्तरार्द्ध और ४२ श्लोक—लंकामें सायन राशियों के उदयकाल जाननेकी रीति ४३-४४ श्लोक—लंकामें सायन मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु और अन्य स्थानों में सायन राशियोंके उदयासु जाननेकी रीति। ४५-४७ श्लोक-किस समय कौन राशि पूर्व क्षितिजमें लग्न होती है यह जानना। ४८ श्लोक—मध्यलग्न जानना। ४६-५० श्लोक—लग्न जानकर समय जानना।]

इस अध्यायमें किसीके मतसे श्लोकोंकी संख्या ५० और किसीके मतसे ५१ है। जो लोग श्लोकोंकी संख्या ५० मानते हैं वह कहते हैं कि ११ वें और २० वें श्लोकोंमें * प्रत्येक में ४ चरणोंकी जगह ६ चरण हैं। जो लोग ५१ मानते हैं वह प्रत्येक श्लोक चार चार चरणोंके मानते हैं। इसलिए दोनों मत मेरी समझ में अभिन्न हैं। इस समय मेरे पास सूर्य-सिद्धान्तके चार संस्करण हैं परन्तु खेद है कि किसी दो में श्लोकोंके अंकोंका क्रम एक सा नहीं है। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदीकी सम्पादित पुस्तकमें भी अंकोंका क्रम गड़बड़ है। इसलिए मैंने सुविधाके लिए ११वें और ३५वें श्लोकको तीन तीन पंक्तियों अथवा छ छ चरणोंका माना है। २०वें श्लोकको ६

* पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी सम्पादित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ १८०

चरणोंका माननेसे यह गड़बड़ पड़ती है कि आगेके किसी श्लोकमें नियम पूर्ण नहीं होते वरन् एक श्लोकका उत्तरार्द्ध और दूसरे श्लोकका पूर्वार्द्ध मिलाना पड़ता है। ३५ वें श्लोकको ६ चरणोंका मान लेनेसे ३६-४२ श्लोकोंमें ही यह असुविधा रहती है।

इस अध्यायमें सूर्यके वेधसे दिशा, देश (स्थान) और काल की जानकारी करनेकी अनेक रीतियाँ वर्णित हैं। वेधके लिए केवल एक यंत्र काममें लाया गया है जिसे शंकु कहते हैं। किसी कठिन धातु या हाथीदांतकी एक सीधी नोकदार छड़ समतल भूमिमें खड़ी गाड़कर उसीकी छायासे सब काम लिया गया है। इसीको शंकु कहा गया है। यंत्राध्यायमें और भी यंत्रोंका वर्णन है परन्तु इस जगह केवल शंकुकी चर्चा है। यह स्पष्ट है कि सूर्यका बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है और शंकुकी छायाकी नोक बहुत सूक्ष्मता पूर्वक नहीं निश्चित की जा सकती है इसलिए शंकुसे जो जो बातें जानी जा सकती हैं वह कुछ स्थूल हैं। आज कल दूरदर्शक यंत्रसे वेध करनेसे अधिक सूक्ष्मता हो सकती है। परन्तु प्राचीनकालमें शंकु बड़ा उपयोगी था। इससे वेध करके जितनी सूक्ष्मता हो सकती थी उसे प्राप्त करनेमें हमारे ज्योतिषियोंने बहुत कुशलता दिखलायी है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

दूरदर्शक यंत्रकी सहायतासे कुछ ऐसी बातोंका भी आविष्कार हुआ है जिनके संस्कारके बिना दिशा, देश और कालका ज्ञान स्थूल रहता है इसलिए आवश्यकता है कि उनकी भी चर्चा की जाय। इसलिए विज्ञान भाष्यमें लम्बन (parallax) किरणवक्रीभवन (refraction of light),

अयन चलनका कारण, अक्ष विचलन (nutation), भूचलन संस्कार (aberration of light) और काल-समीकरण (equation of time) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा।

दिशाओंके निश्चय करनेकी रीति

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपे पिवासमे ।
तत्र शंकवङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥१॥
तन्मध्येस्थापयेच्छंकुं कल्पनाद्वादशाङ्गुलम् ।
तच्छायाग्रंस्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः ॥२॥
तत्र बिन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥३॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्त द्वेव हि ॥४॥

अनुवाद—(१) जलके द्वारा शोधकर समतल किये हुए पत्थरके तलपर अथवा वज्रलेप (सुर्खी चूने इत्यादि) से बने हुए समतल चबूतरे पर शंकुके अनुसार इष्ट अंगुलके व्यासार्धका एक वृत्त खींचो। (२) इस वृत्तके केन्द्रमें बारह अंगुल का एक शंकु लम्ब रूपमें स्थापित करो। इसकी छायाकी नोक मध्याह्नके पहले और पीछे वृत्तको जहां स्पर्श करे, (३) वहां वृत्तपर दो बिन्दु बना दो इनको पूर्वाह्न और अपराह्न विन्दु कहते हैं। इन दो विन्दुओंके बीचमें तिमि द्वारा उत्तर-दक्षिण रेखा खींचो। (४) उत्तर दक्षिण दिशाओं के बीच में तिमि द्वारा पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचो। इस प्रकार

दो दिशाओंके बीचमें तिमि द्वारा ईशान आदि विदिशाओंकी रेखाए खींचो।

विज्ञानभाष्य—यह जाननेके लिए कि कोई तल सम है या नहीं सबसे सुगम रीति यह है कि तलके किनारे चारों ओर गीली मिट्टीकी आड़ करके उसमें एक या डेढ़ अंगुल गहरा पानी भर दो और किसी सीधी सींकसे देखो कि सब जगह पानीकी गहराई एक ही है या भिन्न भिन्न। यदि सब जगह पानीकी गहराई एक ही हो तो समझना चाहिये कि तल सम है। आजकल यह काम स्पिरिट लेवेल (Spirit level) से होता है।

वज्रलेप—पहले सुर्खी चूनेमें कई प्रकारका मसाला मिला-कर ऐसा गारा बनाया जाता था जिसकी गच वज्रकी तरह कठिन हो जाती थी। ऐसे गारेको वज्रलेप कहते हैं। वराही* संहितामें वज्रलेप बनानेकी एक विधि यों है:—

तेंदूके कच्चे फल, कैथाके कच्चे फल, सेमलके फूल, सल्लकीके बीज, धंधनकी छाल और बच इन सबको जलमें पकाकर काढ़ा बनावे, जब आठवां भाग पानी रह जाय तब उतार कर इसमें श्रीवास (सरल वृक्षका गोंद), रस, गूगल, भिलावा, कुंदरू, राल, अलसी और बेलकी गिरी पीसकर मिलावे तो वज्रलेप तैयार होता है।

तिमि—यदि दो वृत्त एक दूसरेको काटते हुए खींचे जायँ तो इनके बीचका भाग मछलीके आकारका हो जाता है। इसीको तिमि कहते हैं।

* सत्तावनवां अध्याय श्लोक १-३

चित्र ४४ में वृत्तके मध्यमें श शंकुका स्थान है। मध्याह्नके पहले शंकुकी छाया जब श कके समान होती है तब इसकी नोक परिधिके क विन्दु पर पहुँचती है। मध्याह्नके पीछे जब छाया श ख के समान फिर होती है तब इसकी नोक परिधिके ख विन्दुपर पहुँचती है। बस इन्हीं क, ख विन्दुओंको केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्धके दो वृत्त ऐसे खींचे जिनसे ग घ क्षेत्र तिमिके आकारका बनता है। इसके सामान्य विन्दुओंको मिलाने वाली रेखा ही उत्तर-दक्षिण रेखा है। यह रेखा पहले वृत्तको जिन विन्दुओंपर काटती है उनपर उत्तर दिशा सूचित करनेके लिए उ और दक्षिण दिशा सूचित करनेके लिए द लिख देना चाहिये। फिर उ और द को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्धके दो और धनु खींचकर इनके सामान्य विन्दुओंको एक सीधी रेखासे मिला दो। इसीको पूर्व-पश्चिमरेखा कहेंगे। पश्चिम दिशा सूचित करनेके लिए प और पूर्व दिशाके लिए पू लिखना चाहिये। फिर उ और प विन्दुओंको केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्धके दो धनु खींचकर उनके सामान्य विन्दुओंको मिलानेवाली रेखा उ और प के बीचमें जिस विन्दु पर परिधिको काटेगी वह वायव्य कोणकी दिशा और पू द के बीचमें जिस विन्दुपर काटेगी वह अग्निकोणकी दिशा होगी इसी प्रकार ईशान और नैऋत्य कोणकी दिशा भी जानी जा सकती है।

उपपत्ति—उदयके समय सूर्य पूर्व क्षितिजके जिस विन्दु पर देख पड़ता है उससे दक्षिणकी ओर खसकता हुआ ऊंचा उठता जाता है और किसी खड़ी लकड़ी या शंकुकी छाया छोटी होती हुई उत्तरकी ओर खसकती जाती है।

मध्याह्न कालमें सूर्य याम्योत्तर-वृत्त पर आ जाता है। उस समय छाया सबसे छोटी और ठीक उत्तर दिशामें होती है। इसके बाद सूर्य कुछ कुछ उत्तरको ओर खसकता हुआ नीचे उतरने लगता है और छाया उत्तर दिशासे पूर्वकी ओर खसकती हुई बड़ी होती जाती है। मध्याह्न कालसे जितना समय पहले शंकुकी छाया उत्तर दिशासे जितना बड़ा कोण बनाती हुई पच्छिमकी ओर रहती है, मध्याह्नसे उतनाही समय पीछे छाया उत्तर दिशासे उतना ही बड़ा कोण बनाती हुई पूर्वकी ओर रहती है। मध्याह्नसे समान काल आगे और पीछे, छायाकी लम्बाई भी समान* होती है। इसलिए जब छायाकी लम्बाई खिंचे हुए वृत्तके व्यासार्द्धके समान हो तब इनके बीचमें जो कोण बनता है उसको दो समान भागोंमें विभाजित करनेवाली रेखा ही उत्तर-दक्षिण-रेखा होगी। इसी समविभाजक रेखाको खींचनेके लिए समान व्यासार्द्धके धनु खींचकर तिमि बनानेका आदेश दिया गया है जो रेखा गणितकी विधिके अनुसार है। इसी नियमके अनुसार अन्य दिशाओंको सूचित करनेवाली रेखाएं खींची जा सकती है। वृत्त पर जो पूर्वाह्न और अपराह्न विन्दु छायाकी नोकके द्वारा स्थिर किये जाते हैं उनको मिलानेवाली रेखा भी पूर्व-

---

* सूर्यकी क्रान्ति सदैव बदलती रहती है इसलिए मध्याह्नके पहले और पीछेकी क्रान्तियोंमें कुछ अंतर पड़ जाता है जिससे उपर्युक्त कथनमें कुछ स्थूलता आ जाती है परन्तु यह नहींके समान समझना चाहिए। जिस समय क्रान्तिकी गति बहुत मन्द होती है अर्थात् जिस समय सूर्य उत्तरायन या दाक्षिणायन विन्दुओं के पास रहता है उस समय यह बात अधिक शुद्ध होगी।

पच्छिम-रेखा है परन्तु भविष्यमें गड़े हुए शंकुसे काम लेनेके लिए आवश्यक है कि दिशा सूचक जितनी रेखाएं खींची जायँ वह सब शंकुके मध्यसे होकर जाय। इसलिए वृत्तके उत्तर दक्षिण विन्दुओंसे तिमि बनाकर पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचनेका आदेश है।

क्रान्तिके सदैव बदलते रहनेके कारण जो तनिक सी स्थूलता आ जाती है उसके संशोधनके लिए भास्कराचार्य† जी तथा अन्य ज्योतिषियों ने नियम बनाये हैं परन्तु उनके वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इन संशोधनोंसे उपर्युक्त रीतिकी सरलता जाती रहती है। यदि शुद्धताके लिए कठिन नियमकी आवश्यकता हो तो दिगंश जाननेकी रीतिसे ही क्यों न काम लिया जाय जिसकी चर्चा इसी अध्यायमें की जायगी ?

चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिर्गतैः ।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभास्मृता ॥५॥

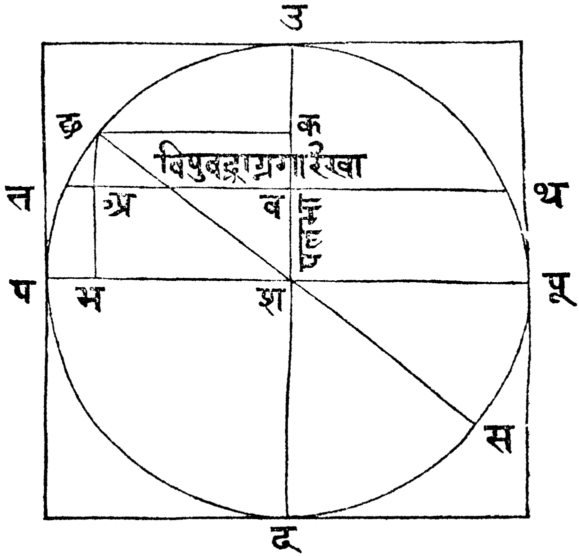
अनुवाद—(५) केन्द्रसे उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएं छायाके समान व्यासार्द्धसे खींची गयी परिधिके जिन विन्दुओं पर पहुँचती हैं उनको स्पर्श करती हुई रेखाएं खींच कर समचतुर्भुज क्षेत्र बनाओ। पूर्वापर रेखासे समकोण बनाती

---

†तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्गाकर्णमित्याहताल्लम्बज्यासमिताङ्गुलै-रयनदिशयैन्द्री स्फुटा चालिता ॥८॥

गणिताध्याय, त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ १०४-१०५

हुई इष्ट भुजके समान सीधी रेखा खींचो जो परिधि तक पहुँचे। परिधिके जिस विन्दु तक भुजकी नोक पहुँचे उसको शंकुके मध्यसे मिला दो तो छायाकी दिशा ज्ञात होगी।



चित्र ४५

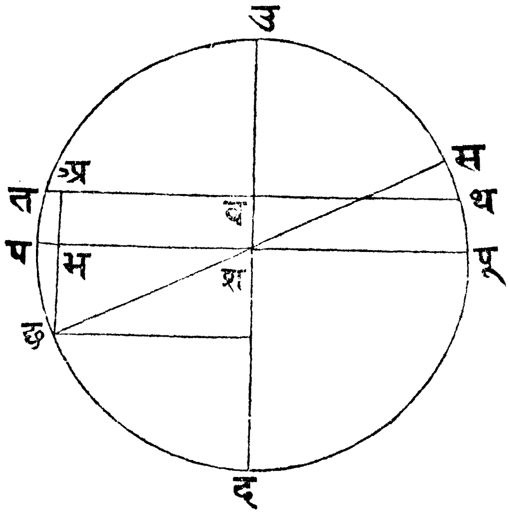
विज्ञान भाष्य—चित्र ४५ में श शंकुका केन्द्र है और श छ किसी समयकी छाया है। श को केन्द्र मानकर श छ के व्यासार्द्धसे परिधि खींची गयी है। प पू पूर्वापरा रेखा अथवा पूर्व-पच्छिम रेखा है और उ द उत्तर-दक्खिन रेखा है। पूर्वापरा रेखासे छायाकी नोक छ का अन्तर छ भ के समान और उत्तर-दक्खिन रेखासे छ का अंतर छ क के समान है। छ भ

को छायाका भुज और छक को छायाकी कोटि कहते हैं। इस श्लोकका अर्थ यह है कि यदि छाया और भुजकी नाप ज्ञात हो तो छायाकी दिशा कैसे जानी जा सकती है। आजकलकी प्रथाके अनुसार इसको यों कह सकते हैं कि यदि छायाकी नाकके भुजयुग्म (coordinates) ज्ञात हों तो छाया कैसे खींची जा सकती है। पूर्वापरा रेखासे छायाकी नोकके अंतर को छायाका भुज और उत्तर-दक्खिन रेखासे छायाकी नोकके अंतरका छायाकी कोटि कहते हैं। किसी समयकी छाया और इसके भुजमें जो सम्बन्ध होता है वह २३–२४ श्लोकोंमें बतलाया गया है।

यदि छश रेखा बढ़ायी जाय तो वह परिधिको स विन्दु पर काटेगी। इसी श स दिशामें सूर्य होगा जब कि शंकुकी छाया श छ होगी। इस समय सूर्य पूर्व विन्दु पू से जितना दक्षिण है वह पू श स कोणसे जाना जा सकता है। यही कोण इस समय सूर्यकी अग्रा है। उत्तर बिन्दु उ से सूर्य उ श स कोण के अंतर पर है। यही कोण इस समय सूर्यका दिगंश (azimuth) है। इस चित्रमें सूय पूर्वापर रेखासे दक्खिन है। यदि सूर्य पूर्वापर रेखासे उत्तर हो तो छाया, अग्रा, भुज, इत्यादि ४६ चित्रके अनुसार होगी।

जिस दिन सूर्य विषुवद्वृत्तपर होता है उस दिन अर्थात् सायन मेष या सायन तुला संक्रान्तिके दिन मध्याह्नमें शंकुकी छाया जितनी बड़ी होती है उसको विषुवद्भा, पलभा या अक्षभा कहते हैं। यदि श स्थानकी पलभा श व के समान हो तो व से पूर्वापर रेखाके समानान्तर खींची गयी त थ रेखाको विषुवद्भाग्रगा रेखा कहते हैं। छायाकी नोकसे विषुव-

द्वाग्रगा रेखाका जो अन्तर होता है वही अग्राज्या कहलाता है। ४५—४६ चित्रोंमें छ अ अग्राज्या है।



चित्र ४६

समभण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल

प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्।
उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते॥ ६॥

अनुवाद—(६) सममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल पूर्व और पश्चिम बिन्दुओं पर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका शब्दार्थ यह है—पूर्व पश्चिम बिन्दुओंसे जानेवाली रेखाको सम-मण्डल कहते हैं और

उसीको उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल भी कहते हैं। परन्तु यथार्थमें यह तीनों शब्द भिन्न भिन्न अर्थ रखते हैं इसलिये अनुवादमें मैंने अन्य कई टीकाकारोंके विरुद्ध वही अर्थ लिखा है जो उचित है। जान पड़ता है कि इस श्लोकका शुद्ध रूप यह नहीं है वरन् भ्रमके कारण ऐसा कर दिया गया है। रंग-नाथजी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीकामें इसीको शुद्ध मान कर इन तीनों शब्दोंको एक रूपता सिद्ध करनेकी चेष्टा की है परन्तु वह युक्तियुक्त नहीं जान पड़ती क्योंकि यह तीनों शब्द बहुत प्राचीन कालसे भिन्न भिन्न अर्थ रखते आये हैं और इनमें समानता केवल इतनी है कि यह तीनों मण्डल पूर्व पश्चिम विन्दुओंसे होकर जाते हैं।

सममण्डल (prime vertical) उस ऊर्ध्वाधर (vertical) वृत्तको कहते हैं जो खस्वस्तिक और पूर्व पश्चिम विन्दुओं से होकर जाता है।

उन्मण्डल (six o'clock line) उस वृत्तको कहते हैं जो पूर्व पश्चिम विन्दुओं और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवोंसे होकर जाता है। यही निरक्षदेश पर क्षितिज होता है।

विषुवन्मण्डल (celestial equator) उस वृत्तको कहते हैं जो पूर्व पश्चिम विन्दुओंसे होकर जाता है और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवोंसे समान अन्तर पर होता है।

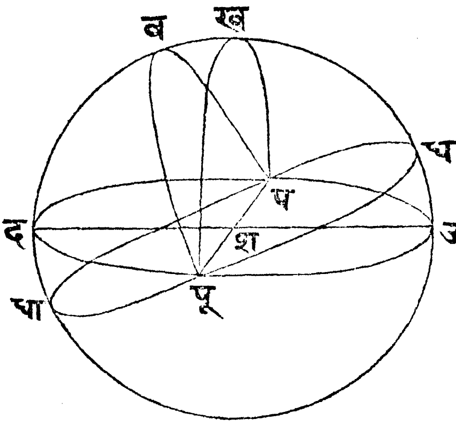
चित्र ४७ का विवरण—

श...दर्शक का स्थान

उ...उत्तर विन्दु

पू...पूर्व विन्दु

द...दक्षिण विन्दु



चित्र ४७

प...पश्चिम विन्दु

ध...उत्तरी आकाशीय ध्रुव

धा...दक्षिणी आकाशीय ध्रुव

ख...खस्वस्तिक

उ पू द प...क्षितिज वृत्त

ध पू धा प...उन्मण्डल

प ख पू...सममण्डल

प व पू...विषवन्मण्डल वा विषुवद्वृत्त

व...याम्योत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्तका सामान्य विन्दु

उ ध ख व द धा...याम्योत्तर वृत्त

चित्र ४२ में एक एक वृत्त या मंडलके लिये केवल एक एक सीधी रेखा खींची गयी है। हां, याम्योत्तरवृत्त दोनोंमें एक ही तरह खींचा गया है।

अग्राज्या

रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥ ७ ॥

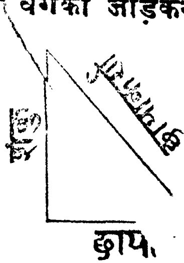
अनुवाद—(७) पलभाके अग्रसे जानेवाली पूर्व पश्चिम रेखाके समानान्तर रेखाको विषुवद्भाग्रगा रेखा कहते हैं। इष्ट छायाकी नोकसे विषुवद्भाग्रगा रेखाका जो अन्तर होता है वह अग्रा कहलाती है।

विज्ञान भाष्य—चित्र ४५-४६ में जिसको अग्राज्या बतलाया गया है वही यहां अग्रा कही गयीहै। आचार्यने कोण और उसके सामनेके भुज दोनोंको अनेक स्थानोंपर अग्रा शब्दसे सूचित किया है परन्तु मैं कोणको अग्रा और अग्राके सामनेके भुजको अग्राज्या लिखूंगा जिससे भ्रम न हो।

छायाकर्ण

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात् ॥ ८ ॥

अनुवाद—(८) शङ्कु और छाया प्रत्येकके वर्गको जोड़कर वर्गमूल निकालनेसे छायाकर्ण आता है। छायाकर्णके वर्गमें से शङ्कुके वर्गको घटाकर वर्गमूल निकालनेसे छाया और छाया के वर्गको घटाकर वर्गमूल निकालनेसे शङ्कु आता है।



चित्र ४८

विज्ञान भाष्य—समकोण त्रिभुजके दो भुज ज्ञात हों तो तीसरा भुज जाननेकी जो रीति है वही यहां शंकु, छाया और छाया कर्णके सम्बन्धमें भी लागू है। इस श्लोकका सार यह है:—

$$\text{छाया कर्ण}=\sqrt{\text{शंकु}^2+\text{छाया}^2};\ \text{छाया}=\sqrt{\text{कर्ण}^2-\text{शंकु}^2};$$
$$\text{शंकु}=\sqrt{\text{कर्ण}^2-\text{छाया}^2}$$

अयनांश जाननेकी रीति—

त्रिंशत्कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते ॥९॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधा।
तत्संस्कृताद् ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम्॥१०॥

अनुवाद—(९) एक युगमें नक्षत्र-चक्र ६०० बार पूर्वकी ओर लोलककी तरह आन्दोलन (oscillation) करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गणसे गुणा करके महायुगीय सावन दिनोंकी संख्यासे भाग देनेपर जो आवे (१०) उसका भुज बनाकर भुजको ३ से गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा

करनेसे जो कुछ आवे वही अयनांश कहलाता है। ग्रहोंके स्थानोंमें इसका संस्कार देकर तब ग्रहोंकी क्रान्ति, छाया, चरदल इत्यादि जानना चाहिये।

विज्ञानभाष्य—क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके जिस सामान्य विन्दु पर उत्तरगामी सूर्य आता है उसको वसंत-सम्पात (vernal equinox) कहते हैं। वसंत-सम्पातसे आगे ९० अंश जब सूर्य पहुँच जाता है तब उसकी उत्तरकी ओर बढ़नेकी गति रुक जाती है और दक्षिणकी ओर लौटने लगता है। इसी समय दक्षिणायनका आरंभ होता है। इसलिए जिस विन्दु पर पहुँच कर सूर्य दक्षिणकी ओर मुड़ता है उसे दक्षिणायन विन्दु (summer solstice) कहते हैं। दक्षिणायनके आरंभसे जब तक सूर्य दक्षिणकी ओर चलता रहता है तबतकके समयको भी जो ६ मासके समान होता है दक्षिणायन कहते हैं। दक्षिणायनके आरंभसे ३ मास बाद सूर्य विषुवद्वृत्तपर फिर आता है। इस विन्दुको शरद-सम्पात कहते हैं क्योंकि इसी समय शरद ऋतुका आरंभ होता है। शरद सम्पातसे ९०° आगे तक सूर्य दक्षिणकी ओर चलता रहता है फिर उत्तरकी ओर लौट पड़ता है। जिस विन्दुपर पहुँचकर सूर्य उत्तरकी ओर लौटने लगता है उस विन्दुको उत्तरायन विन्दु (winter solstice) कहते हैं। इसी समय से उत्तरायनका आरंभ होता है। उत्तरायन और दक्षिणायन विन्दुओंको अयन विन्दु कहते हैं। चित्र ३९ में व, द, श और उ क्रमसे वसंत सम्पात, दक्षिणायन विन्दु, शरद सम्पात और उत्तरायन विन्दु हैं। जो वृत्त अयन विन्दुओं, आकाशीय ध्रुवों और कदम्बों पर होके जाता है उसे अयनान्त वृत्त

(Solstitial colure) कहते हैं। चित्र ३६ में दा द ध क ऊ उ वृत्त अयनान्त वृत्त है।

यह अयन विन्दु आकाशमें सदा एकही जगह नहीं रहते वरन् पश्चिमकी ओर खसक रहे हैं इस लिए जिस नक्षत्र या तारा समूहके पास आजकल उत्तरायण या दक्षिणायन होता है उसी तारेके पास प्राचीन कालमें नहीं होता था। वेदांग[1] ज्योतिषमें लिखा है कि जब सूर्य श्रविष्ठा या धनिष्ठा नामक नक्षत्रके आदिमें होता था तब उत्तरायणका आरंभ होता था और जब सूर्य अश्लेषा नक्षत्रके आधे भाग पर पहुँचता था तब दक्षिणायनका आरंभ होता था।

वराहमिहिर वाराही[2] संहितामें इसकी चर्चा करते हुए लिखते हैं कि प्राचीन कालमें आश्लेषाके आधेपर दक्षिणायन और श्रविष्ठाके आदिपर उत्तरायण होता था परन्तु अब कर्क राशिमें प्रवेश करते ही सूर्य दक्षिणायन और मकर राशिमें प्रवेश करते ही उत्तरायन होता है। यदि ऐसा न हो तो वेध करके निश्चय करना चाहिए।

१—प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।

सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयोः सदा॥

याजुष ज्योतिष श्लोक ७ और आर्च ज्योतिष श्लोक ६

२—आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्। नूनंकदाचिदासी-द्येनोक्तं पूर्वं शास्त्रेषु॥१॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्। उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्ष परीक्षणैर्व्यक्तिः॥२॥

वाराही संहिता, आदित्यचार पृष्ठ १६, १७।

आजकल दक्षिणायनका आरंभ आर्द्रा नक्षत्रके आरंभमें और उत्तरायणका आरंभ मूलके आधे भाग पर होता है।

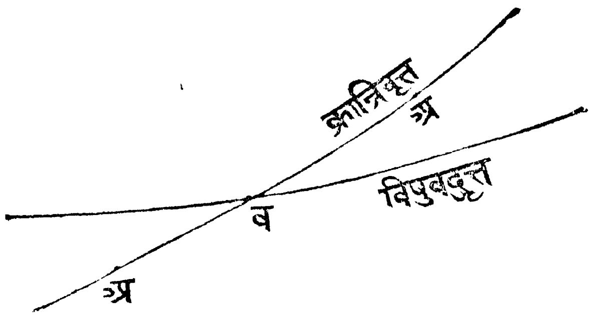
इस तरह सिद्ध है कि उत्तरायन बिन्दु वेदांग ज्योतिष कालमें धनिष्ठाके आदिमें था और अब मूलके आधे पर। इस लिए स्पष्ट है कि अयन पच्छिमकी ओर खसक रहा है। इसके कारण वसंतसम्पात बिन्दु या शरद सम्पात बिन्दु भी पच्छिम की ओर खसक रहा है। वसंत सम्पात बिन्दुके खसकनेको युरोपीय ज्योतिषी (precession of equinoxes) कहते हैं इसलिए हमारे ज्योतिषियोंने जिस घटनाको अयन-चलनके नामसे लिखा है उसीको पाश्चात्य ज्योतिषी (precession of equinoxes) कहते हैं। भास्कराचार्यजी[१] ने अयनचलन और विषुवत्क्रान्ति-वलयपातचलन दोनोंका समान अर्थ किया है।

अयनचलनके सम्बन्धमें हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंके मतोंमें बड़ी भिन्नता है। सूर्यसिद्धान्तका मत है कि नक्षत्र चक्रका आदि बिन्दु अ लोलक (pendulum) की तरह वसंत सम्पात व के दोनों ओर २७ अंश तक परिलम्बन या आंदोलन करता है (चित्र ४९)। अ को अश्विनीका आदि बिन्दु भी कहते हैं। इस आंदोलनका अर्थ यह हुआ कि युगके आरंभमें वसंत सम्पात और अश्विनीका आदि बिन्दु एक साथ थे। इसके पश्चात् अश्विनीका आदिबिन्दु पूर्वकी ओर खसकने लगा और जब वसंत सम्पातसे २७ अंश तक आगे बढ़ गया

१—तस्य (विषुवत्क्रान्तिवलयपातस्य) अपि चलनमास्ति। येऽयनचलन भागाः प्रसिद्धास्तएव विलोमगस्य क्रान्ति पातस्य भागाः।

—गोलाध्याय पृष्ठ ५५

तब यह फिर वसंत सम्पातकी ओर लौटने लगा और धीरे धीरे वसंत सम्पातके साथ हो गया। इसके पश्चात् वसंत सम्पातसे पच्छिमकी ओर जाने लगा और २७ अंश जाकर फिर वसंत सम्पातकी ओर लौटा और धीरे धीरे वसंत सम्पातके पास फिर पहुंच गया। इस क्रमको एक पूर्ण आंदोलन (oscillation) कहते हैं। ऐसे ऐसे ६०० आंदोलन एक महायुगमें अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षोंमें होते हैं इसलिए एक आंदोलन ७२०० सौर वर्षोंमें तथा चौथाई आंदोलन अथवा २७° की गति १८०० सौर वर्षोंमें होती है।



चित्र ४६

यह जाननेके लिए कि अश्विनीका आदि बिन्दु वसंत सम्पातसे किस समय कितनी दूर है अर्थात् अयनांश क्या है, ९-१० श्लोकोंमें कहे गये नियमको काममें लाना चाहिए जो एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा।

मान लो १९८२ वि० का अयनांश जानना है।

सृष्टिके आरंभसे वर्तमान कलियुगके आरंभ तक १,९५, ५८,८०,००० सौरवर्ष बीते* जिसमें ७२०० वर्षोंमें एक आंदोलनके हिसाबसे २,७१,६५० आंदोलन पूरे हो गये इसलिए कलियुगके आरंभमें नये अंदोलनका आरंभ हुआ। इसलिए अयनांश जाननेके लिए कलियुगादि अहर्गणसे ही काम लेनेमें सुबिधा होगी। नियममें अहर्गणसे काम लेनेको कहा गया है परन्तु मेष संक्रान्तिकालका अयनांश जाननेके लिए सौर वर्षों से ही काम लेनेमें कोई अशुद्धि नहीं हो सकती। कलियुगके आरंभसे १९८२ वि०की मेष संक्रान्ति तक ५०२६ सौर वर्ष होते हैं। इसलिए,

७२०० : ५०२६ : : १ आंदोलन : इष्ट आंदोलन

$$\text{अर्थात्, इष्ट आन्दोलन} = \frac{५०२६}{७२००}$$

$$= \frac{५०२६ \times ३६०}{७२००} \text{ अंश}$$

$$= २५१^\circ १८'$$

यह तीसरे पादमें है। इसलिए स्पष्टाधिकारके ३०वें श्लोकके अनुसार ७१°१८' तीसरे पादका गत भाग ही भुज हुआ। इसको ३ से गुणा करके १० से भाग देने पर २१°२३' २४" अयनांश होता है। मेष संक्रान्तिसे जितने दिन पीछेका अयनांश जानना हो उतने दिनकी गति वर्षमें ५४" के हिसाबसे निकाल कर मेष संक्रान्ति कालके अयनांशमें जोड़ देनेसे इष्ट कालका अयनांश ज्ञात हो जायगा।

---

* देखो मध्यमाधिकार विज्ञान भाष्य पृष्ठ ५६

यह स्पष्ट है कि भुजका परम मान ९०° होता है इसलिए यदि इसको ३ से गुणा करके १० से भाग दिया जाय तो २७° आता है जो सूर्य सिद्धान्तके मतसे अयनांशका परम मान है।

यहां एक बात ध्यान देनेकी है। ९वें श्लोकमें कहा गया है कि नक्षत्र-चक्र पूर्वकी ओर परिलम्बन करता है अर्थात् आन्दोलन आरंभ करने पर पहले वह पूर्वकी ओर चलता है। इसलिए जब तक वह बसंत सम्पातसे २७ अंश पूर्वकी ओर बढ़ता रहता है तब तक प्रथम पादमें होता है, जब वह पूर्व से बसंत सम्पातकी ओर लौटता रहता है तब तक दूसरे पादमें रहता है, जब तक बसंत सम्पातसे २७ अंश पच्छिमकी ओर बढ़ता रहता है तब तक वह तीसरे पादमें रहता है और जब वह पच्छिमसे बसंत सम्पातकी ओर लौटता रहता है तब तक चौथे पादमें रहता है। इसलिए ऊपर की गणनासे सिद्ध है कि अश्विनीका आदि विन्दु बसंत सम्पातसे २१°२३′ २४″ पच्छिम है। परन्तु यथार्थमें अश्विनीका आदि विन्दु इस समय बसंत सम्पातसे पूर्व है जैसा कि अगले ११वें श्लोकसे भी स्पष्ट होता है इसलिए यह मानना पड़ेगा कि अश्विनीका आदि विन्दु आन्दोलन आरंभ करने पर पहले पच्छिमकी ओर बढ़ता है जो श्लोकके विरुद्ध है। इसलिए जान पड़ता है कि आचार्यने बसंत सम्पातको ही अश्विनीके आदि विन्दुके दोनों ओर २७° पूर्व और पच्छिम आंदोलन करता हुआ माना है और पाठमें किसी कारण गड़बड़ हो गया है। क्योंकि अन्य आचार्योंने अयनान्त-वृत्त या क्रान्तिपातको ही चलता हुआ माना है। जब १८०० वर्षमें अयन २७ अंश चलता है तब १ वर्षमें ५४ विकला गति होती है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्तके

मतसे दो बातें सिद्ध होती हैं—(१) वसंत सम्पात अश्विनीके आदिसे २७ अंश आगे पीछे हो सकता है तथा (२) इसकी वार्षिक गति ५४ विकला है।

अयन-चलनका कारण क्या है यह भारतीय ज्योतिषमें कहीं नहीं मिलता। रंगनाथजीने अपनी गूढ़ार्थप्रकाशिका टीकामें ईश्वरकी इच्छाको ही इसका कारण माना है।

जो मत सूर्य-सिद्धान्तका है वही सोमसिद्धान्त,* रोमश सिद्धान्त,* शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त,* और लघुवशिष्ठसिद्धान्त* का है। द्वितीय आर्यभट* और पराशर* जीने भी अयनका पूर्ण भगण नहीं माना है परन्तु इनके मतसे वसंत सम्पात २४ अंश ही मूल बिन्दुसे पूर्व पश्चिम जाता है न कि २७°। द्वितीय आर्यभटने अयनांश जाननेकी जो रीति बतलायी है उससे जान पड़ता है कि अयनचलनकी वार्षिक गति सदा समान नहीं होती। हां मध्यम वार्षिक गति ४६·३† विकला मानी गयी है। पराशर† जीने वार्षिक गति ४६·५† विकला मानी है।

इसके प्रतिकूल मुंजाल[१] का मत है कि अयन या वसंत सम्पात विलोमदिशामें भ्रमण करता हुआ पूरा चक्कर लगाता है और एक कल्पमें १,९९,६६९ भगण करता है। इसीको

---

* भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३२८ तथा जोगेशचंद्रराय सम्पादित सिद्धान्तदर्पणका Introduction pp. 39-40

† भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३३०–३३१ तथा महासिद्धान्त पृष्ठ ६,४५, ५७

१—गोलाध्याय पृष्ठ ५४

भास्कराचार्य[२] जी ने भी माना है। इस हिसाबसे अयनकी वार्षिक गति ५९.९००७ विकला होती है जो प्रायः १ कलाके लगभग है। इसलिए व्यवहारमें मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादि ने १ कला अयनकी वार्षिक गति मानी है।

वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त इत्यादि ने अयनांशका संस्कार करने की बात नहीं लिखी है। जान पड़ता है कि इनके समयमें अयनांशका परिमाण बहुत कम था तथा अयनचलनका ज्ञान भी इनको नहीं हुआ था। वराहमिहिरने तो केवल इतना लिख दिया है कि पहले धनिष्ठाके आदिमें उत्तरायण होता था और इनके समयमें मकरके आदिमें अर्थात् उत्तराषाढ़के प्रथम पाद पर। इतना और भी कहा है कि यदि विकार हो तो प्रत्यक्ष वेधसे काम लेना चाहिए। इसके सिवा अयन जाननेका कोई नियम नहीं लिखा है। ब्रह्मगुप्त ने तो कोई संकेत भी नहीं किया है। इसका कारण भास्कराचार्य[३] जी यह लिखते हैं कि ब्रह्मगुप्तके[४] समयमें अयनांश बहुत कम था इसलिए उनको इसका पता नहीं लग सका।

वसंत संपातके चलनेका ज्ञान यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस (Hipparchus) को विक्रम संवतसे कोई ७० वर्ष पहले हो चुका था। तारोंकी सूची बनानेपर इनको ज्ञात हुआ कि

२—मुंजालका लघुमानस ९८९ वि० के लगभग बना है (देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३१३)

३—गोलाध्याय पृष्ठ ५५।

४—जन्म संवत् ६५५ वि०, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तका रचनाकाल सम्वत् ६८५ वि०। देखो ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ४०७

इनसे कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले जो सूची बनी थी उसकी अपेक्षा इस सूचीमें वसंत सम्पातसे प्रत्येक तारेका अंतर कोई २ अंश अधिक हो गया था। जिससे इन्होंने यह परिणाम निकाला कि वसंत सम्पात पीछे खसक रहा है। इन्होंने वसंत सम्पातकी जो वार्षिक गति निकाली थी वह कमसे[1] कम ३६ विकला थी। वसंत सम्पातकी यही गति टालमी[2] (Ptolemy) ने विक्रमकी तीसरी शताब्दीके आरंभमें निश्चय की। इसके बाद यूनानी ज्योतिष में वसंत सम्पातके चलनेके सम्बन्धमें तथा अन्य बातोंमें भी कोई उन्नति[3] नहीं हुई।

अलबटानी नामक अरबके एक राजकुमारने जो एक निपुण ज्योतिषी था ९३७ वि०के लगभग वसंत सम्पातकी वार्षिक गति कुछ शुद्धता पूर्वक निश्चय की। शंकर बाल कृष्ण दीक्षित[4] लिखते हैं कि अलबटानीने सम्पात चलनकी वार्षिक गति ५५·५ विकला निश्चित् की थी। इसके बाद नसीरउद्दीनने[5] वर्तमान ईरानके उत्तरी पश्चिमी सीमाके पास

१—Berry's Short History of Astronomy pp 51-52 तथा Encyclopaedia Brittanica Eleventh edition pp.810.

२—Berry's Short History of Astronomy pp. 68—69.

३—उपरोक्त पृष्ठ ७३।

४—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३३५।

५—Berry's History of Astronomy pp.81—82

वेधालय स्थापित करके वसंत संपातकी वार्षिक गति ५१ विकला विक्रमकी १४वीं शताब्दीके आरंभमें निश्चय की।

आजकल बहुत सूक्ष्म यंत्रोंके द्वारा वसंत संपातकी वार्षिक गतिका सूत्र निउकंब[1] (Newcomb) के अनुसार यह है।

$$५०''·२४५३ + ०''·०००२२२५ व$$

जहाँ व, १८५० ई० अथवा १९०७ वि०के बादके बीते हुए वर्षोंकी संख्या है। इस हिसाबसे १९८२ वि० के आरंभमें वसंत सम्पातकी वार्षिक गति

$$५०·''२४५३ + ०.''०००२२२५ × ७५$$
$$= ५०''·२६२$$

भारतीय, यूनानी, अरबी तथा युरोपीय विद्वानोंके अयन चलन संबंधी विचारोंकी चर्चा संक्षेपमें इसलिए की गयी जिससे प्रकट हो जाय कि इस संबंधमें हमारे ज्योतिषियोंके विचार कितने स्वतंत्र हैं। अब यह प्रश्न होता है कि हमारे ज्योतिषियोंने अयनकी वार्षिक गति १ कला क्यों मानी है जब कि शुद्ध गति ५०·२६२ विकला के लगभग है। इसका कारण यह है कि हमारे ज्योतिषी अयनांश उस अंतरको कहते हैं जो विषुव सम्पातसे मेषके आदि विन्दुका होता है। और मेषका आदि विन्दु वह बेधसे नहीं निश्चय करते वरन् गणनासे करते हैं। गणनाके लिए हमारे यहां सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३१·४ विपलका वर्ष माना जाता है जब कि आधुनिक खोजके अनुसार शुद्ध वर्षका मान ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५६·८७ विपल होता है (देखो मध्यमा-

---

१ Ball's Spherical Astronomy pp.187.

धिकार पृष्ठ ३१ की सारिणी)। इस तरह हमारे वर्षका मान शुद्ध वर्ष से ८ पल ३४·५३ विपल अधिक है। इतने समयमें सूर्य ५८′४२″·४६ * प्रति दिनके हिसाबसे ८″·३६१ विकला चलता है। इसलिए शुद्ध वर्षके अनुसार यदि वसंत सम्पातकी गति ५०″·२६२ होती है तो हमारे वर्षके अनुसार स्पष्ट मेष संक्रान्तिके विन्दु से वसंत सम्पात ५०·″२६२+८″·३६१ =५८·″६५३ विकला पच्छिम हो जाता है। अर्थात् यदि सौर वर्षका मान वह रखा जाय जो सूर्य सिद्धान्तका है तो प्रतिवर्ष ५८″·६५३ वसंत संपातकी गति माननेसे शुद्धता होती है इससे सिद्ध होता है कि मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश इत्यादिने अयनकी गति जो १ कला या ६० विकला मानी है वह इस समय सत्यसे केवल १·३४७ विकला अधिक है। जिस समय मुंजालने प्रत्यक्ष वेधसे अयन गति ५६·६००७ विकला निश्चय किया था उस समय अशुद्धि तनिक सी और रही होगी क्यों कि ६=६ विक्रमीयमें शुद्ध अयन गति

५०″·२४५३ − ०·००० २२२५ × (१६०७ − ६८६)

=५०″·२४५३ — ·२०४३

=५०″·०४१ रही होगी।

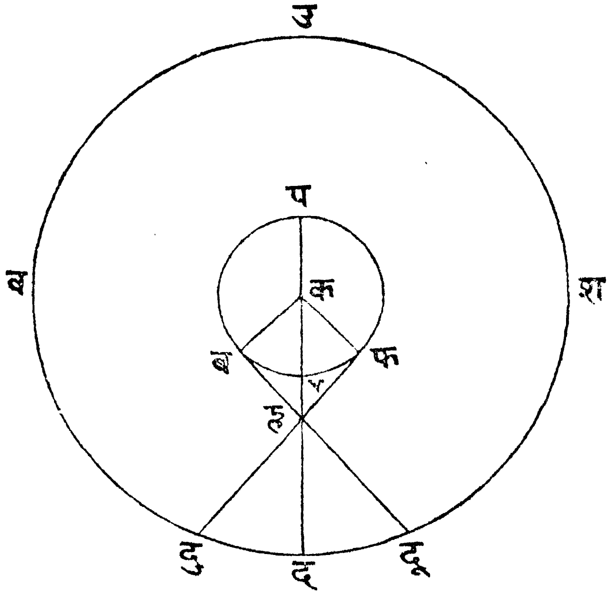
इससे प्रकट है कि हमारे आचार्योंने अपने स्वतंत्र और निराले ढंगसे अयनकी गति इतनी सूक्ष्म निकाली थी कि वह सत्यसे केवल १·५६८ विकला अधिक थी जो उस समयके स्थूल यंत्रोंके विचारसे बहुत ही सराहनीय है।

---

*यह मेष संक्रान्तिके दिन सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति है और सूर्य सिद्धान्तके अनुसार निकाली गयी है।

अब संक्षेपमें इस बातपर विचार किया जायगा कि अयन की गति लोलककी गतिकी तरह होती है जैसा कि सूर्यसिद्धान्त सोमसिद्धान्त पराशरसिद्धान्त और महासिद्धान्तका मत है अथवा पूर्ण भ्रमण होता है जैसा कि मुंजाल या भास्कराचार्य इत्यादिका मत है।

सूर्य्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थोंमें यह नहीं लिखा मिलता कि अयनकी गति लोलककी गतिकी तरह क्यों होती है। ब्रेनँड[1]ने



चित्र ५०

१—Brennand's History of Hindu Astronomy, London 1896.

और शायद इन्हींके आधारपर विज्ञानानन्द[1] स्वामीने इसको समझानेका प्रयत्न इस प्रकार किया है:—

मानलो उवदश क्रान्तिवृत्त और क इसके ध्रुव अर्थात् कदम्बका छेद्यक (projection) है। ध विषुवद्वृत्तका उत्तरी ध्रुव (pole) और कधद अयनान्त-वृत्त (solstitial colure) का छेद्यक है। प फ ध ब उस मार्गका छेद्यक समझो जिस मार्गसे उत्तरी ध्रुव कदम्बकी परिक्रमा अयनचलनके कारण विलोम गतिसे कर रहा है। दु दृ क्रान्तिवृत्तके वह विन्दु हैं जहां तक दक्षिणायन विन्दु द, अयनचलनके कारण परिलंबन करता है इसलिए द से दु या दृ २७° के अंतपर है। सिद्धान्तके मतसे क ध अर्थात् उत्तरी ध्रुवसे कदम्बकी दूरी २४° है। दु और दृ विन्दुओंसे फ और ब विन्दुओंपर स्पर्श रेखाएं दु फ और दृ ब खींचो जो एक दूसरेको ह विन्दुपर काटती हैं। जितनी देरमें ध ब प फ वृत्तपर ध ३६० अंश चलता है उतनी देरमें द विन्दु द से दृ तक जाता है, फिर दृ से द तक लौट कर दु तक पहुंचता है और दु से द तक फिर आ जाता है। इसलिए जबतक ध्रुव कदंबकी परिक्रमा करता है तब तक नक्षत्रचक्र ह विन्दुके दोनों ओर लोलककी तरह आंदोलन करता हुआ देख पड़ता है।

परन्तु इससे कुछ संतोष नहीं होता क्योंकि प्राचीन लेखोंसे यह सिद्ध होता है कि बसंत संपात विन्दु अश्विनीके आरंभस्थानसे २७ अंशसे भी अधिक आगे रहा है। शतपथ[2]

१—श्री सूर्यसिद्धान्त वङ्गानुवाद तथा टीका, कलकत्ता १६०६ ई०

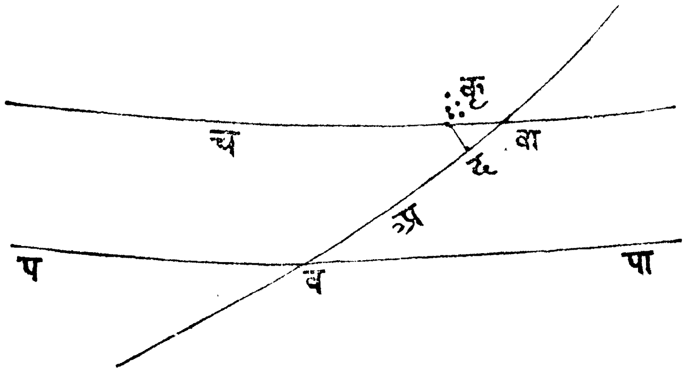
२–एकं द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा

ब्राह्मणमें लिखा है कि कृत्तिकाएं ठीक पूर्व दिशामें उदय होती हैं और अन्य तारे पूर्व दिशासे हटकर उदय होते हैं। जिससे स्पष्ट है कि उस समय कृत्तिकाएं ठीक विषुवद्वृत्त पर थीं। आजकल यह प्रयागमें कोई २७° उत्तर उदय होती हैं। इससे यह गणनाकी जा सकती है कि जिस समय कृत्तिकाएं विषुवद्वृत्त पर थीं उस समय बसंत सम्पात विन्दु कहां था। कृत्तिकाके योग तारा (n–Tauri) का भोग ३६°६′ और शर प्रत्यक्ष बेध[२] से ४°२′ होता है। यदि क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण (परम अपक्रम) २४° मान लिया जाय तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मणकालमें कृत्तिकाका भोग बसंत सम्पातसे क्या था। चित्र ५१ में व आजकलका वसंत सम्पात विन्दु और प व पा विषुवद्वृत्त है। और वा शतपथ-ब्राह्मण कालका बसंत सम्पात विन्दु तथा च कृ वा विषुवद्वृत्त है। क कृत्तिका तारापुंज है जो विषुवद्वृत्त पर दिखलाया गया है। कृद कृत्तिकाका कदम्बाभिमुख शर है जो ४°२′ माना गया है। द वा कृत्तिकाका शतपथ ब्राह्मण कालका ऋणात्मक भोग है, अ अश्विनीका आदि विन्दु तथा अ द कृत्तिकाका भोग है जो ३६°६′ माना गया है। अ व अयनांश है जो १६८२ वि० के मेष संक्रान्तिके दिन २२°४१′ के लगभग है।

यत्कृत्तिकास्तद् भूमानमेवैतदुपैति तस्मात्कृत्तिका स्वादधीत ॥२॥ एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवंते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवंते तत्प्राच्यामेवास्यैतद्दिश्याहितौ भवतस्तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ ३ ॥ शतपथ ब्राह्मण २.१.२. [भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ १२७ में उद्धृत]

२–भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५५।

गोलीय समकोण त्रिभुज कृवाद में नेपियरके नियमके अनुसार,



चित्र ५१

ज्या (दवा) = स्पर्श रेखा (कृद) × स्पर्श रेखा (९०° − <कृवाद)

= स्पर्श रेखा ४°२′ × स्पर्श रेखा (९०° − २४°)

= ·०७०५ × २·२४६०

= ·१५८३

∴ दवा = ९°६′

∴ कृत्तिकाका भोगांश शतपथ-ब्राह्मण कालमें बसंत सम्पातसे ९°६′ पच्छिम था।

∴ ववा = वअ + अद + दवा = २२°४१′ + ३६°९′ + ९°६′

= ६७°५६′

इसलिए यह सिद्ध है कि बसंत सम्पात बिन्दु शतपथ ब्राह्मणके समय जहां था उससे इस समय ६७° ५६′ पच्छिम

है। परन्तु सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार वसंत सम्पात बिन्दुओंका महत्तम अंतर ५४° से अधिक नहीं होना चाहिये। इसलिए यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्तका यह मत कि वसंत सम्पात बिन्दु मध्यम स्थानसे २७° पूर्व और पच्छिम जाता है ठीक नहीं है।

इस संबंधमें केई[१] महाशय कहते हैं कि कृत्तिकासे कृत्तिका तारापुंज (Pleiades) को नहीं समझना चाहिये वरन् वसंत सम्पातको समझना चाहिये जैसे आजकल युरापीय विद्वान मायनमेष (First point if Aries) को समझते हैं। ऐसा माननेसे शतपथ ब्राह्मण काल उतना प्राचीन नहीं ठहरता जितना पूर्वोक्त गणना से ठहरता है। पूर्वोक्त गणनासे शतपथ ब्राह्मणका समय आज से कोई ४८६७ वर्ष पूर्व अथवा विक्रमसे २८८५ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है जो केई महाशयको असम्भव जान पड़ता है। परन्तु मेरी समझमें केई महाशय भ्रममें हैं। पूर्वोक्त अवतरणमें जहाँ कृत्तिका शब्द आया है वहां इसका प्रयोग बहुवचनमें जिससे प्रकट है कि कृत्तिका का अर्थ कृत्तिका तारापुंज है जिसमें कोरी आँख से ६ तारे देख पड़ते हैं। यदि इसका अर्थ वसंत सम्पात बिंदु होता तो बहुवचनमें प्रयोग कदापि न होता। इसके सिवा यह विचार करनेकी बात है कि जब कृत्तिका उसी नाम के तारा पुंजको न समझकर वसंत सम्पात बिंदुको समझा जाय तो

१—Memoirs of Archaeological Survey of India No. 18. Hindu Astronomy by G. R. Kaye pp. 23-24.

क्या इस विंदुको देखकर पूर्व दिशाका ज्ञान हो सकता है? क्या आजकल सायनमेषको देखकर पूर्व दिशाका ज्ञान हो सकता है अथवा अग्रहायन पुंजके इल्वकके प्रथम तारे (δ orionis) से जो आजकल प्रायः विषुववृत्तपर है? इस विषय को बहुत न बढ़ाकर अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि आजकलके भौतिक ज्योतिष शास्त्र (physical astronomy) के अनुसार अयन चलन या बसंत सम्पातको पीछे खसकनेका क्या कारण है, जिससे यह भी सिद्ध हो जायगा कि इसका पूर्ण भगण होता है न कि लोलककी तरह आंदोलन।

प्रत्यक्ष वेध से क्या परिणाम निकलता है?

यदि किसी तारे के किसी समय के विषुवांश और क्रांति की तुलना उसी तारेके अन्य समयके विषुवांश और क्रान्ति से की जाय तो देख पड़ता है कि इनमें बहुत अन्तर होता जाता है। उदाहरणके लिए ध्रुव तारे[१] (polaris) के विषुवांश[२] और क्रांति यह हैं :—

१८५० ई० की पहली जनवरी को { विषुवांश १ घं० ५ मि० २३ से०
क्रान्ति + ८८° ३०′ ४६″

१—Balls spherical astronomy pp. 171. साधारणतः लोग समझते हैं कि ध्रुव तारा एक ही जगह देख पड़ता है और इसी की परिक्रमा अन्य तारे करते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। ध्रुवतारा भी आकाशीय ध्रुवकी जो अदृश्य है परिक्रमा करता है और उसके बहुत पास है इसलिए कुछ भेद नहीं जान पड़ता।

२—देखो चित्र ४० और इसका वर्णन।

१६०० ई० की पहली जनवरी को	विषुवांश १ घंटा २३ मिनट ० सेकंड क्रान्ति + ८८° ४६′ ४३″

यह कहा जा सकता है कि विषुवांश और क्रांतिके परिवर्तनका कारण यह है कि तारा स्वयं चलता है। दूसरा अनुमान यह हो सकता है कि विषुवांश और क्रान्ति जिन भुजयुग्मों (axes of coordinates) से निश्चय किये जाते हैं उन्हींमें परिवर्तन होता होगा।

५० वर्षमें ध्रुवतारेकी क्रांति १६′ ४″ अधिक हुई जिससे स्पष्ट होता है कि ध्रुवतारेसे ध्रुव का अंतर प्रायः १९″ प्रतिवर्ष कम हो रहा है अर्थात् या तो ध्रुवतारा ध्रुवकी ओर जा रहा है या ध्रुव ध्रुव-तारेकी ओर जा रहा है। जब अन्य तारोंसे ध्रुवताराके अंतरोंकी तुलना की जाती है तो देख पड़ता है कि इनमें परस्पर इतनी भिन्नता नहीं हो रही है जितनी ध्रुव और ध्रुवतारेमें हो रही है। ध्रुवतारेमें जो स्वयं गति (proper motion) है वह इतनी सूक्ष्म है कि इस से १९″ प्रति वर्षका अंतर नहीं पड़ सकता। यह भी देखा गया है कि ५० वर्षोंमें ध्रुवसे अन्य तारोंका भी अंतर बहुत कम पड़ गया है परन्तु उनका परस्पर अन्तर प्रायः जैसेका तैसा ही है। इन सब बातोंसे यही परिणाम निकलता है कि ध्रुव और ध्रुवतारेके बीचका अन्तर ध्रुवतारेकी गतिके कारण नहीं कम हो रहा है वरन् आकाशीय ध्रुवकी गतिके कारण कम हो रहा है।

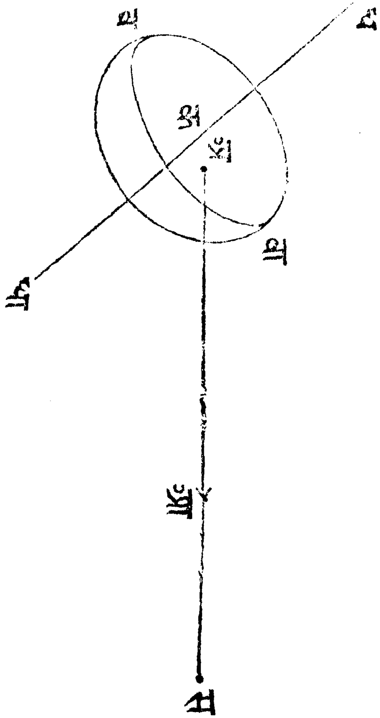
यदि ध्रुव अपना स्थान सदैव बदलता रहता है तो यह भी आवश्यक है कि विषवद्वृत्त भी जो ध्रुवसे सदैव ९० अंश दूर रहता है अपना स्थान निरंतर बदला करे। पर विषुवद्-

वृत्तके चलते रहने पर भी क्रान्तिवृत्तसे उसका जो मध्यम झुकाव है वह सदैव प्रायः एक सा रहता है। यह झुकाव मध्यम मानसे केवल कुछ कलाएं इधर उधर आंदोलन करता है। सूर्य की परम क्रान्ति १८५० ई० में जितनी थी प्रायः उतनी ही १९०० ई० में थी इसलिए विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्तके बीचका कोण प्रायः स्थिर रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विषुवद्वृत्त इस प्रकार चलता है कि यह क्रान्ति-वृत्तको सदैव समान कोण पर काटता है और विषुव सम्पात विन्दु (वसंत या शरद् सम्पात विन्दु) पृथ्वीकी गतिकी विलोम दिशामें भ्रमण कर रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) स्थिर है और आकशीय ध्रुव (विषुवद्वृत्तीय ध्रुव) उसके चारों ओर सदैव समान दूरी पर रहता हुआ परिक्रमा कर रहा है। इसी गतिको विषुव सम्पात विन्दुका चलन (Precession of equinoxes) या अयन चलन कहते हैं। यह गति विशेषकर सूर्य और चंद्रमाके आकर्षणके कारण होती है इसलिए इसको चांद्र-सौर अयन चलन (luni-solar precession) कहते हैं।

चांद्र-सौर अयन चलनका कारण

ऊपर सिद्ध हो चुका है कि जिस अक्ष पर पृथ्वी २४ घंटेमें एक बार घूम जाती है उसकी दिशामें जो परिवर्तन होता है उसीसे विषुव सम्पात विन्दु चल रहा है। पृथ्वीकी अक्षकी दिशामें जो विचलन हो रहा है उसका कारण यह है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् ध्रुवों पर कुछ चपटी और विषुवत् रेखा पर कुछ उभड़ी हुई है इसलिए सूर्य और चंद्रमाका लब्ध (resultant) आकर्षण इसके केन्द्रसे होकर नहीं

जाता है। चित्र ५२ में स को सूर्य, क को पृथ्वीका केन्द्र ध धा को पृथ्वीका अक्ष जो आकाश तक बढ़ा दिया गया है, व वा



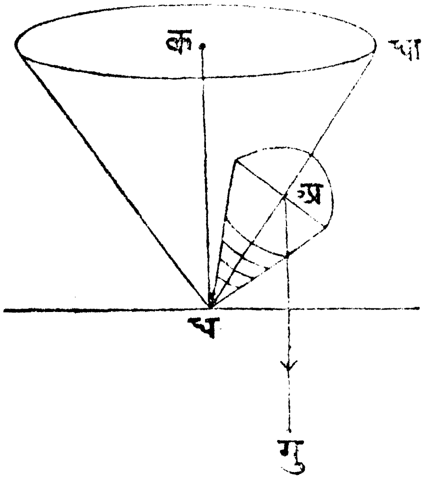
चित्र ५२

को विषुवत रेखा, अ को वह विन्दु जहां सूर्यका आकर्षण काम कर रहा है तथा अ आ को सूर्यके आकर्षणकी दिशा समझो। यदि पृथ्वी पूर्ण गोल होती तो अ और क एक ही

बिन्दु पर होते जिससे व वा विषुवत् रेखाका तल सूर्यकी ओर न झुकता। चित्रसे यह भी प्रकट है कि निरक्षदेशीय मेखलाका आधा भाग जो वा की ओर है सूर्यके निकट है और दूसरा आधा भाग जो व की ओर है सूर्यसे दूर है। इसलिए सूर्य का आकर्षण व भागकी ओर कम होगा जिसका परिणाम यह होता है निरक्षदेशीय तल सूर्यकी ओर कुछ झुक जाता है जिससे पृथ्वीका अक्ष ध धा कुछ डगमगा जाता है। इससे यह भी जान पड़ता है कि विषुवद्वृत्तका तल झुकते झुकते क्रान्तिवृत्तके तलसे जिसपर सूर्य रहता है अंतमें मिल जायगा और पृथ्वी-का अक्ष क्रान्तिवृत्तसे समकोण बनाने लगेगा तथा ध्रुव और कदम्ब एक हो जायंगे। परन्तु बात ऐसी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी बहुत तीव्र गतिसे अपने अक्ष पर घूम रही है जिससे विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके तलोंके बीचका कोण सदैव प्रायः एकसा बना रहेगा और ध्रुव कदम्बके चारों ओर एक वृत्त पर परिक्रमा करता रहेगा।

ठीक ऐसी ही बात लट्टू या फिरकीके घूमनेमें भी होती है। जिस समय लट्टू तीव्र गतिसे घूमता रहता है उस समय उसका अक्ष उसके भार या गुरुत्वके प्रभावसे लम्ब-रेखासे कुछ झुका अवश्य रहता है परंतु गतिकी तीव्रताके कारण वह पृथ्वीके धरातलसे मिल नहीं जाता। हां, जिस समय गति बहुत मंद हो जाती है उसी समय लट्टू पृथ्वी पर लग जाता है। चित्र ५३ में अ लट्टू का गुरुत्वकेंद्र (Centre of gravity) है जिसपर लट्टूका गुरुत्व अथवा पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण अ गु रेखाकी सीधमें काम कर रहा है, भ भा लट्टूके अक्षकी रेखा है जिसका एक सिरा भ भूतल पर लगा हुआ घूम रहा है और

दूसरा सिरा था एक लम्ब रेखासे कुछ हटा हुआ इसीकी परिक्रमा कर रहा है। जबतक लट्टूकी गति तीव्र रहती है तबतक यह इसी भाँति भूतलकी ओर प्रायः एक सा झुका



चित्र ५३

हुआ क ध लम्बकी परिक्रमा करता रहता है। क ध रेखा के चारों ओर एक परिक्रमा जितने समयमें होती है उतने समयमें लट्टू ध धा अक्षपर नहीं मालुम कितनी बार घूम जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटेमें एक बार घूमती हुई क्रान्तिवृत्तीय अक्षकी, जिसकी तुलना ध क लम्ब रेखासे हो सकती है, काई २५००० वर्षमें एक परिक्रमा कर लेती है

जिसके कारण वसंत-सम्पात प्रति सायन* वर्ष ५०'३ विकलाके लगभग विलोम दिशामें खसकता जाता है। चित्र ५२ और ५३में समानता दिखलानेके लिए कई अक्षर एकसे हैं। चित्र ५२में पृथ्वी लट्टूकी तरह है, अ इसका सौराकर्षण केन्द्र है, ध धा लट्टूका अक्ष है और यदि क से स अ के समानान्तर रेखा खींची जाय तो यह ध क के समान होगी।

जो कुछ सूर्यके सम्बन्धमें कहा गया है वही चंद्रमाके लिए भी लागू होता है। चंद्रमाका प्रभाव सूर्यके प्रभावके दूनेसे कुछ अधिक होता है क्योंकि चंद्रमा पृथ्वीके बहुत पास है।

सूर्य और चंद्रमामेंसे प्रत्येकका प्रभाव उस समय सबसे अधिक होता है जिस समय इनकी उत्तर या दक्षिण क्रांति सबसे अधिक होती है। जिस समय यह विषुवद्वृत्तपर होते हैं

---

*वसंत सम्पात विन्दुसे चलकर जितने समयमें सूर्य फिर वसंत सम्पात विन्दु पर आ जाता है उतने समयको सायन वर्ष (tropical year) कहते हैं। यह ३६५·२४२२१६ मध्यम सावन दिनके समान होता है।

क्रान्तिवृत्तके एक विन्दुसे चलकर जितने समयमें सूर्य फिर उसी विन्दुपर आ जाता है उसे नाक्षत्र सौर वर्ष (Sidereal year) कहते हैं। यह ३६५·२५६३७४ मध्यम सावन दिनके समान होता है। यही रवि या पृथ्वीका शुद्ध भगणकाल भी कहलाता है। (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ ३१)

सूर्य सिद्धान्तके अनुसार रविका जो भगणकाल है वही (३६५.२५-८७५६ मध्यम सावन दिन) सौर वर्ष हमारे यहां माना जाता है। (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ ३१)

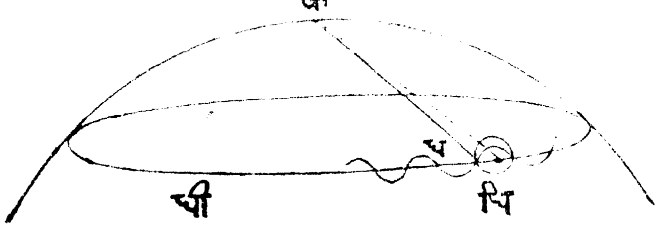
उस समय इनका प्रभाव शून्य होता है। परन्तु ग्रहोंका उलटा प्रभाव भी वसंत संपातकी गति पर पड़ता है। ग्रह सम्बन्धी विचलन का परिमाण प्रति वर्ष ०·११ विकला पूर्वकी ओर होता है। ग्रहोंके कारण वसंत सम्पातमें ही विचलन नहीं होता वरन् पृथ्वीकी कक्षा भी विचलित होती है जिससे क्रान्ति-वृत्तका तल डगमगा जाता है तथा क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण (परम अपक्रम) प्रतिवर्ष आधा विकलाके लगभग कम होता जा रहा है। परन्तु यह कमी एक सीमाके भीतर ही, अर्थात् मध्यम स्थानसे १½ अंश कम या अधिक होती है।

अभीतक बतलाया गया है कि सौरचान्द्र अयनचलनके कारण आकाशीय ध्रुव कदम्बकी परिक्रमा एक वृत्तपर कर रहा है। परन्तु यह कुछ स्थूल है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा सदैव क्रान्तिवृत्त पर नहीं रहता वरन् इससे ५ अंशके लगभग उत्तर या दक्खिन हो जाता है तथा इसका पात (राहु) प्रायः १८ वर्षमें एक परिक्रमा कर लेता है। अयन चलनके कारण जिस प्रकार आकाशीय ध्रुव क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवकी परिक्रमा २३° २७′ व्यासार्द्धके वृत्तपर करता है उसी प्रकार राहुकी विलोम गतिके कारण चन्द्रकक्षाका ध्रुव भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवकी परिक्रमा ५° व्यासार्द्धके वृत्तपर करता है और इस चन्द्रकक्षाके ध्रुवकी परिक्रमा आकाशीय ध्रुव अयन चलनके उस भागके कारण करता है जो चंद्रमाके प्रभावसे होता है।

इन दोनों कारणोंसे आकाशीय ध्रुव कभी मध्यम स्थानसे कुछ आगे रहता है और कभी पीछे तथा कदम्बसे इसकी दूरी

कभी कुछ कम हो जाती है और कभी कुछ अधिक। इसलिए आकाशीय ध्रुवका यथार्थ मार्ग तरंगाकार होता है। इस परिवर्तनका चक्र प्रायः १८ वर्षका होता है जितने में राहुका एक चक्र होता है। चन्द्रमाके कारण आकाशीय ध्रुवके स्थानमें जो यह तनिक सा परिवर्तन होता है उसे अक्षविचलन (nutation) कहते हैं।

अक्षविचलनका परिणाम यह होता है कि वसंत सम्पात विन्दु अपने मध्यम स्थानसे जो सौरचान्द्र, और ग्रहसंबन्धी अयनचलनसे निश्चय किया जाता है कभी आगे रहता है और कभी पीछे। इसके कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका झुकाव (परमापक्रम) भी अपने मध्यममानसे कभी कुछ कम आर कभी कुछ अधिक होता है।



चित्र ५४

अक्षविचलन का आविष्कार ब्रेडली नामक ज्योतिषीने १७८४ विक्रमीयसे १७९८ विक्रमीय की (१७२७-१७४१ ईस्वी) अवधिमें, अजगरके 'ग' तारे (γ Draconis) के निरंतर वेधसे किया था। अक्षविचलनका स्पष्ट ज्ञान चित्र ५४ से होता है।

मान लो धिधी एक छोटा वृत्त है जिसे मध्यम ध्रुव कदम्बकी परिक्रमा करता हुआ बना रहा है। धि को केन्द्र मानकर एक दीर्घवृत्त खीचो जिसका दीर्घ अक्ष कदम्बकी सीधमें हो और १८".५ बड़ा हो और लघु अक्ष उसी छोटे वृत्तपर १३".७ बड़ा हो। ज्यों ज्यों मध्यम ध्रुव धि छोटे वृत्त पर दीर्घवृत्तको अपने साथ लेता हुआ समान गतिसे विलोम दिशा में चलता है त्यों त्यों यथार्थ ध्रुव ध दीर्घवृत्तकी परिधिपर ६७९८ दिनमें (राहुके भगण-कालमें) एक परिक्रमा करता जाता है।

धिक कदम्बसे ध्रुवका मध्यम अंतर और धक स्पष्ट अंतर है। जिस समय ध दीर्घ अक्षपर रहता है उस समय वसंत सम्पात विन्दुके मध्यम और स्पष्ट स्थान एक होते हैं अन्यथा वसंत सम्पात विन्दुका स्पष्ट स्थान मध्यम स्थान से कुछ आगे या पीछे होता है। इसी प्रकार जब ध लघु अक्षपर रहता है तब कदम्बसे ध्रुवके मध्यम और स्पष्ट अन्तर अथवा मध्यम और स्पष्ट झुकाव (क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण) एक होता है अन्यथा कुछ कम या अधिक।

अयन चलन और परमापक्रमकी वार्षिक गति स्थिर नहीं होती वरन् इनमें कुछ सूक्ष्म परिवर्तन होता रहता है। एक सायन वर्षमें इनके जो मान होते हैं वह नीचे लिखे सूत्रोंसे जो भौतिक ज्योतिर्विज्ञान तथा उच्च गणितके आधार पर स्थापित किये गये हैं प्रकट होते हैं:—

१९०० ईस्वीसे 'व' वर्ष उपरान्त,

सायन वार्षिक मध्यम अयनचलन (वसंत संपात चलन)

= ५०″·२५६४ + ०″·०००२२२५ व*.........(१)

तथा विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके बीचका कोण (यदि अन्य छोटे पदोंको छोड़ दिया जाय)

= २३°२७′८″·२६ − ०″·४६८ व*.........(२)

अक्ष विचलन के कारण वसंत सम्पात विन्दुके मध्यम स्थानमें जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

− १७″·२३५ ज्या (सायन राहु) − १″·२७ ज्या
(२ सायन सूर्य)*.........(३)

तथा क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचके कोणके मध्यम मानमें जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

+ ६″·२१ कोटिज्या (सायन राहु) + ०″·५५ कोटिज्या
(२ सायन सूर्य)*.........(४)

इष्ट कालमें राहुका जो सायन भोगांश होता है अर्थात् विषुव सम्पात विन्दुसे क्रान्तिवृत्तपर राहु जितना दूर होता है वही सायन राहु तथा सूर्यका जो सायन भोगांश होता है वह सायन सूर्य कहा गया है।

इस अयन चलनके कारण वसंत संपात विंदुसे प्रत्येक तारेका अंतर सदैव बढ़ रहा है जिससे तारेका सायन भोगांश बढ़ता जाता है। यदि वर्षके आरंभका तारेका भोगांश दिया हुआ हो तो किसी अन्य समयका भोगांश इस सूत्र † से जाना जाता है—

---

* R.S. Ball' Spherical Astronomy pp. 177, 186-187

† इस सूत्रका निश्चय ज्योतिषियोंके एक सम्मेलनमें जो पेरिसमें

ता = त + ५०″·२६ व − १७″·२३५ ज्या सायनराहु − १″·२७ ज्या २सायनसूर्य........(५)

जहां

त = वर्षके आरंभमें तारेका मध्यम सायन भोगांश,

व = वर्षके आरंभसे इष्टकालका अंतर (वर्षके दशमलव भिन्न में)

इस सूत्रके दाहिने पक्षका दूसरा पद ५०″·२६व मुख्य है क्योंकि व जितना ही बड़ा होता जायगा उतना ही अधिक तारेका भोगांश होगा।

तीसरे पदमें सायन राहु आया है जो यदि शून्य या १८०° हो तो ज्या सायनराहु शून्य होगा। इस समय तीसरा पद बिल्कुल लुप्त हो जायगा, अर्थात् जब सायनराहुका भोगांश शून्य या १८०° हो तो तीसरा पद उड़ जायगा। और जब सायन राहु ९०° होगा तो तीसरे पदका मान − १७″·२३५ तथा जब सायन राहु २७०° होगा तब तीसरे पद का मान + १७″·२३५ होगा। इसके कारण राहुके एक भ्रमण कालमें वसंत सम्पात बिन्दुका स्पष्ट स्थान ९ वर्षके लगभग मध्यम स्थानसे पूर्व और ९ वर्षके लगभग मध्यम स्थानसे पच्छिम रहता है।

सूर्यके कारण भी जो तनिक सा अक्षविचलन होता है वह चौथे पदसे सूचित किया गया है। इसका चक्र ६ महीनेमें बदलता है क्योंकि जिस समय सूर्यका सायन भोगांश शून्य,

हुआ था सन् १८९६ ई० के मई मासमें किया गया था (देखो R.S. Balls' Spherical Astronomy pp. 186·.)

९०°,१८०°, २७०° और ३६०° होगा उस समय चौथे पदका मान शून्य होगा और जिस समय सूर्यका भोगांश ४५°, १३५°, २२५°,३१५° होगा उस समय इसके मान क्रमानुसार —१″·२७, +१″·२७,—१″·२७ और +१″·२७ होंगे।

इसी प्रकार परमापक्रममें भी अक्ष विचलनके कारण परिवर्तन होता रहता है। अब इन सूत्रोंसे अयनांश जाननेकी रीतिका उदाहरण दिया जाता है:—

समीकरण (१) में वसंत सम्पातकी वार्षिक गतिका सूत्र दिया हुआ है।

परन्तु यह वर्ष सायन है और हमारा वर्ष जो सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार माना जाता है इससे बड़ा है। इसलिये पहले त्रैराशिकसे यह जानना चाहिये कि हमारे एक वर्षमें अयनकी गति क्या होती है अर्थात् जब ३६५·२४२२१६ दिनमें अयन गति ५०″·२५६४+०″·०००२२२५ व होती है तब ३६५·२५८७५६५ दिनमें क्या होगी। सरल करने पर १९०० ई० की जनवरीके आरम्भ कालमें सूत्र का रूप यह होता है

५०″·२५८६७६+·०००२२२५१ व*·········(६)

और १९२२ ई० की जनवरीके आरम्भ कालमें वार्षिक अयन गतिका सूत्र उपर्युक्त सूत्रमें 'व' की जगह २२ रखकर सरल करनेसे यह आता है—

---

* यदि शुद्ध नाक्षत्र वर्ष लिया जाय जो ३६५·२५६३७४४ दिनका होता है तो एक शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमें अयन गति ५०·″२५८३५१+·०००२-२२५१ व होती है।

५०′′·२६३५७१ + ·०००२२२५१ व†·········(७)

जनवरीके आरम्भसे मेष संक्रान्ति कालतक प्रायः १०२ दिन या ·२७९३ वर्ष होते हैं इसलिए यदि सूत्र (७) में व की जगह ·२७९३ रख कर सरल किया जाय तो १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में अयनकी वार्षिक गति

५०·′′२६३६३३+·०००२२२५१ व·········(८) होगी जब कि व का मान हमारे सिद्धान्तीय वर्षके अनुसार लिया जाय। इस सूत्रसे यह बात जानी जाती है कि वसंत सम्पात विन्दु प्रति वर्ष (हमारे सिद्धान्तके अनुसार) क्रान्तिवृत्तके किसी विन्दुसे कितना पीछे हट जाता है। परन्तु हमारा सिद्धान्तीय वर्ष शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षसे ·००२३८२०६७* दिन बड़ा है इसलिये इतने समयमें हमारे मेष संक्रान्तिका विन्दु प्रति वर्ष कुछ आगे बढ़ जाता है। इसका परिमाण जाननेकेलिए मेष संक्रान्ति कालमें सूर्यकी जो स्पष्ट दैनिक गति होती है उससे उपर्युक्त अन्तरको गुणा करना चाहिये।

१९२२ ई० के 'नाटिकल अलमनकसे मेष संक्रान्ति कालके आगे और पीछेके सूर्यके भोगांशोका अन्तर ५८′४६′′·२

---

† शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षके अनुसार १९२२ की जनवरी के आरम्भमें वार्षिक अयन गति
५०′′·२६३२४६ + ०′′·००० २२२५१ व और १९२२ की मेष संक्रान्ति जो १९७९ विक्रमी की मेष संक्रान्ति है इसका रूप ५०′′·२६३३०८ + ०′′·००० २२२५१ व होगा।

* ३६५·२५८७५६४८४ मेंसे ३६५·२५६३६०४१७ घटानेपर यह आता है

... है। इसलिए इस दिन सूर्य्य की स्पष्ट दैनिक गति ५८'४६". २ होती है। इसको उपर्युक्त अन्तरसे गुणा करनेपर ८"·३९९६ सूर्यकी गति होती है। इसलिए यह समझना चाहिये कि हमारे वर्षके कुछ बड़ा होनेके कारण अयनांशमें प्रति वर्ष ८"·३९९६ की वृद्धि होती है। इसको सूत्र (८) में सम्मिलित करनेसे संक्रान्ति कालमें वार्षिक अयन गतिका सूत्र यह होगा—

५०".२६३६३३ + ·०००२२२५१ व + ८"·३९९६···

अथवा ५८"·६६३२३३ + ·०००२२२५१ व···(९)

यदि यह जानना हो कि 'व' वर्षमें अयनांशकी वृद्धि क्या होगी तो यह सूत्र काममें लाना होगा—

$$५८''·६६३२३३\ व + ·०००२२२५१ \left\{\frac{व(व+१)}{२}\right\} †$$

$$अथवा\ ५८''·६६३२३३\ व + ·०००१११२५५\ व + ·०००१११२५५\ व^२$$

$$या\ \ ५८·६६३३४४२५५\ व + ·०००१११२५५\ व^२\ \ या\ संक्षेपमें$$

$$५८·६६३३४४\ व + ·०००१११२५५\ व^२\ ....(१०)$$

इससे अयनांशकी जो वृद्धि आवे उसमें अक्ष विचलनका संस्कार सूत्र (३) के अनुसार करना चाहिए।

---

† सूत्र (९) के दूसरे पद में जो व है उसकी जगह क्रमानुसार १, २, ३,···व तक उत्थापन करके सबको जोड़नेसे ·०००२२२५१ ×
$\left\{\frac{व(व+१)}{२}\right\}$ आता है। यह श्रेढी व्यवहार (Arithmetical progression) की संख्याओंके जोड़ने की तरह है।

अब यह देखना है कि १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति कालमें अयनांश कितना था। इसके लिए केवल यह जानना पर्याप्त है कि मेष संक्रान्ति काल में सूर्यका वेध-सिद्ध सायन भोगांश क्या है जिसके जाननेका आदेश अगले ११ वें तथा १७-१८ श्लोकों में है।

इसी अध्यायमें आगे यह बतलाया जायगा कि शंकुकी छाया नापकर सूर्यका सायन भोग कैसे जाना जा सकता है और उससे अयनांश कैसे जाना जा सकता है। आजकल यह काम दूरदर्शक यंत्रोंसे बहुत सूक्ष्मता पूर्वक हो सकता है। जिस समय मेष संक्रान्ति होती है उसी समयका सूर्यका सायन भोग जान लिया जाय तो यही अयनांश होता है। परन्तु दूर-दर्शक यंत्रोंके अभावमें यही बात नाविक पंचांग (Nautical almanac) से भी जानी जा सकती है। इसलिए इसीसे १९७९ विक्रमीय अथवा १९२२ ई० की मेष संक्रान्ति कालका सूर्यका सायन भोग निकाला जाता है। १९७९ विक्रमीयकी मेष संक्रान्ति सूर्य सिद्धान्तके अनुसार १३ अप्रैल गुरुवारको उज्जैनके मध्यम ६ बजे प्रातःकालके उपरांत १८ घड़ी ४७ पल १२ विपल पर हुई। काशी उज्जैनसे ७२ पल ५० विपल† पूर्व है। इस लिए काशीमें मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजेके उपरांत २० घड़ी ० पल और २ विपल पर होगी। परन्तु काशी ग्रीनि-

† काशीका देशान्तर (ग्रीनिचसे) ८३°३′४″ पूर्व और उज्जैनका ७५°४६′६″ पूर्व है। इन दोनोंका अंतर ७°१६′५८″ हुआ जो ७२पल ५० विपलके समान होता है। इस लिए यही उज्जैनसे काशीका देशान्तर हुआ।

८३°३'४" अथवा १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल पूर्व है। इसलिए जिस समय काशीमें मेष संक्रान्ति हुई उस समय ग्रीनिचमें मध्यम ६ बजेके उपरांत ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल रहा होगा।

इस वर्ष १२ अप्रैलके मध्यम मध्याह्न कालमें सूर्यका भोगांश* २१°४७'३१".५

और १३ ,, २२°४६'१७".७

अंतर.........५८'४६".२

इसलिए ६० घड़ीमें सूर्यकी स्पष्ट गति ५८' ४६".२ हुई।

१३ अप्रैलको ग्रीनिचका मध्याह्न काल मध्यम ६ बजेसे ६ घंटे अथवा १५ घड़ी उपरांत हुआ और मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजेसे ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल पर ही हो गयी इसलिए संक्रान्ति कालसे १५ घड़ी—६ घड़ी ९ पल ३१ विपल=८ घड़ी ५० पल २९ विपल पश्चात् १३ अप्रैलका मध्याह्न हुआ जिस समय सूर्यका भोगांश २२°४६'१७".७ था। इससे प्रकट है कि संक्रान्ति कालमें सूर्यका भोगांश इससे कम होगा। परन्तु सूर्यकी स्पष्ट गति ५८'४६".२ है इसलिए ८ घड़ी ५० पल २९ विपल में सूर्य

$$\frac{५८'४६''.२ \times ८ \text{ घड़ी } ५० \text{ पल } २९ \text{ विपल}}{६० \text{ घड़ी}}$$

अथवा ८'३९".६०९ चला होगा।

---

* Nautical almanac for 1922 pp. 40.

इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति कालमें सूर्यका अयनांश

= २२°४६′१७″·७—८′३९″·६

= २२°३७′३८″·१

बस इसीमें सूत्र १० के अनुसार जो कुछ वृद्धि आवे उसको जोड़ देनेसे किसी अन्य मेष संक्रान्ति कालका मध्यम अयनांश प्राप्त होगा। यदि अक्ष विचलनका संस्कार सूत्र (३) की सहायतासे कर दिया जाय तो संक्रान्ति कालका स्पष्ट अयनांश प्राप्त हो जायगा। यदि संक्रान्ति कालके सिवा किसी अन्य समयका अयनांश जानना हो तो संक्रान्तिसे जितने दिन बीते हों उतने दिनकी अयन गति (जब कि एक वर्षमें ५०″·२६* के लगभग अयन की गति होती है) मेष संक्रान्तिके मध्यम अयनांशमें जोड़कर अक्षविचलनका संस्कार कर दे तो उस समयका स्पष्ट अयनांश ज्ञात हो जायगा।

उदाहरण—काशीमें १९८२ वि० की कार्तिक शुक्ल ८ रविवारका अयनांश क्या होगा?

१९७९ से १९८२ तक तीन वर्ष होते हैं इसलिए तीन वर्ष में अयनांश की वृद्धि जाननेके लिए सूत्र १० में 'व' की जगह ३ लिखकर सरल करो,

५०″·२६३२४४ × ३ + ·०००१११२५५ × ३²

=१७५″·९९०७३२ + ०″·००१००१२९५

=१७५″·९९१

---

*अधिक शुद्ध जानना हो तो सूत्र (९) से उस वर्षकी अयन गति निश्चय करना चाहिए।

=२'५५''·९६

इसको २२°३७'३८''·१ में जोड़ा तो २२°४०'३४''·०६ मेष-संक्रान्ति कालका मध्यम अयनांश हुआ।

१९८१ वि० की मेष संक्रान्ति वैशाख कृष्ण ५ सोमवारको काशीके मध्यम ६ बजेके उपरांत ६ घड़ी ३४ पल ३६ विपल पर लगी। वैशाख कृष्ण ५ से कार्तिक शुक्ल ८ तक १९५ सावन दिन होते हैं जो ·५३३९ सौर वर्षके समान हुआ। इतने समय-में ५८''·६६ प्रति वर्षके हिसाबसे मध्यम अयनांश ५८''·६६ × ·५३३९ = ३१''·३२ और बढ़ेगा। इसलिए कार्तिक शुक्ल ८ को मध्यम अयनांश २२°४१'५''·४१ होगा।

अक्ष विचलन संस्कारके लिए कार्तिक शुक्ल ८ के दिन सायन राहु और सायन सूर्यका भोगांश जानना आवश्यक है। इस दिन प्रातः काल राहुका निरयन भोगांश ३रा७°१३'८'' है। सायन भोगांश जाननेके लिए २२°४१'५'' जोड़ दो तो हुआ ३रा२९°५४'१३'' अथवा स्थूल रूपसे ३रा २९°५४' या ११९°५४'। यही राहुका सायन भोगांश हुआ।

इसी तरह सूर्यका सायन भोगांश जानना चाहिए। कार्तिक शुक्ल ८ की मध्यरात्रिको सूर्यका निरयन भोगांश १८९°८'१०'' होगा इसलिए प्रातः काल ६ बजे इसका निरयन भोगांश १८८°२३' स्थूल रूपसे होगा। इसमें २२°४१'५'' जोड़ देने पर इसका सायन भोगांश २११°४' स्थूल रूपसे हुआ। इसलिए इस दिन सूत्र (३) के अनुसार अक्षविचलन संस्कार

=−१७''·२३५ ज्या ११९°५४'−१''·२७ ज्या २ × २११°४'

=−१७''·२३५ ज्या ६०°६'−१''·२७ ज्या (३६०° + ६२°८')

$$= -१७''\cdot२३५ \times \cdot८९६६ - १''\cdot२७ \times \cdot८८४१$$

$$= -१४''\cdot६४ - १''\cdot१२$$

$$= -१६''\cdot०६$$

इसको मध्यम अयनांश २२°४१'५''·४१ में जोड़ा तो कार्तिक शुक्ल ८के प्रातःकाल स्पष्ट अयनांश हुआ २२°४०'४६''·३५।

केतकरजी ने अपने ज्योतिर्गणितमें अयनांश जाननेकी जो सारिणी दी है उससे उपर्युक्त अयनांश ६' या ७' कम आता है। इसका पहला कारण यह है कि केतकरजी ने मेष संक्रान्तिका आरंभ उस समय माना है जिस समय चित्रा नामक तारा सूर्यसे १८०° पर रहता है जब कि आजकल सूर्य सिद्धान्तके अनुसार मेष संक्रमण कोई ७ घड़ी पहले ही हो जाता है। दूसरा कारण यह है कि केतकरजी ने शुद्ध नाक्षत्र वर्षका प्रयोग किया है और इस भाष्यमें सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार वर्ष मानकर गणना की गयी है।

वेध करके अयनांशकी परीक्षा करना—

स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते।
अन्तरांशैरथावृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके॥ ११॥

अनुवाद (११) उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवसंक्रान्तिके दिन यह बात सहज ही देखी जा सकती है कि नक्षत्र किधर चला है। यदि छायासिद्ध सूर्यके भोगांशसे (जिसकी रीति आगे १७-१८ श्लोकोंमें बतलायी गयी है) गणित सिद्ध सूर्यका भोगांश कम हो तो समझना चाहिए कि जितना इन दोनोंका अंतर है उतना ही नक्षत्र चक्र अथवा अश्विनीका

आदि विन्दु पूर्वको चला है अर्थात् वसंत सम्पात विन्दुसे पूर्व है। परन्तु यदि अधिक हो तो उतना ही नक्षत्र-चक्र पच्छिम चला हुआ समझना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—छायासे सूर्यका जो भोगांश आता है वह वसंत सम्पात विन्दुसे सूर्यका भोगांश (सायन भोगांश) है और गणितसे जो भोगांश आता है जिसकी रीति स्पष्टा-धिकारमें बतलायी गयी है वह अश्विनीके आदि विन्दुसे होता है। इसलिए इन दोनोंका अंतर यथार्थ अयनांश हुआ। इससे सिद्ध होता है कि अयनांशकी परीक्षा वेधसे भी करनी चाहिए। सूर्य सिद्धान्तकारका मत है कि अश्विनीका आदि विन्दु जो क्रान्तिवृत्तका भी आदि विन्दु समझा जाता है वसंत सम्पात विन्दुसे २७° पूर्व या २७° पच्छिमतक जा सकता है। इससे अधिक नहीं। ऐसा ही मत और भी कई प्राचीन आचार्योंका है। परन्तु कुछ आचार्य इससे भिन्न मत भी रखते हैं जिसकी चर्चा पहले की गयी है। प्राचीन वाक्योंसे* भी यह सिद्ध होता है कि वसंत सम्पात विन्दु आजकलके अश्विनी के आदि विन्दु से २७° से भी अधिक पूर्व रहा है। भौतिक ज्योतिर्विज्ञानसे जो कुछ सिद्ध होता है वह ऊपर बतलाया हो जा चुका है। परंतु इसकी सत्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण तो तब मिलेगा जब वसंत संपात विन्दु वास्तवमें अश्विनीके आदि विन्दुसे २७° से भी अधिक पच्छिम हो जायगा। सूर्य सिद्धा-न्तके अनुसार कलियुग संवत ५४०० में अथवा विक्रम संवत

---

*देखो पिछले श्लोकके विज्ञान भाष्यमें शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण तथा तत्संबंधी गणना।

२३५६ में आज से ३७४ वर्ष उपरांत २७° का अयनांश पूरा होगा। परन्तु वेधसे इसका प्रमाण इससे पहले ही मिल जायगा क्योंकि वि० १६८२ की मेष संक्राति कालमें मध्यम अयनांश २२°४०′ ३४″·०६ होगा जो २७° से केवल ४°१६′२६″ के लगभग कम है। सूत्र (१०) को इसके समान करके समीकरण बनाकर 'व' का मान निकाल लेनेसे उतने वर्षकी संख्या निकल आवेगी जितने वर्ष में अयनांशकी इतनी वृद्धि होगी। अब

$$\text{४}^\circ\text{१९}'\text{२६}'' = \text{५८}''\cdot\text{६६३३४४व} + \text{०}''\cdot\text{०००१११२५५व}^2$$

$$\text{या } \text{१५५६६}'' = \text{५८}''\cdot\text{६६३३४४व} + \text{०}''\cdot\text{०००१११२५५व}^2$$

$$\text{या } \cdot\text{०००१११२५५व}^2 + \text{५८}\cdot\text{६६३३४४व} - \text{१५५६६} = \text{०}$$

$$\therefore \text{व} = \frac{-\text{५८}\cdot\text{६६३३४४} \pm \sqrt{(\text{५८}\cdot\text{६६३३४४})^2 + \text{४} \times .\text{०००१११२५५} \times \text{१५५६६}}}{\text{२} \times \cdot\text{०००१११२५५}}$$

$$= \text{२६६ वर्षके लगभग}$$

इसलिए प्रकट है कि १९८२ + २६६=२२४८ विक्रमीयके दो चार वर्ष उपरांत ही यह सिद्ध हो जायगा कि वसंत संपात् का पूर्ण भगण होता है अथवा आंदोलन।

यदि यह बात प्रत्यक्ष हो गयी कि वसंत सम्पात बिन्दु पूर्ण भगणके कारण पीछे खसकता ही जायगा तो भारतीय पंचाग-निर्माणकी रीति तथा तिथियों और पर्वोंके निश्चय करनेकेलिए संशोधनकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ेगी। फलित ज्योतिषके लिए योगों और मुहूर्तों के निश्चय करनेके जितने नियम हैं उनमें भी महान् परिवर्तन करना होगा।

पलभा जाननेकी १ली रीति—

एवं विषुवतिच्छाया स्वदेशे या दिनार्धजा ।
दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा ॥१२॥

अनुवाद—(१२) इस प्रकार सूर्य जिस दिन विषुवद्वृत्त पर हो उस दिन मध्याह्नकाल में जिस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखापर १२ अंगुल शंकु की जितनी लम्बी छाया पड़े वही उस स्थानकी विषुवत्प्रभा या पलभा होती है ।

विज्ञानभाष्य—पलभाके सम्बन्धमें २९९-३०० पृष्ठों पर तथा इसी अध्यायके सातवें श्लोकके भाष्यमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है । ३०० वें पृष्ठमें यह बतलाया गया है कि किसी स्थानके अक्षांशकी स्पर्शरेखा उस स्थानकी पलभाको शंकुसे भाग देने पर आती है । इसलिए यहां यह बतला देना आवश्यक है कि इस श्लोकके अनुसार पलभाका जो मान जाना जाता है वह स्थूल है । क्योंकि सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति (विषुव संक्रान्ति) के दिन, जिस दिन मध्याह्नकाल में शंकुकी छाया नापकर पलभा जानी जाती है मध्याह्नकाल में सूर्य ठीक विषुवद्वृत्तपर नहीं होता वरन् कुछ आगे या पीछे होता है । मध्याह्नकालमें ठीक विषुवद्वृत्तपर सूर्यके आनेका संयोग कई वर्षके बाद आता है । इस दिन सूर्यकी क्रान्ति प्रत्येक घंटेमें प्रायः एक कलाके हिसाबसे बदलती है । इसलिए सायन मेष या तुला संक्रान्तिका शुद्ध काल गणनासे जानकर सूर्य की मध्याह्नकालकी क्रान्ति जान लेनी चाहिये और इसका संस्कार कर लेने के बाद शुद्ध पलभा

जाननी चाहिये । संस्कार करनेकी रीति अगले १४-१५ श्लोकोंमें बतलायी जायगी ।

अक्षांश जानने की १ली रीति—

शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते ।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा॥१३

अनुवाद—(१३) शंकु और उसकी छाया (यहां पलभा) को अलग अलग त्रिज्या अर्थात् ३४३८ से गुणा करके प्रत्येक गुणनफलको विषुवत्कर्णसे भाग दे देने पर क्रमसे लम्बज्या और अक्षज्या आ जायंगी जिनके धनु क्रमसे लम्बांश और अक्षांश होंगे । (उत्तर गोल में) ये सदा दक्षिण होते हैं ।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका सार यह है :—

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन मध्याह्नकालमें १२ अंगुल शंकु का जो छायाकर्ण होता है वही विषुवत्कर्ण, पलकर्ण या अक्षकर्ण कहलाता है । पृष्ठ २९९ के चित्र ४१ में क ग विषुवत्कर्ण है । इसलिए

$$\text{विषुवत्कर्ण} = \sqrt{\text{पलभा}^2 + \text{शंकु}^2}$$

पृष्ठ ८३ के चित्र ७ और पृष्ठ ८८ के चित्र १० में यह बतलाया गया है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश क्या है । इन चित्रों से यह भी प्रकट होता है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश दोनों मिलकर ९०° के समान होते

हैं। पृष्ठ २६६ में चित्र ४१ के सम्बन्धमें यह भी कहा गया है कि विषुवत्कर्ण और शंकुके बीचका कोण ख क ग अक्षांश है। इस लिए यह सिद्ध है कि विषुवत्कर्ण और पलभा के बीचका कोण क ग ख लम्बांश हुआ, क्योंकि < ख क ग और < क ग ख दोनों पूरक कोण हैं।

इसलिए लम्बज्या या लम्बांशकी ज्या

$$= \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ आजकलकी प्रथानुसार (दशमलव भिन्न में)

$$= \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ हमारे सिद्धान्तोंके अनुसार (कलाओंमें)

लम्बांशकी ज्याको अक्षांशकी कोटिज्या भी कहते हैं क्योंकि लम्बांश और अक्षांशका योग ९०° होता है। इसी तरह अक्षज्या या अक्षांश की ज्या

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{वषुवत्कर्ण}}$$ (दशमलव भिन्न में)

अथवा $$\frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}},$$ (कलाओं में)

[देखो पृष्ठ ८५-८७]

४२-४३ चित्रोंके सम्बन्धमें भी बतलाया गया है कि क्षितिज के उत्तर-विन्दु से ध्रुवकी ऊंचाई अक्षांशके समान होती है। इससे पाठकोंको शायद शंका हो कि अक्षांशकी कौन परिभाषा ठीक है। इसलिए यहां इस बातका निश्चय कर देना चाहिये कि अक्षांशकी यह तीनों परिभाषाएं एक ही है।

चित्र ७ और १० से स्पष्ट है कि विषुवत् रेखासे किसी स्थानका जो कोणात्मक अंतर उत्तर-दक्खिन-रेखापर होता है वही उस स्थानका अक्षांश है और ध्रुव से उत्तर दक्खिन रेखापर स्थानका कोणात्मक अंतर उसका लम्बांश है। विषुवत् रेखाके तलको यदि आकाशकी ओर बढ़ा दिया जाय तो यही विषुवन्मण्डल कहलाता है और उत्तर-दक्खिन रेखाके तल को आकाश में बढ़ा दिया जाय तो वह याम्योत्तरवृत्त कहलाता है। इसी तरह पृथ्वीके केन्द्रसे किसी स्थानको मिलानेवाली रेखा (चित्र ७ की रेखा सभ) ऊपर बढ़ानेपर आकाशके जिस विन्दुपर पहुँचती है वह उस स्थानका खस्वस्तिक कहलाता है। इस लिए यह सिद्ध है कि किसी स्थानके खस्वस्तिकसे विषुवन्मण्डलका जो अंतर याम्योत्तरवृत्तपर होता है वह भी अक्षांश है। तथा खस्वस्तिकसे आकाशीय ध्रुवका जो अन्तर याम्योत्तरवृत्त पर होता है वह लम्बांश है। इस लिए चित्र ४२,४३ के ख वि धनु श स्थान के अक्षांश तथा ख ध धनु श स्थान के लम्बांश हुए। परन्तु ध वि धनु या उ ख धनु ९० अंश के समान है। इस लिए प्रत्येकसे सामान्य धनु ध ख निकाल दिया जाय तो शेष ख वि और उ ध समान होंगे, अर्थात् खस्वस्तिकसे विषुवन्मण्डलका जो अंतर होता है वही क्षितिज के उत्तर विन्दुसे उत्तरी आकाशीय ध्रुवका अन्तर होता है। इसी तरह यह भी सिद्ध हो सकता है कि भ ख धनु द वि धनु के समान है, अर्थात् क्षितिजके दक्षिण विन्दु से विषुवन्मण्डल की जो ऊंचाई होती है वह भी लम्बांश के समान है। यह भी स्पष्ट है कि उत्तर गोलमें किसी स्थानके खस्वस्तिकसे विषुवन्मण्डल सदैव दक्षिण रहता है इस लिए ख वि

अक्षांश और वि द लम्बांश उत्तर गोल में सदा दक्षिण ही रहेंगे।

अब यह सिद्ध करना रह गया कि शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का अन्तर (देखो पृष्ठ २६६) अक्षांश के समान क्यों

उ स व द=भूतलकी उत्तरदक्षिणरेखा

उ=उत्तरी ध्रुव

द=दक्षिणी ध्रुव

स=वह स्थान जहाँ श स शंकु गड़ा है

व=विषुवत्रेखाका विन्दु

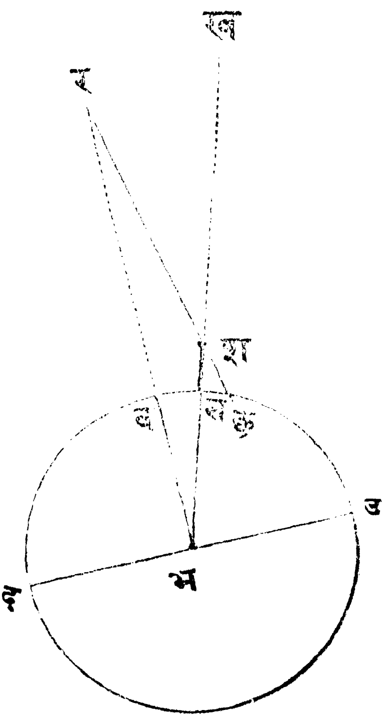
ख=स स्थानका खस्वस्तिक

र=विषुवद्वृत्तपर रविका स्थान

स छ=पलभा

श छ=विषुवत्कर्ण

भ=पृथ्वीका केन्द्र



चित्र ५५

यह ध्यान रखना चाहिए कि चित्र ५५ में पृथ्वीकी तुलनामें शंकु बहुत बड़ा दिखलाया गया है। रेखागणितसे यह स्पष्ट है कि

<स श छ=<र श ख

=<श र भ+<र भ

परंतु भूकेन्द्रसे सूर्यका अन्तर भ र प्रायः ६ करोड़ २६ लाख मील है और पृथ्वीका अर्द्धव्यास भ स अथवा भ श

(क्योंकि स श=१२ अङ्गुल) ४००० मील है। इस लिए <श र भ इतना छोटा कोण है कि यह शून्य माना जा सकता है (यथार्थ में यह कोण ६ विकला के लगभग होता है)। इस लिए

<स श छ=<र भ श

=<व भ स

=अक्षांश

अर्थात् शंकु और विषुवत्कर्णके बीचका कोण अक्षांश के समान होता है। इस लिए पलभा और विषुवत्कर्णके बीचका कोण जो पहलेका पूरक कोण होता है लम्बांशके समान हुआ।

उदाहरण—प्रयाग की पलभा ५ अङ्गुल ४१ व्यंगुल अथवा ५·६८ अङ्गुल है तो प्रयाग का अक्षांश बतलाओ।

प्रयागका विषुवत्कर्ण

$$=\sqrt{\text{शङ्कु}^2+\text{पलभा}^2}$$

$$=\sqrt{१२^2+(५·६८)^2}$$

$$=\sqrt{१४४+३२·२६}$$

$$=\sqrt{१७६·२६}$$

=१३·२८ अंगुल

∴ प्रयागकी अक्षज्या

$$=\frac{\text{पलभा}\times\text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$=\frac{५·६८\times ३४३८}{१३·२८}$$

=१४७०·५ कला

इस लिए ज्याओंकी सारिणी (पृष्ठ १७८-१७६) तथा स्पष्टाधिकारके श्लोक ३३ (पृष्ठ १६१-१६२) के अनुसार अक्षांश=२५°२१'

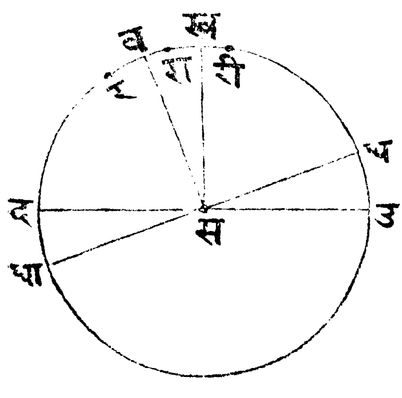
अक्षांश जाननेकी २री रीति—

मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका ।
स्वकर्णाप्ता धनुर्लिप्ता नतास्ता दक्षिणे भुजे ॥१४॥
उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्ताः सूर्यक्रान्तिलिप्तिकाः ।
दिग्भेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः ॥

अनुवाद—(१४) किसी दिनके मध्याह्नकी छायाको जिसे भुज भी कहते हैं त्रिज्यासे गुणा करके मध्याह्नके छाया-कर्णसे भाग दे दो और भागफलका धनु बनाओ तो सूर्यका मध्याह्नकालिक नतांश ज्ञात हो जायगा। यदि छाया दक्षिणकी ओर हो तो (१५) उत्तर नतांश होगा और यदि छाया उत्तर हो तो दक्षिण नतांश होगा। यदि नतांश और सूर्यकी क्रान्तिकी दिशाएँ भिन्न हों तो इन दोनोंका योग-फल और एक ही हों तो अन्तर अक्षांश होगा।

विज्ञान भाष्य—खस्वस्तिकसे आकाशके किसी विन्दु (तारा, सूर्य का केन्द्र इत्यादि) पर जाता हुआ जो वृत्त क्षितिजसे समकोणपर खींचा जाता है उसे ऊर्ध्ववृत्त (Vertical circle) कहते हैं। इस वृत्तपर उस विन्दुका खस्वस्तिकसे जो अंतर होता है उसे उस विन्दुका नतांश (zenith distance) कहते हैं और क्षितिजसे जो अंतर होता है उसे उस विन्दुका उन्नतांश (altitude) कहते हैं। सममण्डल भी एक ऊर्ध्ववृत्त है पर इसमें विशेषता यह है

कि यह क्षितिजके पूर्व पच्छिम बिन्दुओंपर होता है। याम्योत्तरवृत्त भी उत्तर दक्षिण बिन्दुओं पर ऊर्ध्ववृत्त है। इस लिए मध्याह्नकाल में जब कि सूर्य याम्योत्तरवृत्त पर रहता है, इससे खस्वस्तिकका जो अंतर होता है वह इसका मध्याह्नकालिक नतांश हुआ। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर भी हो तो यही अक्षांश के समान होगा। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर न हो तो यह या तो विषुववृत्तसे उत्तर रहेगा या दक्षिण। मध्याह्नकाल में सूर्यका विषुवद्वृत्तसे जो अंतर होता है वही सूर्य की क्रान्ति है जो सूर्यके विषुवद्वृत्तसे उत्तर या दक्षिण रहनेके अनुसार उत्तर या दक्षिण क्रान्ति कहलाती है। इसी प्रकार सूर्य खस्वस्तिकसे भी उत्तर या दक्षिण हो सकता है। यदि सूर्य खस्वस्तिकसे उत्तर हो तो छाया दक्खिनकी ओर होगी और खस्वस्तिक से सूर्य का अंतर उत्तर नतांश कहलायेगा। परन्तु यदि सूर्य खस्वस्तिक से दक्खिन हो तो छाया उत्तरकी ओर



चित्र ५६

होगी और सूर्यका नतांश दक्षिण होगा। चित्र ५६ से यह स्पष्ट है कि सूर्य के मध्याह्नकालिक नतांश और क्रान्तिसे अक्षांश कैसे जाना जा सकता है:—

उ ध ख व द याम्योत्तरवृत्त, ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव, ख खस्वस्तिक, व विषुवद्‌वृत्त और याम्योत्तरवृत्त का सामान्य बिन्दु, और र, रा, री सूर्य के तीन भिन्न भिन्न स्थान हैं। र पर सूर्य विषुवद्‌वृत्त के दक्खिन है इस लिए इस समय सूर्य की दक्षिण क्रान्ति वर है परन्तु वरा या वरी सूर्य की उत्तर क्रान्तियां हैं। इसी प्रकार खर और खरा सूर्य के दक्षिण नतांश और खरी उत्तर नतांश हैं। खव स स्थानका अक्षांश है। चित्रसे प्रकट है कि

व ख = खर—वर ……… (१)

= खरा + वरा ……… (२)

= वरी—खरी ……… (३)

समीकरण (१) में सूर्यके नतांश और क्रान्ति दोनों दक्षिण तथा समीकरण (३) में नतांश और क्रान्ति दोनों उत्तर हैं। परन्तु समीकरण (२) में नतांश दक्षिण और क्रान्ति उत्तर हैं। इससे प्रकट है कि जब नतांश और क्रान्ति दोनों की दिशाएं एक ही हों तो इनका अंतर और भिन्न हों तो योग करने से अक्षांश जाना जा सकता है। यदि न नतांश, क क्रान्ति और अ अक्षांश माने जांय तो इनका सम्बन्ध इस समीकरणसे प्रकट होगा—

$$न \pm क = अ$$

यहां धनका चिह्न उस समय लिखा जायगा जब न और क दोनोंकी दिशाएं भिन्न हों और ऋणका चिह्न उस समय जब दोनों की दिशाएं एक ही हों।

ऊपरके दोनों श्लोकों में यह बतलाया गया है कि शंकु की मध्यान्हकालीन छाया नापकर नतांश कैसे जानते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि शंकु और छायाकर्णके बीचमें जो कोण होता है वह सूर्यका नतांश है। इस लिए

$$\text{नतांशज्या} = \frac{\text{छाया} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$$ [सिद्धान्तीय रीति के अनुसार।

नतांशकी ज्यासे नतांश निकालकर इसको सूर्य की क्रान्ति में जो स्पष्टाधिकार के श्लोक २८ के अनुसार जानी जा सकती है, जोड़ने या घटाने से, जैसी आवश्यकता हो, अक्षांश निकल आता है।

उदाहरण—यदि किसी दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति १५°२५′ और इसी दिन प्रयागमें शंकुकी मध्यान्हछाया २·१२ अंगुल हो तो प्रयागका अक्षांश बतलाओ।

प्रयागका मध्यान्ह छायाकर्ण

$$= \sqrt{\text{शंकु}^2 + \text{छाया}^2}$$

$$= \sqrt{१२^2 + (२{\cdot}१२)^2}$$

$$= \sqrt{१४८{\cdot}४९}$$

$$= १२{\cdot}१९ \text{ अंगुल}$$

$$\therefore \text{नतांशज्या} = \frac{\text{छाया} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}}$$

$$= \frac{२{\cdot}१२ \times ३४३८}{१२{\cdot}१९}$$

$$= ५९८'$$

इसलिए नतांश = ९°५१′

यह नतांश दक्खिनकी ओर है और सूर्यकी क्रान्ति उत्तर है। इसलिए दोनों का योग प्रयाग का अक्षांश होगा।

इसलिए इस रीतिसे प्रयागका अक्षांश

= ९°५१' + १५°२५'

= २५°१६'

दोनों रीतियोंसे निकाले गये अक्षांशोंमें कुछ अंतर है। इसका कारण प्रत्यक्ष है। छायाकी नाप स्थूल होती है जिसका कारण पहले बतलाया जा चुका है। यदि छाया छोटी हो तो अशुद्धि और भी बढ़ जाती है।

पलभा जाननेकी २ री रीति यदि अक्षांश ज्ञात हो—

भाभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम्।
लम्बज्यार्कगुणाक्षज्या विषुवद्भाथ लम्बया ॥ १६ ॥

अनुवाद—(१६) ऊपर बतलायी गयी रीतिसे अक्षांश जानकर अक्षज्या बनाओ और अक्षज्याके वर्गको त्रिज्याके वर्गसे घटाकर शेषका वर्गमूल निकालो तो लम्बज्या निकल आवेगी। अक्षज्याको १२ से गुणा करके लम्बज्यासे भाग देने पर जो आवेगा वही पलभा होगी।

विज्ञान भाष्य—पलभा जाननेकी पहली रीति सायन मेष या तुला संक्रान्तिके दिन ही काममें लायी जाती है। दूसरी रीतिसे किसी दिनके मध्यान्हकालके सूर्यकी क्रान्ति और नतांश से अक्षांश जानकर पलभा की गणना की जा सकती है।

इस श्लोकका सार यह है:—

$$\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2} = \text{लम्बज्या}$$

और $\dfrac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}}$ = पलभा

उपपत्ति—चित्र १० पृष्ठ ८८ में सभा लम्बज्या, भभा अक्षज्या, सभ त्रिज्या और कोण सभाभ समकोण है, इसलिए यदि अक्षज्या ज्ञात हो तो,

$$\text{सभा}^{२} = \text{सभ}^{२} - \text{भभा}^{२}$$

$$\text{अथवा सभा} = \sqrt{\text{सभ}^{२} - \text{भभा}^{२}}$$

$$\therefore \text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^{२} - \text{अक्षज्या}^{२}}$$

चित्र ४१ पृष्ठ २९९में खग पलभा, कख शंकु, <खकग अक्षांश और <कगख लम्बांश है, इस लिए आजकलकी रीतिके अनुसार

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}}$$

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} \div \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ख}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{\text{१२ अंगुल}}$$

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} \text{ अंगुल} \cdots (१)$$

इस रीतिसे पलभाका मान निकालनेमें बहुत गुणा भाग करना पड़ता है। इस लिए यदि स्पर्श रेखाओंकी सारिणी बना ली जाय तो यह काम सहज ही हो सकता है क्योंकि अक्षांश और लम्बांश पूरक कोण हैं इस लिए

$$\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{अक्षांश स्पर्श रेखा, जिससे}$$

$$\text{पलभा} = १२ \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \cdots\cdots\cdots (२)$$

यही बात पृष्ठ ३०० में भी दिखलायी गयी है।

उदाहरण—प्रयागका अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयागकी पलभा क्या होगी?

(१) सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे

$$\text{अक्षज्या} = २५°२५' \text{की ज्या}$$
$$= १४७४'$$

$$\therefore \text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{अक्षज्या}^२}$$
$$= \sqrt{३४३८^२ - १४७४^२}$$
$$= \sqrt{(२४३८ + १४७४)(३४३८ - १४७४)}$$
$$= \sqrt{४९१२ \times १९६४}$$
$$= ३१०६'$$

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}}$$
$$= \frac{१४७४ \times १२}{३१०६}$$
$$= ५{\cdot}६९ \text{ अंगुल}$$

(२) नवीन रीतिसे—

पलभा=१२ × अक्षांश स्पर्शरेखा
=१२ × स्परे* २५°२५′
=१२ × ०.४७५२ अंगुल
=५·७०२४ अंगुल
=५·७ अंगुल

सूर्यकी क्रान्ति नाप कर सायन भोगांश जानना—

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्यज्या त्रिज्यया हता ॥१७॥
परमापक्रमज्यासा चापं मेषादिगो रविः ।
कर्कादौ प्रोज्झ्य चक्रार्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥१८॥
मृगादौ प्रोज्झ्य भगणान्मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥१९॥

अनुवाद—(१७) अपने स्थानका अक्षांश और मध्यान्ह कालिक सूर्यका नतांश यदि एक ही दिशाके हों तो इनका अन्तर निकाले और भिन्न भिन्न दिशा के हों तो जोड़ दे। जो कुछ आवे वही सूर्यकी मध्यान्हकालिक क्रान्ति है। इसकी ज्याको त्रिज्यासे गुणा करके (१८) सूर्यकी परमक्रान्तिज्या से भाग दे दे और लब्धिका धनु बनावे। यदि सूर्य सायन मेषादि तीन राशियोंमें हो तो यही (धनु) मध्यान्हकालिक सूर्यका स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन कर्कादि

*स्पर्श रेखा की जगह सरलता के लिए स्परे लिखा गया है जैसे कोटिज्या के लिए कोज्या लिखा जाता है।

तीन राशियों में हो तो इस धनुको ६ राशिमें घटानेसे जो कुछ आवेगा वह मध्यान्ह कालिक सूर्यका स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन तुलादि तीन राशियोंमें हो तो इस धनुको ६ राशियोंमें जोड़नेसे जो कुछ आवेगा वह मध्यान्ह कालिक सूर्यका स्फुट सायन भोगांश होगा। और यदि सूर्य सायन मकर आदि तीन राशियोंमें हो तो इस धनुको १२ राशियोंमें घटानेपर जो कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्यका सायन भोगांश होगा। इस स्फुट सायन भोगांशमें मंदफल का उलटा संस्कार कई वार करनेसे मध्यम सायन भोगांश निकलेगा।

विज्ञान भाष्य—१४-१५ श्लोकोंमें सूर्यके मध्यान्हकालिक नतांश और क्रान्तिको जोड़ या घटाकर अक्षांश जानने की रीति बतलायी गयी है। १७ वें श्लोकमें अक्षांश और नतांश जानकर क्रान्ति निकालनेकी रीति है। इसलिए यह पहली रीतिका ही दूसरा रूप है और जैसे वहां जोड़ना घटाना पड़ता है वैसे ही यहां भी। इसका कारण भी चित्र ५६ के संबंधके तीन समीकरणोंसे समझमें आ सकता है।

जोड़ने और घटानेका नियम इस समीकरणसे सरलता पूर्वक समझमें आ जायगा—

$$अ \pm न = क$$

जिसमें अ, न और क क्रमसे अक्षांश, नतांश और क्रान्ति सूचित करते हैं; धनका चिन्ह उस समय लिखा जायगा जब अक्षांश और नतांशकी दिशाएं भिन्न होंगी अन्यथा ऋण का चिन्ह प्रयोग होगा। यहां एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। यह बात साधारणतः लोग समझते हैं और।

आजकल यही प्रथा भी है कि उत्तर गोलमें अक्षांशकी दिशा उत्तर समझी जाती है परन्तु इस नियममें इस की दिशा दक्षिण समझी गयी है क्योंकि उत्तर गोलमें खस्वस्तिकसे विषुवद्वृत्तकी दिशा दक्षिण होती है।

क्रान्ति जब मालूम हो गयी तब सूर्यका भोगांश स्पष्टाधिकारके २८ वें श्लोकसे ही जाना जा सकता है क्योंकि वहां बतलाया गया है (देखो पृष्ठ १८१-१८२ चित्र २५) कि

$$\frac{\text{ज्या (ब स)} \times १३९७}{३४३८} = \text{ज्या (सप)}$$

$$\text{इसलिए ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)} \times ३४३८}{१३९७} \cdots (१)$$

जहां व स सूर्यका सायन भोगांश, स प सूर्यकी क्रान्ति, और १३९७ सूर्यकी परमक्रान्तिकी ज्या है। यही १७ वें श्लोकके अंतिम चरण और १८ वें श्लोक के पूर्वार्द्धका रूप है।

यदि आजकलकी रीतिसे ज्याका मान दशमलव भिन्नमें व्यवहार किया जाय तो और भी सरल रूप यह होगा—

$$\text{ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)}}{\text{ज्या (स व प)}} \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

अब यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि सूर्यकी परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् इसका मध्य मान इस समय २३° २७′ के लगभग है और प्रतिवर्ष आधा विकला के लगभग घटती जा रही है। इसलिए यदि आजकल सूर्यकी क्रांतिसे भोगांश जानना हो तो ∠ स व प को २३° २७′ के समान समझकर गणना करनी चाहिये।

उदाहरण—एक दिन मध्यान्ह कालमें सूर्यकी क्रान्ति १६° १७' दक्षिण है और यह सायन मकरादि राशिमें है तो इसका स्फुट सायन भोगांश बतलाओ।

$$ज्या\ (भोगांश) = \frac{ज्या\ (\ क्रान्ति\ )}{ज्या\ (परम\ क्रान्ति\ )}$$

$$= \frac{ज्या\ १६^\circ\ १७'}{ज्या\ २३^\circ\ २७'}$$

$$= \frac{\cdot २८०४}{\cdot ३९७९}$$

$$= \cdot ७०४७$$

$$\therefore\ भोगांश\ = ४४^\circ ४८'$$

सूर्य सायन मकरादिमें है इसलिए इस भोगांशको १२ राशि या ३६०° से घटाने पर जो आवेगा वह सूर्यका स्पष्ट सायन भोगांश होगा। इसलिए इस दिन सूर्यका सायन भोगांश

$$= ३६०^\circ — ४४^\circ ४८'$$

$$= ३१५^\circ\ १२'$$

पृष्ठ २६३ के चित्र ३९ को देखनेसे तथा अनुभवसे भी यह स्पष्ट है कि सूर्य जितने समयमें वसंत संपातसे दक्षिणायन विंदु तक जाता है अर्थात् सायन मेषसे तीन राशि तक जाता है उतने समयमें इसकी उत्तर क्रान्ति शून्य से २३°२७' तक बढ़ती है। जब सूर्य दक्षिणायन विंदुसे (सायन कर्कके आदिसे) शरद सम्पात तक जाता है तब इसको उत्तर क्रान्ति २३°२७' से घटते घटते शून्य हो जाती है। शरद सम्पात् अर्थात् सायन तुलासे उत्तरायण विंदु (सायन मकर

के आरंभ तक) तक सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति शून्यसे २३°२७′ बढ़ती रहती है और सायन मकरके आरम्भ से वसन्त सम्पाततक घटते घटते फिर शून्य हो जाती है।

ऊपर भोगांश निकालनेका जो नियम बतलाया गया है उससे केवल यह जाना जाता है कि वसंत या शरद् सम्पातसे सूर्य कितनी दूर है। यदि सूर्य वसंत संपात अर्थात् सायन मेषसे तीन राशियोंके बीचमें है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपातसे ही सूर्यकी दूरी है, इसलिए यही सायन भोगांश हुआ। यदि सूर्य सायन कर्कके आरम्भसे तीन राशियोंके भीतर है तो आया हुआ भोगांश शरद् सम्पातसे विलोम दिशामें सूर्यकी दूरी है। परन्तु शरद् सम्पात सायन मेषसे ६ राशि दूर है इसलिए ६ राशिमें से आया हुआ भोगांश घटाना पड़ता है तब वसंत सम्पातसे सूर्यका सायन भोगांश निकलता है। यदि सूर्य सायन तुलासे तीन राशियोंके बीचमें है तो आया हुआ भोगांश शरद सम्पातसे अनुलाम दिशामें सूर्यकी दूरी है इस लिए ६ राशिमें यह जोड़ना पड़ता है तब सूर्यका वसंत सम्पातसे सायन भोगांश निकलता है। और यदि सूर्य सायन मकरसे तीन राशियोंके बीचमें है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपातसे विलोम दिशामें सूर्यकी दूरी है। इस लिए १२ राशियोंमेंसे इस भोगांशको घटानेपर वसंत संपातसे अनुलोम दिशामें सूर्यकी दूरी (भोगांश) आती है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यकी परमक्रान्ति वर्षमें आधी विकलाके लगभग घटती जा रही है। यहां वह सूत्र दे देना अच्छा होगा जिससे किसी समय परम क्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।

१९८० विक्रमीयकी मेष संक्रान्तिके दिन मध्यम परम-क्रान्ति २३°२६'५७''·३५ है। यह प्रति वर्ष ०''·४६८ विकलाकी दरसे घटती है इसलिए मध्यम परमक्रान्तिका सूत्र =२३° २६'५७''·३५—०''·४६८ (व—१९८०)।

यहां 'व' किसी विक्रमीय संवत्‌की संख्या है।

अयनांशका विचार करते समय यह कहा गया था कि अक्ष विचलन (Nutation) के कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचके कोण अर्थात् परमक्रान्तिपर भी प्रभाव पड़ता है। इसके कारण परमक्रान्तिका स्पष्ट मान इस सूत्रके अनुसार होगा—

२३°२६'५७''·३५—०''·४६८ (व – १९८०) + ९''·२१ कोज्या (सायन राहु) + ०''·५५ कोज्या(२ सायन सूर्य)

वसंत संपात विंदुसे राहुके भोगांशको सायन राहु और सूर्यके भोगांशको सायन सूर्य कहा गया है।

इस रीतिसे सूर्यका जो स्पष्ट सायन भोगांश निकलता है उससे अयनांशका मान घटा देनेपर निरयन भोगांश अर्थात् अश्विनीके आदिसे सूर्यकी दूरी आ जाती है। यही सूर्यका स्पष्ट स्थान हुआ जिसको गणितसे जाननेकी रीति स्पष्टाधिकारमें बतलायी गयी है।

जैसे स्पष्टाधिकारमें मंदफलका संस्कार करनेपर मध्यम सूर्यसे स्पष्ट सूर्य निकलता है वैसे ही इस रीतिसे आये हुये स्पष्ट सूर्यमें मंदफलका उलटा संस्कार करनेपर मध्यम सूर्य आता है। परन्तु स्पष्टाधिकारके विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है कि मध्यम सूर्यमें केवल सिद्धान्तीय रीतिसे मंद-

फलका संस्कार देनेसे वेधसिद्ध स्पष्ट सूर्य नहीं निकलता इसलिए यह सिद्ध है कि इस अध्यायके १७—१६ श्लोकों की रीतिसे जो स्पष्ट सूर्य निकलता है उसमें सिद्धान्तीय रीतिके मंदफलका उलटा संस्कार करनेपर मध्यम सूर्य नहीं आ सकता। इसी लिये असकृत्कर्म करनेको कहा गया है अर्थात् एक बार मंदफलका उलटा संस्कार देनेसे जो मध्यम सूर्य आवे उसको ही स्पष्ट सूर्य समझ कर फिर मंद फलका संस्कार करे। इससे जो मध्यम सूर्य आवे उसमें फिर मंदफलका संस्कार करे। इस तरह कई बार करनेपर मध्यम सूर्य आ जावेगा।

मध्यान्हकालकी छाया और छाया कर्ण जानना (सूर्यकी क्रान्ति और अक्षांशसे)

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
शेषं नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा ॥२०॥
शंकुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुज त्रिज्ये यथाक्रमम्।
कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णावहर्दले ॥२१॥

अनुवाद—(२०) अपने स्थानका अक्षांश और मध्यान्ह-कालके सूर्यकी क्रान्ति यदि एक ही दिशामें हों तो जोड़ दो और भिन्न दिशामें हों तो घटा दो। जो कुछ आवेगा वही सूर्यका मध्यान्ह कालिक नतांश होगा। इसकी भुजज्या और कोटिज्या बनाओ। (२१) शंकुके अंगुलात्मक मान-को अर्थात् १२ को भुज (नतांशकी भुजज्या) से गुणा करके कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि मध्यान्ह की छाया तथा शंकु-

को त्रिज्यासे गुणा करके कोटिज्यासे भाग देनेपर मध्यान्ह-का छायाकर्ण ज्ञात होगा।

विज्ञान भाष्य—यह १४ वें श्लोकका विलोम है। इन दोनों श्लोकों का सरल रूप यह है:—

$$\text{अ} \pm \text{क} = \text{न} \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$$

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \cdots\cdots\cdots\cdots (३)$$

जहाँ अ अक्षांश, क सूर्यकी मध्यान्ह कालिक क्रान्ति और न सूर्यका मध्यान्ह कालिक नतांश है। समीकरण (१) में धनका चिन्ह उस समय लिखना चाहिये जब अक्षांश और क्रान्तिकी दिशाएं एक ही हों और ऋणका चिन्ह उस समय जब इनकी दिशाएं भिन्न हों। अक्षांशकी दिशा उत्तर गोलमें सदैव दक्खिन समझी गयी है जिसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है।

१५ वें श्लोकके भाष्यमें बतलाया जा चुका है कि शंकु और छाया कर्णके बीचके कोणको नतांश कहते हैं। इस लिये

$$\text{नतांशज्या} = \frac{\text{छाया}}{\text{छायाकर्ण}} \text{ वर्तमान प्रथानुसार} \cdots (\text{क})$$

$$\text{नतांशकोटिज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{छायाकर्ण}} \text{ ,,} \cdots\cdots\cdots\cdots (\text{ख})$$

$\therefore$ छाया=नतांशज्या × छाया कर्ण

$$= \text{नतांशज्या} \times \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांशकोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

यदि स्पर्श रेखाकी सारिणीसे काम लिया जाय तो इसका सरल रूप यह होगा—

छाया=१२ × स्पर्श (न)······················(४)

ऊपरके समीकरण (ख) से सिद्ध है कि

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांश कोटिज्या}} \text{ वर्तमान पथानुसार}$$

यदि नतांश कोटिज्या का मान भारतीय प्रथानुसार लिखा जाय तो

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

$$\text{अथवा छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{कोज्या (न)}}$$

उदाहरण—किसी दिन सूर्यकी उत्तर क्रान्ति १५°२५′ और प्रयागका अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयागमें इस दिन मध्यान्ह कालमें छाया और छाया कर्ण क्या होंगे? [देखो १४-१५ श्लोकका उदाहरण]

प्रयाग उत्तर गोलमें है, इस लिये इसके अक्षांशकी दिशा श्लोकोंके नियमके अनुसार दक्खिन है और क्रान्तिकी दिशा उत्तर है इस लिए इन दोनोंका अंतर ही सूर्यका नतांश होगा।

$\therefore$ न=२५°२५′ − १५°२५′=१०°

(१) सिद्धान्तकी रीति से:—

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } १०^\circ \times १२}{\text{कोज्या } १०^\circ}$$

$$= \frac{५९७ \times १२}{३३८४}$$

=२·१२ अंगुल

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times ३४३८}{३३८४}$$

=१२·१९ अंगुल

(२) नवीन रीतिसे:—

छाया=१२ × स्परे १०°

=१२ × ·१७६३ अंगुल

=२·११५६

=२·१२ अंगुल

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२}{\text{कोज्या} १०^\circ}$$

$$= \frac{१२}{·९८४८}$$

=१२·१९ अंगुल

सूर्यकी क्रान्ति और किसी इष्टकालकी छाया जानकर दिशा जानना—

क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णगुणाप्ता शङ्कुजीवया ।
अर्काग्रास्वेष्टकर्णघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका ॥२२॥
विषुवद्भायुताऽर्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः ।
विषुवत्यां विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः ॥२३॥
विपर्ययाद् भुजोयाम्यो भवेत्प्राच्यपरान्तरे ।
माध्याह्निकोभुजोनित्यंछायामाध्याह्निकीस्मृता॥२४॥

अनुवाद—(२२) सूर्यकी क्रान्तिकी ज्याको विषुवत्कर्ण-से गुणा करके शंकु रूपी जीवा अर्थात् १२ से भाग देनेपर सूर्यकी उदयकालिक अग्रा आती है इसको इष्टकालके छायाकर्ण-से गुणा करके मध्यकर्ण अर्थात् त्रिज्यासे भाग देनेपर इष्ट-कालकी कर्णाग्रा अथवा कर्णवृत्ताग्रा आती है। (२३) यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो अर्थात् यदि सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण हो तो कर्णाग्रामें पलभा जोड़ देनेसे और यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो तो पलभासे कर्णाग्रा घटा देनेपर उत्तर भुज आता है। (२४) यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो और पलभा कर्णाग्रासे छोटी हो तो विपरीत क्रिया करनेसे अर्थात् कर्णाग्रासे पलभा घटानेपर दक्षिण भुज आता है। मध्याह्नमें जो छाया होती है वही सदैव माध्याह्नकालिक भुज है।

विज्ञान भाष्य—इसी अधिकार के ५ वें और ७ वें श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें अग्रा और अग्राज्याकी चर्चा हुई है। ७ वें श्लोकमें अग्राकी परिभाषा यह बतलायी गई है, "इष्ट छाया-की नोकसे विषुवद्भाग्रगा रेखाका जो अंतर होता है वह

अग्रा कहलाती है"। चित्र ४५, ४६, के वर्णनमें क्ष अ अग्राज्या और क्षभ भुज बतलाये गये हैं। परंतु क्ष अ को अग्रा या अग्राज्या कहनेसे बहुत गड़बड़ हो जानेका डर है इस लिए क्ष अ को जिसे ७ वें श्लोकमें अग्रा और विज्ञान भाष्यमें मैंने अग्राज्या लिखा है इष्ट कालिक कर्णाग्रा या जैसा भास्कराचार्य लिखते हैं कर्णवृत्ताग्रा कहना अधिक उचित होगा। अग्रासे केवल वह कोण समझना चाहिए जो क्षितिजवृत्तपर पूर्व या पच्छिम विन्दुसे सूर्य, ग्रह या तारेका अंतर होता है। चित्र ४३ में उदय कालिक ग्रहका स्थान क्षितिज वृत्तके ग विन्दु पर है और पूर्व विन्दु पू है इस लिए ग्रहकी उदय कालिक अग्रा ग पू धनु है। इसी प्रकार ग्रहको अस्तकालिक अग्रा गा प धनु है क्योंकि प पच्छिम विन्दु और गा ग्रहका अस्तकालके समयका स्थान है। यदि ग अथवा गा विन्दुओं-से पूर्व पच्छिम रेखापर लम्ब गिराया जाय तो इसीका मान उदय कालिक अग्राज्याके नामसे व्यवहार किया जायगा। चित्र ४२ में प श सीधी रेखा उदयकालिक ग्रहकी अग्राज्या है। उदयकालके सिवा किसी अन्यकालमें सूर्यका ऊर्ध्ववृत्त क्षितिजके जिस विन्दुपर गिरेगा उस विन्दुसे पूर्व या पच्छिम विन्दुका अंतर इष्ट कालिक अग्रा कही जायगी।

२२ वें श्लोकमें अर्काग्रा उदयकालिक सूर्यकी अग्राज्या-के लिए, इष्टकर्ण इष्टकालके छायाकर्णके लिए और मध्यकर्ण त्रिज्याके लिए प्रयोग किये गये हैं इस लिए इनको ध्यानमें रखना चाहिए। किसी किसी अनुवादकने मध्यकर्णको मध्याह्न कालिक छायाकर्ण माना है परन्तु यह भ्रम है। मध्यकर्णको रंगनाथ जीने त्रिज्या इस तरह सिद्ध किया है—

×"कर्णस्य व्यासस्य मध्यमर्धमिति मध्यकर्णो व्यासार्धं त्रिज्या-तवेत्यर्थः।" व्यासके अर्थमें कर्णका प्रयोग मध्यमाधिकार-के ५६ वें श्लोकमें भी हुआ है। इसी अधिकारके अगले २७ वें श्लोकमें यही नियम दुहराया गया है जिसमें मध्यकर्णकी जगह त्रिज्याका प्रयोग किया गया है। इस लिए मध्यकर्ण-का अर्थ त्रिज्याके सिवा और कुछ नहीं है। इस श्लोक का सार यह है:—

$$\text{अग्राज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \cdots\cdots\cdots (१)$$

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{अग्राज्या} \times \text{इष्ट छाया कर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \times \frac{\text{इष्टछाया कर्ण}}{\text{त्रिज्या}} \cdots\cdots (२)$$

परंतु $\frac{\text{विषुवत्कर्ण}}{१२} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$ [देखो १३वें श्लोक का भाष्य]

$$\text{इसलिये अग्राज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \cdots\cdots\cdots (३)$$

समीकरण (३) से अग्राज्या अर्थात् उदय या अस्तका-लिक सूर्यकी अग्राकी ज्याका मान तथा अग्रा सुगमता पूर्वक निकल सकते हैं इसलिए यह अच्छा है। इस तरह

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \times \text{इष्टछाया कर्ण} \cdots\cdots\cdots (४)$$

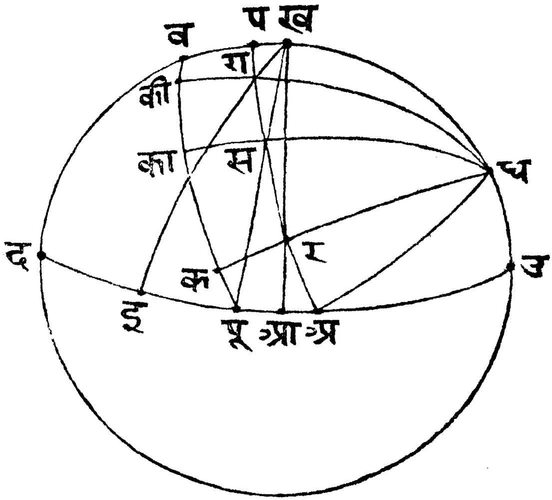
× वेङ्कटेश्वर प्रेसका सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ८०

कर्ण वृत्ताग्रामें पलभाके किस समय जोड़ने या घटाने-से छायाका भुज ज्ञात होता है यह चित्र ४५, ४६ से स्पष्ट है। जब सूर्य दक्षिण गोलमें होगा अर्थात् जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होगी तब कर्णवृत्ताग्रामें पलभा सदैव जोड़ी जायगी और योगफल उत्तर भुज होगा क्योंकि ऐसी दशामें छायाकी नोक सदैव विषुवच्छायाग्रगा रेखासे उत्तर होती है, (देखो चित्र ४५)। यदि सूर्य उत्तर गोलमें हुआ अर्थात् क्रान्ति उत्तर हुई तो जबतक सूर्य सममंडलसे उत्तर रहेगा तबतक छाया पूर्व पच्छिम रेखासे दक्खिन रहेगी इसलिए कर्णवृत्ताग्रा पलभासे बड़ी होगी। ऐसी दशामें कर्णवृत्ताग्रासे पलभा घटानेपर भुज ज्ञात होगा, (देखो चित्र ४६)। परंतु यदि सूर्य सममंडलसे दक्खिन हुआ तो छाया पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवच्छायाग्रगा रेखाके बीचमें रहेगी। ऐसी दशामें पलभा कर्णवृत्ताग्रासे बड़ी होगी और पहलेसे दूसरीको घटाना पड़ेगा। २३-२४ श्लोकोंका सार यह है :—

कर्णवृत्ताग्रा $\pm$ पलभा = भुज ………………(५)

इसमें धनात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होगी अर्थात् जब सूर्य सायनतुला आदि ६ राशियोंमें रहेगा और ऋणात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य सायनमेषादि ६ राशियोंमें रहेगा। पिछली दशामें यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखासे दक्खिन होगी तो भुज दक्षिणमें होगा और यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखासे उत्तर होगी तो भुज उत्तर और पलभासे कर्णवृत्ताग्राको घटाना पड़ेगा।

आजकल गोलीय त्रिकोणमितिके नियमोंके अनुसार समीकरण (५) इस प्रकार निश्चय किया जाता है :—



चित्र ५७

चित्र का परिचय

उ पू द=क्षितिज वृत्त

पू क व=विषुवद् वृत्त

उ ध ख व द=याम्योत्तर वृत्त

द पू उ=क्षितिज,

पू=पूर्व विंदु

उ=उत्तर विन्दु, द=दक्षिण विन्दु

ख=खस्वस्तिक

व=याम्योत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्तका सामान्य बिंदु,

अ र प=सूर्यका अहोरात्र वृत्त जब क्रांति उत्तर हो,

र, स, रा सूर्यके तीन स्थान,

ख र आ, ख स पू और ख रा इ सूर्यके तीन ऊर्ध्व वृत्त,

उ आ, उ पू और उ इ सूर्यके दिगंश,

पू आ, पू ई सूर्यकी अग्रा,

अ सूर्यका उदय बिन्दु

∠ ख ध अ सूर्यका उदयकालिक नतकाल

∠ ख ध र, ∠ ख ध स और ∠ ख ध रा सूर्यके नतकाल जब वह क्रमसे र, स और रा बिन्दुओंपर रहता है।

ध अ, ध र, ध स और ध रा सूर्यके ध्रुवान्तर जो प्रायः समान हैं।

र क, स का, रा की सूर्यकी क्रान्तियां जो प्रायः समान हैं।

ख र, ख स और ख रा सूर्यके नतांश।

आ र, पू स और इ रा सूर्यके उन्नतांश।

त्रिभुज ध ख र एक गोलीय त्रिभुज है, इसलिए*

$$\text{कोज्या ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}} \quad \cdots\cdots\cdots\cdots (\text{क})$$

$$\text{अथवा कोज्या (दिगंश)} = \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या लम्बांश}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}} \quad \cdots\cdots\cdots\cdots (\text{ख})$$

*देखो टाडहंटर और लेथेम की गोलीय त्रिकोणमिति पृष्ठ २१

परंतु दिगंश अग्राका, ध्रुवांतर क्रान्तिका और लम्बांश अक्षांशका पूरक हैं, इसलिए

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या नतांश} \times \text{कोज्या अक्षांश}} \quad \ldots (\text{ग})$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या(नतांश)} \times \text{कोज्या(अक्षांश)}} - \text{कोटि स्पर्श रेखा (नतांश)} \times \text{स्पर्श रेखा (अक्षांश)} \quad \cdots\cdots\cdots (\text{घ})$$

परन्तु $\text{स्पर्श रेखा (अक्षांश)} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ [देखो पृष्ठ ३००

$$\text{कोटि स्पर्श रेखा (नतांश)} = \frac{१२}{\text{छाया}}$$

$$\text{ज्या (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{\text{छाया कर्ण}}$$

$$\therefore \text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{छाया कर्ण}}{\text{छाया}} - \frac{१२}{\text{छाया}} \times \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$= \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ \frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\} \quad \cdots\cdots\cdots (६)$$

$\therefore$ छाया × इष्ट कालिक अग्राज्या = कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

देखो समीकरण (४)

परंतु छाया × इष्ट कालिक अग्राज्या = इष्ट कालिक छाया का भुज, क्योंकि चित्र ४८ में ∠ स श पू या ∠ छ श भ इष्ट कालिक अग्रा है जिसकी $\text{ज्या} = \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$

इसलिए छाया × इष्ट कलिक अग्राज्या = श छ × $\frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$

∴ भुज = कर्ण वृत्ताग्रा − पलभा

इस चित्रमें सूर्य सममंडलसे उत्तर है इसलिए भुज दक्षिण होगा। यदि सूर्य सममंडलके दक्खिन जैसे रा पर हो तो गोलीय त्रिभुज ध ख रा में

$$\text{कोज्या} \angle \text{ध ख रा} = \frac{\text{कोज्या (ध रा)} - \text{कोज्या (ख रा)} \times \text{कोज्या(ध ख)}}{\text{ज्या (ख रा)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

अथवा कोज्या (९०° + पू ख रा)

$$= \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (लम्बांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{को स्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

परंतु कोज्या (९०° + ∠पू ख रा) = − ज्या ∠पू ख रा = − ज्या (अग्रा)

∴ पहलेकी तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{१}{\text{छाया}}\left\{\text{कर्णवृत्ताग्रा} - \text{पलभा}\right\}$$

अथवा, − छाया × ज्या (अग्रा) = कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

या, − भुज = कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

यहां कर्णवृत्ताग्रासे पलभा घटानेपर भुज ऋणात्मक होता है जिससे प्रकट है कि पलभा कर्णवृत्ताग्रासे बड़ी है। सूर्य सममंडलके दक्खिन है इसलिए कर्णवृत्ताग्रा पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवद्भाग्रगा रेखाके बीचमें होगी और

पलभा भारतवर्षमें सदैव उत्तर रहती है इसलिए भुज उत्तर होगा।

इन दोनों उदाहरणोंमें सूर्य उत्तर गोलमें है अर्थात् इसकी क्रान्ति उत्तर है। यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो तो चित्र ५८ की तरह स्थिति होगी। गोलीय त्रिभुज ध ख र में

$$\text{कोज्या } \angle \text{ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

$$\therefore \text{कोज्या } (90^\circ + \text{अग्रा}) = \frac{\text{कोज्या } (90^\circ + \text{क्रान्ति}) - \text{कोज्या (नतांश)} \quad \text{कोज्या (लम्बांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$\therefore -\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{-\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}}$$

$$- \text{कोस्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

∴ पहलेकी तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ \frac{-\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\}$$

$$= \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ -\text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

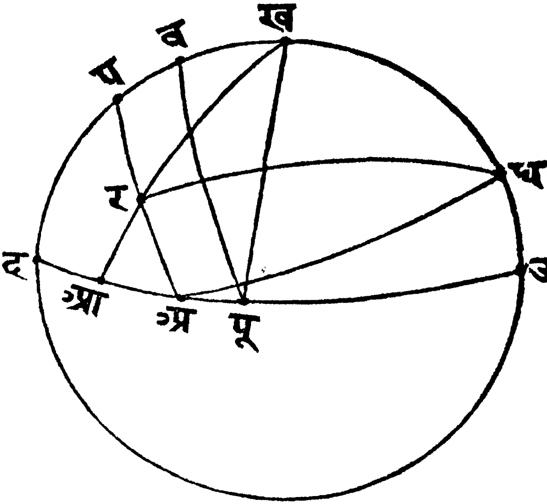
अथवा $-$ज्या (अग्रा) $\times$ छाया $= -$कर्ण वृत्ताग्रा $-$ पलभा

या, $-$भुज $= -$कर्णवृत्ताग्रा $-$ पलभा

∴ भुज $=$ कर्णवृत्ताग्रा $+$ पलभा

यहां कर्णवृत्ताग्रामें पलभा जोड़नेसे भुज आता है।

∴ जब सूर्यकी क्रांति दक्षिण होती है तब कर्णवृत्ताग्रामें पलभा सदैव जोड़ना पड़ता है।



चित्र ५८

उ ध ख व प द = यामोत्तर वृत्त

उ = उत्तर विन्दु

ध = उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख = खस्वस्तिक

द = दक्षिण विन्दु

पू = पूर्व विन्दु

ख पू = सममंडल

व पू = विषुवद्वृत्त

अ प = सूर्यका अहोरात्र वृत्त जब क्रान्ति दक्षिण हो

अ = उदय विन्दु

र = सूर्य का इष्ट स्थान

ख र आ = सूर्यका ऊर्ध्व वृत्त

उ अ=सूर्यका उदय कालिक दिगंश

उ आ=सूर्यका इष्ट कालिक दिगंश

अ पू = उदय कालिक अग्रा

आ पू = इष्ट कालिक अग्रा

ख ध अ=सूर्यका उदय कालिक नतकाल

< ख ध र=सूर्यका इष्ट कालिक नतकाल

ख र=सूर्यका नतांश; आ र=सूर्यका उन्नतांश

यदि सूर्य सममंडलमें हो तो छाया कर्ण जाननेकी १ली रीति

लम्बाक्षजीवे विषुवच्छाया द्वादशसङ्गुणे ।
क्रान्तिज्यासे तु तौ कर्णौ सममण्डलगे रवौ॥२५॥

अनुवाद—(२५) यदि सूर्य सममण्डलमें हो तो लम्बज्याको पलभासे अथवा अक्षज्याको १२ से गुणा करके प्रत्येकको क्रान्तिज्यासे भाग देनेपर छाया कर्ण आ जाता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका सार यह है :—

जब सूर्य सममंडलमें हो तो,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{लम्बज्या} \times \text{पलभा}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$= \frac{\text{अक्षज्या} \times 12}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जिस समय सूर्य सममण्डलमें होता है उस समय शंकुकी छाया ठीक पूर्व-पश्चिम रेखापर रहती है, चित्र ५७ में सूर्य

इस स्थितिमें अहोरात्र वृत्त प अ और सममंडल ख पृ के सम्पात विन्दु 'स' पर रहेगा। ऐसी दशामें कोण ध ख स ९०° के समान होगा और इष्ट कालिक अग्रा शून्य होगी। इसलिए पिछले श्लोकके समीकरण (६) के बायें पक्षका मान्य शून्य होगा; इसलिए इस समीकरणके दाहिने पक्षका भी मान्य शून्य होगा। इसलिए

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} = 0$$

$$\therefore \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} = \text{पलभा}$$

$$\text{या छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{अक्षांश कोटिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

परंतु अक्षांश कोटिज्या = लम्बज्या, इसलिए

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (७)$$

१३वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें बतलाया गया है कि

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\therefore \text{विषुवत्कर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{अक्षज्या}}$$

$$\therefore \text{पलभा} \times \text{लम्बज्या} = \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}$$

समीकरण (७)में पलभा × लम्बज्याकी जगह शंकु × अक्षज्या रख देनेसे इसका रूप यह होगा—

छाया कर्ण $= \frac{\text{शंकु} \times \text{अग्रज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$

यह बात नेपियरके दूसरे नियमसे भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि जिस समय सूर्य सममंडलमें होगा उस समय दिगंश ९०° और अग्रा शून्य होगी इसलिए चित्र ५७का ∠ध ख स समकोण होगा। इसलिए त्रिभुज ध ख स समकोण गोलीय त्रिभुज होगा जिसके भुजों और कोणोंका सम्बन्ध नेपियरके दूसरे नियमके अनुसार यह होगा :--

कोटिज्या (ध स) = कोटिज्या (ध ख) × कोटिज्या (ख स)

यहां धनु ध स, स सूर्यका ध्रुवांतर, ख स सूर्यका नतांश और ध ख लम्बांश है। इसलिए

कोटिज्या (ध्रुवांतर) = कोटिज्या (नतांश) × कोटिज्या (लम्बांश)

परंतु ध्रुवांतर क्रान्तिका पूरक होता है, इसलिए

ज्या क्रान्ति = कोटिज्या (नतांश) × ज्या (अक्षांश)

परंतु नतांश कोटिज्या $= \frac{१२}{\text{छाया कर्ण}}$ [देखो श्लोक २१का समीकरण (ख)

$\therefore$ ज्या क्रान्ति $= \frac{१२}{\text{छाया कर्ण}} \times$ ज्या (अक्षांश)

अर्थात् छाया कर्ण $= \frac{१२ \times \text{अक्षांश ज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$

इससे दूसरा रूप भी पहलेकी तरह जाना जा सकता है।

सममंडलमें सूर्य हो तो छायाकर्ण जाननेकी रीति

सौम्याक्षोना यदाक्रान्तिः स्यात्तदाद्युदलश्रवः ।
विषुवच्छायायाभ्यस्तः कर्णोमध्याग्रयोद्धृतः ॥२६॥

अनुवाद—यदि उत्तर अक्षांशसे उत्तर क्रान्ति कम हो तो मध्याह्न कालिक छाया कर्णको पलभासे गुणा करके मध्याह्न कालिक कर्णाग्रासे भाग देनेपर इष्टकालिक छाया कर्ण निकल आता है ।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका सार यह है:—

जब सूर्य सममंडलमें हो तब,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छाया कर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

उपपत्ति—२२वें श्लोकके अनुसार,

$$\text{मध्याह्न कर्णाग्रा} = \frac{\text{उदय कालिक अग्राज्या} \times \text{मध्याह्न छाया कर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

∴ समीकरण (१) में मध्यान्ह कर्णाग्राका यह मान उत्थापन करनेसे

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छाया कर्ण} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदय कालिक अग्राज्या} \times \text{मध्याह्न छाया कर्ण}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदय कालिक अग्राज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

समीकरण (२) में उदयकालिक अग्राज्याका मान २२वें श्लोकके प्रथम पंक्ति या वहांके समीकरण (१) के अनुसार उत्थापन करनेसे,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\dfrac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times १२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}$$

परंतु १३वें श्लोकके अनुसार $\dfrac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} = \text{लम्बज्या}$

$$\therefore \text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जो २५वें श्लोकके नियमका ही एक रूप है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य सममंडलमें हो तब

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छाया कर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}}$$

कर्णाग्रा जाननेकी दूसरी रीति—

स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवाघ्नी लम्बज्यासाग्रमौर्विका।
स्वेष्टकर्णहता भक्ता त्रिज्ययाग्राङ्गुलादिका ॥२७॥

अनुवाद—(२७) इष्टकालके सूर्यकी क्रान्तिज्याको त्रिज्यासे गुणा करके लम्बज्यासे भाग देनेपर उदयकालिक अग्राज्या आती है जिसको इष्टकालके छाया कर्णसे गुणा करके त्रिज्या-से भाग देनेपर इष्टकालकी कर्णाग्रा आती है।

विज्ञान भाष्य—२२वें श्लोकमें कर्णाग्रा जाननेकी रीति बतलायी गयी है वही यह भी है अंतर केवल इतना है कि वहां क्रान्तिज्याको विषुवत्कर्णसे गुणा करके १२ से भाग दिया गया

है और यहां क्रान्तिज्याको त्रिज्यासे गुणा करके लम्बज्यासे भाग दिया गया है जो एक ही है। (देखो श्लोक १३ तथा २२)

जब सूर्य ईशान अग्नि आदि चार कोणोंमें हो तब उन्नतांश या नतांश जाननेकी रीति

त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्यावर्गोनाद्द्वादशाहतात् ।
पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च लभ्यते यत्फलं बुधैः ॥२८॥
शङ्कुवर्गार्धसंयुक्त विषुवद्वर्गभाजितात् ।
तदेव करणी नाम तां पृथक् स्थापयेद्बुधः ॥२९॥
अर्कघ्नी विषुवच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा ।
भक्ता फलाख्यं तद्वर्ग संयुक्त करणीपदम् ॥३०॥
फलेन हीनसंयुक्तं दक्षिणोत्तर गोलयोः ।
याम्ययोर्विदिशोः शङ्कुरेवं यामोत्तरे रवौ ॥३१॥
परिभ्रमति शङ्कोस्तु शङ्कुरुत्तरयोस्तु सः ।
तत् त्रिज्यावर्ग विश्लेषान्मूलं दृग्ज्याभिधीयते ॥३२॥

अनुवाद—(२८) त्रिज्याके वर्गका आधा करके उसमेंसे उदयकालिक अग्रज्याके वर्गको घटाकर शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलको फिर १२ से गुणा करनेपर जो फल विद्वानोंको मिलता है (२९) उसको शंकुके वर्गार्ध और पलभाके वर्गके योगफलसे भाग देते हैं, जो लब्धि आती है उसे करणी कहते हैं। इसको विद्वान् अलग रखते हैं। (३०) १२को पलभासे गुणा करके गुणनफलको उदयकालिक अग्रज्यासे

भी गुणा करके जो आता है उसको भी शंकुके वर्गार्ध और पलभाके वर्गके योगफलसे भाग देते हैं और लब्धिको फल कहते हैं। फलके वर्गको करणीमें जोड़कर योगफलका वर्गमूल निकालते हैं, (३१) यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो अर्थात् यदि सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण हो तो वर्गमूलसे फलको घटा दे और यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो तो वर्गमूलमें फलको जोड़ दे। ऐसा करनेसे जो कुछ आता है वही आग्नेयादि कोणोंका शंकु अर्थात् कोणशंकु कहलाता है। (३२) जब सूर्य दक्षिणमें होता है तब कोणशंकु मध्यान्हके पहले अग्निकोणमें और मध्यान्हके पीछे नैऋत्य कोणमें होता है। परंतु जब सूर्य उत्तरमें होता है तब कोणशंकु मध्यान्हके पहले ईशान कोणमें और मध्यान्हके पीछे वायव्य कोणमें होता है। कोणशंकु और त्रिज्याके वर्गोंके अंतरका वर्गमूल निकालनेसे दृग्ज्या होती है।

विज्ञान भाष्य—इन ५ श्लोकोंका सार यह है :—

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^2}{2} - \text{अग्रज्या}^2\right) \times १४४}{\frac{१२^2}{2} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्रज्या}}{\frac{१२^2}{2} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^2} \mp \text{फल}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोण शंकु}^2}$$

जिस समय सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोणोंमें रहता है उस समय इसका जो उन्नतांश (Altitude) होता है उसकी ज्याको कोणशंकु और जो नतांश होता है उसकी ज्याको दृग्ज्या कहते हैं; किसी अन्य समयके नतांशज्याको भी दृग्ज्या तथा उन्नतांशज्याको शंकु कहते हैं। इसलिए इस शंकु और १२ अंगुलवाले शंकुके भेदको अच्छी तरह ध्यानमें रखना चाहिए। इसलिए जब सूर्यका दिगंश (Azimuth) ४५° होता है तब यह क्षितिजसे जितने अंश ऊपर रहता है उस अंशकी ज्या कोणशंकु हुई और खस्वस्तिकसे जितना नीचे रहता है उस अंशकी ज्या दृग्ज्या हुई। इसलिए चित्र ५७ के समीकरण (क), (ख), या (ग) की सहायतासे कोणशंकु या दृग्ज्याका मान सहज ही निकल सकता है। समीकरण (ग) इस प्रकार है—

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}}$$

जब सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोणमें होता है तब अग्रा ४५ अंशके समान होती है, इसलिए ऐसी दशा में

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \text{ज्या } ४५^\circ = \frac{१}{\sqrt{२}}$$

$$\text{ज्या (अक्षांश)} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}} \quad [\text{ श्लोक } १३$$

$$\text{ज्या (क्रान्ति)} = \frac{१२ \times \text{अग्राज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} \quad [\text{ श्लोक } २२$$

$$\text{कोज्या (अक्षांश)} = \frac{१२}{\text{विषुवत्कर्ण}} \quad [\text{ श्लोक } १३$$

समीकरण (ग) से सिद्ध है कि

ज्या (अग्रा) × ज्या (नतांश) × कोज्या अक्षांश

= ज्या (क्रान्ति) − कोज्या (नतांश) × ज्या अक्षांश

इसमें ज्या (अग्रा), ज्या (अक्षांश) इत्यादिके मान उत्थापन करनेसे

$$\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या (नतांश)} \times \frac{१२}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$= \frac{१२ \times \text{अग्रज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

इसी समीकरणके दूसरे पक्षमें जो अग्रज्या है वह सूर्यकी उदयकालिक अग्राकी ज्या है। इस समीकरणके प्रत्येक पदके हरमें विषुवत्कर्ण है इसलिए इस सामान्य संख्याको हटा देनेमें कोई अंतर नहीं पड़ेगा। यदि पलभा, नतांश और अग्रज्याको क्रमसे प, न और अ अक्षरोंसे सूचित किया जाय और विषुवत्कर्ण हटा दिया जाय तो

$$\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या (न)} \times १२ = १२ \times \text{अ} - \text{कोज्या (न)} \times \text{प}$$

दोनों पक्षोंका वर्ग करनेसे,

$$\frac{१}{२} \times \text{ज्या}^{२} \text{(न)} \times १२^{२}$$

$$= १२^{२} \times \text{अ}^{२} + \text{प}^{२} \times \text{कोज्या}^{२}\text{(न)} - २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

परंतु १६वें श्लोकके आधार पर

$$\text{ज्या}^{२} \text{(न)} = \text{त्रिज्या}^{२} - \text{कोज्या}^{२} \text{(न)}$$

इसलिए उपर्युक्त समीकरणका रूप यह होगा

$$\frac{१}{२} \times १२^{२} \times [\text{त्रिज्या}^{२} - \text{कोज्या}^{२}(\text{न})]$$
$$= १२^{२}\,\text{अ}^{२} + \text{प}^{२} \times \text{कोज्या}^{२}(\text{न}) - २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$$

अथवा सरल करने पर

$$१२^{२}\left[\frac{\text{त्रिज्या}^{२}}{२} - \text{अ}^{२}\right]$$
$$= \text{कोज्या}^{२}(\text{न})\left[\frac{१२^{२}}{२} + \text{प}^{२}\right] - २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$$

प्रत्येक पक्षको $\frac{१२^{२}}{२} + \text{प}^{२}$से भाग देनेपर और आवश्यक पदोंको एक पक्षसे दूसरे पक्षमें ले जानेपर

$$\text{कोज्या}^{२}(\text{न}) - \frac{२ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^{२}}{२} + \text{प}^{२}}\text{कोज्या}(\text{न}) - \frac{१२^{२}\left[\frac{\text{त्रिज्या}^{२}}{२} - \text{अ}^{२}\right]}{\frac{१२^{२}}{२} + \text{प}^{२}} = ०$$

तीसरे पदकी जगह करणी और दूसरे पदके $\frac{१२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^{२}}{२} + \text{प}^{२}}$ की जगह फल लिखनेसे इसका रूप होगा।

$$\text{कोज्या}^{२}(\text{न}) - २ \times \text{फल} \times \text{कोज्या}(\text{न}) - \text{करणी} = ०$$

या $\text{कोज्या}^{२}(\text{न}) - २\,\text{फल} \times \text{कोज्या}(\text{न}) = \text{करणी}$

पहले पक्षको पूर्ण वर्ग बनानेके लिए प्रत्येक पदमें (फल)^{२} जोड़नेसे

$$\text{कोज्या}^{२}(\text{न}) - २\text{फल} \times \text{कोज्या}(\text{न}) + \text{फल}^{२}$$
$$= \text{करणी} + \text{फल}^{२}$$

इस समीकरणका पहला पक्ष $= [\text{कोज्या}(\text{न}) - \text{फल}]^{२}$

$\therefore \text{कोज्या}(\text{न}) - \text{फल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^{२}}$

अथवा $\text{कोज्या}(\text{न}) = \text{फल} + \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^{२}}$

परंतु $\text{कोज्या}(\text{न}) = \text{कोज्या}(\text{नतांश}) = \text{ज्या}(\text{उन्नतांश}) = \text{कोणशंकु}$

$\therefore \text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^{२}} + \text{फल}$

इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है तब फलके वर्गको करणीमें जोड़कर और योगफलका वर्गमूल निकालकर फलमें जोड़ देनेसे कोण शंकु आ जाता है। यदि सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण हो तो चित्र ५८ के अनुसार

$$- \text{ज्या}(\text{अग्रा}) \times \text{ज्या}(\text{नतांश}) \times \text{कोज्या}(\text{अक्षांश})$$
$$= - \text{ज्या}(\text{क्रान्ति}) - \text{कोज्या}(\text{नतांश}) \times \text{ज्या}(\text{अक्षांश})$$

जिसमें ज्या अग्रा, ज्या क्रान्ति इत्यादिके मान उत्थापन करने और सरल करनेसे

$$- \frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या}(\text{न}) \times १२ = -१२\,\text{अ} - \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$$

अथवा $\frac{१}{\sqrt{२}} \times १२ \times \text{ज्या}(\text{न}) = १२\,\text{अ} + \text{प} \times \text{कोज्या}(\text{न})$

दोनों पक्षोंका वर्ग करनेसे

$$\frac{१२^२}{२} \times ज्या^२ (न) = १२^२ अ^२ + प^२ \times कोज्या^२ (न) + २ \times १२ \times अ \times प \times कोज्या\ न$$

$$अथवा\ \frac{१२^२}{२} \left[त्रिज्या^२ - कोज्या^२ (न) \right]$$

$$= १२^२ अ^२ + प^२ \times कोज्या^२ (न) + २ \times १२ \times अ \times प \times कोज्या (न)$$

$$\therefore १२^२ \left[\frac{त्रिज्या^२}{२} - अ^२ \right]$$

$$= कोज्या^२ (न) \left[\frac{१२^२}{२} + प^२ \right] + २ \times १२ \times अ \times प \times कोज्या\ न$$

$$\therefore कोज्या^२ (न) + \frac{२ \times १२ \times अ \times प}{\frac{१२^२}{२} + प^२} कोज्या (न)$$

$$= \frac{१२^२ \left[\frac{त्रिज्या^२}{२} - अ^२ \right]}{\frac{१२^२}{२} + प^२}$$

$$अथवा\ \ कोज्या^२ (न) + २ \times फल \times कोज्या (न) = करणी$$

$$\therefore \left[कोज्या (न) + फल \right]^२ = करणी + फल^२$$

$$\therefore कोज्या (न) + फल = \sqrt{करणी + फल^२}$$

$$\therefore कोज्या (न) = \sqrt{करणी + फल^२} - फल$$

इस लिए यह सिद्ध होता है कि जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब फल घटाना पड़ता है ।

स्वशङ्कुना विभाज्याप्ते दृक्त्रिज्ये द्वादशाहते ।
छायाकर्णौ तु कोणेषु यथा स्वं देशकालयोः ॥३३॥

अनुवाद—(३३) दृग्ज्या और त्रिज्याको १२ से गुणा करके कोण शंकुसे भाग दो। भागफल क्रमानुसार इष्ट स्थानके यथा समय छाया और कर्ण होंगे।

विज्ञान भाष्य—२८-३२ श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि जब सूर्य आग्नेयादि विदिशाओंमें हो तब उस समयकी उन्नतांश ज्या (कोण शंकु) और नतांश ज्या (दृग्ज्या) कैसे निकालते हैं। ३३वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि दृग्ज्या और कोण-शंकुसे उस समयकी छाया या छायाकर्ण कैसे निकाला जाता है।

इस नियमका सार यह है :—

$$(\text{कोण})\ \text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$(\text{कोण})\ \text{छाया कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

यह २१वें श्लोकसे मिलता जुलता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी उसी तरह है।

उदाहरण—जब सूर्यकी क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो तो प्रयागमें (अक्षांश २५° २५′) कोण शंकु और दृग्ज्या क्या होंगे?

प्रयाग का विषुवत्कर्ण = १३·२८ अंगुल (देखो पृष्ठ ३८१)

,, की पलभा = ५·६८ अंगुल

इसलिये उस दिनकी उदयकालिक अग्राज्या

$$= \frac{\text{ज्या } १५^\circ \times १३·२८}{१२} \quad [\text{देखो श्लो० २२}$$

$$= \frac{८६० \times १३·२८}{१२} = ६८५'$$

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अग्राज्या}^२\right) \times १४४}{७२ + \text{पलभा}^२}$$

$$= \frac{(५६०६६२२ - ६७०२२५)\ १४४}{७२ + ३२·२६}$$

$$= \frac{४६३६६६७ \times १४४}{१०४·२६}$$

$$= ६८२२५२४$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्राज्या}}{७२ + \text{पलभा}^२}$$

$$= \frac{१२ \times ५·६८ \times ६८५}{१०४·२६}$$

$$= ६४४$$

$$\therefore \text{कोणशङ्कु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} \pm \text{फल}$$

$$= \sqrt{६८२२५२४ + ४१४७३६} \pm ६४४$$

$= \sqrt{७२३७२६०} \pm ६४४$

$= २६९० \pm ६४३$

$= ३३३३'$ या $२०४६'$

इसलिए जब क्रान्ति उत्तर होगी तब कोणशंकु ३३३४' और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब कोणशंकु २०४६' होगी।

यह बतलाया गया है कि कोणशंकु नतांशकी कोटिज्या अथवा उन्नतांशकी ज्याको कहते हैं इसलिए यदि नतांश या उन्नतांश जानना हो तो कोणशंकुका धनु बनाना होगा।]

यहाँ, कोणशंकु = उन्नतांशकी ज्या = ३३३३'

∴ उन्नतांश = ७५°५७'

∴ नतांश = ९०° − ७५°५७' = १४°३'

जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब

उन्नतांशकी ज्या = २०४६'

∴ उन्नतांश = ३६°३२'

और नतांश = ९०° − ३६°३२' = ५३°२८'

जब सूर्यकी क्रांति उत्तर होगी तब,

दृग्ज्या $= \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोणशंकु}^2}$

$= \sqrt{३४३८^2 - ३३३४^2}$

$= \sqrt{(३४३८ + ३३३४)\ (३४३८ - ३३३४)}$

$= \sqrt{६७७२ \times १०४}$

= ८३९ कला

परन्तु दृग्ज्या = नतांशकी ज्या

$= ८३६'$

$\therefore$ नतांश $= १३°५६'$

दोनों उत्तरोंमें ४ कलाका अंतर है क्योंकि वर्गमूल निकालनेमें दशमलवके अंक छोड़ दिये गये हैं।

यदि यह जानना हो कि कोणों (विदिशाओं) पर शंकुकी छाया या छायाकर्ण क्या होंगे तो ३३ वें श्लोकसे काम लेना होगा। जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होगी तब

$$\text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{८३६ \times १२}{३३३४}$$

$$= ३\cdot०२ \text{ अंगुल}$$

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{३४३८ \times १२}{३३३४}$$

$$= १२\cdot३७ \text{ अंगुल}$$

नवीन रीतिसे कोणशंकुका मान जानने में कोई विशेष सुविधा नहीं है। फिर भी उदाहरण दे देना अच्छा होगा। यह पहले सिद्ध हो चुका है कि जब सूर्य ईशान या वायव्य कोणमें होगा तब अग्राकी ज्या $\div \sqrt{\frac{१}{२}}$ और जब अग्नि या नैऋत्य

कोणमें होगा तब अग्राकी ज्या $= \sqrt{\frac{1}{2}}$ होगी (देखो चित्र ५७, ५८) इसलिए २२—२४ श्लोकों के समीकरण (ग) के अनुसार,

$$\pm \sqrt{\frac{१}{२}} = \frac{\pm \text{ज्या } १५^\circ — \text{कोज्या (न)} \times \text{ज्या } २१^\circ २५'}{\text{ज्या (न)} \times \text{कोज्या } २१^\circ २५'}$$ †

$$\text{या} \quad \pm ·७०७१ = \frac{\pm ·२५८८ — \text{कोज्या (न)} \times ·४२६२}{\text{ज्या (न)} \times ·९०३२}$$

$$\therefore \pm ·७०७१ \times ·९०३२ \times \text{ज्या (न)}$$
$$= \pm ·२५८८ — ·४२६२ \times \text{कोज्या (न)}$$

दोनों पक्षोंका वर्ग करनेपर,

$$·४०७९ \text{ज्या}^2 \text{ (न)} = ·०६७० \mp ·२२२२ \text{कोज्या (न)}$$
$$+ ·१८४२ \text{ कोज्या}^2 \text{ (न)}$$

$$\text{या } ·४०७९ \text{ (१—कोज्या}^2 \text{ न)}$$
$$= ·०६७० \pm ·२२२२ \text{ कोज्या न} + ·१८४२ \text{ कोज्या}^2 \text{ न}$$

$$\therefore ·५९२१ \text{ कोज्या}^2 \text{ न} \pm ·२२२२ \text{ कोज्या न} — ·३४०९ = ०$$

$$\therefore \text{कोज्या न} = \frac{\pm ·२२२२ \pm \sqrt{(·२२२२)^2 + ४ \times ·५९२१ \times ·३४०९}}{२ \times ·५९२१}$$

$$= \frac{\pm ·२२२२ \pm ·९२५६}{१·१८४२}$$

† १५° क्रान्तिकी ज्या धनात्मक तब होगी जब क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य उत्तर गोलमें होगा। परंतु जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब इसकी ज्या ऋणात्मक होगी।

$$= \frac{१\cdot१४५८}{१\cdot१८४२} \text{ या } \frac{\cdot७०३४}{१\cdot१८४२}$$

∴ उन्नतांशकी ज्या = ·९६६३ या ·५९४०

∴ उन्नतांश = ७५°४६′ या ३६°२७′

इससे दृग्ज्या, छाया, इत्यादि भी जानी जा सकती हैं।

इष्टकाल, अक्षांश और क्रान्ति जानकर उन्नतांश, नतांश, छाया इत्यादि जाननेकी रीति—

त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता ।
अन्त्या नतोत्क्रमज्योना स्वाहोरात्रार्धसंगुणा ॥३४॥
त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथ भाजितः
त्रिभज्यया भवेच्छंकुस्तद्वर्गं परिशोधयेत् ।
त्रिज्यावर्गात्पदं दृग्ज्या छायाकर्णौ तु पूर्ववत् ॥३५॥

अनुवाद—(३४) यदि सूर्य उत्तर गोलमें हो तो चरज्याको त्रिज्यामें जोड़ने और यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो तो घटानेसे अन्त्या आती है। इससे नत कालकी उत्क्रमज्याको घटाकर शेषको द्युज्यासे गुणा कर दो (३५) और त्रिज्यासे भाग दे दो तो छेद आता है। इसको लम्बज्यासे गुणा करके त्रिज्यासे भाग दे देनेपर शंकु (इष्टकालकी उन्नतांशकी ज्या) आता है। शंकुके वर्गको त्रिज्याके वर्गसे घटाकर शेषका वर्गमूल निकालनेपर जो आता है वह दृग्ज्या (इष्टकालकी नतांश ज्या) है जिससे छाया और छायाकर्ण पहलेकी तरह जान लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों का सार यह है:—

(१) अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या

(२) छेद = $\frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}}$

(३) शंकु = $\frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$

(४) दृग्ज्या = $\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{शंकु}^2}$

समीकरण (३) में समीकरण (२) और (१) के मान उत्थापन करनेसे,

$$\text{शंकु} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} - \text{चरज्या} \pm \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} - \text{नतोत्क्रमज्या} \pm \text{चरज्या})\ \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या})\ \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या}) \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

$\times$ अक्षांशकोटिज्या.........(क)*

† देखो चित्र २४ और पृष्ठ १७३, १७६-१७७

* देखो पृष्ठ ३०४

यह बात गोलीय त्रिकोणमितिसे सहज ही सिद्ध हो सकती है। यहां कुछ नये शब्द आये हैं इसलिए पहले उनका समझाना आवश्यक हैः—

अन्त्या—पृष्ठ ३०० के चित्र ४२ में चरज्या चाश और चश है और विश त्रिज्या है। इसलिए चावि और चवि क्रमसे अन्त्या हुए।

नतकाल—किसी समयसे जितनी देरमें कोई ग्रह या तारा यामोत्तर वृत्तपर आता है उसको उह ग्रह या तारेका पूर्व नतकाल कहते हैं और उस तारे या ग्रहके यामोत्तरवृत्त लांघनेके बाद जितना समय बीता रहता है उसको उस तारे या ग्रहका पच्छिम नतकाल कहते हैं। किसी ग्रह या तारेका नतकाल hour angle और क्रान्ति दी हुई हो तो उसका स्थान सहज ही निश्चय किया जा सकता है। नतकालका परिमाण उस कोणसे जाना जाता है जो ग्रह या तारेके ध्रुवप्रोतवृत्त और यामोत्तरवृत्तके बीचमें होता है। ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्तसे समकोण बनाता है, इसलिए नतकाल विषुवद्वृत्तके उस धनुसे भी जो तारे या ग्रहके ध्रुवप्रोतवृत्त और यामोत्तरवृत्तके बीचमें होता है, जाना जा सकता है। चित्र ५७ में ख ध र, ख ध स और ख ध रा कोण सूर्यके नतकाल हैं जबकि सूर्य क्रमसे र, स और रा बिन्दुओंपर रहता है। यह स्थान यामोत्तरवृत्तके पूर्व हैं इसलिए यह सूर्यके पूर्वनतकाल हैं। जब ग्रह या तारा यामोत्तरवृत्त पर होता है तब उसका नतकाल शून्य होता है। नतकाल साधारणतः अंशोंमें लिखा जाता है। यदि किसी तारे या ग्रह का

पूर्व नतकाल १५° हो तो समझना चाहिए कि वह १५×४ मिनट अथवा १ घंटे (नाक्षत्र) में याम्योत्तरवृत्तपर आवेगा।

उन्नतकाल—दिनमानके आधेसे नतकाल घटानेपर जो आता है वह उन्नतकाल कहलाता है। पूर्व उन्नतकाल ग्रह या तारेके उदयकालसे इष्टकालतकके समयको कहते हैं और पश्चिम उन्नतकाल इष्टकालसे अस्त होनेतकके समयको कहते हैं। पश्चिम उन्नतकाल उस समय होता है जब ग्रह या तारा याम्योत्तरवृत्तके पश्चिम होता है। उन्नतकाल या इसके संक्षिप्त रूप उन्नतको उन्नतांशसे भिन्न समझना चाहिए जैसे नतको नतांशसे।

३४-३५ श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि यदि किसी ग्रह या तारेका नतकाल, अक्षांश और क्रान्ति ज्ञात हो तो उसका उन्नतांश, नतांश इत्यादि कैसे जान सकते हैं। इसकी उपपत्ति गोलीय त्रिकोण-मितिके आधारपर यह है। देखो चित्र ५७।

मान लो सूर्य र पर है। गोलीय त्रिभुज ध ख र में
कोज्या ∠ख ध र

$$= \frac{\text{कोज्या (ख र)} - \text{कोज्या (ध ख)} \times \text{कोज्या (ध र)}}{\text{ज्या (ध ख)} \times \text{ज्या (ध र)}}$$

∴ कोज्या (नतकाल)

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{कोज्या (लम्बांश)} \times \text{कोज्या (ध्रुवांतर)}}{\text{ज्या (लम्बांश)} \times \text{ज्या (ध्रुवांतर)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{ज्या (अक्षांश)} \times \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} \quad \ldots\ldots(1)$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या अक्षांश} \times \text{कोज्या क्रान्ति}} - \frac{\text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{ज्या क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} - \text{स्परे (अक्षांश)} \times \text{स्परे (क्रान्ति)} \ldots (२)$$

और चरज्या* = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्श रेखा...(३)

समीकरण (२) और (३) के समान पक्षोंको जोड़नेसे,

कोज्या (नतकाल) + चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

अथवा नतकोटिज्या + चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{अक्षांश कोटिज्या} \times \text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

∴ नतांश कोटिज्या

= (नतकोटिज्या + चरज्या) × अक्ष कोटिज्या × क्रान्ति कोटिज्या............(ख)

नतांश कोटिज्याको भी शंकु कहते हैं। इस सूत्रसे शंकुका मान आज कलकी रीतिके अनुसार दशमलव भिन्नमें होगा। यदि भारतीय रीतिके अनुसार लिखना हो तो इसको त्रिज्या (३४३८) के वर्गसे भाग देना होगा।

* देखो पृष्ठ २०६

यह सूत्र उस समय काम देगा जब कि सूर्य उत्तर गोलमें हो। यदि सूर्य दक्षिण गोलमें हो तो चरज्या ऋणात्मक होगी (देखो चित्र ४२ की व्याख्या)। ऐसी दशामें ध्रुवांतर ९०° से अधिक होगा जिससे कोज्या (ध्रु) ऋणात्मक होगी। इसलिए समीकरण (२) के दाहनेपक्षका—स्परे (अक्षांश) × स्परे (क्रान्ति) भी धनात्मक होगा जिससे समीकरण (ख) में चरज्या ऋणात्मक रहेगी परन्तु और कहीं अंतर न पड़ेगा। इसलिए समीकरण (ख) का व्यापक रूप यह होगा—

नतांश कोटिज्या

= (नत कोटिज्या ± चरज्या) × अक्षकोटिज्या × क्रान्तिकोटिज्या ·····(ग)

जिसमें धन चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य या ग्रहकी क्रान्ति उत्तर होगी और ऋण चिह्न उस समय जब क्रान्ति दक्षिण होगी।

नतांश कोटिज्या अथवा शंकुका मान जान लेनेपर दृग्ज्या, छाया, छायाकर्ण इत्यादि पहलेकी ही तरह जाने जा सकते हैं इसलिए विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण—यदि सूर्यकी क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिणा हो तो प्रयागमें जिस समय सूर्यका पूर्वनतकाल ३ घंटा ३० मिनट होगा उस समय उसका नतांश क्या होगा?

सूर्य सिद्धान्त की रीतिसे—

चरज्या = क्रान्तिज्या × पू[illegible] / १२ × [illegible]को[illegible] [देखो पृष्ठ ३८५

$$= \frac{\text{ज्या } १५^\circ \times ५.७ \times ३४३८}{१२ \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{८९० \times ५.७ \times ३४३८}{१२ \times ३३२१}$$

$$= ४३८$$

परन्तु अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या

∴ अन्त्या = ३४३८ ± ४३८

= ३८७६ या ३०००

नतकाल = ३ घंटा ३० मिनट = ५२° ३०′

∴ नतोत्क्रमज्या = उज्या ५२° ३०′

= १३४५

$$\therefore \text{छेद} = \frac{(३८७६-१३४५) \times ३३२१}{३४३८} \text{ या } \frac{(३०००-१३४५) \times ३३२१}{३४३८}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१}{३४३८} \text{ अथवा } \frac{१६५५ \times ३३२१}{३४३८}$$

$$\therefore \text{शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८} \text{ अथवा } \frac{१६५५ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८}$$

= २२०६ अथवा १४४४

परंतु यहां शंकु उन्नतांशकी ज्याके लिए प्रयुक्त है। इसलिए जब सूर्य उत्तर गोलमें होगा तब इष्टकालमें उन्नतांशकी ज्या २२०६ कला और जब सूर्य दक्षिण गोलमें

होगा तब उन्नतांशकी ज्या १४४४ कला होगी । इसलिए पहली दशामें—

उन्नतांश = ४०° और नतांश = ९०°−४०° = ५०°

और दूसरी दशामें उन्नतांश = ८४° ५२′ और नतांश = ५° ८′

पहली दशामें दृग्ज्या = $\sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{शंकु}^२}$

= $\sqrt{११८१९८४४ - २२०९^२}$

= $\sqrt{११८१९८४४ - ४८७९६८१}$

= $\sqrt{६९४०१६३}$

= २६३४

∴ पहली दशामें छाया = $\frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$

= $\frac{२६३४ \times १२}{२२०९}$

= १४·३१ अंगुल

दूसरी दशामें दृग्ज्या = $\sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - १४४४^२}$

= $\sqrt{११८१९८४४ - २०८५१३६}$

= ३१२०

∴ दूसरी दशामें छाया = $\frac{३१२० \times १२}{१४४४}$

= २५·९३ अंगुल

नवीन रीतिसे—

समीकरण (ख) के आधारपर,

नतांश कोटिज्या = (नत कोटिज्या ± चरज्या) × अक्षकोटिज्या × क्रान्तिकोटिज्या

परंतु चरज्या = स्परे क्रान्ति × स्परे अक्षांश [देखो पृष्ठ ३०६

= स्परे १५° × स्परे २५°२५'

= '२६७६ × '४७५२

= '१२७३

∴ नतांश कोटिज्या

= (कोज्या ५२°३०' ± '१२७३) × कोज्या २५°२ × कोज्या १५°

= ('६०८८' ± १२७३) × '६०३२ × '६६५६

= '७३६१ × '६०३२ × '६६५६ या '४८१५ × '६०३२ × '६६५६

= '६४२२ या '४२०१

∴ जब क्रान्ति उत्तर होगी तब नतांश ५०°३' होगा,

और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब नतांश ६५°६' होगा ।

पहली दशामें १२ अंगुल शंकुकी छाया = १२ स्परे ५०°३'

= १२ × १'१६४०

= १४'३२८ अंगुल

दूसरी दशामें, छाया = १२ × स्परे ६५°६'

= १२ × २'१५६४

= २५'६१३ अंगुल

किसी समयकी छाया नापकर नतकाल जानना—

अभीष्टच्छाययाभ्यस्तात्रिज्यातत्कर्णभाजिता ।
दृग्ज्या तद्वर्गसंशुद्धात्त्रिज्यावर्गाच्चयत्पदम् ॥ ३६॥
शंकुः सत्रिभजीवाघ्नः स्वलम्बज्या विभाजितः
छेदः स त्रिज्ययाभ्यस्तः स्वाहोरात्रार्ध भाजितः॥३७॥
उन्नतज्यातया हीना स्वान्त्याशेषस्य कार्मुकम् ।
उत्क्रमज्याभिरेवंस्युः प्राक्पश्चार्धनतासवः ॥३८॥

अनुवाद—(३६) इष्टकालकी छायाको त्रिज्यासे गुणा करके छायाकर्णसे भाग देनेपर दृग्ज्या आती है । त्रिज्याके वर्गसे दृग्ज्याके वर्गको घटा कर वर्गमूल निकालनेसे (३७) शंकु प्राप्त होता है । शंकुको त्रिज्यासे गुणा करके इष्ट स्थानकी लम्बज्यासे भाग देनेपर छेद आता है । छेदको त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्यासे भाग देनेपर (३८) उन्नतज्या आती है । इसको अन्त्यासे घटानेपर जो शेष बचता हो उसको उत्क्रमज्या समझकर उत्क्रमज्या पिंडसे धनु बनावे तो पूर्व या पच्छिम नतकाल ज्ञात होता है ।

विज्ञान भाष्य–इन तीन श्लोकोंका सारांश यह है:–

(१) $\frac{\text{छाया} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}} = \text{दृग्ज्या}$

(२) $\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{दृग्ज्या}^2} = \text{शंकु}$

(३) $\frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{छेद}$

(४) $\frac{\text{छेद} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{उन्नतज्या}$

(५) अन्त्या–उन्नतज्या = नतोत्क्रमज्या

इन तीन श्लोकोंके नियम ३४-३५ श्लोकोंमें लिखे हुए नियमके विलोम हैं इस लिए इनकी उपपत्ति भी वही है। हाँ, यहाँ छायासे दृग्ज्या अर्थात् नतांशज्याका मान १३ वें श्लोकमें बतलाये गये नियमकी तरह जानना चाहिए। यह पहले ही बतलाया गया है कि शंकु और छायाकर्णके बीचका कोण नतांश होता है इसलिए छायाको छायाकर्णसे भाग देनेपर दशमलव भिन्नमें तथा इस फलको त्रिज्यासे गुणा करनेपर कलाओंमें नतांशज्याका मान निकल आवेगा।

इस रीतिके सम्बन्धमें पंडित इन्द्रनारायण जी द्विवेदी लिखते हैं, यद्यपि ३४-३५ श्लोकोंके विपरीत गणनासे ही ऊपरके श्लोकों में नतकाल बनानेकी विधि कही गयी है तथापि इसी रीतिसे नतकालमें कुछ अंतर आ जाता है इसीसे भास्कराचार्यने इसे सुधार दिया है देखो सिद्धान्त शिरोमणि।"*

परन्तु मेरी समझमें यह अंतर इसलिए नहीं पड़ता कि नियम अशुद्ध है वरन् इसका कारण छायाकी नापकी स्थूलता है। यदि छाया दो तीन दशमलव स्थानतक ठीक ठीक नापी जाय और गुणा भागमें भी स्थूलता न आने पावे तो इस रीति से नतकाल जानने में कोई अशुद्धि नहीं हो सकती।

---

*देखो हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे प्रकाशित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ ६६***

उदाहरण १—यदि प्रयागमें किसी समय छाया १४·३३ अंगुल हो और सूर्यकी क्रान्ति १५° उत्तर हो तो पूर्व या पच्छिम नतकाल बतलाओ और यह भी बतलाओ कि घड़ीमें क्या बजा है।

सिद्धान्तीय रीति—

छाया = १४·३३ अंगुल

$\therefore$ छाया कर्ण $= \sqrt{१२^२ + (१४·३३)^२} =$ १८·६९ अंगुल

$\therefore$ दृग्ज्या $= \frac{१४·३३ \times ३४३८}{१८·६९} =$ २६३६ कला

$\therefore$ शंकु $= \sqrt{३४·३८^२ — २६·३६^२} =$ २२०७ कला

$\therefore$ छेद $= \frac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६}$

और उन्नतज्या $= \frac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६} \times \frac{३४३८}{३३२१} =$ २५२९ काल

अन्त्या = ३८७६ (पहिलेकी तरह)

$\therefore$ नतोत्क्रमज्या = ३८७६–२५२९ = १३४७ कला

$\therefore$ नतकाल = १३४७ कलाका (उत्क्रमज्याके अनुसार) धनु
= ५२°३२′ [देखो पृष्ठ १७९
= ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड

यदि नतकाल पूर्व हो तो १२ घंटेमेंसे घटानेपर और पच्छिम हो तो १२ घंटेमें जोड़नेपर धूप घड़ीका समय ज्ञात होगा।

$\therefore$ यदि पूर्व नतकाल हो तो धूप-घड़ीमें

१२ घंटा–३ घंटा ३० मि० ८ सेकंड=८ घंटा २६ मि ५२ सेकंड होगा।

और यदि पच्छिम नतकाल हो तो धूप-घड़ीमें मध्याह्न-के उपरान्त ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड बीता है अर्थात् ३ बजकर ३० मिनट और ८ सेकंड हुआ है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि घड़ीका यह समय शुद्ध स्थानीय काल है। इसको रेलवेके समयसे मिलानेके लिए काल-समीकरण संस्कार तथा देशान्तर संस्कार करना पड़ेगा जिसकी चर्चा इसी अध्यायके अंतमें की जायगी।

नवीन रीति—

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४\cdot३३}{१२} = १\cdot१९४१$$

$$\therefore \text{नतांश} = ५०^\circ३'$$

$$\therefore \text{शंकु} = \text{नतांश कोटिज्या} = \text{कोज्या } ५०^\circ३' = \cdot६४२१$$

समीकरण (ख) में सिद्ध किया गया है कि

नतांश कोटिज्या

$$= (\text{नतकोटिज्या} + \text{चरज्या}) \times \text{अक्षकोटिज्या} \times \text{क्रान्ति कोटिज्या}$$

$$\therefore \cdot६४२१ = (\text{नत कोटिज्या} + \cdot१२७३) \times \cdot६०३२ \times \cdot९९५९$$

$$= (\text{नत कोटिज्या} + \cdot१२७३) \times \cdot८०२४$$

$$\therefore \text{नत कोटिज्या} + \cdot१२७३ = \frac{\cdot६४२१}{\cdot८०२४} = \cdot७३६०$$

$\therefore$ नत कोटिज्या = ·७३६०–·१२७३ = ·६०८७

$\therefore$ नतकाल = ५२°३०′

= ३ घंटा ३० मिनट

इसलिए यदि पूर्व नत है तो समय होगा ८ बज कर ३० मिनट और पच्छिम नत है तो साढ़े तीन बजा रहेगा।

नवीन रीतिसे नतकाल निकालनेमें और सरलता होगी यदि समीकरण (१) से सीधे ही काम लिया जाय। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

उदाहरण २—छाया = १४·३३ अंगुल और क्रान्ति = १५° उत्तर तो प्रयागमें नतकाल क्या है?

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४·३३}{१२} = १·१९४१$$

$\therefore$ नतांश = ५०°३′

$\therefore$ कोज्या (नतकाल)

$$= \frac{\text{कोज्या } ५०°३′ - \text{ज्या } २५°२५′ \times \text{ज्या } १५°}{\text{कोज्या } २५°२५′ \times \text{कोज्या } १५°}$$

$$= \frac{·६४२१ - ·४२९२ \times ·२५८८}{·९०३२ \times ·९६५९}$$

$$= \frac{·६४२१ - ·१११९}{·८७२४}$$

$$= \frac{·५३१०}{·८७२४}$$

$$= ·६०८७$$

∴ नतकाल $= ५२^\circ ३०' =$ ३ घंटा ३० मिनट

उदाहरण ३—यदि छाया २५·६१३ अंगुल और सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति १५° हो तो नतकाल बतलाओ—

स्पर्श नतांश $= \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{२५·६१३}{१२} = २·१५६४$

∴ नतांश $= ६५^\circ ६'$

यहां क्रान्ति दक्षिण है इसलिए ध्रुवांतर ९०° से अधिक है और समीकरण (१) में कोज्या (ध्रुवांतर) अथवा ज्या (क्रान्ति) ऋणात्मक होगी।

इसलिए कोज्या (नतकाल)

$$= \frac{\text{कोज्या नतांश} + \text{ज्या (अक्षांश)} \times \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } ६५^\circ ६' + \text{ज्या } २५^\circ २५' \times \text{ज्या } १५}{\text{कोज्या } २५^\circ २५' \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{·४२०२ + ·४२९२ \times ·२५८८}{·९०३२ \times ·९६५९}$$

$$= \frac{·४२०२ + ·१११११}{·८७२४} = \frac{·५३१३}{·८७२४} = ·६०९०$$

∴ नतकाल $= ५२^\circ २९' =$ ३ घंटा २९ मिनट ५६ सेकंड

किसी समयकी कर्णाग्रा जानकर सूर्य का भोगांश निकालना—

इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या स्वकर्णाङ्गुलभाजिता ।
क्रान्तिज्या सात्रिजीवाघ्नी परमापक्रमोद्धृता ॥४०॥
तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदैस्तत्र भवो रविः ॥४१॥

अनुवाद—(४०) इष्टकालकी अग्रा अर्थात् कर्णाग्राको लम्बज्यासे गुणा करके इष्टकालके छाया-कर्णसे भाग दे दो तो भागफल सूर्यकी क्रान्तिज्या होगी। इसको त्रिज्यासे गुणा करके परमापक्रमज्यासे भाग देकर भागफलका धनु बनाओ। फिर सूर्य जिस राशिमें हो उसका पद बनाकर सायन भोगका निश्चय (१७-१९) श्लोकोंके अनुसार करो।

विज्ञान भाष्य—इसका सारांश यह है:—

$$\frac{\text{कर्णाग्रा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \text{क्रान्तिज्या}$$

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{परमापक्रमज्या}} = \text{सूर्यका सायन भोगांश}$$

पहले नियममें इष्टकालकी अग्रा (कर्णाग्रा अथवा कर्ण-वृत्ताग्रा) से सूर्यकी क्रान्ति जाननेकी रीति बतलायी गयी है जो २७ वें और २२ वें श्लोकोंका विलोम रूप है [देखो २२ वें श्लोकका समीकरण (४)]

दूसरा नियम जिससे क्रान्ति जानकर सूर्यका सायन भोगांश निकाला जाता है इसी अध्याय के १७-१९ श्लोकोंमें तथा स्पष्टाधिकार के २८ वें श्लोकोंमें आगया है। इसलिए यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

छाया की नोक जिस मार्ग पर चलता है वह खींचना—

इष्टेह्नि मध्ये प्राक्पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे ॥ ४१ ॥
मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक् सूत्रेण भाभ्रमः।

अनुवाद—जिस दिन शंकुकी छायाकी नोकका मार्ग

खींचना हो उस दिन मध्याह्नके पहले और पीछे छायाकी नोकके तीन विन्दु निश्चित करो। पहले और दूसरे तथा दूसरे और तीसरे विन्दुओंसे तिमि बनाओ। प्रत्येक तिमिके सामान्य विंदुओंपर जाती हुई रेखाओंको इतना बढ़ाओ कि वे मिल जाँय। जिस विन्दुपर मिलें उसको केन्द्र मानकर छायाकी नोकके तीनों विन्दुओंपर जाती हुई एक परिधि खींचो। बस यही परिधिखंड छायाकी नोकका मार्ग भाभ्रम रेखा उस दिन होगा।

विज्ञान भाष्य—यथार्थमें छायाकी नोकका मार्ग वृत्ताकार नहीं होता वरन् अतिपरवलय (hyperbola) के आकारका होता है। इसलिए यह नियम अशुद्ध है जिसको भास्कराचार्य, रंगनाथ जी इत्यादि सभीने स्वीकार किया है। इसलिए इसपर बहुत विचार करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

लंका और इष्ट स्थानमें सायन मेषादि राशियोंके उदयकाल जाननेकी रीति—

त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः ॥४१॥
क्रमादेकाद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक्।
स्वाधोऽधः परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ॥४२॥
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्क हिमांशवः।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥ ४३ ॥
व्यस्ताव्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः।
उत्क्रमेणषडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः ॥ ४४ ॥

अनुवाद—(४१, ४२) एक, दो और तीन राशियोंकी ज्याओं-को क्रमसे तीन राशियोंकी द्युज्यासे गुणा कर दो और गुणन-फलोंको क्रमसे एक, दो और तीन राशियोंके अहोरात्रार्धों (द्युज्याओं) से भाग दे दो, भजनफलोंके धनु बनाकर अलग अलग रखो। पहला लंकामें मेष राशिका उदयासु है, पहले-को दूसरेसे घटानेपर जो शेष आता है वह लंकामें वृष राशिका उदयासु है और दूसरेको तीसरेसे घटानेपर जो शेष होता है वह लंकामें मिथुन राशिका उदयासु है। (४३) इनके मान क्रमानुसार १६७०, १७९५ और १९३५ असु अथवा प्राण हैं। इनसे इष्ट स्थानके अपने अपने चरखण्ड घटानेपर इष्ट स्थानके मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु जाने जाते हैं। (४४) यही उलटे क्रमसे कर्कादि तीन राशियोंके लंकामें उद-यासु हैं। इन्हींमें उलटे क्रमसे अपने अपने चरखंडोंको जोड़नेसे इष्ट स्थानके कर्क, सिंह और कन्याके उदयासु होंगे। यही ६ उदयासु उलटे क्रमसे तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीनके उदयासु हैं।

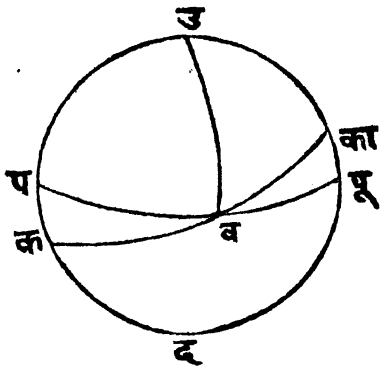
विज्ञान भाष्य—सायन मेष अर्थात् वसंत संपात विन्दु क्षि-तिजके पूर्व विन्दुपर जिस क्षण आता है उस समयसे सायन मेष राशिका उदय होने लगता है और जिस क्षणतक वसंत सम्पातसे क्रान्तिवृत्तका ३० अंश क्षितिजके ऊपर नहीं आ जाता उस समयतक सायन मेष राशिका उदय होता रहता है। जितने समयमें वसंत सम्पात विन्दुसे क्रान्तिवृत्तका ३० अंश उदय होता है उसको सायन मेष राशिका उदयकाल कहते हैं। यह सूक्ष्मताके लिए असुओंमें प्रकट किया जाता है। इसीलिए इस समयको सायन मेषराशिका उदयासु कहते हैं। इसके पश्चात्

क्रान्तिवृत्तका अगला ३० अंश जितने समयमें उदय होता है उसको सायन वृष राशिका उदयकाल या उदयासु कहते हैं। इसी प्रकार अन्य सायन राशियोंके उदयासुओंके बारेमें समझना चाहिए।

किसी स्थानमें कौन राशि कितने समयमें उदय होती है यह जाननेके लिए पहले यह जानना सुगम होता है कि वह राशि विषुवत् रेखा (निरक्षदेश equator) पर कितने समय में उदय होती है। जब यह ज्ञात हो गया तब अपने स्थानका उदयकाल जाननेके लिए निरक्षदेशके उदयकालमें कुछ संस्कार करना पड़ता है। हमारे ज्योतिष सिद्धान्तमें विषुवत् रेखा और उज्जैनको जाती हुई देशान्तर रेखाके सामान्य विन्दुपर लंका स्थित मानी गयी है। इसलिए निरक्षदेशके उदयासुको लंकाके उदयासु कहा गया है। लंकामें मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु जाननेका नियम ४१ श्लोकके उत्तरार्ध और ४२वें श्लोकमें दिया हुआ है जिसकी उपपत्ति चित्र ५८ से समझमें आवेगी।

पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण जितने समयमें विषुवद्वृत्त का व पृ भाग क्षितिजके ऊपर आता है उतने ही समयमें क्रान्तिवृत्तका व का भाग भी क्षितिजके ऊपर आता है। इसलिए व का के उदय होनेमें उतना ही समय लगता है जितना वपृ के उदय होनेमें लगता है। परन्तु पूरे विषुवद्वृत्त (३६०°) के उदय होनेके समयको एक नाक्षत्र दिन* कहते हैं

* पृष्ठ ११ पर बतलाया गया है कि किसी तारेके उदय होनेके समय-से उसके फिर उदयतकके समयको नाक्षत्र अहोरात्र या नाक्षत्र दिन



चित्र ५६

उ, प, द, पू—लंकाके क्षितिजके क्रमसे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

प व पू—विषुवद्वृत्त जो लंकामें सममण्डल भी होता है।

क व का—क्रान्तिवृत्त।

व—वसन्त सम्पात अथवा सायन मेषराशिका आदि विन्दु।

उ—उत्तरी ध्रुवका भी स्थान है।

कहते हैं। इसलिए वसन्त सम्पात विन्दुके उदय होनेके समयसे उसके फिर उदय होनेतकके समयको भी नाक्षत्र दिन नहीं समझना चाहिए क्योंकि इतने समयमें यह विन्दु **अयन चलन** के कारण लगभग ०·१४ विकला पश्चिम हो जानेके कारण ०·००२ असु पहले उदय होगा। परन्तु यह भेद इतना सूक्ष्म है कि व्यवहारमें दोनों परिभाषाओंको एक ही समझ लेनेमें कोई हानि नहीं। आजकल पाश्चात्य ज्योतिषी नाक्षत्र दिनकी परिभाषा वही करते हैं जो पीछे दी हुई है।

ओ २१६०० असुओंके समान होता है (पृष्ठ ९, १०); इसलिए विषुवद्वृत्तके ३६०° अथवा २१६०० कलाके उदय होनेमें जब २१६०० असुओंका समय बीतता है तब १ कलाके उदय होनेमें १ असुका समय लगेगा। इसलिए यदि व पू का मान कलाओंमें ज्ञात हो जाय तो उतने ही असुओंमें व का का उदयकाल निकल आवेगा।

अब देखना है कि व का और व पू का परस्पर क्या सम्बन्ध है। व पू का एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका व पू का कोण समकोण है और पू व का कोण विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके बीचका कोण अर्थात् सूर्यकी परम क्रान्ति है। इस गोलीय त्रिभुजका भुज पू का क्रान्तिवृत्तके का विन्दुकी क्रान्ति, भुज व का, का विन्दुका सायन भोगांश और भुज व पू, का विन्दुका विषुवांश है (देखो पृष्ट २९४) इसलिए नेपियरके पहले नियमके आधारपर व का और व पू का सम्बन्ध जाना जा सकता है क्योंकि कोटिज्या ∠ का व पू = स्पर्श रेखा (व पू) × कोटि स्पर्शरेखा (व का)

$$\text{अथवा, विषुवांशकी स्पर्श रेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{सायन भोगांशकी कोटि स्पर्श रेखा}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } २३^\circ\ २७'}{\text{कोस्परे (सायन भोगांश)}}$$

परन्तु हमारे आचार्य स्पर्शरेखा या कोटि-स्पर्श-रेखाका व्यवहार नहीं करते थे इसलिए उन्होंने गोलीय त्रिभुज उ व का से इनका सम्बन्ध इस प्रकार निकाला था :—

$$\frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या(उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व उ का)}}$$

परन्तु कोण व उ का = धनु व पू

$$\therefore \frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या (उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व पू)}}$$

$$\therefore \text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या (व का)} \times \text{ज्या (उ व का)}}{\text{ज्या (उ का)}}$$

परन्तु व का = 'का' का सायन भोगांश

$\angle$ उ व का = $\angle$ उ व पू $-$ $\angle$ का व पू

= 90° $-$ सूर्यकी परम क्रान्ति

$\therefore$ ज्या (उ व का) = सूर्यकी परमक्रान्ति कोटिज्या

= २४°की कोटिज्या(सिद्धान्तीय मतसे)

= तीन राशिकी द्युज्या (पृष्ठ २०४)

ज्या (उ का) = ज्या (उ पू $-$ का पू)

= ज्या (९०° $-$ 'का' की क्रान्ति)

= 'का' की क्रान्ति कोटिज्या

= 'का' की द्युज्या

इसलिए, ज्या (वपू)

$$= \frac{\text{'का' के भोगांशकी ज्या} \times \text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{'का' की क्रान्ति कोटिज्या}} \quad \ldots\ldots(१)$$

इससे व पू का जो मान कलाओंमें आवेगा वही असुओंमें 'का' के भोगांशका उदयकाल होगा। इस साधारण समीकरणमें 'का' के भोगांश की जगह जो धनु रखा जायगा उसीसे लंकाके उदयासु ज्ञात हो जायंगे। यदि इसकी जगह १०°,

६०° और ६०° रखे जायं तो ३०,६० और ६० अंशोंके भोगांशों-के उदयासु अर्थात् सायन मेष राशि, सायन मेष और वृष राशि तथा सायन मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु क्रमसे आ जायंगे। सायन मेष और वृष राशियोंके उदयासुओंमेंसे सायन मेष राशिके उदयासु घटाये जायं तो सायन वृष राशिके उदयासु और सायन मेष; वृष और मिथुन राशियोंके उदयासुओंमेंसे सायन मेष और वृषके उदयासु घटाये जायं तो सायन मिथुनके उदयासु प्राप्त होंगे।

यदि समीकरण (१) में 'का' का भोगांश ६०° हो तो 'का' की क्रान्ति सूर्यकी परम क्रान्ति होगी। ऐसी दशामें 'का' के भोगांशकी ज्या का मान सिद्धान्तीय रीतिसे ३४३८ कला और आधुनिक रीतिसे १ होगा। इसलिये 'का' की क्रान्ति-कोटिज्या परम-क्रान्ति-कोटिज्या के समान होनेसे समीकरणका दाहना पक्ष ३४३८ या १ के समान होगा जिससे व पू का मान भी ६०° के समान होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब व का ६०° होगा तब व पू भी ६०° होगा। इसलिये मेषादि तीन राशियोंके उदयासु ६० × ६० = ५४०० होंगे, जो १५ नाक्षत्र घड़ी या ६ नाक्षत्र घंटोंके समान हैं।

४२वें श्लोकके पूर्वार्धमें लंकामें मेष, वृष और मिथुन राशियोंके उदयासु क्रमसे १६७०, १७९५ और १९३५ दिये गये हैं जो समीकरण (१) से उपर्युक्त नियमके अनुसार प्राप्त हुए हैं और नीचे लिखे उदाहरणसे स्पष्ट होंगे :—

उदाहरण—लंकामें वृष राशिके उदयासु क्या हैं ?

पहले मेष राशिके उदयासु जानना चाहिए। इसके लिए समीकरण (१) में 'का' का भोगांश ३० रखना होगा। इस

समय 'का' सायन मेषका अन्तिम विन्दु और सायन वृषका आदि विन्दु है जिसकी क्रान्ति स्पष्टाधिकारके २८वें श्लोकसे जानी जा सकती है।

$$\text{'का' की क्रान्तिज्या} = \frac{\text{ज्या } ३०^\circ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{१७१९ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= ६९८ \text{ कला}$$

$\therefore$ का की क्रान्ति = ७०३ कला = ११°४३′

७०३ कलाकी उत्क्रमज्या = ७२ कला

$\therefore$ का की क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ — ७२ [देखो पृष्ठ ३०५

= ३३६६ कला

परम क्रान्ति कोटिज्याका मान जाननेके लिए पहले परम क्रान्ति अर्थात् २४° की उत्क्रमज्या जानना चाहिए जो २९८ कला है।

इसलिए परम क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ — २९८ = ३१४० कला

$\therefore$ समीकरण (१) से

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३००^\circ \times ३१४}{३३६६}$$

$$= \frac{१७१९ \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= १६०४'$$

$\therefore$ व पू = २७° ५०′ = १६७०′

अर्थात् मेष राशिके उदयासु १६७० हैं।

अब सायन मेष और वृष राशियोंके सम्मिलित उदयासु जानना चाहिए।

इस समय 'का' का भोगांश ६०° और इसकी क्रान्ति सायन वृषके अंतिम विन्दुकी क्रान्ति होगी।

सायन वृषके अन्तकी क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०^\circ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{२९७८ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= १२१० \text{ कला}$$

∴ सायन वृषके अन्तकी क्रान्ति $= २०^\circ ३८'$

परन्तु $२०^\circ ३८'$ की उत्क्रमज्या $= २२२'$

∴ $२०^\circ ३८'$ की कोटिज्या $= ३४३८ - २२२ = ३२१६'$

∴ समीकरण (१) से,

$$\text{ज्या (व पृ)} = \frac{\text{ज्या } ६०^\circ \times ३१४०}{३२१६}$$

$$= \frac{२९७८ \times ३१४०}{३२१६}$$

$$= २९०८ \text{ कला}$$

∴ $\text{व पृ} = ५७^\circ ४८' = ३४६८'$

∴ मेष और वृष राशियोंके सम्मिलित उदयासु $= ३४६८$

परन्तु मेष राषिके उदयासु $= १६७०$

∴ वृष राशिके उदयासु $= १७९८$

श्लोकमें इसकी जगह १७६५ असु लिखे हैं।

यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है कि सायन मेष, वृष और मिथुनके सम्मिलित उदयासु ५४०० हैं और यह सिद्ध हुआ है कि सायन मेष और वृषके सम्मिलित उदयासु ३४६८ हैं, इसलिए मिथुनके उदयासु इन दोनोंके अंतर अर्थात् १९३२ के समान है। श्लोकमें १९३५ दिया है। यह अंतर गणनाकी स्थूलताके कारण है।

अब यह सिद्ध हो गया है कि सूर्यकी परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् सं० १९८० वि० में २३°२६′५७″·३५ है और प्रतिवर्ष ०″·४६८ के लगभग घटती जाती है [देखो पृष्ठ ३९४—३९५]। इस प्रकार परम क्रान्तिमें १ कलाकी कमी प्रायः सवा सौ वर्षोंमें होती है। इसलिए विक्रमकी २१वीं शताब्दीके पहले ५० वर्षोंतक परम क्रान्तिको २३°२७′ मान कर सायन मेष इत्यादिके उदयासु जाननेमें पर्याप्त सूक्ष्मता होगी।

नवीन रीतिसे २३°२७′ की ज्या = ०·३९७९ जिसे नवीन रीतिसे सूर्यकी परम क्रान्ति ज्या समझना चाहिए।

स्पष्टाधिकारके २८वें श्लोकके अनुसार सायन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ३०° \times ·३९७९}{१} \quad [\text{ नवीन रीतिसे त्रिज्या } = १ \text{ }]$$

$$= ·५ \times ·३९७९ = ·१९९०$$

∴ सायन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति = ११°२९′

इसी प्रकार सायन वृषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०^\circ \times \cdot३९७९}{१}$$

$$= \cdot८६६ \times \cdot३९७९ = \cdot३४४६$$

∴ सायन वृषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति = २०°९′·७

क्रान्तियोंके इन मानोंसे उदयासु जाननेके लिए समीकरण (१) में उचित संशोधन करनेपर, सायन मेषके लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३०^\circ \times \text{ कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } ११^\circ २८'}$$

$$= \frac{\cdot५ \times \cdot९१७५}{\cdot९७९८}$$

$$= \cdot४६८२$$

$$\therefore \text{ व पू} = २७^\circ ५५'$$

∴ सायनमेषके उदयासु = १६७५

सायनमेष और वृषके सम्मिलित उदयासुके लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०^\circ \times \text{ कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } २०^\circ ९\cdot७}$$

$$= \frac{\cdot८६६ \times \cdot९१७५}{\cdot९३८७}$$

$$= \cdot८४६४$$

$$\therefore \text{ व पू} = ५७^\circ ४९'$$

∴ सायनमेष और वृषके उदयासु = ३४६९

∴ सायन वृषके उदयासु = ३४६९ − १६७५
= १७९४

और मिथुनके उदयासु = ५४०० − ३४६९
= १९३१

नेपियरके पहले नियमके आधार पर सायनमेषके उद्-यासु इस समीकरणसे भी ज्ञात हो सकते हैं

$$\text{विषुवांशकी स्पर्शरेखा} = \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ३०^\circ}$$

$$= \frac{\cdot ९१७५}{१\cdot ७३२१}$$

$$= \cdot ५२९७$$

$\therefore$ विषुवांश = $२७^\circ ५४' \cdot ५ = १६७४ \cdot ५$

$\therefore$ सायनमेषके उद्यासु = $१६७४ \cdot ५$

सायनमेष और वृषके विषुवांशकी स्पर्शरेखा

$$= \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ६०^\circ}$$

$$= \frac{\cdot ९१७५}{\cdot ५७७४} = १\cdot ५८९०$$

$\therefore$ विषुवांश = $५७^\circ ४९'$

$\therefore$ सायनवृषके उदयासु = $\cdot ३४६९ - १६७४ \cdot ५$

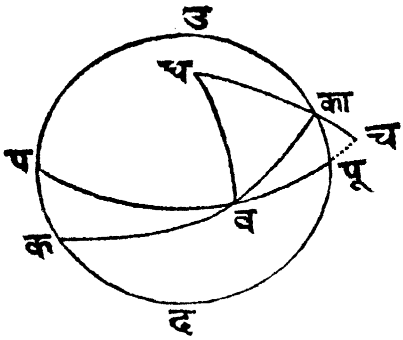
$$= १७९४ \cdot ५$$

परन्तु उन कोणों या धनुओंकी स्पर्शरेखाओंके मान सूक्ष्मतापूर्वक नहीं निकल सकते जो ६०° से अधिक हैं इस लिए यह रीति व्यापक नहीं है।

इस प्रकार लंकामें मेषादि तीन सायन राशियोंके उदय काल यह हुए :—

सायन राशियां	प्राचीन रीतिसे			नवीन बेधोंके अनुसार		
	असुओंमें	पलोंमें	मिनटोंमें	असुओंमें	पलोंमें	मिनटोंमें
मेष	१६७०	२७८	१११	१६७५	२७९	१११·७
वृष	१७९५	२९९	१२०	१७९४	२९९	११९·६
मिथुन	१९३५	३२३	१२९	१९३१	३२२	१२८·७

अब यह देखना है कि विषुवत् रेखाके सिवा किसी अन्य स्थानमें जिसका उत्तरी अक्षांश अ है सायन मेषादि तीन रा-योंके उदयासु क्या हैं।



चित्र ६०

उ पू द प उस स्थानका क्षितिजवृत्त जिसका उत्तरी अक्षांश अ है
ध—उत्तरी आकाशीय ध्रुव
व—वसन्त सम्पात
प व पू—विषुवद्वृत्त
क व का—क्रान्तिवृत्त
पू च—का विन्दुका चर जो क्षितिजके नीचे है।

जिस समय वसन्त सम्पात विन्दु उदय होता रहता है उस समय वह ठीक पूर्व विन्दुपर होता है। इसलिए इस समय क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त दोनों पूर्व विन्दुपर रहते हैं। जितने समयमें क्रान्तिवृत्तका व का भाग क्षितिजके ऊपर आता है उतने ही समयमें विषुवद्वृत्तका व पू भाग क्षितिजके ऊपर आता है इसलिए व का के उदयासु व पू के उदयासु समान हैं। क्रान्तिवृत्तके का विन्दुसे जो ठीक क्षितिज पर ध का च ध्रुवप्रोतवृत्त खींचा गया है जो विषुवद्वृत्तसे तिजके नीचे च विन्दुपर मिलता है। इसलिए विषुवद्वृ

व पू च भाग का विन्दुका विषुवांश है। लंकामें क्रान्तिवृत्तका का विन्दु और विषुवद्वृत्तका च विन्दु एक साथ क्षितिजपर आते हैं जैसा कि अभी बतलाया गया है। परन्तु अ अक्षांशपर पू च भाग क्षितिजके नीचे ही रहता है जब का विन्दु अ अक्षांश-में क्षितिजपर आ जाता है। इसलिए अ अक्षांशके स्थानमें व का के उदयासु व पू के उदयासुओंके समान हैं जो व पू च से पू च घटाने पर आता है। पृष्ठ ३००—३०७में बतलाया गया है कि यही पू च का विन्दुका चर-काल है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि लंकाके उदयासुओंमेंसे चरकाल घटानेपर इष्ट स्थानके उदयासु निकलेंगे। पृष्ठ ३०७में बतलाया गया है कि चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा।

(१) जब व का = ३०°

तब का की क्रान्ति = ११°२८′

इसलिए प्रयागमें जिसका अक्षांश २५°२५′ है, का विन्दुकी चरज्या

= स्पर्श ११°२८′ × स्पर्श २५°२५′

= ·२०२९ × ·४७५२

= ·०९६६

∴ चरांश = ५°३३′

∴ का विन्दुके चरासु = ३३३

∴ प्रयागमें व का के उदयासु = १६७५ − ३३३ = १३४२

अर्थात् प्रयागमें सायनमेषके उदयासु = १३४२

(२) जब व का = ६०°

तब का की क्रान्ति = २०°९′·७ = २०°१०′

इसलिए तब प्रयागमें का की चरज्या

= स्पर्श २०°१०′ × स्पर्श २५°२५′

= ·३६७१ × ·४७५२

= ·१७४५

∴ का का चरांश = १०°३′

∴ का के चरासु = ६०३

∴ प्रयागमें व का के उदयासु = ३४६६ — ६०३

= २८६६

अर्थात् प्रयागमें सायनमेष और वृष राशियां २८६६ असुओंमें उदय होंगी। परन्तु सायनमेष राशि १३४२ असुओंमें उदय होती है। इसलिए सायन वृष राशि २८६६ — १३४२ = १५२४ असुओंमें उदय होगी।

(३) जब व का = ९०°

तब का की क्रान्ति = २३°२७′

∴ प्रयागमें का की चरज्या

= स्परं २३°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·४३३७ × ·४७५२ = ·२०६१

∴ का का चरांश = ११°५४′

∴ का के चरासु = ७१४

∴ प्रयागमें व का के उदयासु = ५४०० — ७१४

= ४६८६

अर्थात प्रयागमें सायनमेष, वृष और मिथुन राशियां ४६८६ असुओंमें उदय होंगी। परन्तु सायन मेष और वृष राशियां २८६६ असुओंमें उदय होती हैं, इसलिए सायन मिथुन राशि ४६८६ — २८६६ = १८२० असुओंमें उदय होगी।

इस तरह यह प्रकट है कि सायन मेषके अन्तिम विन्दुके चरासु ३२३, सायन वृषके अन्तिम विन्दुके चरासु ६०३ और सायन मिथुनके अन्तिम विन्दुके चरासु ७१४ हैं। पहले भी

दूसरेका अन्तर २७०, तथा दूसरे और तीसरेका अन्तर १११ है। इन्हींको वृष और मिथुनके चरखंड ४३वें श्लोकके उत्तरार्धमें कहा गया है जिसका तात्पर्य नीचेके कोष्ठकसे स्पष्ट हो जायगा :—

सायन राशियां	लंकामें उदयासु	चरखंड असुओंमें	प्रयागमें उदयासु
मेष	१६७५	—३३३	१३४२
वृष	१७९४	—२७०	१५२४
मिथुन	१९३१	—१११	१८२०

४४वें श्लोकके पूर्वार्धमें यह बतलाया गया है कि सायन कर्क, सिंह और कन्या राशियोंके उदयासु किस प्रकार ज्ञात होंगे। लंकामें कर्कके उदयासु वहीं होंगे जो मिथुनके हैं, सिंहके वह होंगे जो वृषके हैं और कन्याके वह होंगे जो मेषके हैं। इनमें अपने अपने चरखंड जोड़नेपर इष्ट स्थानके उदयासु निकल आवेंगे जो नीचेके कोष्ठकसे स्पष्ट होगा :—

सायन राशियां	लंकामें उदयासु	चरखंड असुओंमें	प्रयागमें उदयासु
कर्क	१९३१	+१११	२०४२
सिंह	१७९४	+२७०	२०६४
कन्या	१६७५	+३३३	२००८

इसकी उपपत्ति यों है :—

क्रान्तिवृत्तके किसी विन्दु का का विषुवांश जाननेके लिए समीकरण (१) का प्रयोग किया जाता है जो यह है

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{का के भोगांशकी ज्या} \times \text{परमक्रान्ति कोटिज्या}}{\text{का की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनो रीतियोंसे यह सिद्ध है कि किसी कोणकी ज्या उसके परिपूरक (Supplementary) कोण की ज्याके समान होती है [देखो पृष्ठ १८६—१८९] अर्थात् ज्या (क) = ज्या (१८०° — क) जहां क किसी कोणका मान है। इसलिए यह सिद्ध है कि

ज्या (व पू) = ज्या (१८०° — व पू)

और ज्या (का का भोगांश) = ज्या (१८०° — का का भोगांश)

इसलिए ज्या (१८०° — व पू)

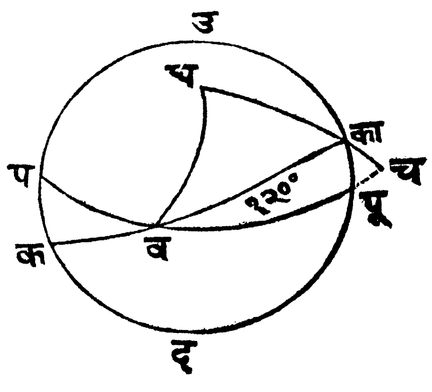
$$= \frac{\text{ज्या (१८०° — का का भोगांश) परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{का की क्रान्ति कोटिज्या}} \cdots (२)$$

ऊपर बतलाया गया है कि जब का का भोगांश अर्थात् वका ६०° होता है तब का का विषुवांश अर्थात् व पू ५७°४९′ होता है, इसलिए समीकरण (२) के अनुसार जब का का भोगांश १८०° — ६०° = १२०° होगा तब इसका विषुवांश १८०° — ५७°४९′ = १२२°११′ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जितने समयमें वसंत संपातसे क्रान्ति वृत्तका १२० अंश लंकामें उदय होता है उतने समयमें विषुवद्वृत्तका १२२°११′ उदय होता है। परन्तु क्रान्तिवृत्तकी पहिली तीन राशियां जितनी देरमें उदय होती हैं उतनी देरमें विषुवद्वृत्तका भी ९०° उदय होता है। इसलिए चौथी राशि जितने समयमें उदय होती है उतने समयमें विषुवद्वृत्तका १२२°११′ — ९०° = ३२°११′ उदय होता है।

परन्तु विषुवद्वृत्तका ३२°११' = १६३१', इसलिए इसके ३२°११' के उदय होनेका समय = १६३१ असु। इसलिए सायन कर्क राशिके उदयासु १६३१ हैं जो सायन मिथुनके भी उदयासु हैं।

इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि सायन सिंह राशिके उदयासु सायन वृष राशिके उदयासुओंके और सायन कन्या राशिके उदयासु सायन मेष राशिके उदयासुओंके समान हैं।

अब यह जानना है कि सायन कर्क राशिके उदयासु किसी अन्य स्थानमें, मान लो प्रयागमें, क्या होंगे।



चित्र ६१

यह चित्र ६०वें चित्रके ही समान है अन्तर केवल यह है कि उसमें व का ९०° से कम है और यहां व का १२०° के समान है।

चित्रसे यह प्रकट है कि व का जो १२०° के समान है प्रयागमें उतने ही समयमें उदय होगा जितने समयमें व पू उदय होता है। परन्तु व का का विषुवांश व पू च के समान है जिसमें पू च चरांश क्षितिजके नीचे है। इसलिए

व पू = व पू च — पू च

परन्तु का विन्दुकी क्रान्ति सायन वृषके अंतिम विन्दु की क्रान्तिके समान अर्थात् २०°१०′ है क्योंकि वसंत संपात विन्दुसे ६०° के भोगांश तक क्रान्ति जिस क्रमसे बढ़ती है उसी क्रमसे ६०° से १८०° तकके भोगांश तक वह घटती भी है अर्थात् सायन वृषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति सायन कर्कके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिके समान होती है और सायन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति सायन सिंहके अन्तिम विन्दुकी क्रान्तिके समान होती है, इत्यादि।

इसलिए पू च = १०°३′

परन्तु व पू च = १२२°११′

क्योंकि यह १२०° के भोगांशका विषुवांश है।

इसलिये व पू = १२२°११′ — १०°३′

= ११२°८′

= ६७२८′

∴ १२० भोगांशके उदयासु = ६७२८

परन्तु प्रथम तीन राशियोंके उदयासु = ४६८६

∴ कर्क राशिके उदयासु = ६७२८ — ४६८६

= २०४२

जो लंकामें कर्कके उदयासुओंमें १११ जोड़नेसे आता है।

इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि १५० भोगांश अर्थात् मेषसे सिंह ५ राशियोंतकके उदयासु प्रयागमें क्या होंगे। फिर प्रथम चार राशियोंके उदयासु घटानेपर सिंह राशिके उदयासु निकल आवेंगे जो लंकामें सिंहके उदयासुओंमें २७० जोड़नेसे भी प्राप्त हो सकते हैं।

सायन कन्या राशिका अन्तिम विन्दु जिसका भोगांश १८० है विषुववृत्तसे फिर मिल जाता है अर्थात् यही शरद

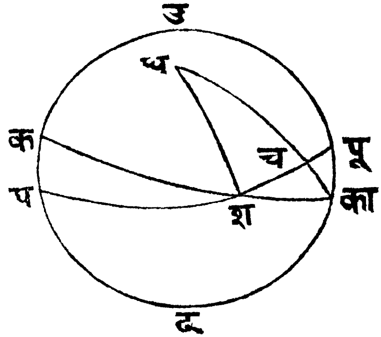
संपातका स्थान है इसलिए यह वसंत संपातकी तरह ठीक पूर्वमें उदय होता है और इसका विषुवांश भी १८०° होता है।

इसी प्रकार सायन मेषसे सायन कन्या तककी प्रत्येक राशिके उदयासु लंकामें तथा उत्तरी गोलार्द्धके अन्य स्थानोंमें क्या होते हैं जाना जा सकता है। अब यह दिखलाना है कि सायन तुलासे लेकर सायन मीन तककी प्रत्येक राशिके उदयासु क्या हैं। ४४वें श्लोकके उत्तरार्द्धमें इसके लिए बहुत ही सरल नियम यह दिया हुआ है कि मेषसे कन्या तकके जो उदयासु हैं वही उलटे क्रमसे तुलासे मीन तकके उदयासु हैं अर्थात् कन्याके उदयासु तुलाके उदयासुके समान हैं, सिंहके उदयासु वृश्चिकके समान हैं, इत्यादि।

नीचेके कोष्ठकसे यह और भी स्पष्ट होगा:—

सायन राशियां	लंकामें उदयासु	चरखंड असुओंमें	प्रयागमें उदयासु	सायन राशियां
१ मेष	१६७५	—३३३	१३४२	१२ मीन
२ वृष	१७९४	—२७०	१५२४	११ कुंभ
३ मिथुन	१९३१	—१११	१८२०	१० मकर
४ कर्क	१९३१	+१११	२०४२	९ धनु
५ सिंह	१७९४	+२७०	२०६४	८ वृश्चिक
६ कन्या	१६७५	+३३३	२००८	७ तुला

इसकी उपपत्ति बतलानेके लिये केवल यह बतलाना पर्याप्त होगा कि तुलाके उदयासु क्या हैं।



चित्र ६२

यह चित्र ५६, ६० चित्रोंके समान हैं अन्तर केवल इतना है कि यहां श शरद सम्पात का स्थान है जहांसे क्रान्तिवृत्त विषुवद्वृत्तके दक्खिन हो जाता है। का च ध क्रान्तिवृत्तके का विन्दुका ध्रुवप्रोतवृत्त।

चित्र ६२ से प्रकट है कि जितनी देरमें शरद्-संपातसे क्रान्ति वृत्तका श का भाग प्रयागके क्षितिज पर आवेगा उतनी ही देरमें विषुवद्वृत्तका श पू भाग भी क्षितिजपर आवेगा।

परन्तु श पू = श च + च पू

यदि का विन्दु सायन तुलाका अन्तिम विन्दु माना जाय तो श का ३० अंशके समान होगा। श च का समकोण गोलीय त्रिभुज है क्योंकि का च ध, का विन्दुका ध्रुवप्रोतवृत्त है जो विषुवद्वृत्तसे समकोण पर होता है। इसलिए इस समकोण गोलीय त्रिभुजमें नेपियरके नियमोंके अनुसार

कोज्या (चशका) = स्परे (चश) × कोस्परे (शका)

अर्थात् स्परे (चश) = $\frac{\text{कोज्या } १३^\circ२७'}{\text{कोस्परे } ३०^\circ}$

= ·५२६७ [देखो पृष्ठ ४५३

∴ चश = २७°४४'·५ = १६७४·५ जो लंकामें कन्याके उद्-यासु हैं।

चरांश चपू का मान जाननेके लिए समकोण गोलीय त्रिभुज पू च का से काम लेना चाहिए जिसमें चका का विन्दुकी दक्षिण क्रान्ति है। यह ११°२६' के समान होती है अब श का ३०° के समान होता है। च पू का कोण विषुवद्वृत्त और क्षितिज वृत्तके बीचका कोण है जो प्रयागके लम्बांशके समान होता है (देखो पृ० ३७८)

इसलिये नेपियरके नियमके अनुसार

ज्या (च पू) = स्परे (चका) × कोस्परे (च पू का)

= स्परे ११°२६' × कोस्परे (९०° − २५°२५')

= स्परे ११°२६ × स्परे २५°२५'

= ·०९६६

∴ च पू = ५°३३' = ३३३' [देखो पृष्ठ ४५६

इसलिए श पू = १६७४·५ + ३३३

= २००८ कला

इसलिए श का अर्थात् सायन तुलाके उदयासु (प्रयागमें) वही हैं जो सायन कन्याके उदयासु हैं।

इसीप्रकार यह भी सिद्ध हो सकता है कि सायन वृश्चिक, धनु इत्यादिके उदयासु भी क्रमानुसार सायन सिंह, कर्क इत्यादिके उदयासु हैं।

नीचेकी सारिणीसे यह प्रकट होगा कि क्रान्तिवृत्तके १२ प्रधान विन्दुओंके भोगांश, विषुवांश, क्रान्ति क्या हैं :—

भोगांश		विषुवांश		क्रान्ति उत्तर	
अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला
०	०	०	०	०	०
३०	०	२७	५५	११	२६
६०	०	५७	४६	२०	१०
६०	०	६०	०	२३	२७
१२०	०	१२१	११	२०	१०
१५०	०	१५२	५	११	२६
१८०	०	१८०	०	०	०
				क्रान्ति दक्षिण	
२१०	०	२०७	५५	११	२६
२४०	०	२३७	४६	२०	१०
२७०	०	२७०	०	२३	२७
३००	०	३०२	११	२०	१०
३३०	०	३३२	५	११	२६
३६०	०	३६०	०	०	०

इससे प्रकट है कि लंकामें सायन मेष; वृष इत्यादि राशियोंके जो उदयासु हैं उन्हींको कला समझकर जोड़ लेने-

से विषुवांश आते हैं। परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि क्रान्ति-वृत्तके किसी ऐसे विन्दुका विषुवांश जानना है जो उपर्युक्त १२ प्रधान विन्दुओंके सिवा अन्य विन्दु हैं तो अनुपातकी रीतिसे काम नहीं चलेगा, क्योंकि कुछ स्थूलता हो जाती है। इसके लिए सबसे अच्छी रीति यही है कि चित्र ५८ और समीकरण (१) की रीतिसे काम लिया जाय।

अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे सायन राशियोंके उदयास्तु जाने जा सकते हैं परन्तु आजकल निरयन राशियों-का भी प्रचार है जिनका आरम्भ मेष तथा अश्विनीके आदि विन्दुसे होता है। यह विन्दु विक्रमकी ६ठीं शताब्दीमें वसंत संपातका स्थान था (देखो ६–१० श्लोकोंका विज्ञानभाष्य)। इसलिये आवश्यक है कि निरयन राशियोंके उदयास्तु भी संक्षेपमें बतला दिये जांय।

यह बतलाया गया है कि सायन भोगांशसे अयनांश घटा दिया जाय तो निरयन भोगांश आता है, परन्तु अयनांश प्रति-वर्ष ५८″·६६ के लगभग बढ़ता है (देखो पृष्ठ ३६८) और १९८२ वि० की मेष संक्रान्तिके समय यह २२°४१′ के लगभग था (देखो पृष्ठ ३७२)। सुविधाके लिये विकलाओंकी गणना छोड़ दी गई है जिससे व्यवहारमें बहुत कम अन्तर पड़ता है। अयनांश २२°४१′ माननेका अर्थ यह है कि जब सायन भोगांश २२°४१′ होता है तब निरयन भोगांश शून्य होता है अर्थात् तब निरयन मेष राशिका आरम्भ होता है, और जब सायन भोगांश ५२°४१′ होता है तब निरयन मेष राशिका अंत तथा निरयन वृषका आरम्भ होता है। इसी तरह मिथुन, कर्क इत्यादि निरयन राशियोंका निश्चय कर लेना चाहिए।

निरयन मेष राशिके उदयास्तु जाननेके लिए यह देखना पड़ता है कि क्रान्तिवृत्तका वह भाग जो २२°४१′ और ५२°४१′

सायन भोगांशोंके बीचमें है कितने समयमें उदय होता है। इसलिये पहले यह जानना आवश्यक है कि वसंत सम्पात और निरयन मेषके आदि विन्दुके बीचका भाग कितने समयमें उदय होता है। फिर यह जानना पड़ता है कि वसंत सम्पात और निरयन मेषके अन्तिम विन्दुके बीचका भाग कितने समयमें उदय होता है। दोनोंका जो अन्तर आता है वही निरयन मेषके उदयासु हैं। इसके लिए निरयन मेषके आदि और अन्तिम विन्दुकी क्रान्तियां भी जाननी पड़ती हैं।

निरयन मेषके आदि विन्दुकी क्रान्तिज्या

$= \text{ज्या } २२^\circ ४१' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'$ [पृष्ठ ४५१

$= \cdot ३८५६ \times \cdot ३९७९$

$= \cdot १५३४$

$\therefore$ निरयन मेषके आदि विन्दुकी क्रान्ति $= ८^\circ ४९'$

निरयन वृषके आदि विन्दुकी क्रान्तिज्या

$= \text{ज्या } ५२^\circ ४१' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'$

$= \cdot ३१६५$

$\therefore$ निरयन वृषके आदि विन्दुकी क्रान्ति $= १८^\circ २७'$

यही निरयन मेषके अन्तिम विन्दुकी क्रान्ति भी है।

निरयन मेषके आदि विन्दुके विषुवांशकी ज्या

$$= \frac{\text{ज्या } २२^\circ ४१' \times \text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } ८^\circ ४९'}$$

$$= \frac{\cdot ३८५६ \times \cdot ९१७५}{\cdot ९८८२}$$

$= \cdot ३५८०$

∴ विषुवांश = २०°५६′ = १२५६′

∴ लंकामें अयन भागके उदयासु = १२५६

प्रयागमें निरयन मेषके आदि विन्दुकी चरज्या

= स्परे ८°४६′ × स्परे २५°२५′

= ·१५५१ × ·४७५२

= ०७३७

∴ चरांश = ४°१४

∴ निरयनमेषके आदि विन्दुके चरासु = २५४

∴ प्रयागमें अयन भागके उदयासु = १२५६ − २५४

= १००५

इसी प्रकार निरयन मेषके अन्तिम विन्दु अथवा निरयन वृषके आदि विन्दुके विषुवांशकी ज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ५२°४१' \times \text{कोज्या } २३°२७'}{\text{कोज्या } १८°२७'}$$

$$= \frac{·७९५३ \times ·६१७५}{·६४८६}$$

= ·७६९२

∴ विषुवांश = ५०°१७′ = ३०१७′

इसलिए लंकामें अयन भाग और निरयन मेषके उदयासु

= ३०१७

परन्तु प्रयागमें निरयन मेषके अन्तिम विन्दुकी चरज्या

= स्परे १८°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·३३३७ × ·४७५२

= ·१५८६

चरांश = ३°७′ = ५४७′

∴ प्रयागमें अयन भाग और निरयन मेषके उदयासु

= ३०१७ — ५४७ = २४७०

परन्तु प्रयागमें अयन भागके उदयासु = १००५

∴ " निरयन मेषके " = १४६५

∴ " " " का उदयकाल = २४४ पल

= ४ घड़ी ४ पल

यदि प्रत्येक निरयन राशिके उदयासु जाननेकी रीति उपर्युक्त विवरणके साथ लिखी जायगी तो पुस्तकका आकार बढ़नेके सिवा कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसी रीतिसे आगेकी सारिणी बनायी गयी है जिससे यह पता चल जायगा कि निरयन राशिके उदयासु या उदयकाल किसी स्थानमें कैसे निकाले जा सकते हैं:—

दूसरे स्तम्भमें क्रान्तिके पहले धनका चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति उत्तर दिशामें है और ऋणका चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति दक्षिण दिशामें है। सातवीं राशि तुलासे क्रान्तियोंका क्रम पहली ६ राशियोंके क्रमकी तरह है केवल दिशामें भिन्नता है।

तीसरे स्तम्भमें प्रत्येक राशिके आदि विंदुका चरांश दिया हुआ है जिसको कलाओंमें लिखनेसे जो संख्या मिलती है वही उस विंदुके चरासु अथवा चरप्राण है। जब क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तरी गोलार्धमें चरासु घटाने पड़ते हैं और जब क्रान्ति दक्षिण होती है तब उत्तरी गोलार्धमें चरासु जोड़ने पड़ते हैं (देखो पृष्ट ३००-३०७)। इसीलिए चरांश पहली ६ राशियोंमें ऋणात्मक और पिछली ६ राशियोंमें धनात्मक लिखा गया है। यह प्रयागके चरांश है। अन्य स्थानके चरांश जाननेके लिए चरज्या=क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्शरेखावाले सूत्र-

निरयन राशि-यां	आदिविंदुकी कान्ति		प्रयागमें आदि विंदुका चरांश		प्रयागमें चर खंड		आदिविंदुका विषुवांश		लंकामें उद-यांश		प्रयागमें उद-यांश		प्रयागमें उद-यकाल (नाक्षत्र)		प्रयागमें मेष के आदिसे राशिके उदय तकका समय	
	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	घड़ी	पल	घड़ी	पल
मेष	+ ८	४६	− ४	१४	− ४	५३	२०	५६	२६	१८	२४	२५	४	४	४	४
वृष	+ १८	२७	− ६	७	− २	४०	५०	१७	३१	४३	२६	३	४	५१	८	५५
मिथुन	+ २३	१५.३	− ११	४७	+ ०	५८	८२	०	३२	३०	३३	२८	५	३५	१४	३०
कर्क	+ २१	३२.७	− १०	४६	+ ४	२	११४	३०	३०	३३	३४	३५	५	४६	२०	१६
सिंह	+ १३	५८	− ६	४७	+ ५	२४	१४५	३	२८	१४	३३	३८	५	३६	२५	५२
कन्या	+ २	५४	− १	२३	+ ५	३७	१७३	१७	२७	४२	३३	१६	५	३३	३१	२५
तुला	− ८	४६	+ ४	१४	+ ४	५३	२००	५६	२६	१८	३४	११	५	४२	३७	७
वृश्चिक	− १८	२७	+ ६	७	+ २	४०	२३०	१७	३१	४३	३४	२३	५	४४	४२	५१
धनु	− २३	१५.३	+ ११	४७	− ०	५८	२६२	०	३२	३०	३१	२८	५	१५	४८	६
मकर	− २१	३२.७	+ १०	४६	− ४	२	२९४	३०	३०	३३	२६	३१	४	२५	५२	३१
कुम्भ	− १३	५८	+ ६	४७	− ५	२४	३२५	३	२८	१४	२२	५०	३	४८	५६	१६
मीन	− २	५४	+ १	२३	− ५	३७	३५३	१७	२७	४२	२२	५	३	४१	६०	००
मेष	+ ८	४६	− ४	१४			३८०	५								

में इष्ट स्थानका जो अक्षांश हो वह लिखकर गणना करना चाहिए।

४थे स्तम्भमें जो चरखंड दिया हुआ है वह पासवाली दो राशियोंके आदि विंदुओंके चरांशोंका अन्तर है जिससे जाना जाता है कि पहली राशिके आदि विंदुसे अन्तिम विंदु तक चरांशमें क्या अन्तर पड़ता है। जैसे मेषराशिका चरखंड

= वृषराशिके आदि विन्दुका चरांश

− मेषराशिके आदि विंदुका चरांश

$= -९^\circ७' - (-४^\circ१४')$

$= -९^\circ७' + ४^\circ१४'$

$= -४^\circ५३'$

सिंह राशिका चरखंड

= कन्या राशिके आदि विंदुका चरांश

− सिंहराशिके आदि विंन्दुका चरांश

$= -१^\circ२३' - (-६^\circ४७')$

$= -१^\circ२३' + ६^\circ४७'$

$= +५^\circ२४'$

ध्यान देनेसे प्रकट होता है कि पहली ६ राशियोंके चरखंड दूसरी ६ राशियोंके चरखंडोंके परिमाणमें क्रमानुसार समान हैं। केवल + या − चिह्नोंमें अन्तर है।

५वें स्तम्भमें प्रत्येक राशिके आदि विन्दुका विषुवांश दिया हुआ है। यदि इसको कलाओंमें लिखा जाय तो इतने ही असुओंमें वसन्त सम्पातसे उस राशिका आदि विन्दु लंकामें उदय होगा। यदि पास वाली दो राशियोंके विषुवांशोंका अन्तर निकाला जाय तो यही ऊपरवाली राशिके उदयांश लंकामें होंगे जो ६ठें स्तम्भमें दिया हुआ है। इसको कलामें

लिखा जाय तो यही संख्या लंकामें उस राशिके उदयासु होंगे। लंकामें राशिका जो उदयांश हो उसमें उसी राशिका चरखण्ड यदि धनात्मक हो तो जोड़ने और ऋणात्मक हो तो घटानेसे इष्ट स्थानमें उस राशिका उदयांश आता है जिसको कलामें लिखनेसे उस राशिके उदयासुओंकी संख्या भी प्राप्त हो जायगी। ८वें स्तम्भमें प्रत्येक राशिका उदयकाल उदयासुओंमें न लिखकर घड़ी, पलोंमें लिखा गया है जो अधिक व्यवहारात्मक है परन्तु कुछ स्थूल है क्योंकि ६ असुओंका १ पल होता है और ६ से भाग देनेपर पूरे पल जब नहीं आये हैं तब आधेसे अधिकको १ मान लिया गया है और आधेसे जो कम आये हैं उनको छोड़ दिया गया है।

९वें स्तम्भमें यह दिखलाया गया है कि मेषके आदिसे पूरी राशिके उदय होनेमें क्या समय लगता है। जैसे यदि जानना है कि मेषके आदिसे पूरे सिंहके उदय होने तक क्या समय लगता है तो सिंहके सामने ९वें स्तम्भमें २५ घड़ी ५२ पल इसका उत्तर है अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियां प्रयागमें २५ घड़ी ५२ पलमें उदय होती हैं। इस स्तम्भसे लग्न जाननेमें बड़ी सहायता मिलेगी। इसलिए यह भी यहां दे दिया गया है।

यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि यह समय नाक्षत्र मानके अनुसार है जो सावन मानसे कुछ भिन्न होता है। (देखो पृष्ठ ११, १२)।

इस सारिणीसे यह बात सिद्ध होती है कि किसी स्थानमें राशियोंके उदयासु जाननेके लिये केवल चरांश जान लेनेसे आवश्यक संशोधन सुगमता पूर्वक हो सकते हैं। परन्तु यह सारिणी सदैव काम नहीं दे सकती क्योंकि अयन चलनके

कारण प्रत्येक निरयन राशिके आदि विन्दुके भोगांश और विषुवांश, बढ़ते रहते हैं। इससे क्रान्ति, चरांश और चर-खण्डोंमें कुछ अन्तर होता जाता है। परन्तु यह अन्तर बहुत सूक्ष्म होता है क्योंकि अयन चलनके कारण भोगांशमें प्रतिवर्ष केवल १ कलाके लगभग वृद्धि होती रहती है इसलिए कमसे कम २५ वर्षके बाद सारिणीमें एक बार संशोधन कर देना आवश्यक है।

यह जानना कि किस समय क्रान्तिवृत्तका कौन विन्दु पूर्व क्षितिजमें लग्न है।

गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्त भोग्या भक्ताः खवह्निभिः॥४५॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत्।
तद्वत्तदेष्य लग्नासूनेवं यातांस्तथोत्क्रमात्॥४६॥
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्।
भाग हीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा॥४७॥

अनुवाद—(४५) जिस समयका लग्न जानना हो उस समयके स्पष्ट सूर्यसे गतासु और भोग्यासु जानना चाहिये। सूर्य राशिके जितने अंशपर होता है उसको गतांश और राशिका जितना अंश सूर्यके भोगनेको शेष रह जाता है उसको भोग्यांश कहते हैं। राशिके उदयासुओंको गतांशसे गुणा करके ३० से भाग देनेपर गतासु और भोग्यांशसे गुणा करके ३० से भाग देनेपर भोग्यासु जाने जाते हैं। (४६) सूर्योदयसे जितनी घड़ी (समय) इष्ट काल तक बीत चुकी हो उसमेंसे भोग्यासुओंको घटा देना चाहिये। जो शेष हो उसमेंसे आगे आनेवाली राशिके उदयासुओंको घटाना

चाहिये। शेषमें से इससे आगेकी राशिके उदयासुओंको घटाना चाहिये। इसी प्रकार आगे आनेवाली राशियोंके उदयासुओंको घटाते जानेसे जब शेष इतना रह जाय कि फिर आगेकी राशिके उदयासु न घटें तो यही अशुद्ध राशि (न घटने वाली राशि) कही जायगी। परन्तु यदि गतासुसे लग्न जानना हो तो जो राशियां सूर्योदयके पहले उदय हो चुकी रहती हैं उनके उदयासुओंको सूर्योदय होनेमें जितना समय हो उसमेंसे उलटे क्रमसे घटना चाहिये अर्थात् पहले तो गतासु घटावे, फिर सूर्यकी राशिसे जो राशि पीछे हो उसके उदयासुओंको घटाना चाहिये फिर उससे पीछेकी राशिके उदयासुओंको घटाना चाहिये इत्यादि, (४७) अंतमें यदि कुछ शेष रह जाय तो उसको ३० से गुणा करके अशुद्ध राशिके उदयासुओंसे भाग देना चाहिये। यदि क्रिया गतासुसे की गयी हो तो भागफलको अशुद्ध राशिसे घटानेपर और यदि यह क्रिया भोग्यासुसे की गयी हो तो भागफलको जोड़नेसे यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय क्षितिजमें क्रान्तिवृत्तका कौन विन्दु लग्न है।

विज्ञान भाष्य—४७वें श्लोकके उत्तरार्द्धका अर्थ करनेमें कई टीकाकारोंने अयनांशके जोड़ने घटानेकी भी चर्चाकी है जो मेरी समझमें व्यर्थ है क्योंकि जब स्पष्ट सूर्यकी राशिसे लग्न जाना जाता है और सभी ग्रहोंका स्पष्ट निरयन राशियोंमें किया जाता है तब सायन सूर्यसे लग्न जाननेकी क्या आवश्यकता है। इसके अर्थमें भ्रम इसलिए होता है कि इन तीन श्लोकोंमें लग्न निकालने की दो रीतियां जो प्रायः एक ही सी हैं दी हुई हैं। यदि सूर्योदयसे इष्ट काल तकका समय ३० घड़ीसे कम हो तो भोग्यासुओंसे काम लेना सुगम होगा और यदि इष्ट काल अगले सूर्योदयके निकट हो तो अगले सूर्यो-

दयके गतासुओंसे काम लेनेमें सुविधा होगी। इसीलिए अन्तिम लब्धिके जोड़ने घटानेकी आवश्यक पड़ती है। यह बात नीचेके २ उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण—सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल पर कौन कौन लग्न होंगे जब कि सूर्योदय कालमें सूर्यका निरयन भोगांश ३रा५°१'६" और सूर्यको स्पष्ट दैनिक गति ५७'२१" है।

त्रिकलाओंकी गणना करनेमें गुणा भाग बहुत करना पड़ेगा इसलिए आगे चलकर सूर्यका निरयन भोगांश केवल कलाओं तक लिया जायगा।

१ली रीति—

पहिले यह जानना चाहिए कि सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पलपर सूर्यका निरयन भोगांश क्या होगा।

६० घड़ीमें	सूर्य	५७'२१"	आगे बढ़ता है
∴ १५ घड़ीमें	"	१४'२०"१५'''	" *
और १ घड़ीमें	"	५७"२१'''	"
और १५ पलमें	"	१४"२०'''	"

∴ १६ घड़ी १५ पलमें १५'१२" सूर्य आगे बढ़ता है। इसलिए सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पलपर सूर्यका निरयन भोगांश

= ३रा५°१६'३८"
= ३रा५°१७'

---

* जैसे कलाके ६०वें भागको विकला कहते हैं वैसे ही विकलाके ६०वें भागको प्रतिविकला समझना चाहिए जिसके लिए तीन चिन्हों (''') का प्रयोग किया गया है।

∴ इष्ट कालमें कर्क राशिमें सूर्यका गतांश ५°१७′ और भोग्यांश ३०° − ५°१७′ = २४°४३′ = १४८३′

परन्तु कर्क राशिके उदयासु† (प्रयागमें) २०७५ हैं। इसलिए जब कर्कके ३०° अंश अथवा १८०० कला २०७५ असुओंमें उदय होता है तब २४°४३′ या १४८३′ कितने समयमें उदय होगा, अर्थात्

$$\text{भोग्यासु} = \frac{१४८३ \times २०७५}{१८००}$$

$$= १७१०$$

$$\therefore \text{ भोग्यकाल} = २८५ \text{ पल}$$

$$= ४ \text{ घड़ी } ४५ \text{ पल}$$

अर्थात् सूर्योदयसे ४ घड़ी ४५ पलतक कर्क राशि उदय होती रहेगी। फिर सिंह राशिका उदय आरम्भ होगा।

इष्टकाल	१६ घड़ी	१५ पल
कर्कका भोग्यकाल	४ "	४५ "
अंतर	११ "	३० "
सिंहका उदयकाल	५ "	३६ "
अंतर	५ "	५४ "
कन्याका उदयकाल	५ "	३३ "
अंतर		२१ पल।

यही तुलाका गत काल है।

---

† यदि उदयासुकी जगह उदयकाल पलमें लिखा जाय तो गणनामें सरलता होगी परन्तु कुछ स्थूलता आ जायगी।

इसलिए इष्टकालमें तुला राशि २१ पल तक उदय हो चुकी है और ५ घड़ी २१ पल तक और उदय होगी क्योंकि तुलाका उदयकाल प्रयागमें ५ घड़ी ४२ पल है। इसलिए इष्टकालमें तुला राशि पूर्व क्षितिजमें लगी हुई है अर्थात् लग्न है। यह जाननेके लिए कि तुलाका कौन विन्दु लग्न है फिर अनुपातसे काम लेना होगा। क्योंकि जब ५ घड़ी ४२ पल अर्थात् ३४२ पलमें तुलाके ३० अंश उदय होते हैं। तब २१ पलमें कितने उदय हो चुकेंगे।

३४२ : २१ : : ३० : तुलाका गतांश

$$\therefore \text{तुलाका गतांश} = \frac{२१ \times ३०}{३४२} = १^\circ ५०' ३१''$$

$$= १^\circ ५१'$$

∴ सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पलपर ६$^{रा}$१$^\circ$५१′ लग्न है। यहां १$^\circ$५१′ उदित राशियोंमें जोड़ा गया है।

२री रीति—

यदि यह जानना हो कि सूर्योदयसे ५२ घड़ी १० पलपर क्या लग्न है तो अगले दिनके सूर्योदयके गतांशसे काम लेनेमें अधिक सुविधा होगी।

इष्टकालसे अगले सूर्योदयका समय

= ६० घड़ी − ५२ घड़ी १० पल

= ७ घड़ी ५० पल

अगले सूर्योदय कालमें सूर्यका निरयन भोगांश

$$= ३^{रा}५^\circ १' ६'' + ५७' २१''$$

$$= ३^{रा}५^\circ ५८' २७''$$

६० घड़ीमें सूर्यकी गति = ५७′२१″

∴ ७$\frac{1}{2}$ " " = ७′१०″८‴

२० पलमें " = १६″७‴

∴ ७ घड़ी ५० पलमें " = ७′२६″

∴ इष्टकालमें सूर्यका निरयन भोगांश

= ३^रा^५°५८′२७″ − ७′२६″

= ३^रा^५°५१′

∴ इष्टकालमें कर्क राशिमें सूर्यका गतांश ५°५१′ = ३५१′

इसलिए पहलेकी तरह गतासु = $\frac{३५१ \times २०७५}{१८००}$

= ४०५

∴ गतकाल = ६७ पल

= १ घड़ी ७ पल

सूर्योदय होनेमें	७ घड़ी ५० पल है
सूर्योदय से	१ घड़ी ७ पल पहले कर्कका आरंभ होगा
अंतर	६ घड़ी ४३ पल
मिथुनका उदयकाल	५ घड़ी ३५ पल
अंतर	१ घड़ी ८ पल

∴ इष्टकालमें पूरे वृषके उदय होनेमें १ घड़ी ८ पल शेष है। परन्तु वृषके ३०° या १८००′ का उदय २६१ पलमें होता है।

∴ २६१ : ६८ : : १८०० : लग्नका भोग्यांश

∴ लग्नका भोग्यांश = $\frac{६८ \times १८००}{२६१}$

= ४२१′

= ७°१

और वृषका भुक्तांश (गतांश) $= ३०^\circ - ७^\circ १'$

$= २२^\circ ५९'$

$\therefore$ इष्टकालका लग्न $= १^{रा} २२^\circ ५९'$

यहां अन्तिम लब्धि घटाई गयी है।

इस संबंधमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि राशियों-के उदयासु अथवा उदयकाल नाक्षत्रकालमें प्रकट किये जाते हैं और इष्टकाल धूपघड़ीके अनुसार जाना जाता है इसलिये यह सावन कालमें होता है (देखो पृ० ११, १२ और ३१०)।

१ सावन दिन = ६० सावन घड़ी

= २१६५९·१४ असु

= ३६१० पल (नाक्षत्र) स्थूल रूपसे

= ६० घड़ी १० पल (नाक्षत्र)

$\therefore$ ६ सावन घड़ी = ६ नाक्षत्र घड़ी + १ नाक्षत्र पल

जिससे सिद्ध होता है कि सावन कालको नाक्षत्र कालमें बदलना हो तो प्रति ६ सावन घड़ियोंके लिए १ पल और बढ़ा देनेसे नाक्षत्र काल आ जाता है।

परन्तु इष्टकालका स्पष्ट सूर्य निकालकर लग्नकी गणना करनेमें यह अन्तर नहीं पड़ता इसलिये सूय-सिद्धान्तका नियम बिल्कुल शुद्ध है क्योंकि जब इष्टकालका स्पष्ट सूर्य निकाल लिया जाता है तब प्रश्न यह रहता है कि उस विन्दुसे जिस जगह सूर्य इष्टकालमें है क्रान्तिवृत्तके उदय-विन्दु तक जो क्षितिजमें लगा रहता है क्या अन्तर है। क्रान्तिवृत्तका वह भाग जो तात्कालिक या इष्टकालिक सूर्य और क्रान्तिवृत्तके उदय-विन्दुके बीचमें है जितने नाक्षत्र कालमें उदय होता है उतने ही सावन कालमें सूर्य सूर्योदय कालके स्थानसे इष्टकाल-के स्थान तक पहुँचता है। हां यदि यह जानना हो कि सूर्यो-

दय कालसे इष्टकाल तक कितना नाक्षत्र काल बीता, तब यह गणना करनी पड़ेगी कि सूर्योदय कालमें क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु उदय हो रहा था उससे इष्ट कालिक उदय-विन्दु तकके उदयासु क्या है। क्रान्तिवृत्तका सूर्योदय कालिक विन्दु इष्ट-कालमें सूर्यसे कुछ पच्छिम हो जाता है क्योंकि इष्टकालतक सूर्य-कुछ पूरब हट जाता है। इस बातका विचार उस समय अवश्य करना पड़ेगा जब कि उदयकालिक सूर्यके निरयन भोगांशसे ही इष्टकालका लग्न निकालना हो। नीचे इस रीति-से भी लग्न जाननेका उदाहरण दिया जाता है:—

३री रीति—

सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पल पर लग्न क्या है?

उदयकालिक सूर्यका निरयन भोगांश = ३रा५°१′६″

∴ कर्कका भोग्यांश = ३०°-५°१′ = २४°५६′ = १४६६′

१८०० : १४६६ :: २०७५ : भोग्यासु

$$\therefore \text{भोग्यासु} = \frac{१४६६ \times २०७५}{१८००} = १७२८ = २८८ \text{ पल}$$

१६ घड़ी १५ पल धूपघड़ीके अनुसार होता है इसलिए यह सावन कालकी इकाईमें है।

सावन	नाक्षत्र
६ घड़ी =	६ घड़ी १ पल

∴ १६ घड़ी १५ पल = १६ घड़ी १८ पल (स्थूल रूप से)

अब इसमें कर्कके भोग्यासु तथा सिंह, कन्याके उदयासु क्रमशः पूर्ववत् घटाने चाहिये।

	१६ घड़ी १८ पल
कर्कका भोग्यकाल	४ घड़ी ४८ पल
अन्तर	११ घड़ी ३० पल
सिंहका उदयकाल	५ " ३६ पल
अन्तर	५ घड़ी ५४ पल
कन्याका उदयकाल	५ " ३३ "
तुलाका गतकाल	२१ पल

इसके बादकी गणना पहलेकी ही तरह है।

इससे सिद्ध होता है कि चाहे तात्कालिक सूर्यका निरयन भोगांश जानकर सावनकालको ही नाक्षत्रकाल समझकर काम निकाला जाय अथवा उदयकालिक सूर्यके निरयन भोगांश जानकर इष्टकालिक सावनकालको नाक्षत्रकालमें बदलकर काम निकाला जाय दोनोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हां सावनकालसे नाक्षत्रकाल बनाकर काम निकालनेमें कुछ सुगमता होती है।

इस रीतिमें प्रत्येक राशिका उदयकाल इष्टकालमें घटाना पड़ता है। यदि ४७०वें पृष्ठकी सारिणीके ६वें स्तम्भसे काम लिया जाय तो और भी सुविधा हो सकती है।

सूर्योदय कालमें कर्कका भोग्यकाल = ४ घड़ी ४८ पल
परन्तु कर्कका उदयकाल = ५ घड़ी ४६ पल
दोनोंका अन्तर = ० घड़ी ५८ पल
∴ सूर्योदय कालमें कर्कका गतकाल = ० घड़ी ५८ पल

निरयन मेषके आदिसे मिथुनके अन्त तकका उदयकाल
= १४ घड़ी ३० पल

∴ सूर्योदयकालमें क्रान्तिवृत्तके उदित भागका उदयकाल

=१५ घड़ी २८ पल

इष्टकाल १६ घड़ी १८ पल

इष्टकालमें क्रान्तिवृत्तके उदित भागका उदयकाल

= ३१ घड़ी ४६ पल

जिससे कन्या तकका उदयकाल घट सकता है क्योंकि वह ३१ घड़ी २५ पल है

∴ तुलाका गतकाल = २१ पल

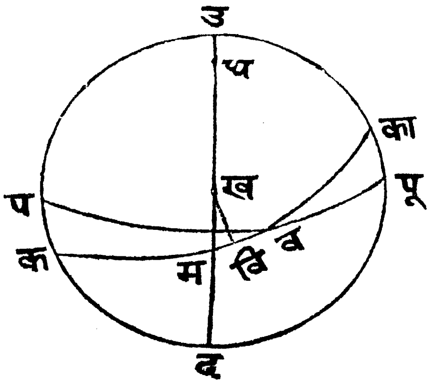
अर्थात् इष्टकालमें तुला राशि लग्न है। तुला राशिका कौन बिन्दु लग्न है यह जाननेके लिए पहलेकी तरह आगेकी क्रिया भी करनी चाहिए।

भास्कराचार्यने सायन सूर्यसे लग्न साधनकी रीति बतलाती है जो अधिक शुद्ध है क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि किसी राशिके ३० अंशके प्रत्येक अंश समानकालमें उदय नहीं होते इसलिए उचित यह है कि प्रत्येक अंशके उदयासु अलग अलग जाने जाँय। परन्तु यह काम कष्टप्रद है इसलिए यदि प्रत्येक अंशका उदयकाल समान समझकर अनुपातसे काम लिया जाय जैसा कि सब करते हैं तो लग्नकी राशिमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा हां राशिके उदय-बिंदुके निश्चय करनेमें तनिकसा अन्तर पड़ जायगा। इसलिए यदि लग्नका नवांश या द्वादशांश शुद्धतापूर्वक जानना हो तो सायन सूर्यसे ही पूर्ववत् काम लेना चाहिए। ऐसी दशामें अयनांशका संस्कार करनेपर निरयन लग्नका ज्ञान होगा।

मध्य लग्न जाननेकी रीति—

प्राक्पश्चान्नतनाडीभिस्तस्माल्लङ्कोदयासुभिः।
भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदाभवेत् ॥४८॥

अनुवाद—(४८) पूर्व या पश्चिम नतकाल, तात्कालिक सूर्य और लंकाके उदयासुओंसे तात्कालिक सूर्य और याम्योत्तर वृत्तके बीचके क्रान्तिवृत्तके खंडको जान लो। पूर्व नतकाल हो तो इसको तात्कालिक सूर्यसे घटा दो अन्यथा जोड़ दो तो मध्यलग्न ज्ञात हो जायगा।



चित्र ६३

उ, प, द, पू=प्रयागके क्षितिजवृत्तके उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

क व का=क्रान्तिवृत्त।

उ ध ख म द=याम्योत्तरवृत्त।

का=उदयलग्न।

क=अस्तलग्न।

म=मध्य या दशमलग्न।

व=वसन्त सम्पात।

वि=वित्रिभ लग्न।

ख=खस्वस्तिक।

विज्ञान भाष्य—क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु याम्योत्तरवृत्तपर होता है वही मध्यलग्न या दशमलग्न (Culminating point) कहलाता है। क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु खस्वस्तिकसे अत्यन्त निकट रहता है उसे वित्रिभ लग्न कहते हैं। उदयलग्नमें ३ राशि घटानेसे अथवा अस्तलग्नमें तीन राशि जोड़नेसे वित्रिभलग्न ज्ञात होता है।

लंकामें राशियोंके उदय होनेमें जितना समय लगता है उतनाही समय उनके याम्योत्तरवृत्तके उल्लंघन करनेमें भी लगता है। यह सब स्थानोंके लिए वही होता है। जैसे निरयन मेष राशिका उदयांश लंकामें २६°१८′ है। इसलिए लंकामें मेषके उदयासु १७५८ हुए। इतने ही समयमें मेषराशि सब स्थानोंमें याम्योत्तरवृत्तका उल्लंघन करता है। इसी तरह अन्य राशियोंके बारेमें समझना चाहिए।

इसका कारण यह है कि लंकामें किसी राशिका उदयांश विषुवद्वृत्तका वह खंड है जिसके उदय होनेमें उतना ही समय लगता है जितने समयमें वह राशि क्षितिजके ऊपर आती है। विषुवद्वृत्तके इस खंडको याम्योत्तर उल्लंघन करनेमें भी इतना ही समय लगता है। इसलिए यह राशि याम्योत्तरके उल्लंघन करनेमें भी इतना ही समय लेगी।

उदाहरण—सूर्योदयसे १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल उपरान्त कौन कौन मध्यलग्न होंगे जब कि सूर्योदयकालमें सूर्यका निरयन भोगांश ३^रा^५°१′६″ और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है?

प्रथम खण्ड—

पहले यह जानना होगा कि सूर्योदयकालसे १६ घड़ी १५ पलपर नतकाल क्या है अर्थात् इस समयके कितना पीछे या

पहले ठीक मध्याह्न होगा। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि सूर्योदयसे कितनी घड़ी, पलपर मध्याह्न होगा। इसके लिए चरप्राणकी गणना करनी होगी। परन्तु चरज्या सूर्यकी क्रान्ति और स्थानके अक्षांशपर अवलम्बित है। इसलिए पहले यही जानना चाहिए कि सूर्योदयकालमें सूर्यकी क्रान्ति क्या है।

सूर्यका निरयन भोगांश=३रा५°१'६"
अयनांश = २२°४१'
∴ सूर्यका सायन भोगांश = ३रा२७°४२'=११७°४२'
∴ क्रान्तिज्या = ज्या ११७°४२' × ज्या २३°२७'
= ज्या (१८०° — ११७°४२) × ज्या २३ २७'
= ज्या ६२°१८' × ज्या २३°२७'
= ·८८५४ × ·३९७९
= ·३५२३
∴ क्रान्ति = २०°३८' उत्तर
∴ चरज्या = स्परे २०°३८' × स्परे २५°२५'
= ·३७६६ × ·४७५२
= ·१७९०
∴ चरांश = १०°१८'=६१८'
∴ चरकाल = ६१८ असु = १०३ पल = १ घड़ी ४३ पल
∴ दिनार्द्धमान = १५ घड़ी + १ घड़ी ४३ पल
= १६ घड़ी ४३ पल

अर्थात् सूर्योदयसे १६ घड़ी ४३ पलपर ठीक मध्याह्न होगा।

परन्तु इष्टकाल १६ घड़ी १५ पल है जिस समय सूर्यका निरयन भोगांश ३रा५°१६'३८" अथवा ३ ५°१७' है (देखो ४५-४७ श्लोकोंका विज्ञान भाष्य)

इसलिए पूर्व नतकाल = २८ पल = १६८ असु

सूर्य कर्कराशिमें है जिसके लंकाके उदयासु १८३३ हैं (सारिणी के ६ठें स्तम्भके मानको कलाओंमें लिखनेसे असुओं-की संख्या आ जाती है)। अब यह देखना है कि जब १८३३ असुओंमें पूरी कर्कराशि अर्थात् १८०० कला याम्योत्तरवृत्तको उल्लंघन करती है तब १६८ असुओंमें कर्कराशिका कौन भाग उल्लंघन करेगा।

१८३३ : १६८ :: १८०० : इष्ट भाग।

$$\therefore \text{इष्टभाग} = \frac{१६८ \times १८००}{१८३३}$$

$$= १६५'$$

$$= २^\circ ४५'$$

यही याम्योत्तरवृत्त और सूर्यके बीचका क्रान्तिवृत्तका खंड है। परन्तु सूर्य $३^{रा}५^\circ१७'$ पर है। इसलिए $३^{रा}५^\circ१७' - २^\circ४५'$ $=३^{रा}२^\circ३२'$ याम्योत्तर लग्न है।

दूसरा खण्ड—

जब इष्टकाल ५२ घड़ी १० पल होगा तब पश्चिम नतकाल

= ५२ घड़ी १० पल – १६ घड़ी ४३ पल

= ३५ घड़ी २७ पल

अर्थात् मध्याह्नके उपरान्त ३५ घड़ी २७ पलपर सूर्योदयसे ५२ घड़ी १० पल बीता रहेगा। इस समय सूर्यका निरयन भोगांश=$३^{रा}५^\circ५१'$

इसलिए कर्क राशिका भोग्यांश=$२४^\circ९'$

जब पूरी कर्कराशि १८३३ असुओंमें याम्योत्तरवृत्तका उल्लं-घन करती है तब इसकी $२४^\circ९'$ कितने असुओंमें उल्लंघन करेगी।

१८०० : १४४९ :: १८३३ : भोग्यांशका उल्लंघनकाल

$\therefore$ भोग्यांशका उल्लंघनकाल $= \frac{१४४९ \times १८३३}{१८००}$

= १४७६ असु

= २४६ पल

= ४ घड़ी ६ पल

अब पश्चिम नतकाल = ३५ घड़ी २७ पल

मध्याह्नके बाद कर्कके उल्लंघनमें ४ घड़ी ६ पल लगेगा

अन्तर ३१ घड़ी २१ पल

सिंहका यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ४२ पलमें होता है

अन्तर २६ घड़ी ३९ पल

कन्याका यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ३७ पलमें होताहै

अन्तर २२ घड़ी २ पल

तुलाका यामोत्तर उल्लंघन ४ घडी ५३ पलमें होता है

अन्तर १७ घड़ी ९ पल

वृश्चिकका यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी १७ पलमें होताहै

अन्तर ११ घड़ी ५२ पल

धनुका यमोत्तरउल्लंघन ५ घड़ी २५ पलमें होता है

अन्तर ६ घड़ी २७ पल

मकरका यामोत्तर उल्लंगन ५ घड़ी ५॥ पलमें होता है

अन्तर १ घड़ी २१॥ पल

$\therefore$ कुम्भ राशि यामोत्तर वृत्तपर लग्न है। क्योंकि अंतिम अन्तरसे कुम्भ राशिका यामोत्तर उल्लंघन काल नहीं घटता है इसलिए यही अशुद्ध राशि है। अब यह देखना है कि इसका कौन विन्दु यमोत्तरवृत्तपर है।

कुम्भका याम्योत्तर उल्लंघन काल = ४ घड़ी ४२ पल
= १६६४ असु

१ घड़ी २१॥ पल = ८१॥ पल = ४८६ असु

इसलिए जब १६६४ असुओंमें १८०० कलाका उल्लंघन होता है तब ४८६ असुओंमें कितना होगा।

१६६४ : ४८६ : : १८०० : गतांश

$\therefore$ गतांश = $\frac{४८६ \times १८००}{१६६४}$ = ५२०′ = ८°४०′

$\therefore$ कुम्भ राशिका ८°४०′ याम्योत्तर उल्लंघन कर चुका

$\therefore$ मध्यम या दशम लग्न = १०$^{रा}$८°४०′

स्पष्ट सूर्य और लग्नसे समय जानना—

भोग्यासुनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च।
संपिण्डयान्तरलग्नासूनेवं स्यात्काल साधनम् ॥४६॥
सूर्यादूने निशाशेषे लग्नेऽर्कादधिके दिवा।
भचक्रार्धयुताद्भानोरधिकेऽस्तमयत्परम् ॥५०॥

अनुवाद—(५६) लग्न और स्पष्ट सूर्यकी राशियोंमें जो कम हो उसके भोग्यासुओं और जो अधिक हो उसके भुक्तासुओं को जोड़कर दोनोंके बीचमें जो पूरी राशियां हों उनके उदयासुओंको भी जोड़ लो। इसी योगफलसे इष्टकाल जाना जाता है। (५०) रात्रि कुछ शेष रहनेपर अर्थात् मध्य रात्रिके पीछे और सूर्योदयके पहिले सूर्यकी राशिसे लग्नकी राशि कम होती है, सूर्योदयके पीछे दिनमें सूर्यकी राशि लग्नकी राशिसे कम होती है और सूर्यास्तके पीछे सूर्यकी राशिमें ६ राशि जोड़नेपर भी लग्नकी राशि अधिक होती है।

इति त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायका अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—इष्टकाल और उसके स्पष्ट सूर्यसे लग्न जाननेकी जो रीति ४५-४७ श्लोकोंमें दी गयी है उसीकी विलोम (उलटी) क्रिया ४८-५० श्लोकोंमें बतलायी गयी है। इसलिए इसकी उपपत्ति समझानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दिनमें सूर्यकी राशिसे उदय लग्न आगे होती है इसलिए सूर्यकी राशि लग्नसे कम होता है। मध्य रात्रिके बाद उदय लग्नके आगे सूर्य रहता है इसलिए उस समय लग्न सूर्यसे कम होता है। सूर्यास्तके समय उदय लग्न सूर्यसे ठीक ६ राशि आगे रहती है इसलिए इसके उपरान्त उदय लग्न ६ राशि युक्त स्पष्ट सूर्य (सषड्भ सूर्य) से अधिक होती है।

इस नियमसे मध्यरात्रिके पीछेका जो इष्टकाल आता है वह उस समयसे सूर्योदयतकका समय होता है और दिनमें या सूर्यास्तके बाद जो इष्टकाल होता है वह सूर्योदयसे उस समयतकका काल होता है। यह नियम एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा :—

उदाहरण—सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य ३^{रा}५°१′६″, स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है। प्रयागमें किस समय उदय लग्न ६^{रा}१°५१′ और १^{रा}२२°५६′ होगी ?

पहिला खंड—

यहां उदय लग्न स्पष्ट सूर्यसे अधिक है इसलिए सूर्यकी राशिके भोग्यासु और लग्नकी राशिके भुक्तासुओंको जोड़ना चाहिए। इन भोग्यासु और भुक्तासुओंको पहलेकी तरह जानना चाहिए—

कर्कका भोग्यांश = २४°५८′५४″=२४°५६′

तुलाका भुक्तांश = १°५१′

∴ कर्कका भोग्यकाल = २८५ पल

और तुलाका भुक्तकाल= २१ पल

दोनोंका जोड़ = ३०६ पल = ५ घड़ी ६ पल

कर्क और तुलाके बीचमें सिंह और

कन्या हैं जिनमें सिंहका उदयकाल = ५ घड़ी ३६ पल

कन्याका उदयकाल = ५ घड़ी ३३ पल

कुलका योग = १६ घड़ी १५ पल

दूसरा खंड—

यहां उदय लग्न सूर्यकी राशिसे कम है। इसलिए उदय लग्नके भोग्यासुओंको सूर्यकी राशिके भुक्तासुओंमें जोड़ना चाहिए। इनके मान पहलेकी तरह जानना होता है। जिस समय लग्न १रा२२°५६′ होगी वह मध्यरात्रिके बादका समय है इसलिए अगले सूर्योदयके स्पष्ट सूर्यके भुक्तासुओंसे काम लेना चाहिये।

उसी दिनके सूर्योदय कालका स्पष्ट सूय = ३रा५°१′६″

स्पष्ट दैनिक गति = ५७′ २१″

∴ अगले दिनके सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य=३रा५°५८′२७″

=३रा५°५८′स्थूलत:

∴ सूर्यका भुक्तांश = ५°५८′=३५८′

लग्नका भोग्यांश=३०° — २२°५६′=७°१′=४२१′

$$\text{सूर्यके भुक्तासु} = \frac{३५८ \times २०७५}{१८००}$$

=४१३

= ६६ पल

$$\text{लग्नका भोग्यकाल} = \frac{४२१ \times २६१}{१८००} \text{ पल}$$

=६८ पल

∴ सूर्यका भुक्तकाल और लग्नका भोग्यकाल=६६ + ६८ पल
=२ घड़ी १७ पल

सूर्य और लग्नके बीच मिथुन राशिका
उदयकाल =५ घड़ी ३५ पल

दोनोंका योग =७ घड़ी ५२ पल

इसलिए सूर्योदय होनेमें ७ घड़ी ५२ पल रह गया है।

लग्नसे समय जाननेकी रीति तभी व्यवहारमें लायी जा सकती है जब राशि और नक्षत्रोंकी पहचान अच्छी तरह हो। इसलिए यह आवश्यक है कि राशि, नक्षत्र तथा अन्य प्रसिद्ध तारोंकी पूरी जानकारी हो। सूर्यसिद्धान्तके नक्षत्र ग्रह युत्यधिकार नामक ८वें अध्यायमें कुछ नक्षत्रों और तारोंकी चर्चा है इसलिए वहीं यह भी बतलाया जायगा कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तारे कौन हैं जिनसे रात्रिमें समयका ज्ञान सहज ही हो सकता है।

यहां केवल यह बतला देना पर्याप्त है कि मध्य लग्नसे समय जाननेमें अधिक सुविधा होती है। यदि यह मालूम हो कि मध्याह्नकालमें सूर्यका विषुवांश क्या था और रात्रिमें कौन तारा जिसका विषुवांश ज्ञात है याम्योत्तरवृत्तपर है तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि मध्याह्नसे कितना समय बीता है क्योंकि ताराके विषुवांशसे सूर्यके विषुवांशको घटानेपर जो अन्तर कलाओंमें होता है उतने ही असुओंमें वह तारा मध्याह्नके उपरान्त याम्योत्तर वृत्तपर आता है।

यदि किसी तारेका विषुवांश न ज्ञात हो तो केवल क्रान्तिवृत्तके तारा-समूहोंकी पहचान लेनेसे भी समयका स्थूल ज्ञान हो सकता है। इसके लिए सूर्य किस नक्षत्रपर है यह भी जानना आवश्यक होता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि क्रान्तिवृत्तके २७वें भागको नक्षत्र कहते हैं और पूरा

क्रान्तिवृत्त एक नाक्षत्र दिनमें पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है इसलिए एक नक्षत्र $\frac{६०}{२७}$ घड़ी = २$\frac{२}{९}$ घड़ी या सवा दो घड़ीमें याम्योत्तर उल्लंघन करता है अथवा ९ नक्षत्र २० घड़ी या ८ घंटेमें याम्योत्तर उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार-की गणनासे जो समय जाना जायगा उसमें और यथार्थ समयमें आध घंटेसे अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता।

उदाहरण—सूर्य पुनर्वसु नक्षत्रमें है तो किस समय श्रवण नक्षत्र याम्योत्तरवृत्तपर होगा?

३११-३१२ पृष्ठकी नक्षत्र सारिणीमें पुनर्वसु ७वां नक्षत्र और श्रवण २२वां नक्षत्र है। इसलिए इन दोनोंमें १५ नक्षत्रोंका अन्तर है।

९	नक्षत्रोंका	अन्तर	२०	घड़ी	या	८	घंटेमें	पड़ता है।
६	"	"	१३$\frac{१}{३}$	"	या	५$\frac{१}{३}$	"	"
∴ १५	"	"	३३$\frac{१}{३}$	"	या	१३$\frac{१}{३}$	"	"

∴ मध्याह्नसे १३$\frac{१}{३}$ घंटे पीछे अथवा मध्यरात्रिसे १$\frac{१}{३}$ घंटे-पर सवा बजे रात्रिमें श्रवण नक्षत्र याम्योत्तरवृत्तपर होगा।

आजकल धूप-घड़ीसे समयका ज्ञान नहीं होता वरन् कमानीके बलपर चलनेवाली घड़ियोंसे होता है जिसका समय धूप-घड़ीसे कुछ भिन्न होता है इसलिए जो लोग आज-कलकी प्रचलित घड़ियोंसे लग्नकी गणना करके फलित ज्यो-तिषके फल बतलाते हैं उनको लग्नका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। काशीके महामहोपाध्याय बापूदेवजी शास्त्रीके पंचांगके अतिरिक्त अन्य पंचांग ऐसे देखनेमें नहीं आये जिनमें इस बातका अच्छा विवेचन हो। इसलिए यहां यह बतलाना बहुत आवश्यक है कि धूप-घड़ी और आजकलकी कमानीदार घड़ियोंमें परस्पर क्या सम्बन्ध है।

स्पष्टकाल, मध्यमकाल और काल-समीकरण—

मध्यमाधिकार पृष्ठ ११-१२ में बतलाया गया है कि किसी तारेके उदय होनेके समयसे उसके फिर उदय होनेतकके समयको नाक्षत्र दिन और सूर्यके एक उदयसे लेकर दूसरे उदयतकके समयको सावन दिन कहते हैं। परन्तु उदय होनेका समय ठीक ठीक जानना बड़ा कठिन होता है क्योंकि इस कामके लिए ऐसा क्षितिज होना चाहिए जहां वृक्ष इत्यादि न हों जो सब जगहके लिए प्रायः असम्भव है क्योंकि ऐसा मैदान साधारणतः बहुत कम मिलता है जहां कई कोसतक पूर्व या पच्छिम दिशामें कोई वृक्ष न हों। यदि ऐसा क्षितिज भी मिल जाय तो प्रकाशकी किरणोंके झुक जानेसे सूर्य या तारेका उदय उचित समयसे कुछ पहले ही हो जाता है जिसका परिमाण वातावरणकी भिन्न भिन्न दशाओंके अनुसार घटता बढ़ता रहता है। इसलिए बहुत सूक्ष्म गणनाके लिए उदयकालसे समयकी परीक्षा नहीं की जाती वरन् मध्याह्न-कालसे की जाती है। इसलिए सावन या नाक्षत्र दिनकी परिभाषा आजकल यों की जाती है :—

सूर्यका केन्द्र जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणसे लेकर फिर उसका केन्द्र जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणतकके समयको स्पष्ट सावन दिन कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दु जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणसे लेकर फिर यह विन्दु जिस क्षण याम्योत्तरवृत्तपर आता है उस क्षणतकके समयको नाक्षत्र दिन कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दुकी गति प्रायः समान होती है। इसलिए नाक्षत्र दिन सदा समान* होता है। परन्तु सावन दिन-

* अक्ष विचलनके कारण वसन्त सम्पातका स्पष्ट स्थान मध्यम स्थान-

के परिमाणमें बहुत भेद पड़ जाता है क्योंकि सूर्यकी दैनिक गति निरंतर बदला करती है। इसका पता नाक्षत्रकाल सूचित करनेवाली घड़ियोंसे सहज ही लग सकता है। यदि घड़ी ऐसी बनायी जाय कि वसंत सम्पात विन्दुके याम्योत्तरवृत्तपर आनेके समय उसमें ठीक १२ बजा करे तो ऐसी घड़ीको नाक्षत्र घड़ी (घटिका यंत्र) कहते हैं। इस तरहके घटिका यंत्रसे सहज ही जाना जा सकता है कि सावन दिनोंके परिमाणोंमें कितना अन्तर हो जाता है। उदाहरणके लिए १६०६ ई० के चार सावन दिनोंके† परिमाण दिये जाते हैं :—

१६०६ ई०	(नाक्षत्रकाल) घंटा	मिनट	सेकंड
१ली जनवरीके स्पष्ट मध्याह्नसे २री जनवरीके स्पष्ट मध्याह्न तकका समय	२४	४	२४·६
२री अप्रैलके स्पष्ट मध्याह्नसे ३री अप्रैलके स्पष्ट मध्याह्नतकका समय	२४	३	३८·५
३री जुलाईके स्पष्ट मध्याह्नसे ४थी जुलाईके स्पष्ट मध्याह्नतकका समय	२४	४	७·५
२री अक्टूबरके स्पष्ट मध्याह्नसे ३री अक्टूबरके स्पष्ट मध्याह्नतकका समय	२४	३	३७·६

इससे प्रकट है कि स्पष्ट सावन दिनका मान समान नहीं होता। १ली जनवरीके मध्याह्नसे दूसरी जनवरीके मध्याह्नतकके सावन दिनका मान दूसरी और तीसरी अप्रैलके सावन

से पूर्व या पश्चिम हो जाता है (देखो पृष्ठ ३६४)। परन्तु इससे नाक्षत्र दिनके परिमाणमें इतना कम अन्तर पड़ता है कि उसको नहींके समान समझ लेनेमें कोई हानि नहीं होती।

† Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ ११५

दिनके मानसे ४६.४ सेकंड बड़ा होता है, इत्यादि। ऐसी घड़ी बनाना असम्भव है जो सूर्यकी गतिके अनुसार अपनी चाल घटाया बढ़ाया करे क्योंकि यांत्रिक बलसे चलनेवाली घड़ी सदा समान चालसे चलेगी। इसलिए ऐसी घड़ियोंसे जो समय जाना जाता है वह धूपघड़ीके समयसे भिन्न रहता है क्योंकि धूपघड़ीसे स्पष्ट सावन दिनका मान जाना जाता है जो प्रतिदिन बदलता रहता है। यदि नाक्षत्रकाल बतलानेवाली घड़ीसे काम लिया जाय तो लौकिक व्यवहारमें सुविधा नहीं होती। क्योंकि नाक्षत्रकालके २४घंटे सावन दिनके २४ घंटेसे ४ मिनटके लगभग छोटे होते हैं। इसलिए यदि आज सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीमें ठीक १२ बजे होता है तो कल सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीके १२ बजकर ४ मिनटपर होगा। इस तरह प्रतिदिन चार चार मिनट पीछे होते होते १५ दिनमें सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीके १ बजे होगा, १ महीनेमें सूर्यका याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ीके २ बजे और दो महीनेमें, नाक्षत्र घड़ीके ४ बजे होगा, इत्यादि। इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि सूर्यका उदय अस्त नाक्षत्र घड़ीके अनुसार दिनके किसी समय हो सकता है जो लौकिक व्यवहारके लिए उपयोगी नहीं हो सकता क्योंकि साधारणतः सूर्यके उदय अस्त और याम्योत्तरोल्लंघनसे ही समयका निश्चय करना सुगम होता है।

इस दुविधाको मिटानेके लिये ज्योतिषियोंने यह निश्चय किया है कि ज्योतिषके कामके लिए तो ऐसी ही घड़ियां काममें लायी जायं जिनसे नाक्षत्रकाल सूचित होता है परन्तु लौकिक व्यवहारवाली घड़ियां ऐसी हों जिनसे मध्यम सावन दिनके घंटे मिनट सेकंड अथवा घड़ी, पल सूचित हों। ऐसा करनेसे इन घड़ियोंका समय स्पष्ट सावन दिन सूचित करने-

वाली धूप-घड़ियोंसे कुछ भिन्न अवश्य रहता है परन्तु यह भिन्नता १६ मिनटसे अधिक नहीं बढ़ने पाती। मध्यम सावन दिनका मान कई वर्षोंके स्पष्ट सावन दिनोंका मध्यम मान (औसत) होता है। १६०६ ई० के ऊपर लिखे हुए चार दिनोंका मध्यम मान २४ घंटा ३ मिनट ५७·१ सेकंड होता है जो एक सावन दिनके मध्यम मानके बहुत निकट है। यदि कई वर्षोंके स्पष्ट सावन दिनोंके मानोंका मध्यम मान निकाला जाय तो एक मध्यम सावन दिन नाक्षत्रकालके २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंडके समान होता है। नीचेके उदाहरणसे स्पष्ट होगा कि मध्यम सावन दिनका मान वेधसे कैसे जाना जाता है :—

मध्यम सावन दिनका मान निश्चय करना—

१८३६ ई० की ४थी जुलाईके दिन जिस समय स्पष्ट सूर्य-का केन्द्र याम्योत्तरवृत्तपर था उस समय इसका स्पष्ट विषुवांश (right ascension) ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकंड था*। इसी प्रकार १८६० ई० की ४थी जुलाईके दिन याम्योत्तरोल्लंघनकालमें सूर्यके केन्द्रका स्पष्ट विषुवांश ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकंड था। इससे मध्यम सावन दिनका मान निश्चय करो।

पहले यह जानना आवश्यक है कि १८३६ ई० की ४थी जुलाईके ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकंड (नाक्षत्रकाल) तक कितना समय नाक्षत्रकालमें बीता।

---

* सूर्यके केन्द्रसे होता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्तके जिस विन्दुपर पहुंचता है उसका वसंत सम्पातसे जो अन्तर होता है उसे सूर्यके केन्द्रका विषुवांश कहते हैं। यह अंश, कला, विकला तथा घंटा, मिनट, सेकंड दोनोंमें प्रकट किया जाता है। १ अंश ४ मिनट या १० पलके समान होता है।

यह स्पष्ट है कि एक सायन वर्षमें अर्थात् एक सायनमेष संक्रान्तिसे दूसरी सायनमेष संक्रान्ति तकके समयमें वसन्त संपात विन्दु जितने बार यामोत्तरोल्लंघन करता है उससे एक बार कम सूर्य यामोत्तरोल्लंघन करता है क्योंकि पृथ्वीकी गतिके कारण सूर्य प्रतिदिन एक अंश पूर्वकी ओर बढ़ जाता है जिससे यह प्रतिदिन वसन्त-सम्पातसे ४ मिनटके लगभग पीछे यामोत्तरोल्लंघन करता है। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते १ वर्षमें सूर्य पूरा १ दिन पिछड़ जाता है अर्थात् १ वर्षमें सूर्यका यामोत्तरोल्लंघन वसन्त-सम्पात विन्दुके यामोत्तरोल्लंघनसे १ बार कम पड़ जाता है।

१८३६ ई० की चौथी जुलाईसे १८९० ई० की ४थी जुलाई तक ५४ वर्ष होते हैं। जिनमें १८४०, १८४४, १८४८ इत्यादि १३ अधिक वर्ष (लीप इयर) हैं और शेष ४१ वर्ष साधारण वर्ष हैं। इसलिए यह अवधि ४१ × ३६५ + १३ × ३६६ अर्थात् १९७२३ सावन दिनके समान हुई। ऊपर सिद्ध किया गया है कि एक वर्षमें वसन्त सम्पात विन्दुका यामोत्तरोल्लंघन सूर्यके यामोत्तरोल्लंघनसे १ बार अधिक होता है इसलिए ५४ वर्षोंमें वसन्त सम्पात विन्दुका यामोत्तरोल्लंघन ५४ बार अधिक होगा। इस प्रकार उपर्युक्त अवधिमें १९७२३ + ५४=१९७७७ नाक्षत्र दिन हुए। इसलिए १८३६ ई० की ४थी जुलाईके सूर्यके यामोत्तरोल्लंघन कालसे १८९० ई० की ४थी जुलाईके यामोत्तरोल्लंघन कालतक १९७७७ दिन ६ घंटा ५१ मिनट ५४·६१ से० — ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकन्ड अर्थात् १९७७६ दिन २३ घंटा ५६ मि० ४७·५८ से० समय नाक्षत्रकालमें हुआ।

इसलिए यह नाक्षत्र काल १९७२३ स्पष्ट सावन दिनोंके समान हुआ। अब यदि उपर्युक्त नाक्षत्रकालको १९७२३ से भाग दे दिया जाय तो १ मध्यम सावन दिनका मान नाक्षत्र-

कालमें २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंड आता है। इसलिए

१ मध्यम सावन दिन=२४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकंड (नाक्षत्र)

मध्यम और स्पष्ट सावन दिनोंका भेद समझानेके लिए ज्योतिषियोंने एक ऐसे सूर्यकी कल्पना की है जो विषुवद्वृत्त पर सदैव समान गतिसे चलता हुआ माना गया है और नाक्षत्रकालके २४ घंटा ३ मिनट ५४·५५५ सेकंड पीछे प्रतिदिन याम्योत्तरवृत्तपर आता है। जिस क्षण यह कल्पित सूर्य याम्योत्तरोल्लंघन करता है उसी क्षण मध्यम मध्याह्न होता है और मध्यमकाल सूचित करनेवाली घड़ियोंमें ठीक १२ बजता है। यह ऊपर बतलाया गया है कि वर्षभरके स्पष्ट सावन दिनोंका मध्यममान ही मध्यम सावन दिनके समान होता है इसलिए यह प्रकट है कि जितने समयमें उपयुक्त कल्पित सूर्य विषुवद्वृत्तपर चलता हुआ एक चक्कर पूरा कर लेता है उतने ही समयमें स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्तपर चलता हुआ एक चक्कर पूरा करता है। इसलिए क्रान्तिवृत्तपर स्पष्ट सूर्यकी जो मध्यम दैनिक गति होती है वही विषुवद्वृत्तपर इस कल्पित सूर्यकी गति होती है। इससे सिद्ध है कि समान कालमें कल्पित सूर्यका विषुवांश उतना ही बढ़ता है जितना स्पष्टसूर्यका भोगांश बढ़ता है।

४६४ पृष्ठकी सारिणीसे* प्रकट है कि जबतक स्पष्ट सूर्यका भोगांश ६० अंशसे कम होता है तबतक इसका विषवांश भोगांशसे कम रहता है। परन्तु उपयुक्त कल्पित सूर्यका वि-

---

* इस सारिणीमें जो भोगांश दिया हुआ है उसे कल्पित सूर्यका विषुवांश और जो विषुवांश दिया हुआ है उसे स्पष्ट सूर्यका विषुवांश समझ लेनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि किस समय स्पष्ट सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्यके ध्रुवप्रोतवृत्तके आगे या पीछे है।

षुवांश सदैव स्पष्ट सूर्यके मध्यम भोगांशके समान होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि जबतक कल्पित सूर्यका विषुवांश अथवा सूर्य का मध्यम भोगांश ९० अंशसे कम होता है तब तक कल्पित सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त स्पष्ट सूर्यके ध्रुवप्रोतवृत्तसे पूर्वकी ओर होता है। इसलिए स्पष्ट सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्यसे पहले याम्योत्तरवृत्तपर आता है और स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्नसे पहले होता है। इसलिए जिस समय धूप घड़ीमें जो स्पष्ट सूर्यके अनुसार समय बतलाती है १२ बजता है उससे पीछे मध्यमकाल बतलाने वाली घड़ियोंमें १२ बजेगा। अर्थात् धूप घड़ी मध्यम घड़ीसे तेज होगी। जितना तेज होगी उतना ही धूप घड़ीके समयसे घटानेपर मध्यम घड़ीका समय ज्ञात होगा।

इसी प्रकार जबतक स्पष्ट सूर्यका मध्यम भोगांश ९० अंशसे अधिक और १८० अंशसे कम होगा अर्थात् जब सूर्य सायन कर्कसे सायन कन्या राशिमें रहेगा तबतक स्पष्ट सूर्यका ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्यसे पूर्वकी ओर रहता है। क्योंकि स्पष्ट सूर्यका विषुवांश कल्पित सूर्यके विषुवांशसे जो स्पष्ट सूर्यके मध्यम भोगांशके समान होता है अधिक होगा (देखो ४६५ पृष्ठ की सारिणी)। ऐसी दशामें स्पष्ट सूर्य कल्पित सूर्य से पीछे याम्योत्तरोल्लंघन करेगा अर्थात् धूप घड़ी मध्यम घड़ी से पीछे (मन्द या सुस्त) रहेगी। इसलिए धूप घड़ीके समय में दोनोंके विषुवांशोंका अन्तर जोड़नेपर यांत्रिक घड़ी (मध्यम घड़ी) का समय ज्ञात होगा। इसी प्रकार जब स्पष्ट सूर्य सायन तुलादि तीन राशियोंमें होगा तब धूप घड़ी मध्यम घड़ी से आगे रहेगी और धूपघड़ीके समयसे स्पष्ट सूर्य और कल्पित सूर्यके विषुवांशोंका अन्तर घटानेपर मध्यम घड़ीका समय ज्ञात होगा और जब स्पष्ट सूर्य सायन मकरादि तीन राशियों-

में रहेगा तब धूप घड़ीके समयमें दोनोंके विषुवांशोंका अन्तर जोड़नेपर मध्यम समय ज्ञात होगा।

परन्तु स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्तपर सदा समान गतिसे नहीं चलता। कभी इसकी गति तीव्र हो जाती है और कभी मन्द। इसलिए इसके कारण भी स्पष्ट सूर्य याम्योत्तर वृत्तपर उस समय नहीं आवेगा जिस समय मध्यम सूर्य आता है जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। स्पष्ट सूर्य और मध्यम सूर्य क्रान्ति-वृत्त के केवल मन्दोच्च और नीच स्थानोंपर साथ रहते हैं। (देखो पृष्ठ १२०—१२३)। जब सूर्य मन्दोच्चसे आगे बढ़ता है तब स्पष्ट सूर्यकी दैनिकगति मध्यम सूर्यकी दैनिकगतिसे कम होनेके कारण स्पष्टसूर्य मध्यम सूर्यसे पीछे पड़ जाता है अर्थात् मध्यम सूर्य स्पष्टसूर्यसे पूर्वकी ओर बढ़ा रहता है इसलिए स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्यसे पहले याम्योत्तर वृत्तपर आता है अर्थात् स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्नसे पहले होता है। इस कारण भी धूप घड़ीका समय मध्यमकालसे आगे रहता है। यह दशा तब तक रहती है जब तक सूर्य नीच पर नहीं पहुँच जाता है। यहांसे आगे बढ़नेपर स्पष्ट सूर्यकी गति मध्यमगतिसे अधिक होती है इसलिये स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्यसे आगे पूर्वकी ओर रहता है। इसलिए स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्न से पीछे होता है अर्थात् धूपघड़ी मध्यम घड़ीसे सुस्त रहती है।

इन दोनों कारणोंसे अर्थात् सूर्यके क्रान्तिवृत्तपर चलने तथा दैनिक गतिके समान न होनेसे स्पष्टकाल और मध्यम-कालमें कुछ अन्तर होता है। स्पष्टकालमें जितना समय घटाने या जोड़ने से मध्यमकाल ज्ञात होता है उसीको काल समीकरण कहते हैं। इसको यों भी लिखते हैं :—

मध्यमकाल=स्पष्टकाल + कालसमीकरण*

जब काल समीकरण धनात्मक होता है तब जोड़ा जाता है और ऋणात्मक होता है तब घटाया जाता है।

काल समीकरणका निश्चय करना—

अब यह सिद्ध हो गया कि उपर्युक्त कल्पित सूर्यके विषुवांश और स्पष्ट सूर्यके विषुवांशके अन्तरको ही काल-समीकरण कहते हैं। इसलिए काल-समीकरण जाननेका गुरु नीचे लिखी रीतिके अनुसार सहज ही निकल सकता है :—

पृष्ठ ४४६—४४७ में दिखाया गया है कि

$$\text{विषुवांशकी स्पर्श रेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{सायन भोगांशकी कोटि स्पर्श रेखा}}$$

यदि विषुवांशको सूचित करनेके लिए व, परमक्रान्तिके लिए क और स्पष्ट सायन भोगांशके लिए भ मान लिये जांय तो

$$\text{स्परे व} = \text{कोटिज्या क} \times \frac{1}{\text{कोस्परे भ}}$$

$$= \text{कोटिज्या क} \times \text{स्परे भ} \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (1)$$

यह समीकरण उसी रूपमें है जिस रूपमें स्पष्टकेन्द्र और उत्केन्द्रका सम्बन्ध सूचित करनेवाला समीकरण है [देखो पृष्ठ २४३ समीकरण (३)]। इसलिए इस समीकरणका भी विस्तार २४३-२४८ पृष्ठोंमें लिखी गयी रीतिके अनुसार हो सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि

$$2\text{व} = 2\text{भ} + 2\left(-\text{स्परे}^2 \frac{\text{क}}{2} \text{ज्या } 2\text{ भ} + \frac{1}{2}\text{स्परे}^4 \frac{\text{क}}{2} \text{ज्या } 4\text{भ} - \frac{1}{3}\text{स्परे}^6 \frac{\text{क}}{2} \text{ज्या } 6\text{ भ} + \cdots\cdots\right)$$

* वेंकटेश बापूजीकेतकरने अपने ज्योतिर्गणितमें इसका नाम उदयान्तर रखा है (ज्यो० ग० पृष्ठ ७५)

अथवा

$$व - भ = - स्परे^{२} \frac{कु}{२} ज्या\ २\ भ + \frac{१}{२} स्परे^{४} \frac{कु}{२} ज्या\ ४\ भ - \frac{१}{३} स्परे^{६} \frac{कु}{२} ज्या\ ६\ भ + \cdots\cdots (२)$$

$$यहां\ - स्परे^{२} \frac{कु}{२} = - \frac{१ - कोज्याक}{१ + कोज्याक} = \frac{कोज्याक - १}{कोज्याक + १}$$

इसलिए जैसे पृष्ठ २४६ में प का मान निश्चय किया गया है उसी प्रकार यहां $- स्परे^{२} \frac{कु}{२}$ का मान आया है।

समीकरण (२) के प्रत्येक पद चापीयमानों (radian) में हैं (देखो पृष्ठ २३९)। इसलिए यदि हम इसके दाहने पक्षको ३४३७·७५ से गुणा कर दें तो व — भ का मान कलाओं-में तथा असुओंमें ज्ञात हो जायगा। इस सूत्रसे हम सूर्यके किसी सायन भोगांशका विषुवांश सहज ही जान सकते हैं।

यह बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ४५१) कि सूर्यकी परम-क्रान्ति विक्रमकी २१वीं शताब्दीके प्रथमार्द्ध तक २३°२७′ मान लेनेमें कुछ हानि नहीं है इसलिए

$$स्परे^{२} \frac{कु}{२} = स्परे^{२} \frac{२३^{\circ}२७'}{२} = स्परे^{२}\ ११^{\circ}४३'·५ = (·२०७५)^{२} = ·०४३०५$$

$$स्परे^{४} \frac{कु}{२} = (·०४३०५)^{२} = ·००१८५$$

$$स्परे^{६} \frac{कु}{२} = ·००१८५ \times ·०४३०५ = ·००००८$$

इसलिए समीकरण (२) के दाहने पक्षको ३४३७·७५ से गुणा करने तथा $स्परे^{२}\frac{कु}{२}$, $स्परे^{४}\frac{कु}{२}$ इत्यादिके मान उत्थापन करने पर इसका रूप यह हो जायगा—

$$व - भ = - १४७'·९९५\ ज्या\ २भ + ३'·१८\ ज्या\ ४\ भ - ०'·०९\ ज्या\ ६\ भ + \cdots\cdots (३)$$

इस समीकरणके दाहने पक्षके पद इतनी शीघ्रतासे छोटे हो रहे हैं कि तीसरे पदके आगे आनेवाले पदोंको छोड़ देनेसे कुछ भी हानि नहीं हो सकती। यदि तीसरा पद भी छोड़ दिया जाय तो भी विशेष हानि नहीं। इस प्रकार स्पष्ट भोगांश और उसके विषुवांशका अन्तर कलाओं या असुओंमें सहज ही जाना जा सकता है जिससे विषुवांश और भोगांशकी सारिणी ४६५ पृष्ठकी सारिणीकी तरह सहज ही बनायी जा सकती है।

अब इस सूत्रकी सहायतासे कल्पित सूर्यके मध्यम विषुवांश और स्पष्ट सूर्यके विषुवांशका सम्बन्ध भी जानना आवश्यक है क्योंकि काल समीकरण तो स्पष्ट सूर्यके विषुवांश और कल्पित सूर्यके विषुवांशका अन्तर है। परन्तु कल्पित सूर्यका विषुवांश सूर्यके मध्यम भोगांशके समान होता है। इसलिए समीकरण (२) और पृष्ठ २६१ के समीकरण (छ) से यह काम सहज ही निकल सकता है।

पृष्ठ २६१ के समीकरण (छ) का नीचे लिखा संक्षिप्त रूप पर्याप्त होगा—

$$स = म + २ \text{ च ज्या } म + \frac{५}{४}च^{२} \text{ ज्या } २ म$$

यहां स=स्पष्ट मन्दकेन्द्र, म=मध्यम मन्द केन्द्र और च= पृथ्वीकी केन्द्र च्युति जो $\frac{१}{५९\cdot७०}$ के समान है।

नीच (Perigee) से ग्रहके अन्तरको मन्दकेन्द्र कहते हैं (देखो पृष्ठ २३८-३९)। इसलिए यदि मन्दकेन्द्रमें नीचका भोगांश जोड़ दिया जाय तो ग्रहका भोगांश आ जायगा। यदि पृथ्वीके नीचका भोगांश नी मान लिया जाय तो

स्पष्ट भोगांश=स + नी

और मध्यम भोगांश=म + नी

स्पष्ट भोगांशको भ माना गया है इसलिए मध्यम भोगांश-को भा मान लेना उचित होगा। इसलिए

$$भ = स + नी \text{ अथवा } स = भ - नी$$

$$भा = म + नी \text{ अथवा } म = भा - नी$$

स और म के इन मानोंको समीकरण (छ) के संक्षिप्त रूपमें उत्थापित करनेसे

$$भ - नी = भा - नी + २ \; च \; ज्या \; (भा - नी) + \tfrac{५}{४} \; च^{२} \; ज्या \; २ \; (भा - नी)$$

अथवा

$$भ = भा + २ \; च \; ज्या \; (भा - नी) + \tfrac{५}{४} \; च^{२} \; ज्या \; २ \; (भा - नी) \cdots\cdots (४)$$

समीकरण (२) और (४) की सहायतासे एक ऐसा समी-करण ज्ञात हो सकता है जिसमें भ न रहे। ऐसे समीकरणसे स्पष्ट विषुवांश और मध्यम भोगांश अथवा कल्पित सूर्यके विषुवांशका सम्बन्ध सहज ही जाना जा सकता है। यह प्रकट है कि उपर्युक्त दोनों समीकरणोंके योगसे ऐसे पद भी प्राप्त होंगे जिनके गुणक बहुत छोटे हों और जिनके रखनेसे प्राप्त समीकरणका रूप बहुत बढ़ जायगा परन्तु उससे अधिक लाभ नहीं होगा। इसलिए जिन पदोंके गुणक ·०००१ से कम होंगे उनको छोड़ दिया जायगा। समीकरण (२) के भ की जगह समीकरण (४) का दहना पक्ष उत्थापित करनेसे और ऐसे पदोंको छोड़ देनेसे जिनके गुणक ·०००१ से कम हों, हमें नीचे लिखा समीकरण प्राप्त होगा।

$$\begin{aligned} व = & \; भा + २ च ज्या \; (भा - नी) + \tfrac{५}{४} \; च^{२} ज्या २ (भा - नी) \\ & - स्परे^{२} \tfrac{कु}{२} ज्या २ [भा + २ च ज्या (भा - नी) + \tfrac{५}{४} च^{२} ज्या \; २ (भा - नी)] \\ & + \tfrac{१}{२} स्परे^{४} \tfrac{कु}{२} ज्या ४ [भा + २ च ज्या (भा - नी) + \tfrac{५}{४} च^{२} ज्या २ (भा - नी)] \end{aligned}$$

यहां $\frac{५}{४}$ च^{२} ज्या २ [भा – नी) भी बहुत छोटा है। इसलिए ४थे और पांचवें पदोंमें इसको भी छोड़ देनेपर यह पद क्रमानुसार नीचेके रूपके हो जायँगे।

– स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ ज्या[२भा + ४चज्या(भा – नी)] और

+ $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ ज्या [४ भा + ८ च ज्या (भा – नी)]

इसमेंसे चौथा पद

= – स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ {ज्या २ भा × कोज्या [४ च ज्या (भा – नी)]
+ कोज्या २ भा × ज्या[४ च ज्या (भा – नी)]}

= – स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ {ज्या २ भा + कोज्या २ भा × ४ च ज्या (भा – नी)}

क्योंकि ४ च ज्या (भा – नी) बहुत छोटा कोण है इसलिए इसकी कोटिज्या एकके समान होगी और इसकी ज्या इसीके समान होगी। (देखो Hall and Knight's Trigonometry पृष्ठ २६२)

इसी प्रकार पांचवां पद

= $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ { ज्या४भा × कोज्या[८चज्या(भा – नी)]
+ कोज्या४भा × ज्या[८चज्या(भा – नी)]}

= $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ { ज्या४भा + कोज्या४भा × ८चज्या(भा – नी)}

= $\frac{१}{२}$ स्परे^{४} $\frac{कु}{२}$ ज्या४भा

क्योंकि इसके दूसरे पद का गुणक ·०००१ से भी कम है इसलिये

व = भा + २चज्या(भा – नी) + $\frac{५}{४}$च^{२}ज्या२(भा – नी)
– स्परे^{२} $\frac{कु}{२}$ { ज्या२भा + ४चज्या(भा – नी) × कोज्या२भा}
+ $\frac{१}{२}$स्परे^{४}$\frac{कु}{२}$ज्या ४भा ··············(५)

परन्तु २ज्या(भा – नी) × कोज्या२भा

$$= \text{ज्या}(\text{भा} - \text{नी} + २\text{भा}) + \text{ज्या}(\text{भा} - \text{नी} - २\text{भा})$$
$$= \text{ज्या}(३\text{भा} - \text{नी}) - \text{ज्या}(\text{भा} + \text{नी})$$

इसलिये यदि समीकरण (५) सरल किया जाय और इसके पद बड़ाई छुटाईके अनुसार क्रमसे लिखे जायं तो

$$\text{व} = \text{भा} + २\text{चज्या}(\text{भा} - \text{नी}) - \text{स्परे}^{२} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}२\text{भा}$$
$$+ २\text{चस्परे}^{२} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}(\text{भा} + \text{नी}) + \frac{५}{४}\text{च}^{२}\text{ज्या}२(\text{भा} - \text{नी})$$
$$- २\text{चस्परे}^{२} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}(३\text{भा} - \text{नी}) + \frac{१}{२}\text{स्परे}^{४} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}४\text{भा} \cdots (६)$$

बस इसी समीकरणसे कल्पित सूर्यके विषुवांश अथवा सूर्यके मध्यम सायन भोगांश भा और स्पष्ट सूर्यके विषुवांश व का सम्बन्ध जाना जा सकता है। दाहने पक्षमें भा के पश्चात् जितने पद आते हैं सब मिलकर काल-समीकरण (equation of time) कहलाते हैं। इन सब पदोंमें भी पहिले दो पद $२\text{चज्या}(\text{भा} - \text{नी}) - \text{स्परे}^{२} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}२\text{भा}$ बड़े महत्वके हैं क्योंकि अन्य पदोंके गुणक इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। इसलिए

$$\text{व} = \text{भा} + \text{काल-समीकरण}$$

जहां $\text{काल-समीकरण} = २\text{चज्या}(\text{भा} - \text{नी}) - \text{स्परे}^{२} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}२\text{भा}$

यह रेडियनमें प्रकट किया गया है। यदि असुओंमें प्रकट करना हो तो इसे ३४३७·७५ से गुणा कर देना चाहिए क्योंकि १ रेडियन = ३४३७′·७५ और विषुवद्वृत्त की एक कला की गति एक असुमें होती है। इसलिए असुओंमें काल-समीकरण का रूप यह होगा।

$$३४३७·७५\left\{२\text{चज्या}(\text{भा} - \text{नी}) - \text{स्परे}^{२} \frac{\text{कु}}{२} \text{ज्या}२\text{भा}\right\} \cdots\cdots (७)$$

यदि च की जगह ०·०१६७५ और नी की जगह २८१°३६′१४″ रख दिया जाय जो १६७६ वि० की मेष संक्रान्ति कालमें सूर्यके नीचका सायन भोगांश* था तो

$$
\begin{aligned}
& \text{२चज्या(भा — नी)} \\
& = \text{२च(ज्या भा × कोज्या नी — कोज्या भा × ज्यानी)} \\
& = \text{२च(ज्याभा × कोज्या २८१°३६′१४″ — कोज्याभा × ज्या २८१°३६′१४″)} \\
& = \text{२च\{ज्याभा × कोज्या (३६०° — ७८°२३′४६″) — कोज्याभा × ज्या(३६०° — ७८°२३′४६″)\}} \\
& = \text{२च\{ज्याभा × कोज्या ७८°२३′४६″ + कोज्याभा × ज्या ७८°२३′४६″\}} \\
& = \text{२ × ·०१६७५(·२०११ज्याभा + ·९७९६ कोज्याभा)} \\
& = \text{·००६७४ज्याभा + ·०३२८१ कोज्याभा}
\end{aligned}
$$

∴ काल समीकरण (७) का रूप यह होगा।

---

* सूर्यके नीच का यह सायन भोगांश १९२५ ई० के Nautical Almanac पृष्ठ ६२६ के इस सूत्र से जाना गया है—

Mean longitude of solar perigee

$$= 281°13'15''{\cdot}0 + 6189''{\cdot}03\tau + 1''{\cdot}63\tau^2 + 0''{\cdot}012\tau^3$$

जब कि २८१°१३′१५″ सन् १९०० ई० की जनवरीकी पहली तारीखके मध्याह्न कालका नीचका सायन भोगांश है और τ उस समय से इष्टकाल तक का जूलियन शताब्दी का भिन्न है। १९७६ वि० की मेष संक्रान्तिके लिए $\tau = \frac{\text{८१३७}}{\text{३६५२५}}$ जब कि १९०० ई० की जनवरीके पहले मध्याह्नसे १९७९ वि० की मेष संक्रान्तिके मध्याह्न तकके दिनों की संख्या ८१३७ है और ३६५२५ जूलियन शताब्दीके दिनोंकी संख्या है।

३४३७·७५(·००६७४ ज्याभा + ·०३२८२ कोज्याभा
— ·०४३०५ ज्या२भा)

= २३′·१७ ज्याभा + ११२′·८३ कोज्याभा
— १४८′·० ज्या२भा ....(८)

इसमें इष्टकालके सूर्यके मध्यम भोगांश भा का मान स्थापित करके ज्याभा, कोज्याभा इत्यादिके मान जाने जा सकते हैं जिससे इष्टकालका काल-समीकरण जाना जा सकता है। यह असुओंमें होगा।

यह प्रकट है कि काल-समीकरणका यह मान सदाके लिए शुद्ध नहीं है क्योंकि इसका यह रूप उस समय आया है जब सूर्यका नीच २८१°३६′१४″ समझा गया है। सूर्यके नीचका सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कलाके लगभग आगे बढ़ता है इसलिए १० या १५ वर्षोंतक यही समझ लेनेमें अधिक अशुद्धि नहीं होगी। सूर्यकी परम क्रान्तिके भी घटते रहनेसे कुछ अन्तर हो जाता है परन्तु इसकी गति बहुत मंद है इसलिए इसके कारण १०० वर्षतक बहुत भेद नहीं हो सकता।

यह बतलाया गया है कि वसंत सम्पात विन्दुके याम्योत्तरोल्लंघनके उपरान्त जितना समय नाक्षत्र घड़ीमें बीता रहता है उसे नाक्षत्रकाल (sidereal time) कहते हैं। यदि किसी समयका नाक्षत्रकाल ना हो और उसी समय स्पष्ट सूर्यका विषुवांश व हो तो स्पष्ट सूर्यके याम्योत्तरोल्लंघनके उपरान्त ना — व समय बीता है। इसलिए उस समयके स्पष्ट सूर्यका नतकाल† (hour angle) या

† सूर्य या तारेके याम्योत्तरोल्लंघनके समयसे इष्टकालतक जितना समय होता है उसको सूर्य या तारेका नतकाल (hour angle) कहते हैं। आजकल पूर्व नतकाल और पश्चिम नतकालका भेद नहीं माना जाता

स्पष्ट सावनकाल* = ना − व
उसी समय मध्यम सूर्यका नतकाल ना − भा है
∴ मध्यम सावनकाल = ना − भा = (ना − व) + (व − भा)
= स्पष्ट सावनकाल + काल समीकरण

इसलिए यह सिद्ध हो गया कि कालसमीकरण वह समय है जिसे स्पष्ट सावन कालमें बीजगणितकी रीतिसे जोड़ देनेपर मध्यम सावन काल आ जाता है।

उदाहरण—१९७६ वि० की वसंत पंचमीकी मध्यरात्रिके समय काल समीकरण क्या है ?

पहले सूर्यका मध्यम सायन भोगांश जानना चाहिए। इस समय सूर्यका मध्यम स्थान ९रा८°१२′६″ था (देखो पृष्ठ २१७)। १९७६ वि० की मेष संक्रान्तिकालमें अयनांश २२°३७′३८″ था (देखो पृष्ठ ३७१)। मेष संक्रान्तिसे २८३ दिन पीछे इस वर्ष वसंत पंचमी हुई थी (देखो पृष्ठ ६०)। इसलिए २८३ दिनमें अयनकी गति

$$५८''\cdot ६६ \times \frac{२८३}{३६५\cdot २५} = ४५''\cdot ५$$

इसलिए वसंतपंचमीकी मध्यरात्रिमें मध्यम अयनांश २२°३७′३८″·१ + ४५″·५ = २२°३८′२३″·६ हुआ। स्पष्ट अयनांश जाननेके लिए अक्ष विचलन संस्कार भी करना चाहिए परन्तु विस्तारके भयसे यह संस्कार छोड़ दिया जाता है।

जैसा कि पृष्ठ ४२८ में बतलाया गया है। यदि याम्योत्तरोल्लंघन कालसे २२ घंटा समय हो गया है तो कहेंगे कि नतकाल २२ घंटा है यद्यपि प्राचीन मतानुसार इस समय पूर्वनत २ घंटा होगा।

* यहां सावनकालका आरम्भ मध्याह्न से माना गया है।

इसलिए २२°३८′२३″·६ को ही स्पष्ट अयनांश मान लिया जाता है। अब,

सूर्यका मध्यम स्थान	=	६^{रा}८°१२′९″
अयनांश	=	२२°३८′२४″
∴ सूर्यका सायन मध्यम भोगांश	=	१०^{रा}०°५०′३३″
		=३००°५०′३३″

इसलिए सूत्र (८) के अनुसार,

कालसमीकरण=२३′·१७ ज्या ३००°५०′३३″
+११२′·८३ कोज्या ३००°५०′३३″
−१४८′·० ज्या (२ × ३००°५०′३३″)
=२३′·१७ (−ज्या ५९°९′२७″)
+११२′·८३ कोज्या ५९°९′२७″)
−१४८′ ज्या ६०१°४१′६″*
=−२३′·१७ × ·८५८६
+११२′·८३ × ·५१२६
−१४८′(−·८८०४)
=−१९′·८९+५७′·८४+१३०′·३०
=+१६८′·२५
=+१६८·२५ असु
=+२८ पल

यदि अधिक शुद्धताकी आवश्यकता हो तो समीकरण (६) की सहायतासे काल समीकरणका मान जानना चाहिए।

---

* ६०१°४१′६″=३६०°+ २४१°४१′६″=३६०°+ १८० + ६१° ४१′६″

∴ ज्या ६०१°४१′६″=ज्या (१८०°+६१°४१′६″)=−ज्या ६१°४१′६″

यह भी ध्यान रहे कि सूर्यका जो मध्यम स्थान ऊपर लिया गया है वह सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे जाना गया है। यदि शुद्ध वेधसे सूर्यका मध्यम सायन भोगांश निकाला* जाय तो ३०१° ५'२" होता है। इसलिये यदि समीकरण (६) तथा वेधसिद्ध मध्यम सायन भोगांशसे काल समीकरण निकाला जाय तो नाटिकल अलमैनेकमें दिये हुए काल समीकरणके समान होगा।

काल समीकरण प्रकट करनेका वक्र (curve)

अंशुओंमें कालसमीकरणका रूप सूत्र (७) में यह है

३४३७·७५{ २ च ज्या (भा — नी) — स्परे² कू ज्या २ भा }

यदि नी को २८१°३६' मान लिया जाय तो

भा — नी = भा — २८१°३६' = भा — (३६०° — ७८°२४')

= भा + ७८°२४' — ३६०°

= भा + ७८°२४'†

इसलिए उपर्युक्त सूत्रका रूप यह होगा

३४३७·७५ {२च ज्या (भा + ७८°२४') — स्परे² कू ज्या२भा}

---

* इसकी रीति यह है :—

१९७९ वि० की मेष संक्रान्तिकालमें १९२२ के नाटिकल अलमैनकके अनुसार सूर्यका मध्यम सायन भोगांश २०°४४'५८" था। मेष संक्रान्तिसे वसन्त पंचमीकी अर्द्धरात्रि तक २८४·४१६७ मध्यम सावन दिन होते हैं और सूर्यके मध्यमसायन भोगांशकी गति प्रतिदिन ०°·९८५६४७३३५३९ होती है। इनको गुणा कर देनेसे २८०°·३३४५६२५ अथवा २८०°२०' ४"·४ आता है। इसको मेष संक्रान्ति कालके सायन भोगांशमें जोड़ देनेसे ३०१°५'२"·४ हुआ।

† किसी कोणमें ३६० अंश जोड़ने या घटानेसे उस कोणकी ज्या, और कोटिज्या इत्यादिके मानोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और न उस कोणके मानमें ही कोई अन्तर पड़ता है।

इसमें च और स्परे² $\frac{क}{ह}$ के मान उत्थापन करने और सरल करनेपर यह रूप होगा

११५·१६५ × ज्या(भा + ७८° २४′) − १४७·६६५ज्या२भा ····(क)

इससे दो वक्र Curve खींचे जा सकते हैं जिनके समीकरण क्रमानुसार यह हैं

र = ११५·१६५ज्या(भा + ७८° २४′) ······················(ख)

रा = − १४७·६६५ ज्या २ भा ·························(खा)

यदि भा की जगह ०,३०,६०,६०, इत्यादि मान उत्थापित किये जांय तो सरल करनेपर र, रा और काल-समीकरणके मान नीचेकी सारिणीके अनुसार होंगे :—

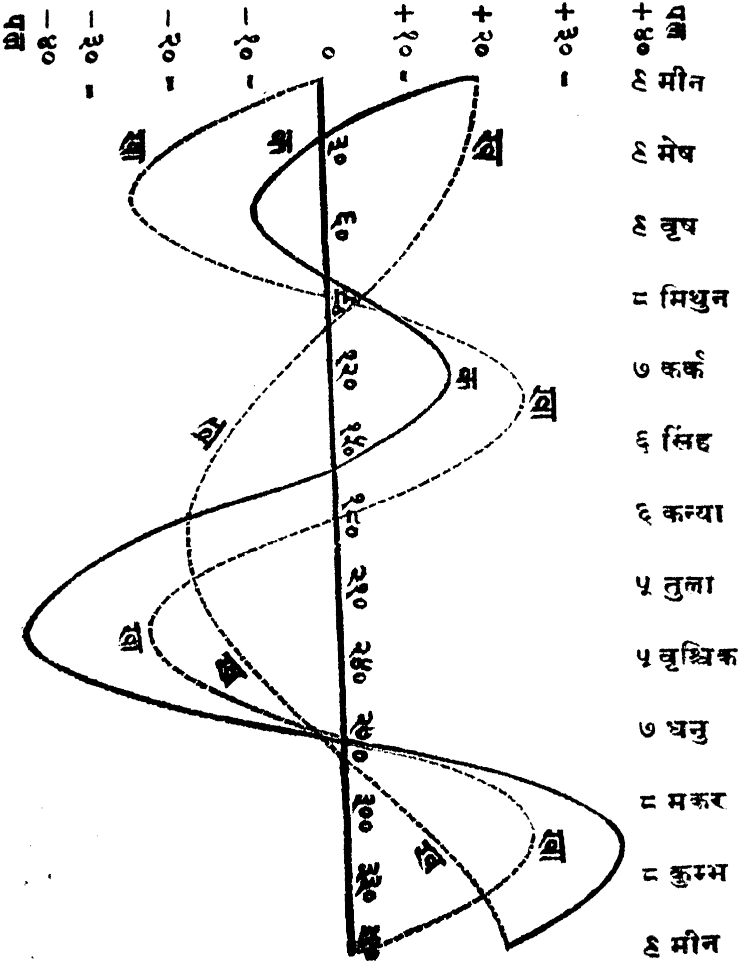
भा	र	रा	कालसमीकरण	निरयन सौरमास	अंग्रेजी तारीख
अंश	पल	पल	पल		
०	+ १८·८	०	+ १८·८	६ मीन	२३ मार्च
३०	+ १८·२	− २१·४	− ३·२	६ मेष	२२ अप्रैल
६०	+ १२·४	− २१·४	− ६	६ वृष	२३ मई
६०	+ ३·६	०	+ ३·६	८ मिथुन	२२ जून
१२०	− ६	+ २१·४	+ १५·४	७ कर्क	२३ जुलाई
१५०	− १४·४	+ २१·४	+ ७	६ सिंह	२२ अगस्त
१८०	− १८·८	०	− १८·८	६ कन्या	२२सितम्बर
२१०	− १८·२	− २१·४	− ३६·६	५ तुला	२२ अक्टूबर
२४०	− १२·४	− २१·४	− ३३·८	५ वृश्चिक	२१ नवम्बर
२७०	− ३·६	०	− ३·६	७ धनु	२२ दिसम्बर
३००	+ ६·१	+ २१·४	+ २७·५	८ मकर	२१ जनवरी
३३०	+ १४·४	+ २१·४	+ ३५·८	८ कुम्भ	२० फरवरी
३६०	+ १८·८	०	+ १८·८	६ मीन	२३ मार्च

इस सारिणीमें सौर और अंग्रेज़ी तारीखें भी दे दी गयी हैं। इन्हीं तारीखोंमें काल-समीकरणके यह मान ठीक होते हैं। और तारीखोंके काल-समीकरण जाननेके लिए चित्र ६४ से काम लेना चाहिये। सौर मासकी जो तारीखें लिखी हैं वह संक्रान्तिके हिसाबसे है। जैसे ६ मीनका अर्थ है निरयन मीन संक्रान्तिसे ६वां दिन, ६ सिंहका अर्थ है निरयन सिंह संक्रान्तिसे ६ठां दिन।

पहले बतला दिया गया है कि काल-समीकरण सूर्यके नीचके मध्यम सायन भोगांश और सूर्यकी परम क्रान्तिपर अवलम्बित है जो स्थिर नहीं है इसलिए काल-समीकरणके जो मान सारिणी या चित्र ६४ में दिए हुए हैं वह भी सदा-के लिए शुद्ध नहीं है। इनमें सूक्ष्म अन्तर प्रति वर्ष हो रहा है। सूर्यका मध्यम सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कला के लगभग बढ़ रहा है। इस प्रकार ६० वर्षमें एक अंशका अन्तर हो जाता है। इसलिए ६० वर्षोंतक समीकरणके मान वही समझे जांय जो सारिणी या चित्र ६४ से विदित होते हैं तो बहुत भूल नहीं पड़ेगी।

अब वक्र खींचनेकी रीति संक्षेपमें समझायी जाती है (देखो चित्र ६४)

सूर्यके मध्यम सायन भोगांश भा को भुज (abscissa) और र, रा को कोटि (ordinate) माना गया है। भा की जगह ३०, ६०, ६० इत्यादि रखनेसे र, रा के जो मान आये हैं वह बिन्दुओंसे प्रकट करके सबको मिला दिया गया है। इस से दो वक्र बन गये हैं। दो पासवाली ऊर्ध्वाधर (vertical) रेखाओंके बीचका अन्तर ३ अंश और दो पासवाली तिर्यक (horizontal) रेखाओंके बीचका अन्तर एक पल माना है। जब भा शून्य होता है तब र +१८.६ पल होता है और रा



- ७० क्रांति
- + ७० क्रांति
९ मीन
९ मेष
९ वृष
८ मिथुन
७ कर्क
६ सिंह
६ कन्या
५ तुला
५ वृश्चिक
७ धनु
८ मकर
८ कुम्भ
९ मीन
अंश

चित्र ६४

शून्य होता है इसलिये शून्य भोगांशके सामने धनात्मक दिशा-में १९वीं तिर्यक रेखा पर र के लिए एक विन्दु बना दिया गया है। जब भा ३० अंश होता है तब र + १८·२ और रा − २·१४ होते हैं। इसलिए ३० भोगांशके सामने धनात्मक दिशामें १८वीं तिर्यक रेखा पर एक विन्दु र के लिए और ऋणात्मक दिशामें २१वीं और २२ वीं तिर्यक रेखाओंके बीच एक विन्दु रा के लिए स्थिर किया गया है। इसी प्रकार अन्य विन्दु भी स्थिर किये गये हैं। र प्रकट करनेवाले जितने विन्दु हैं उनको मिला देनेसे ख ख ख ख वक्र बन गया है। इसी प्रकार रा प्रकट करने वाले विन्दुओंको मिला देनेसे खा खा खा खा बक्र बन गया है। इन दोनों वक्रोंकी सहायतासे क क क क बक्र इस प्रकार खींचा गया है—

शून्य भोगांश पर र=+१८·८ और रा=०। इन दोनोंका योग भी +१८·८ ही होगा इस लिए क क क क वक्र का विंदु भी +१८·८ पर होगा अर्थात् इस दशा में ख ख ख ख और क क क क वक्रोंके विंदु सामान्य होंगे। ३० भोगांश पर र=+१८·२ और रा=−२१·४। इन दोनोंका योग −३·२ है। इस लिए क क क क वक्रका विंदु ऋणात्मक दिशा में तीसरी तिर्यक रेखा पर होगा। ६० भोगांश पर र=+१२·४ और रा=−२१·४। इन दोनोंका योग −९ है। इस लिए क क क क वक्र का विंदु ऋणात्मक दिशामें ९वीं तिर्यक रेखा पर होगा। ९० भोगांश पर र=+३·६ और रा= शून्य इस लिए क क क क

* यह ऊर्ध्वाधर और तिर्यक रेखाएं चित्रमें नहीं दिखलायी गई हैं। इनका अनुमान भोगांशके अंकों और बग़लमें दिये हुए धनात्मक यह ऋणात्मक १०, २०, ३० के अंकोंसे किया जा सकता है।

वक्र का विंदु धनात्मक दिशा में ४ थी तिर्यक रेखा पर होगा। यह विंदु क क क क और ख ख ख ख दोनों वक्रों पर होगा, इत्यादि।

क क क क वक्र य भुज को (Axis of x को) जहां चार विंदुओं पर काटता है वहां यह प्रकट होता है कि काल-समीकरण शून्य है। इन समयों में सूर्यका मध्यम भोगांश क्रमसे २३, ८२, १६० और २७३.५ के लगभग होते हैं। यह भोगांश क्रमसे मेषकी २ री, मिथुनकी १ ली, सिंहकी १६ वीं और धनु की १० वीं तिथियोंको होते हैं। इस लिए इन तिथियों में काल-समीकरण शून्य होता है। इसका अर्थ यह है कि इन तिथियोंमें स्पष्ट काल और मध्यमकाल एक ही होते हैं। १७ वीं तुलाको काल-समीकरण – ४१ पल है। इसका अर्थ यह है कि इस तिथिको स्पष्ट सावन कालमें अथवा धूप-घड़ीके समयमें ४१ पल घटानेसे मध्यमकाल (यांत्रिक घड़ीका समय) ज्ञात होगा। इसी प्रकार मकर की २८ वीं तिथिको काल-समीकरण + ३६ पल है, अर्थात् इस दिन धूप-घड़ीके समयमें ३६ पल जोड़नेसे मध्यम काल ज्ञात होगा।

अब यह सिद्ध हो गया कि जो लोग रेल या तार-घरसे मिली हुई घड़ीके समयको ही धूप-घड़ीका भी समय समझ कर लग्न निकालते हैं उनका लग्न शुद्ध नहीं होता क्योंकि धूप और मध्यम घड़ियोंमें कभी कभी ४१ पल अथवा १६ मिनटका अंतर रहता है। इसके सिवा देशान्तरके कारण भी अन्तर पड़ता है क्योंकि भारतवर्षके रेल या तार-घरकी घड़ियोंका समय ग्रीनिचके* मध्यम समयसे ५½ घंटा अथवा १३ घड़ी

* कुछ लोग समझते हैं कि तार-घरकी घड़ीमें मदरासका समय रहता है परन्तु यह भ्रम है। मदरासमें एक वेधशाला अवश्य है और पहले

४५ पल आगे रखा जाता है। इसलिए यह समय केवल उन स्थानोंके मध्यम कालके अनुसार ठीक होता है जो ग्रीनिचसे ५½ घंटा अथवा ८२°३०′ पूर्व हैं। मिरजापुर ग्रीनिचसे ८२° ३८′१०″ पूर्व है। इस लिए मिरजापुरका मध्यम काल भारतीय मध्यम कालसे ८′१०″ अथवा ८ असु या सवापल अधिक है। यदि सवा पलका विचार न किया जाय तो कहा जा सकता है कि भारतीयमध्यम काल जो रेलवे और तार-घरों में प्रयोग किया जाता है मिरजापुरके मध्यम कालके समान होता है। इस लिए पूर्वके स्थानोंके मध्यम काल जाननेके लिए देशान्तरका संस्कार जोड़ना चाहिये और पच्छिमके स्थानोंका मध्यकाल जाननेके लिए देशान्तरका संस्कार घटाना चाहिए। यह नीचेके उदाहरणोंसे स्पष्ट होगाः—

उदाहरण १—प्रयागमें जिस समय सूर्योदयके उपरान्त धूप-घड़ीके अनुसार १६ घड़ी १५ पल बीतता है उस समय रेलवे की घड़ीमें क्या समय होगा जब सूर्यका निरयन भोगांश उदय कालमें ३रा५°१′६″ हो ?

इस दिन सूर्य कर्क राशिके ६-ठे अंश पर है इस लिए कर्ककी ६ ठीं तिथि है। सारिणीमें कर्ककी ७ वीं तिथिको काल समीकरण + १५·४ पल है। इस लिए सारिणीसे केवल यही पता लग सकता है कि इस दिन-काल समीकरण + १५ पलके लगभग है। चित्र ६४ से जहां काल-समीकरणका वक्र दिया हुआ है यह पता चल सकता है कि कर्ककी ६ ठीं तिथिको काल-समीकरण १५·४ पलसे अधिक था या कम। देखनेसे स्पष्ट है कि ७ कर्कके दिन क क क क वक्रके विंदुकी जो कोटि है

वही समय सब घड़ियों में रखा जाता था। परन्तु अब नियम बदल दिया गया है।

उससे कम ७ कर्कके पहलेके दिनों में है इसलिए यह निश्चय होता है कि ६ कर्कको काल-समीकरण +१५·४ पलसे कुछ कम है और ४ कर्कको यह ठीक +१५ पल है। इसलिए अभीष्ट काल-समीकरण +१५·३ पलके लगभग है। यह धनात्मक है इसलिए १६ घड़ी १५ पलमें इसे जोड़ना चाहिए। इसलिए जब प्रयागमें धूप-घड़ीके अनुसार ६ कर्कको १५ घड़ी १६ पल होता है तब प्रयागका मध्यम काल १६ घड़ी ३०·३ पल होगा।

परन्तु प्रयागका मध्यम काल भारतीय मध्यम कालसे कम होता है क्योंकि प्रयागका देशान्तर ग्रीनिचसे ८१°५५′१५″ पूर्व है और भारतीय मध्यम काल ग्रीनिचसे ८२°३०′ पूर्व होता है। इस लिए भारतीय मध्यम कालका देशान्तर प्रयागके देशान्तरसे ३४′४५′ पूर्व है। जब देशान्तरमें १° का अंतर होता है तब समयमें ४ मिनट या १० पलका अंतर होजाता है और जब देशान्तरमें १ कलाका अंतर होता है तब समयमें १ असुका अंतर पड़ता है इसलिए जब ३४′४५″ का अंतर है तब समय में ३५ असु या ६ पल के लगभग अंतर पड़ेगा। भारतीय मध्यम कालके देशान्तरसे प्रयाग पच्छिम में है इस लिए भारतीय मध्यमा काल प्रयागके मध्यम कालसे आगे है। इसलिए अभीष्ट कालमें भारतीय मध्यम काल १६ घड़ी ३०·३ पल + ६ पल = १६ घड़ी ३६ पल के लगभग होगा। यह ६ घंटा ३८ मिनट २४ सेकंड के समान है।

इस दिन सूर्योदय से मध्याह्न तक का स्पष्ट सावन काल १६ घड़ी ४३ पल है (देखो पृष्ठ ४८५) जो ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड है। परन्तु मध्याह्न ठीक १२ बजे होता है इसलिए १२ घंटा − ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड = ५ घंटा १८ मिनट ४८ सेकंडपर सूर्यका उदय हुआ होगा।

सूर्योदय का स्पष्ट काल = ५ घं० १८ मि० ४८ से०

सूर्योदयसे इष्ट समयतक का मध्यम

काल = ६ घं० ३८ मि० २४ से०

∴ रेल घड़ीका समय = ११ घं० ५७ मि० १२ से०

अर्थात् इस समय रेलकी घड़ी में ११ बजकर ५७ मिनट और १२ सेकंड होगा।

उदाहरण २—यदि मध्याह्नके बाद घड़ीमें जो रेलकी घड़ीसे मिली हुई है ५ बजकर २४ मिनट हुए हों तो काशी और प्रयाग की धूप घड़ियोंमें क्या समय होंगे? इस दिन सूर्योदय कालमें सूर्य का भोगांश ६$^{रा}$१५°२३′३४″ है।

सूर्य तुला राशिके १६वें अंशपर है इसलिए इस दिन तुला नामक सौर मासकी १६वीं तिथि है। चित्र ६४ से प्रकट है कि तुलाकी ५वीं तिथिको काल-समीकरण – ३७·५ पल और २० वीं तिथि को – ४१ पल है। इससे सिद्ध होता है कि १५ दिन में – ३·५ पलके लगभग कालसमीकरण बढ़ा है। इसलिए ११ दिनमें अर्थात् तुलाकी १६वीं तिथि को कालसमीकरण – २·७ बढ़कर – ४०·२ पल हो जायगा जो – १६ मिनटके लग-भग है। यह बतलाया गया है कि

मध्यम काल = स्पष्ट सावन काल + काल समीकरण

∴ ५ घंटा २४ मिनट = स्पष्ट सावनकाल + (– १६ मिनट)

∴ स्पष्ट सावनकाल = ५ घंटा २४ मिनट + १६ मिनट

= ५ घंटा ४० मिनट

यह समय ग्रीनिचसे ८२½ अंश पूर्वके देशान्तर-रेखा पर स्थित स्थानोंकी धूप घड़ियों में होगा क्योंकि भारतवर्ष भरके

तार घरों और रेलके स्टेशनोंकी घड़ियां इसी देशान्तर रेखाके मध्यमकालसे मिली रहती हैं।

काशी ग्रीनिचसे ८३°३'४" अथवा ८३°३' पूर्व है जो ८२° ३०' से ३३' अधिक है इसलिए काशी का स्पष्ट सावनकाल उपर्युक्त सावनकालसे ३३ असु अथवा ५½ पल अधिक होगा जो २ मिनट १२ सेकंड अथवा २ मिनटके समान है। इसलिए उस समय काशीकी धूप-घड़ीमें ५ बजकर ४२ मिनट हुआ रहेगा।

प्रयागका देशान्तर ८१°५५'१५" पूर्व है। इसलिए यह ८२°३०' से ३४'४५" पच्छिम है। इसलिए यहांकी धूप-घड़ी ३४¾ असु या २ मिनट १९ सेकंड पीछे होगी। इसलिए प्रयाग की धूप घड़ीमें इस समय ५ घंटा ३७ मिनट ४१ सेकंड होगा।

उदाहरण ३—दूसरे उदाहरणमें जो समय दिया हुआ है उस समय प्रयागमें क्या लग्न होगा?

पहले सूर्योदय का स्पष्टकाल जानना आवश्यक है। इसके लिए प्रयाग का चरकाल जानना चाहिए।

सूर्यका निरयनभोगांश = ६रा१५°२३'३४"

१९८२ वि० की १६ तुला को

अयनांश = २२°४१'६" [दे० पृ० ३७…

∴ सूर्यका सायन भोगांश = ७रा८°४'४०"

= ७रा८°५'

= ६ राशि + ३८°५'

∴ सूर्यकी क्रान्तिज्या = ज्या ३८°५' × ज्या २३°२७'

[दे० पृ० १८२

= ·६१६८ × ·३९७९

= ·२४५४

∴ क्रान्ति $= १४^\circ १२'$

सूर्य का सयन भोगांश ६ राशिसे अधिक है, इसलिए यह दक्षिण क्रान्ति है।

चरज्या = स्परे अक्षांश × स्परे क्रान्ति

= स्परे $२५^\circ २५'$ × स्परे $१४^\circ १२'$

= ·४७५२ × ·२५३०

= ·१२०२

∴ चरांश $= ६^\circ ५४'$

∴ चरपल = ६९ पल

= २७ मिनट ३६ सेकंड

क्रान्ति दक्षिण है इसलिए धूपघड़ीमें ६ बजकर २७ मिनट ३६ *सेकंड पर प्रयागमें सूर्यका उदय होगा। परन्तु इस दिन काल समीकरण – १६ मिनट है। इसलिए सूर्योदय कालमें प्रयागका मध्यमकाल = ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंड – १६ मिनट

= ६ बजकर ११ मिनट १६ सेकंड

प्रयागके सूर्योदय कालमें भारतवर्षका मध्यमकाल क्या होगा यह जानने के लिए २ मिनट १९ सेकंड और जोड़ना होगा क्योंकि प्रयाग २ मिनट १९ सेकंड पच्छिम है इसलिए यहांका मध्यम या स्पष्टकाल भारतवर्षके मध्यम कालसे इतना ही पीछे होगा, इसलिए प्रयागमें सूर्योदयके समय रेलकी घड़ीमें ६ बजकर १३ मिनट ३५ सेकंड हुआ रहेगा।

सूर्योदयसे मध्यम मध्याह्नकाल १२ घंटा – ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड अथवा ५ घंटा ४६ मिनट २५ सेकंड होता

---

* वर्तन (Refraction of light) के कारण सूर्योदय इससे भी कुछ पहले होता है जिसकी चर्चा आगेकी जायगी।

है और संध्याके ५ बजकर २४ मिनट तक ११ घंटा १० मिनट २५ सेकंड होता है। यह २७ घड़ी ५६ पलके समान है। इसलिए इष्टकाल में सूर्योदयोपरान्त २७ घड़ी ५६ पल है। यह मध्यम सावनकाल है। इसको नाक्षत्रकालमें बदलकर लग्न जाननेमें सुबिधा होगी।

६ सावन घड़ी = ६ नाक्षत्र घड़ी + १ नाक्षत्र पल (पृष्ठ ४७६)

∴ १८ सावन घड़ी = २८ नाक्षत्र घड़ी + ५ नाक्षत्रपल

∴ २७ घड़ी ५६ पल (सावन)

= २७ घड़ी ५६ पल + ५ पल (नाक्षत्र)

= २८ घड़ी १ पल (नाक्षत्र)

उदयकालमें सूर्यका निरयन भोगांश = ६रा१५°२३′३४″

= ६रा१५°२४′

इसलिए उदयकालमें तुला राशिका १५°२४′ लग्न है।

प्रयागमें तुला राशिका उदयकाल ५ घड़ी ४२ पल है।

जब ३०° का उदय		५ घड़ी ४२ पलमें होता है
तब १५°	,,	२ घड़ी ५१ पलमें होगा
और ३०′	,,	५ पल ४२ वि० में होगा
६′	,,	१ पल ८ वि० में होगा

∴ १५°२४′ का उदय २ घड़ी ५५ पल ३४ वि० में होगा

अर्थात् तुलाका भुक्तकाल = २ घड़ी ५६ पलके लगभग

∴ तुलाका भोग्यकाल = २ घड़ी ४६ पलके लगभग

वृश्चिकका उदयकाल =	५	,,	४४	,,
धनुका	,,	५	,,	१५	,,
मकरका	,,	४	,,	२५	,,
कुंभका	,,	३	,,	४८	,,
मीनका	,,	३	,,	४१	,,
कुलका योग		२५	,,	३९	,,

अर्थात् सूर्योदयसे घड़ी ३६ पल तक मीन राशिका उदय हो चुका।

इस लिए इष्टकालमें मेष राशि उदय हो रही है इस लिए यही उदय लग्न है। इसीको साधारणतः लग्न कहते हैं। यह जाननेके लिए कि मेष राशिका कौन विंदु लग्न है अनुपातसे काम लेना चाहिये।

इष्टकाल =२८ घड़ी १ पल

मीनके अंतका उदयकाल २५ घड़ी ३६ पल

मेषका भुक्तकाल =२ घड़ी २२ पल

=१४२ पल

मेषका उदयकाल =४ घड़ी ४ पल=२४४ पल

२४४ पल:१४२ पल::३० अंश:भुक्तांश

$\therefore$ भुक्तांश $\frac{१४२ \times ३०}{२४४}$ =१७°२७.'५

$\therefore$.मेषका १७°२७'.५ लग्न है।

उदाहरण ४—यदि प्रयागमें सूर्योदयकालके स्पष्ट सूर्यका निरयन भोगांश ६रा१५°२३'३४" हो तो उस दिन उज्जैनमें जिस समय सूर्य याम्योत्तरवृत्त पर आवेगा उस समय भारतीय मध्यमकाल क्या।

उज्जैन ग्रीनिचसे ७५°४६' पूर्व देशान्तर और २३°६' उत्तर अक्षांश पर है। प्रयागका देशान्तर ८१°५५'१५" और उत्तर अक्षांश २५°२५' है।

उज्जैन प्रयागसे ८१°५५'१५"—७५°४६'=६°९'१५" पच्छिम है। इस लिए उज्जैनका स्पष्ट मध्यान्ह प्रयागके स्पष्ट मध्यान्हसे

२४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। तीसरे उदाहरणमें बतलाया गया है कि प्रयागमें धूप घड़ीके अनुसार ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंडपर सूर्योदय होगा। इसलिए सूर्योदयके समय

नतकाल=१२ घंटा — ६ घं० २७ मि० ३६ से०.

=५ घंटा ३२ मि० २४ से०

अर्थात् सूर्योदयके ५ घंटा ३२ मिनट २४ सेकंड उपरान्त स्पष्ट मध्याह्न होगा। परन्तु सूर्योदयके समय भारतीय मध्यम-काल ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड होता है इस लिए प्रयागमें स्पष्ट मध्यान्हके समय भारतीय मध्यमकाल=६ घंटा १३ मि० ३५ से० +५ घं० ३२ मि० २४ से०

=११ घंटा ४५ मिनट ४६ सेकंड

उज्जैन प्रयागसे २४ मिनट ३७ सेकंड पच्छिम है इस लिए यहां स्पष्ट मध्यान्ह प्रयागके स्पष्ट मध्यान्हसे २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। परन्तु प्रयागके स्पष्ट मध्यान्हके समय भारतीय मध्यमकाल ११ घंटा ४५ मिनट ४६ सेकंड होता है, इसलिए उज्जैनके स्पष्ट मध्यान्हके समय रेलकी घड़ीमें १२ बजकर १० मिनट २६ सेकंड हुआ रहेगा।

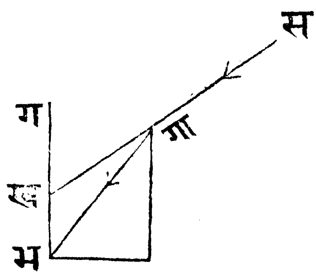
* पृष्ठ १२० की टिप्पणीमें लिखा गया है कि किरणोंके झुक जानेके कारण गणनाके समयसे सूर्योदय कुछ पहले हो जाता है। इसलिए यह बतलाना आवश्यक है कि किरणोंका झुकना क्या है और इससे दिनके परिमाणमें जो अन्तर पड़ जाता है उसका संशोधन कैसे करना चाहिये।

वर्तन (REFRACTION OF LIGHT)

हवा, जल, कांच, अबरक ऐसे पदार्थ हैं जिनमें प्रकाश घुसकर दूसरी ओर चला जाता है। इसलिए ये पारदर्शक

(Transparent) कहलाते हैं। जब प्रकाश एक समजातीय (homogeneous) पारदर्शक पदार्थसे दूसरे समजातीय पारदर्शक पदार्थमें जाता है तब उसकी दिशा वही नहीं रहती जो पहले पारदर्शक पदार्थमें होती है। इस घटनाको किरणका वर्तन या केवल वर्तन कहते हैं। इसको कुछ लेखकोंने किरण-वक्रीभवनका नाम दिया है परन्तु कई बातोंकी सुविधाके विचारसे इसको वर्तन कहना अच्छा जान पड़ता है। इससे किसी वस्तुके यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें बड़ा अन्तर देख पड़ता है। कभी कभी वस्तुएं विचित्र रूप धारण कर लेती हैं। परन्तु इन सब घटनाओंकी चर्चा करनेके लिए यह स्थान उचित नहीं है। यहां केवल उतना ही बतलाया जायगा जितना ज्योतिषसे संबंध रखता है। अनुभव के लिए एक छोटा सा उदाहरण देना पर्याप्त होगाः—

पानी भरा हुआ गिलास धूपमें रख दो और देखो कि गिलासका कितना भागधूपसे प्रकाशित होता है। पानी गिरा कर गिलासको फिर उसी जगह रख दो। इसबार गिलासका कुछ कम भाग प्रकाशित होगा। चित्र ६५ में ग गा एक गिलास है। यदि



चित्र ६५

पानी भर कर यह धूपमें रखा जाय तो ग से भ तक प्रकाशित देख पड़ता है अर्थात् यह देख पड़ता है कि धूप गिलासके पेंदेके किनारे तक भी पहुँचती है। परन्तु पानी गिराकर गिलासको फिर वहीं रख देने पर देख पड़ता है कि

अब गिलासका केवल ग ख भाग प्रकाशित रहता है, पेंदे तक धूप जाती ही नहीं। इससे यह प्रकट हाता है कि हवामें यदि किरण स गा ख दिशामें होती है तो पानीमें घुसते ही वह गा भ दिशामें हो जाती है।

यदि प्रकाशकी कोई किरण स प एक समजातीय पारदर्शक पदार्थ ह ह से दूसरे समजातीय पारदर्शक पदार्थ ज ज में प विन्दुसे प्रवेश करके पन दिशामें चलती हुई न विन्दुसे वह फिर ह ह पदार्थमें निकल आती है तो नसा और सप किरणें समानान्तर होती हैं। सप को आपात किरण (incident ray) पन को वर्तित किरण (refracted ray) और नसा को निर्गत किरण (emergent ray) कहते हैं। यदि प विन्दुपर लपला लम्ब (Normal) हो तो सपल कोण को आपातकोण (angle of incidence) और नपला कोण को वर्तितकोण (angle of refraction) कहते हैं। आपात और वर्तित किरणों तथा प्रवेश विन्दुका लम्ब एक ही तलमें रहते हैं।

आपात और वर्तित कोणोंमें जो परस्पर सम्बन्ध होता है वह नीचेके सूत्रसे प्रकट किया जाता है—

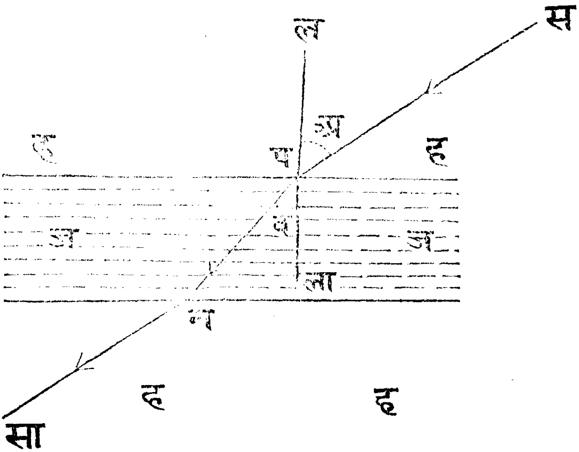
$$\frac{\text{आपतकोणकी ज्या}}{\text{वर्तितकोणकी ज्या}} = \text{स्थिर संख्या}$$

यदि आपातकोण को अ, वर्तितकोण को व और स्थिर संख्या को ध से सूचित किया जाय तो उपर्युक्त सूत्रका सरल रूप यह होगा।

$$\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या व}} = \text{ध; अथवा ज्या अ} = \text{ध} \times \text{ज्या व}$$

अ के बदलनेसे व भी इस तरह बदलेगा कि इन दोनोंकी ज्याओंका सम्बन्ध सदैव ध के समान होगा। ध का परिमाण

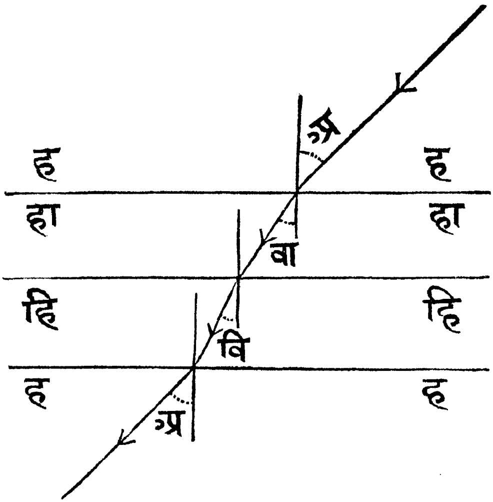
दो पारदर्शक पदार्थोंके गुणके अनुसार बदलता है। इसको पहले पारर्शक पदार्थ से दूसरे पारदर्शक पदार्थका वर्तनाङ्क (index of refraction) कहते हैं। जब प्रकाश पतले पारदर्शक पदार्थसे घने पारदर्शक पदार्थमें जाता है तब वर्तित किरण लम्बकी ओर झुक जाती है अर्थात् वर्तितकोण आपात कोणसे छोटा होताहै। परन्तु जब प्रकाश घने पदार्थसे पतले पदार्थमें जाता है तब वह लम्बसे दूर होजाता है। चित्र ६६ में



चित्र ६६

जज पदार्थ हह पदार्थसे घना है इसलिए जज में वर्तित किरण लम्बकी ओर हो गयी है और जज से निकलकर हह में आते समय वह लम्बसे दूर हो गयी है। यदि प्रकाशकी दिशा उलट जाय अर्थात् जज में इसकी दिशा नप हो तो हह में इसकी दिशा पस हो जायगी। कई पारदर्शक पदार्थोंमें होता हुआ प्रकाश जिस जिस वक्र या टूटी हुई रेखासे जाता है यदि दिशा उलट जाय तो उसी उसी रेखासे वह लौट भी आता है।

मानलो हह, हाहा, हिहि तीन पारदर्शक पदार्थोंके स्तर हैं जो परस्पर समानान्तर हैं।



चित्र ६७

यदि हह से हाहा का वर्तनाङ्क धा हो और हह से हिहि का वर्तनाङ्क धि हो। तो हाहा से हिहि के वर्तनाङ्क का ज्ञान सहज ही हो सकता है। यह परीक्षासे अनुभव किया जा सकता है कि यदि प्रकाश ह ह से हा हा और हि हि होता हुआ फिर ह ह में प्रवेश करे तो इसकी जो दिशा पहले ह ह में होती है वही अन्तमें भी होती है अर्थात् ह ह और हा हा के प्रवेश विंदु पर जो अपात कोण बनता है वही हि हि से ह ह में निकलते समय निर्गत विंदु पर भी बनता है। वर्तनके नियमके अनुसार

ज्या अ=धा × ज्या वा; ज्या अ=धि × ज्या धि

∴ धा × ज्या वा=धि × ज्या वि

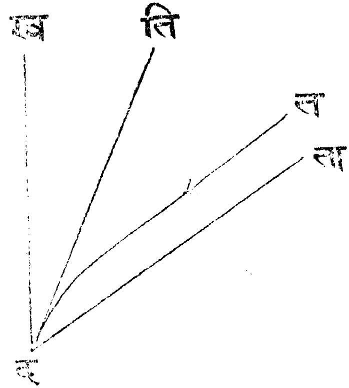
अथवा $\frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या वि}} = \frac{\text{धि}}{\text{धा}}$

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि एक पदार्थ ह ह से दूसरे पदार्थ हा हा का वर्तनाङ्क धा हो और पहले ही पदार्थसे तीसरे पदार्थ हि हि का वर्तनांक धि हो और यदि हा हा से हि हि में जानेवाली किरणका आयात कोण वा और वर्तित कोण वि हो तो दूसरे पदार्थ हा हा से तीसरे पदार्थ हि हि में जाने वाली किरणका वर्तनाङ्क धि ÷ धा होगा।

ज्योतिष संबन्धी वर्तन—खगोल पिंडोंसे जो प्रकाश पृथ्वीपर आता है उसकी किरणें जब वातावरणमें घुसती हैं तब इनमें वर्तन होता है। ऐसे वर्तनको ज्योतिष संबन्धी वर्तन (Astronomical refraction) कहते हैं। वातावरणका घनत्व ऊपरसे नीचेतक एकसा नहीं है। जैसे जैसे पृथ्वीसे दूरी अधिक होती जाती है तैसे तैसे वातावरण पतला होता जाता है। इसलिए कुल वातावरण सजातीय नहीं है। खगोलीय पिंडसे आती हुई किरण जब वातावरणमें प्रवेश करती है तब पहले बहुत पतले स्तरमें जाती है और ज्यों ज्यों पृथ्वीके निकट पहुँचती आती है त्यों त्यों कम घनेसे अधिक घने स्तरमें आनेके कारण वह लम्बकी ओर कुछ कुछ झुकती हुई पृथ्वीपर पहुँचती है। इसलिए वातावरणमें इसका मार्ग वक्र होता है। पृथ्वीपर पहुँचते समय किरणकी जो दिशा होती है उसीमें खगोलीय पिंड देख पड़ता है।

किसी तारेसे कोई किरण त क की दिशामें क तक सीधी आकर क स्थानपर वातावरणमें प्रवेश करती है। इस स्थानसे इसकी राह सीधी नहीं रहती। क से द्रष्टाके स्थान द तक किरणको वातावरणके भिन्न भिन्न स्तरोंमें घुसना पड़ता है जो क्रमशः घनी होती जाती हैं। इसलिए किरण भी क्रमशः वक्र

होती जाती है और अन्तमें द तक पहुँच जाती है। इस वक्रके द बिन्दुपर द ति स्पर्शरेखा है। द्रष्टाको ज्ञान पड़ता है कि



चित्र ६८

तारा द ति दिशामें है। यदि द से द ता रेखा क त के समानान्तर खींची जाय तो द ता* दिशामें तारा उस समय देख पड़ता जब किरणको झुका देनेवाला वातावरण न होता। इसलिए वातावरणका प्रभाव यह हुआ कि तारेका स्पष्ट स्थान ता से ति हो गया अर्थात् तारा खस्वस्तिक ख की ओर कुछ चढ़ा हुआ देख पड़ता है। इसलिए वर्तनके कारण खगोलीय पिंडका नतांश कुछ कम हो जाता है और उन्नतांश उतना ही अधिक हो जाता है। चित्रमें इस वर्तनका परिमाण ता द ति कोणके समान है। त का यथार्थ नतांश ता द ख और स्पष्ट नतांश ति द ख

* बिलकुल शुद्ध दिशा द त है। परन्तु त तारा इतनी दूर है कि त द ता कोण शून्यके समान है।

है। जिस समय खगोलीय पिंड क्षितिजमें रहता है उस समय उसका वर्तन सबसे अधिक ३५′ के लगभग होता है।

अब यह प्रकट हो गया होगा कि वातावरणके कारण किसी खगोलीय पिंडका स्पष्ट स्थान वही नहीं होता जो यथार्थमें होना चाहिए। इसलिए यदि वर्तनका संस्कार न किया जाय तो गणनामें कुछ भूल रह जाती है। नीचे एक सारिणी* दी जाती है जिससे यह जान पड़ेगा कि वर्तनके कारण किसी तारेका नतांश कितना कम हो जाता है। यह सारिणी उस समयकी है जिस समय वातावरणका दबाव ३० इञ्च ऊँचे पारेके दबावके समान होता है और तापक्रम ५०° फारनहैटके समान होता है। इससे भिन्न अवस्थामें कुछ अंतर हो जाता है।

स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन
०°	०″	३५°	४१″	७०°	२′३६″
५°	५″	४०°	४६″	७५°	३′३४″
१०°	१०″	४५°	५८″	८०°	५′१६″
१५°	१६″	५०°	१′६″	८५°	६′५१″
२०°	२१″	५५°	१′२३″	८७°	१४′२३″
२५°	२७″	६०°	१′४१″	८८°	१८′१६″
३०°	३४″	६५°	२′४″	८८°४०′	२१′२३″
				९०°	३५′लगभग

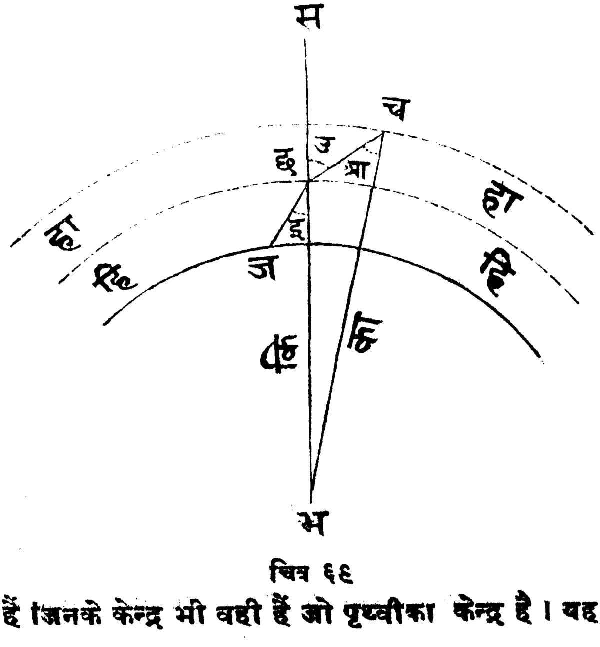
इस सारिणीसे किसी तारेका यथार्थ नतांश सहज ही

* R.S. Ball's Spherical Astronomy page 120.

आना जा सकता है। जैसे यदि किसी तारेका स्पष्ट नतांश ६०° हो तो इसका यथार्थ नतांश ६०°१′४१″ होगा। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि जो तारा ठीक सिरके ऊपर (खस्वस्तिकपर) रहता है उसका स्पष्ट और यथार्थ स्थान एक ही होता है और यदि स्पष्ट नतांश ४५° से कम हो तो उसका वर्तन १′ से अधिक नहीं होता है। यदि स्पष्ट नतांश २०° से अधिक न हो तो प्रति १° नतांशके लिए १″ वर्तन होता है।

वातावरण सम्बन्धी वर्तनकी साधारण मीमांसा—

सरलताके लिए यह समझ लेना अच्छा होगा कि पृथिवी पूर्ण गोल है और वातावरणमें नीचेसे ऊपरतक पतले पतले



चित्र ६६

स्तर हैं जिनके केन्द्र भी वही हैं जो पृथ्वीका केन्द्र है। यह भी

मान लेना चाहिए कि प्रत्येक स्तरका वर्तनाङ्क उस स्तरमें सब जगह स्थिर है परन्तु एक स्तरका वर्तनाङ्क दूसरे स्तरके वर्तनाङ्कसे भिन्न है।

चित्र ६९ में ऐसे दो स्तरों हा हा और हि हि का सम्बन्ध दिखलाया जाता है। मान लो कि जब प्रकाश शून्य (aether) से हा हा में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धा और जब प्रकाश शून्यसे हि हि में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धि होता है। मान लो कि हा हा में किरणकी दिशा च छ है और हि हि में इसी किरणकी दिशा छ ज हो जाती है।

यदि भ पृथ्वीका केन्द्र हो और भ च=का, भ छ=कि, ∠ भ च छ=आ, ∠भ छ ज=इ और ∠ स छ च=उ हो, तो

पृष्ठ ५२९ के अनुसार

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{ज्या इ}}=\frac{\text{धि}}{\text{धा}}\ \therefore \text{ज्या उ}=\text{ज्या इ}\times\frac{\text{धि}}{\text{धा}}$$

परन्तु भ च छ त्रिभुजमें

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{का}}=\frac{\text{ज्या आ}}{\text{कि}}\ \therefore \text{ज्या उ}=\text{ज्या आ}\times\frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

$$\therefore \text{ज्या इ}\times\frac{\text{धि}}{\text{धा}}=\text{ज्या आ}\times\frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

अथवा कि × धि × ज्या इ=का × धा × ज्या आ

यह नियम किसी दो पासवाले स्तरोंके लिये ठीक है। इस प्रकार यह साधारण नियम निकल आता है—

यदि वातावरण गोल सजातीय स्तरोंका बना हुआ मान लिया जाय जिनका केन्द्र वही हो जो पृथ्वीका केन्द्र है परन्तु जिनका घनत्व एक दूसरेसे भिन्न होता जाता है तो जब प्रकाशकी किरण एक स्तरसे दूसरे स्तरमें घुसती हुई आगे बढ़ती है

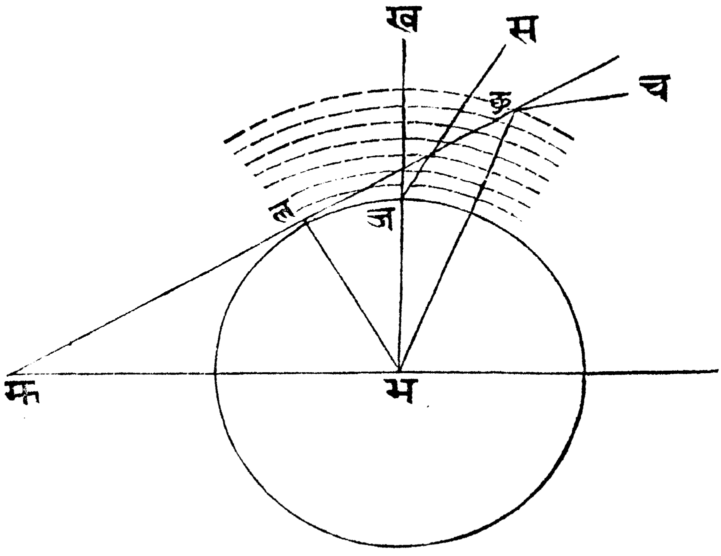
तब किसी स्तरके वर्तनाङ्क, त्रिज्या और वर्तित कोणकी ज्याके गुणनफल स्थिर होते हैं।

इस नियमको नीचेके सूत्रसे भी प्रकट किया जा सकता है—

का × धा × ज्या आ = क × ध × ज्या न ....(१)

जहां का, धा और आ क्रमशः किसी स्तरकी त्रिज्या, वर्तनांक और वर्तित कोण और क, ध, न क्रमशः पृथ्वीकी त्रिज्या, सबसे नीचेके स्तरके वर्तनांक और वर्तित कोण हैं। भूतलको छूनेवाले स्तरमें जो वर्तित कोण है वह प्रायः नतांशके समान होता है। इसलिए न खगोलीय पिंडका स्पष्ट नतांश भी है।

यदि इन स्तरोंको बहुत पतला मान लिया जाय तो कि-



चित्र ७०

रणका मार्ग टूटी हुई रेखाके स्थानमें वक्र रेखा होगी। मान लो

च छ ज वह वक्र है जिसपर किरण इन पतले पतले स्तरोंमें क्रमशः घुसती हुई पृथ्वीतलके ज विन्दुपर पहुँचती है। इस वक्रके छ विन्दुपर छ ल भ एक स्पर्शरेखा है। किरण छ विन्दुपर जिस स्तरमें घुसती है उसका वर्तनांक धा और त्रिज्या का है। यह स्पर्शरेखा वक्र बनानेवाली किरणसे कुछ दूरतक एक हो जाती है इसलिए इस विन्दुपर जो वर्तित कोण बनता है वह छ ल भ कोणके समान होता है। मान लो यह आ के समान है, जब किरण वातावरणके सबसे ऊपरवाले स्तरमें घुसती है तब इसकी दिशा वही होती है जो शून्यमें उसकी यथार्थ दिशा है। जिस समय किरण पृथ्वीतलके विन्दु ज पर पहुँचती है उस समय इस विन्दुपर वक्रकी जो स्पर्शरेखा ज स होती है वह उस दिशाको सूचित करती है जिसमें किरण द्रष्टाकी आंखमें पहुँचती है। यदि ज स्थानका खस्वस्तिक ख हो तो यही ख ज स कोण तारेका स्पष्ट नतांश होता है। सबसे ऊपरवाले स्तरमें वक्रकी जो स्पर्शरेखा होती है तथा पृथ्वीतलके विन्दुपर वक्रकी जो स्पर्शरेखा होती है उन दोनोंके बीचमें जो कोण होता है वही ज्योतिष-सम्बन्धी वर्तन कहलाता है। इसीके जाननेसे किसी तारेके स्पष्ट और यथार्थ स्थानकी जानकारी हो सकती है। इसीको साधारणतः वर्तन कहते हैं। यदि इसका परिमाण व माना जाय तो ता (व) अर्थात् व की तात्कालिक गति पासवाले किसी दो स्तरोंके वर्तनोंका अन्तर और ता (धा) अर्थात् वर्तनांककी तात्कालिक गति उन्हीं दो स्तरोंके वर्तनांकोंका अन्तर हुआ। यदि आ और इ इन दोनों स्तरोंके वर्तित कोण तथा धा, धि इनके वर्तनांक हों तो

आ — इ=ता (व) और धि—धा = ता (धा)

∴ इ=आ — ता (व) और धि=धा + ता (धा)

परन्तु का × धा × ज्या आ=कि × धि × ज्या इ

यदि वातावरणके दो पतले स्तर बहुत पास हों तो उनकी त्रिज्याएँ प्रायः समान होती हैं इसलिए का=कि। ऐसी दशामें

धा × ज्या श्रा=धि × ज्या इ

=[धा + ता (धा)] × ज्या [श्रा − ता (व)]

=[धा + ता (धा)] × [ज्या श्रा × कोज्या ता (व) − कोज्या श्रा × ज्या ता (व)]

परन्तु ता (व) बहुत छोटा और चापीयमानमें है इसलिए ज्या ता (व)=ता(व) और कोज्या ता (व)=१

∴ धा × ज्या श्रा

=[धा + ता (धा)] [ज्या श्रा — ता (व) × कोज्या श्रा]

=धा × ज्या श्रा − धा × ता (व) × कोज्या श्रा + ता(धा) × ज्या श्रा

क्योंकि चौथे पदमें ता (धा) और ता (व) के गुणनफलका गुणक (coefficient) बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया गया है।

∴ ० = ता (धा) × ज्या श्रा — धा × ता (व) × कोज्या श्रा

$$\therefore \frac{\text{ज्या श्रा}}{\text{धा} \times \text{कोज्या श्रा}} = \frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}} = \frac{\text{स्परे श्रा}}{\text{धा}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (२)$$

समीकरण (१) और (२) से ऐसा समीकरण जाना जा सकता है जिसमें श्रा न रहे।

$$\text{समीकरण (१) से ज्या श्रा} = \frac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\text{का} \times \text{धा}}$$

त्रिकोणमितिसे यह प्रकट है कि

$$\text{स्परे श्रा} = \frac{\text{ज्या श्रा}}{\sqrt{(१ - \text{ज्या}^{२} \text{ श्रा})}}$$

$$= \frac{\frac{क \times ध \times ज्या\ न}{का \times धा}}{\sqrt{\left(१ - \frac{क^२ \times ध^२ \times ज्या^२\ न}{का^२ \times धा^२}\right)}}$$

$$= \frac{क \times ध \times ज्या\ न}{\sqrt{(का^२ \times धा^२ - क^२ \times ध^२ \times ज्या^२\ न)}}$$

$$\therefore \frac{ता\ (व)}{ता\ (धा)} = \frac{१}{धा} \times \frac{क \times ध \times ज्या\ न}{\sqrt{(का^२ \times धा^२ - क^२ \times ध^२ \times ज्या^२\ न)}}$$

यही ज्योतिष सम्बन्धी वर्तनका साधारण चलन-समीकरण (differential equation) है। यदि सबसे ऊपरवाले स्तरका वर्तनांक १ और सबसे नीचेवाले स्तरका वर्तनांक ध मान लिये जांय और उपर्युक्त चलन समीकरणका इन्हीं सीमाओंके बीच चलराशिकलन (Integration) किया जाय तो ज्योतिष सम्बन्धी वर्तनका पूरा ज्ञान किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करनेमें कठिनाई यह पड़ती है कि इस चलनसमीकरणमें का और धा दो चल राशियां (Variables) हैं जिनका परस्पर सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि हमें इस बातका ठीक ठीक पता नहीं है कि पृथ्वीकी किस ऊँचाईपर वर्तनांक क्या है। परन्तु इसके बिना जाने भी उपर्युक्त समीकरणका चलराशिकलन एक युक्तिसे निकाला जा सकता है जिससे यथार्थ वर्तनका प्रायः ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है।

इस युक्तिमें $\frac{का}{क}$ को १ + छ मान लेना होता है जब कि छ का परिमाण अत्यन्त छोटा होता है क्योंकि का वातावरणके किसी स्तरकी त्रिज्या है और क पृथ्वीकी त्रिज्या है। यह भी ज्ञात है कि उस वातावरण की ऊँचाई जिसमें किरणोंको झुका देने (वर्तन करने) का गुण होता है अधिकसे अधिक ५०

मील है। पृथ्वीकी त्रिज्या अर्थात् क ४००० मील है, इसलिये $\frac{\text{का}}{\text{क}}=\frac{४०५०}{४०००}=१+\frac{१}{८०}$। इससे स्पष्ट है कि $\text{छ}=\frac{१}{८०}$ और इसके वर्ग, घन इत्यादि इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। ऐसी कल्पना करनेसे

$$\text{व}=\int_{१}^{\text{ध}}\frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा}\left(\text{धा}^{२}-\text{ध}^{२}\text{ज्या}^{२}\text{ न}+२\text{ छ धा}^{२}\right)^{\frac{१}{२}}}$$

$$=\int_{१}^{\text{ध}}\frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा}\left(\text{धा}^{२}-\text{ध}^{२}\text{ज्या}^{२}\text{न}\right)^{\frac{१}{२}}}\left(१+\frac{२\text{ छ धा}^{२}}{\text{धा}^{२}-\text{ध}^{२}\text{ज्या}^{२}\text{न}}\right)^{-\frac{१}{२}}$$

$$=\int_{१}^{\text{ध}}\frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा}\left(\text{धा}^{२}-\text{ध}^{२}\text{ज्या}^{२}\text{न}\right)^{\frac{१}{२}}}-\int_{१}^{\text{ध}}\frac{\text{छ}\cdot\text{धा}\cdot\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\left(\text{धा}^{२}-\text{ध}^{२}\text{ज्या}^{२}\text{न}\right)^{\frac{३}{२}}}$$

सरल करनेपर इसका रूप यह होगा—

$$\text{व}=\text{प स्परे न}+\text{फ स्परे}^{३}\text{ न}\cdots\cdots\cdots(१)$$

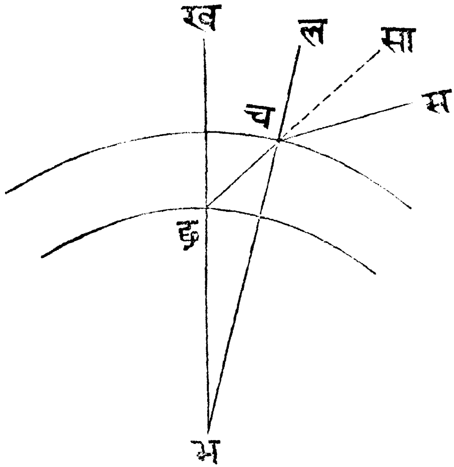
जहां प और फ कोई स्थिर राशियां हैं और न स्पष्ट नतांश है। प और फ के मान प्रत्यक्ष वेधसे जाने जा सकते हैं।

कैसिनीका सूत्र—

कैसिनी नामक ज्योतिषीने यह कल्पना किया कि वातावरण ऊपरसे नीचेतक सजातीय है अर्थात् एक ही घनत्वका है। इस कल्पनासे वर्तनका जो सूत्र ज्ञात हुआ वह ऊपर बतलाये गये सूत्रसे मिलता जुलता है। इससे वर्तनका जो परिमाण जाना जाता है वह ८०° तकके नतांशके लिए सन्तोषप्रद है। यदि नतांश ८०° से अधिक हो तो वर्तनके परिमाणमें स्थूलता रह जाती है।

इस कल्पनामें यह मान लेना पड़ता है कि शून्यसे आती हुई किरण वातावरणमें प्रवेश करते ही एक बार झुक जाती है और फिर वही दिशा पृथ्वीतलतक बनी रहती है।

मान लो स च छ एक किरण है जो च विन्दुपर झुकी हुई है।



चित्र ७१

पृथ्वीकी त्रिज्या=भ छ=क

भ च=क (१+छ) जब कि छ बहुत छोटा है जैसा कि पहले बतलाया गया है।

अ=आपात कोण=∠स च ल = ∠स च सा + ∠ल च सा

=वर्तन+वर्तित कोण=व + ∠छ च भ=व + वा

∠ख छ च=स्पष्ट नतांश

वर्तनके नियमके अनुसार

ज्या अ=ध × ज्या वा या ज्या (व + वा)=ध × ज्या वा

जहां ध वातावरणका वर्तनांक है।

यह स्पष्ट है कि व बहुत छोटा होता है। इसलिए

$$\text{ज्या } (\text{व} + \text{वा}) = \text{ज्या व} \times \text{कोज्या वा} + \text{कोज्या व} \times \text{ज्या वा}$$

$$= \text{व} \times \text{कोज्या वा} + \text{ज्या वा}$$

$$\therefore \text{ ज्या वा} + \text{व} \times \text{कोज्या वा} = \text{ध} \times \text{ज्या वा}$$

$$\therefore \text{ व} = (\text{ध} - १) \text{ स्पर्रे वा}$$

त्रिभुज भ छ च में,

$$\frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{क}}{\text{क } (१ + \text{छ})} = \frac{१}{१ + \text{छ}}$$

$$\therefore \text{ ज्या वा} = \frac{\text{ज्या न}}{१ + \text{छ}}$$

परन्तु $\text{स्पर्रे वा} = \text{ज्या वा} \div \text{कोज्या वा} = \text{ज्या वा} \div \sqrt{(१ - \text{ज्या}^२ \text{वा})}$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{१ + \text{छ}} \div \sqrt{१ - \frac{\text{ज्या}^२ \text{ न}}{(१ + \text{छ})^२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१ + \text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$$\therefore \text{ व} = (\text{ध} - १) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१ + \text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{न}\}}}$$

$$= (\text{ध} - १) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{१ + २ \text{ छ} + \text{छ}^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$\text{छ}^२$ बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया जा सकता है।

ऐसी दशामें $\text{व} = (\text{ध} - १) \dfrac{\text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{कोज्या}^२ \text{ न} + २ \text{ छ})}}$

$$= \frac{(\text{ध} - १) \text{ ज्या न}}{\sqrt{\left(१ + \frac{२\text{छ}}{\text{कोज्य}^२\text{न}}\right)} \times \text{कोज्या न}}$$

$$=\frac{(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}}{\sqrt{(१+२\text{छ}\times\text{छे}^{२}\ \text{न})}}*$$

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ (१-\text{छ}\times\text{छे}^{२}\ \text{न})$$

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ \{१-\text{छ}\ (१+\text{स्परे}^{२}\text{न})\}$$

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ \{१-\text{छ}-\text{छ स्परे}^{२}\ \text{न}\}$$

$$=(\text{ध}-१)(१-\text{छ})\ \text{स्परे न}-\text{छ}\ (\text{ध}-१)\ \text{स्परे}^{३}\ \text{न}$$

$$=\text{प स्परे न}+\text{फ स्परे}^{३}\ \text{न}\cdots\cdots\cdots\cdots(२)$$

यह पहले ही रूपका है। यहां प=(ध—१) (१—छ) और फ=—छ (ध—१)

इस सूत्रका प्रयोग व्यवहारमें उसी समय हो सकता है जब प और फ के मान ज्ञात हों। इनका ज्ञान प्रत्यक्ष वेधसे हो सकता है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। मान लो† यह पाया गया है कि ५०° फारनहैटके तापक्रमपर जबकि वायुका दबाव ३० इञ्च ऊँचे पारेके दबावके समान है ५४° और ७४° नतांशोंके वर्तन क्रमशः ८०″·०६ और २००″·४६ हैं।

उपर्युक्त सूत्रके अनुसार दो समीकरण यह हुए

$$८०''\cdot०६=\text{प}\ (\text{स्परे}\ ५४^\circ)+\text{फ}\ (\text{स्परे}\ ५४^\circ)^{३}$$

$$२००''\cdot४६=\text{प}\ (\text{स्परे}\ ७४^\circ)+\text{फ}\ (\text{स्परे}\ ७४^\circ)^{३}$$

इन समीकरणोंसे प और फ के मान क्रमशः ५८″·२६४ और ०″·०६६८२ आते हैं। इसलिए ५० फा० और ३० इञ्चके दबावपर वर्तनका साधारण सूत्र यह होता है

---

* Secant को छेदन रेखा कहते हैं जो Cosine अर्थात् कोटिज्याका विलोम होता है। छेदन रेखाका संक्षिप्त रूप छे माना गया है। इसी तरह Cosecant अर्थात् कोटिच्छेदनरेखाका संक्षिप्त रूप कोछे प्रयोग किया जाता है।

† Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ १२७

व=५८″·२९३ स्परे न — ०″·०६६८२ स्परे³ न ....(३)

यह भी प्रकट है कि $\frac{फ}{प} = \frac{१}{८७३}$, इसलिए जबतक स्परे³न बहुत बड़ा न हो अर्थात् यदि सूर्य, या तारा क्षितिजके पास न हो तबतक दूसरा पद भी छोड़ देनेसे कोई हानि नहीं हो सकती।

यदि नतांश ७०° से अधिक न हो और तापक्रममें भी बहुत अन्तर न हो तो वर्तनका मान जाननेके लिए नीचे लिखे सरल पदका प्रयोग उचित होगा।

क स्परे न

जहां क के लिए ५८″·२ लेना अधिक शुद्ध होगा। इस क को वर्तनका गुणक (Coefficient of refraction) कहते हैं।

वायुमंडलका वर्तनांक ०°श तापक्रम और ७६० मि० मी० दबावपर १·०००२९४ है (देखो Ball's Spherical Astronomy page 117) और कैसिनीके सूत्रके अनुसार ५०° फा० तापक्रम और ३० इञ्च दबावपर वर्तनांक १·०००२८३ होता है।

सिम्पसन और ब्रैडिली नामक ज्योतिषियोंने भी वर्तनके सूत्र बनाये हैं परन्तु उनकी मीमांसा यहां आवश्यक नहीं है। यहां केवल ब्रैडिलीका सूत्र दे देना पर्याप्त होगा—

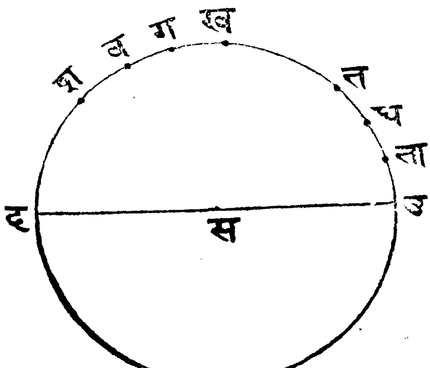
व=५८″·३६१ स्परे (न — ४·०६ व) ....(४)

इस सूत्रसे ८०° नतांशतक वर्तनका परिमाण सन्तोषजनक होता है। इस सूत्रसे क्षितिजके पासवाले तारोंका बेध ठीकठीक किया जा सकता है क्योंकि नतांश ९० अंशके निकट होनेपर भी स्परे (न — ४·०६ व) का परिमाण बहुत बड़ा नहीं होने पावेगा।

तापक्रम तथा वायुमंडलके दबावके घटने बढ़नेसे भी वर्तनके परिमाणमें अन्तर पड़ जाता है। परन्तु इन सबकी चर्चा विस्तारके भयसे छोड़ दी जाती है।

वेधसे वातावरणके वर्तनका परिमाण जानना—

वर्तनके लिए जो सूत्र पहले स्थापित किया गया है उसके गुणकोंके मान जाननेके लिए कई रीतियां काममें लायी जाती हैं। इनमेंसे तीन रीतियोंकी चर्चा यहां की जायगी। पहली और दूसरी रीतियोंसे एक ही वेधशालाके वेधोंसे काम चल



चित्र ७२

उ स द=स स्थानकी उत्तर दक्खिन रेखा

उ, द=क्षितिजके क्रमशः उत्तर दक्षिण विन्दु

उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=स स्थानका खस्वस्तिक

व=विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्तका सामान्य विन्दु

त=यामोत्तरोल्लंघनके समय तारेका उच्चतम स्थान

ता=यामोत्तरोल्लंघनके समय उसी तारेका नीचतम स्थान

ग=सूर्यका ग्रीष्मायन विन्दु

श=सूर्यका शीतायन विन्दु

सकता है यदि इसका अक्षांश बहुत कम या अधिक न हो। तीसरी रीतिमें दो वेधशालाओंकी आवश्यकता पड़ती है।

पहली रीति—ऐसा तारा चुनना चाहिए जो दोनों याम्योत्तरोल्लंघनोंके समय क्षितिजके ऊपर रहे। चित्र ७२में त, ता ऐसे ही एक तारेके स्पष्ट स्थान हैं। दोनों समय तारेका स्पष्ट नतांश जान लेना चाहिए। मान लो तारेका स्पष्ट नतांश त स्थानपर न और ता स्थानपर ना है।

सूत्रके अनुसार इसके यथार्थ नतांश हुए

न + प स्परे न + फ स्परे^{2} न

और ना + प स्परे ना + फ स्परे^{2} ना

यदि त, ता तारेके यथार्थ स्थान मान लिए जायँ तो त ध = ता ध और ख त + ख ता = २ ख ध = २ लम्बांश = २ (९०° – अ) अर्थात् दोनों यथार्थ नतांशोंका योग = २ (९०° – अ), जहां स स्थानका अक्षांश अ है।

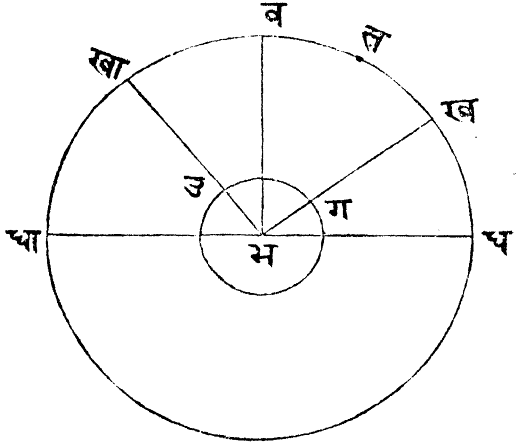
∴ न + प स्परे न + फ स्परे^{2} न + ना + प स्परे ना
+ फ स्परे^{2} ना = १८०° – २ अ

यदि इस समीकरणमें न और ना के मान जो वेधसे जाने जाते हैं उत्थापित किये जायं तो तीन अज्ञात अंकों प, फ और अ का एकघात (linear) समीकरण आ जाता है। इसी प्रकार यदि तीन तारोंके स्पष्ट नतांश वेधसे जान लिये जायं तो तीन समीकरण मिल जायंगे जिनसे प, फ और अ के मान सहज ही जाने जा सकते हैं।

दूसरी रीति—अयनान्त विन्दुओंके निकट जब सूर्य हो तब इसके नतांशोंसे भी वर्तनके स्थिर गुणक प, फ जाने जा सकते हैं।

चित्र ७२ में ख ग और ख श सूर्यके यथार्थ नतांश हों तो ख ग + ख श = २ ख व = २ अ

मान लो ग का स्पष्ट नतांश न और श का स्पष्ट नतांश ना है तो



चित्र ७१

भ=पृथ्वीका केन्द्र

छोटा वृत्त=पृथ्वीतल

बड़ा वृत्त=याम्योत्तर वृत्त

ध, धा=उत्तरी और दक्षिणी आकाशीय ध्रुव

ग=उत्तर गोलकी एक वेधशाला

उ=दक्षिण गोलकी दूसरी वेधशाला

ख=ग स्थानका खस्वस्तिक

खा=उ स्थानका खस्वस्तिक

व=विषुवद्वृत्तका एक बिन्दु

त=तारा

ध भ धा=पृथ्वीका अक्ष

न + प स्परे न + फ स्परे^{2} न + ना + प स्परे ना + फ स्परे^{2} ना = २ अ

यदि अ ज्ञात हो और फ स्परे^{2} न या फ स्परे^{2} ना बहुत छोटे होनेके कारण छोड़ दिये जायं तो प का मान सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु इस रीतिमें ६ महीने लग जाते हैं।

तीसरी रीति—इस रीतिमें उत्तर और दक्खिनकी दो वेधशालाओंसे याम्योत्तरवृत्तपर स्थित उसी तारेके स्पष्ट नतांश जानकर वर्तनके गुणक स्थिर किये जाते हैं।

ग वेधशालासे त तारेका दक्षिण नतांश ख त और उ वेधशालासे त तारेका उत्तर नतांश खा त हैं।

ख त = ख व − व त = अ − क

खा त = खा व + व त = आ + क

जब कि अ, आ दोनों वेधशालाओंके अक्षांश और क तारेकी क्रान्ति हैं।

यदि ग और उ से त के स्पष्ट नतांश न और ना हों तो

ख त = न + प स्परे न + फ स्परे^{2} न

और खा त = ना + प स्परे ना + फ स्परे^{2} ना

∴ न + प स्परे न + फ स्परे^{2} न + ना + प स्परे ना + फ स्परे^{2} ना

= ख त + खा त = अ + आ

यदि फ स्परे^{2} न और फ स्परे^{2} ना को अत्यन्त छोटे होनेके कारण छोड़ दिया जाय तो

न + प स्परे न + ना + प स्परे ना = अ + आ

इसमें न, ना, अ और आ के मान वेधसे जानकर उत्थापित करनेसे प का मान जाना जा सकता है। यदि फ का मान भी जानना हो तो एक और तारेके स्पष्ट नतांश जाननेकी आवश्यकता पड़ेगी।

उदाहरणके लिए अन्तरमदा पुञ्जके ब तारे (β Andromeda) के नतांश ग्रीनिच और उत्तमाशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) की वेधशालाओंसे जिनके अक्षांश क्रमशः ५१°२८′३८″ उत्तर और ३३°५६′४″ दक्षिण हैं लिये जाते हैं। पहली वेधशालासे तारेका स्पष्ट दक्षिण नतांश जब वह याम्योत्तर वृत्तपर था १६°२०′३″ और दूसरी वेधशालासे उसी तारेका स्पष्ट उत्तर नतांश ६९°१′५०″ था। इसलिए

$$\text{१६}^\circ\text{२०}'\text{३}'' + \text{प स्परे १६}^\circ\text{२०}'\text{३}'' + \text{६९}^\circ\text{१}'\text{५०}'' + \text{प स्परे ६९}^\circ\text{१}'\text{५०}''$$
$$= \text{५१}^\circ\text{२८}'\text{३८}'' + \text{३३}^\circ\text{५६}'\text{४}''$$
$$= \text{८५}^\circ\text{२४}'\text{४२}''$$
$$\therefore \text{प (स्परे १६}^\circ\text{२०}'\text{३}'' + \text{स्परे ६९}^\circ\text{१}'\text{५०}'' \text{)}$$
$$= \text{८५}^\circ\text{२४}'\text{४२}'' - \text{८५}^\circ\text{२१}'\text{५३}''$$
$$= \text{२}'\text{४९}''$$
$$\text{या प (·२९३० + २·६०९३)} = \text{२}'\text{४९}'' = \text{१६९}''$$
$$\therefore \text{प} = \frac{\text{१६९}}{\text{२·९०२३}} = \text{५८}''\text{·२३}$$

वर्तनके कारण आकाशीय पिंडोंका उदय कुछ पहले और अस्त कुछ पीछे देख पड़ता है इसलिये दिनमान बढ़ जाता है।

आकाशीय पिण्डोंका उदय उस समय समझा जाता है जिस समय उनका केन्द्र पूर्व क्षितिजपर आ जाता है। उस समय उनका स्पष्ट नतांश ९०° होता है। परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि स्पष्ट नतांशसे यथार्थ नतांश वर्तनके समान अधिक होता है। यह भी बतलाया गया है कि जिस समय स्पष्ट नतांश ९०° होता है उस समय वर्तन ३५′ के लगभग होता है। इसलिए उदय होनेके समय आकाशीय पिंडका यथार्थ नतांश ९०°३५′ के लगभग होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि

जिस समय आकाशीय पिंडका केन्द्र क्षितिज पर लगा हुआ देख पड़ता है उस समय क्षितिजसे वह ३५′ के लगभग नीचे रहता है। इसलिये यह प्रत्यक्ष है कि जब सूर्यका केन्द्र क्षितिज से ३५′ नीचे रहता है तभीसे वह उदय हुआ देख पड़ता है और अस्त होनेके समय जबतक उसका केन्द्र क्षितिजसे ३५′ नीचेतक नहीं पहुँच जाता तबतक देख पड़ता है। इस कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमानसे ५ मिनट या १२, १३ पलके समान अधिक होता है। इस बढ़तीका ठीक ठीक परिमाण जाननेके लिए हमें उदय होते हुए सूर्यके नतकालकी तात्कालिक गति निकालनी चाहिए।

सूर्यका नतकाल जाननेका सूत्र यह है [देखो पृष्ठ ४२६ समीकरण (१)]

कोज्या (नतकाल) × कोज्या अक्षांश × कोज्या क्रान्ति
= कोज्या नतांश − ज्या अक्षांश × ज्या क्रान्ति

यदि नतकाल, अक्षांश, क्रान्ति और स्पष्ट नतांशके लिए नत, अ, क और न क्रमानुसार मान लिये जाँय और कुछ पद दहनेसे बायें अथवा बायेंसे दहने पक्षमें कर दिये जाँय तो

कोज्या न = ज्या अ × ज्या क + कोज्या अ × कोज्या (नत) × कोज्या क

अक्षांश और क्रान्तिको स्थिर मानकर न और नत के तात्कालिक सम्बन्ध ज्ञात किये जांय तो

ज्या न × ता (न) = कोज्या अ × कोज्या क × ज्या (नत) × ता (नत)

परन्तु उदय या अस्त होते हुए सूर्यका नतांश ९०° होता है इसलिए ज्या न = ज्या ९०° = १, कोज्या न = ० इसलिए

कोज्या (नत) = − स्परे अ × स्परे क ....(१)

ता (न) = कोज्या अ × कोज्या क × ज्या (नत) × ता (नत)

अथवा

$$\text{ता (नत)} = \frac{\text{ता (न)}}{\text{कोज्या अ} \times \text{कोज्या क} \times \text{ज्या (नत)}} \quad \ldots\ldots (२)$$

यदि नतांशकी तात्कालिक गति ता (न) की जगह १५′ उत्थापित की जाय जो ९०° के स्पष्ट नतांशके वर्तनके लगभग होती है और समीकरण (२) का दाहना पक्ष सरल किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तनके कारण उदयकालिक नत-काल कितना बढ़ जाता है।

उदाहरण १—काशीमें सायन कर्क और सायन मकर सं-क्रान्तिके दिन स्पष्ट सूर्योदयसे स्पष्ट सूर्यास्त तकके समय क्या हैं ?

आजकल सायन कर्क संक्रान्तिके दिन सूर्यकी उत्तर क्रान्ति २३°२७′ और सायन मकर संक्रान्तिके दिन सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति २३°२७′ होती है। काशीका अक्षांश २५°१८′ मान लिया जाता है।

∴ कर्क संक्रान्तिके दिन

$$\begin{aligned}\text{कोज्या (नत)} &= -\text{स्परे } २५°१८′ \times \text{स्परे } २३°२७′ \\ &= -\cdot ४७२७ \times \cdot ४३३७ \\ &= -\cdot २०५०\end{aligned}$$

यह ऋणात्मक है। इसलिए सिद्ध होता है कि नतकाल ९०° से अधिक है। यदि नतकाल=९०°+ना, तो

$$\text{कोज्या } (९०° + \text{ना}) = -\cdot २०५०$$

$$-\ \text{ज्या (ना)} = -\cdot २०५०$$

$$\therefore \text{ना} = ११°५०′$$

$$\therefore \text{नतकाल} = ९०° + ११°५०′ = १०१°५०′$$

=६ घंटा ४७ मिनट २० सेकंड

=१६ घड़ी ५८ पल

यह गणित सिद्ध नतकाल हुआ।

मकर संक्रान्तिके दिन क्रान्ति दक्षिण है इसलिए समीकरण (१) का दाहना पक्ष धनात्मक होगा और कोज्या (न त) =+·२०५० [देखो पृष्ठ ४३१]

∴ मकर संक्रान्तिके दिन

गणित सिद्ध नतकाल=७८°१०′=९०° − ११°५०′

=६ घंटा − ४७ मि० २० से०

=५ घंटा १२ मि० ४० से०

=१३ घड़ी २ पल

यदि वर्तन न होता तो यही सूर्योदयसे मध्याह्न तकका समय होता। परन्तु वर्तनका परिमाण ३५′ के लगभग होता है। इसलिए समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′ उत्थापन करनेसे, कर्क संक्रान्तिके दिन

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \text{ कोज्या } २३^\circ २७' \text{ ज्या } १०१^\circ ५०'}$$

$$= \frac{३५'}{·९०४१ \times ·९१७५ \times ·९७८७}$$

$$= \frac{३५'}{·८११८४}$$

=४३′·१२

=४३·१२ असु

=७ पल या २ मिनट ५२ सेकंड

मकर संक्रान्तिके दिन भी वर्तनके कारण इतनी ही वृद्धि होगी क्योंकि ज्या ७८°१०′=ज्या १०१°५०′ और कोज्या २३°२७′

के मानमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा चाहे २३°२७′ उत्तर क्रान्ति हो या दक्षिण क्रान्ति हो क्योंकि कोज्या २३°२७′=कोज्या (−२३°२७′)

इसलिए काशीमें कर्क संक्रान्तिके दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेधसिद्ध नतकाल=१६ घड़ी ५८ पल+७ पल

=१७ घड़ी ५ पल

और स्पष्ट या वेधसिद्ध दिनमान=३४ घड़ी १० पल

इसी प्रकार काशीमें मकर संक्रान्तिके दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेध सिद्ध नतकाल=१३ घड़ी २ पल+७ पल

=१३ घड़ी ९ पल

और स्पष्ट या वेध सिद्ध दिनमान=२६ घड़ी १८ पल

उदाहरण २—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तियोंके दिन काशीमें स्पष्ट दिनमान क्या होगा ?

सायन मेष या सायन तुला संक्रान्तियोंके दिन यदि सूर्यके उदयकालमें क्रान्ति शून्य हो तो गणितसे नतकाल ठीक ९०° या ६ घंटा अथवा १५ घड़ी होगा। वर्तनके कारण जो वृद्धि होगी उसका परिमाण यों निकलेगा।

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५°१८' \text{ कोज्या } ०° \text{ ज्या } ९०°}$$

$$= \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५° \; १८'} = \frac{३५'}{·९०४१}$$

$$= १८'·७$$

$$= १८·७ \text{ असु}$$

$$= ६ \text{ पलके लगभग}$$

∴ सायन मेष या तुला संक्रान्तियोंके दिन वेधसिद्ध उदयकालिक नतकाल=१५ घड़ी ६ पल

∴ इन दिनोंमें वेधसिद्ध या स्पष्ट दिनमान=१० घड़ी १२ पल

इस प्रकार सिद्ध है कि सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तिके दिन वर्तनके कारण दिनमान रात्रिमानसे १२ पल अधिक होता है। यह प्रसिद्ध बात है कि इन दिनोंमें दिनमान और रात्रिमान सब स्थानोंमें समान होते हैं। इसलिए यदि कोई सूर्यके उदयसे अस्त तकके समयको वेधसे नापकर विलोम रीतिसे सायनमेष और तुला संक्रान्तिका दिन जानना चाहे तो वह निश्चय करेगा कि सायनमेष संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्ति कालसे ३ दिन पहले और सायन तुला संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्तिसे ३ दिन पीछे पड़ेगी।

मकरन्द सारिणीके पृष्ठ १३ में काशीके लिए महत्तम दिन मानका परिमाण ३४ घड़ी ५ पल और लघुतम दिनमानका २५ घड़ी ५५ पल दिया हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस सारिणीमें कर्क संक्रान्तिके दिन उदयकालिक नतकालका परिमाण १७ घड़ी २.५ पल निश्चय किया गया था। अब यह देखना है कि मकरन्दकारने गणितसे अथवा वेधसे यह दिन-मान निश्चय किया था।

सूर्य सिद्धान्तने सूर्यकी महत्तम क्रान्ति २४° माना है। इस-लिए अनुमान होता है कि मकरन्दकारने गणितसे चरकाल जाननेके लिये इसी क्रान्तिका उपयोग किया होगा। यह पता नहीं कि काशीका अक्षांश उन्होंने क्या माना था। आजकल यह २५°१८′ के लगभग निश्चय हुआ है। इसलिए यह मान लेनेमें कोई हानि नहीं जान पड़ती कि मकरन्दकारने काशीका अक्षांश २५° माना होगा। यदि २५° अक्षांश माना गया हो तो सायन कर्क संक्रान्तिके दिन काशीमें

सूर्यकी चरज्या = स्परे २४° × स्परे २५°

= ·४४५२ × ·४६६३

= ·२०७६

∴ चरांश= ११°५९′

= ७१९ चरासु

= १२० पल

= २ घड़ी

∴ उदयकालिक नतकाल=१५+२=१७ घड़ी

∴ कर्क संक्रान्तिके दिन काशीमें महत्तम दिनमान=३४ घड़ी

इससे प्रकट होता है कि काशीका अक्षांश २५° से कुछ अधिक माना गया होगा क्योंकि तभी चरकाल २ घड़ी २·५ पल हो सकता है।

इससे यह भी अनुमान होता है कि ब्रह्मगुप्तके समयसे लेकर गणेश दैवज्ञके समयतक सभी आचार्य सूर्यकी परम-क्रान्ति २४° इसीलिए मानते आये कि महत्तम दिनमान उनके वेधसे उतना ही आता रहा जितना २४° की परम क्रान्ति माननेसे आता है क्योंकि उनको यह नहीं ज्ञात था कि वाता-वरणके कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमानसे १४, १५ पलके लगभग बढ़ जाता है।

वर्तनका विचार करनेसे महत्तम दिनमान आजकल ३४ घड़ी १० पल होता है। यह ३४ घड़ी ५ पलसे केवल ५ पल अधिक है। इतनी अशुद्धि उदय और अस्तकालके वेधके लिए अधिक नहीं कही जा सकती।

वर्तनके कारण सूर्यके आकारमें भेद—उदय अस्त होते हुए सूर्य का आकार बड़ा और कुछ अंडाकार देख पड़ता है। इसका

कारण यही है कि क्षितिजके पास वर्तनकी वृद्धि बहुत तीव्र होती है। सूर्यका बिम्ब ३२ कलाके लगभग होता है। इसलिए जिस समय सूर्यके बिम्बका सबसे नीचेवाला बिन्दु क्षितिजमें लगा रहता है उसका स्पष्ट नतांश ९०° रहता है और बिम्बके सबसे ऊपरवाले बिन्दुका नतांश ३२ कलाके लगभग कम रहता है। इस भिन्नताके कारण नीचेवाला बिन्दु अधिक उठा हुआ रहता है और ऊपरवाला बिन्दु उससे कम। इससे बिम्बका ऊर्ध्वव्यास कोई ५ कला कम देख पड़नेसे सूर्य अंडाकार देख पड़ता है।

वर्तनकी और अधिक मीमांसा करनेसे विस्तार बहुत बढ़ जायगा। यदि यह जानना हो कि सूर्यका ऊपरी बिम्ब क्षितिजपर कब आता है तो पृष्ठ ५४९ के समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′+ सूर्यके अर्द्धव्यास अथवा ३५′+१६′ उत्थापन करनेसे जितना आवे उसे गणित सिद्ध नतकालमें जोड़ देना चाहिए।

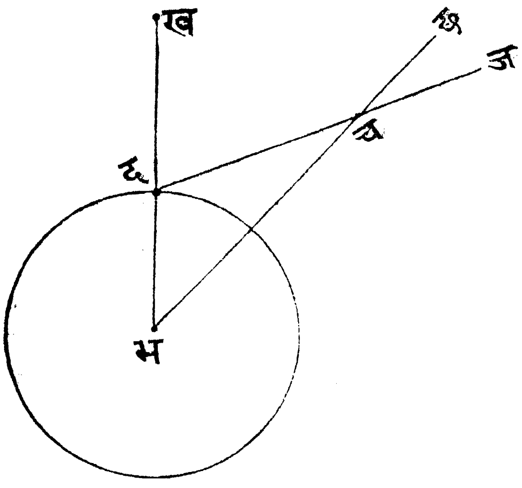
चन्द्रमाका उदयकाल जाननेके लिए एक संस्कार और करना पड़ता है जिसे लम्बन संस्कार कहते हैं। इसलिए आगे लम्बन (parallax) की व्याख्या की जायगी।

लंबन*

स्पष्टाधिकारमें बतलायी गयी नयी रीतियोंसे भी सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके जो स्थान ज्ञात होते हैं वह भूकेन्द्रसे ठीक वैसे ही देखे जा सकते हैं। परन्तु भूतलके किसी स्थानसे देखनेपर उन स्थानोंमें कुछ अन्तर देख पड़ता है। यदि

* इस खंडके लिखनेमें Loomis की Practical Astronomy से बहुत सहायता ली गई है।

भूतलके किसी दो स्थानोंसे दो द्रष्टा चन्द्रमाको एक ही क्षणमें देखें तो वह एकही दिशामें नहीं देख पड़ता। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि किस स्थानसे देखने पर आकाशीय पिण्ड यथार्थ स्थानसे कितने अंतर पर देख पड़ता है। भूकेन्द्र और भूतलके किसी स्थानसे देखने पर आकाशीय पिंडकी दिशाओंमें जो अन्तर देख पड़ता है उसे लंबन कहते हैं।



चित्र ७४

चित्र ७४ में भ पृथ्वी का केन्द्र या भूकेन्द्र है, द भूतल का एक स्थान जहां द्रष्टा चंद्रमा च को देख रहा है। भ द ख ऊर्ध्व रेखा है जो द स्थानके खस्वस्तिक ख तक जाती है। द स्थानसे द्रष्टाको चन्द्रमा द च ज दिशामें देख पड़ेगा और भूकेन्द्र भ से चन्द्रमा भ च छ दिशामें देख पड़ेगा। इन दिशाओंमें जो अंतर है वह कोण भ च द के समान है। यही द स्थानसे चन्द्रमाका लंबन है।

द से चन्द्रमाका नतांश कोण ख द च के समान है जिसे चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश कहते हैं। भ से चन्द्रमाका नतांश कोण ख भ च के समान है जिसे चन्द्रमाका यथार्थ नतांश कहा जाता है। चित्रसे यह सिद्ध है कि चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश = चन्द्रमाका यथार्थ नतांश + लम्बन।

यह स्पष्ट है कि लम्बनके कारण चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश यथार्थ नतांशसे अधिक हो जाता है इसलिए चन्द्रमाका उन्नतांश उतनाही कम हो जाता है। इस कारण चन्द्रमा यथार्थ स्थानसे कुछ लटका हुआ देख पड़ता है। इसीलिए इस परिवर्तनका नाम लम्बन पड़ा। इस लम्बनका प्रभाव चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहोंके भोगांश, शर, विषुवांश, क्रान्ति, इत्यादि पर भी पड़ता है जिसकी व्याख्या आगे की जायगी।

मान लो कि अ = भ द, पृथ्वी की त्रिज्या;
क = भ च, भूकेन्द्रसे चन्द्रमाकी दूरी;
न = $\angle$ ख भ च, चन्द्रमाका यथार्थ नतांश;
ना = $\angle$ ख द च, चन्द्रमाका स्पष्ट नतांश;
ला = $\angle$ भ च द, चन्द्रमाका नतांश सम्बन्धी लम्बन;

त्रिभुज द भ च में

$$\frac{\text{भ द}}{\text{ज्या भ च द}} = \frac{\text{भ च}}{\text{ज्या भ द च}}$$

परन्तु $\angle$ भ द च और $\angle$ ख द च का योग १८०° होता है इसलिए ज्या भ द च = ज्या ख द च। इनकी जगह ऊपर लिखे संकेतके अक्षर उत्थापित करनेसे सिद्ध होता है कि

$$\frac{\text{अ}}{\text{ज्या ला}} = \frac{\text{क}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा} \quad \text{ज्या ला} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}} \times \text{ज्या ना}$$

इसका अर्थ यह हुआ कि नतांश सम्बन्धी लम्बन की ज्या

$$= \frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{चन्द्रमा की दूरी}} \times \text{स्पष्टनतांशकी ज्या}$$

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी दिये हुए स्थानके लिए यदि चन्द्रमा या किसी ग्रहकी दूरी दी हुई हो तो इसका लम्बन इसके स्पष्टनतांश की ज्याके अनुसार घटता बढ़ता है, अर्थात यदि इसका स्पष्ट नतांश कम हो तो लम्बन कम होगा और अधिक हो तो लम्बन अधिक होगा। यदि स्पष्ट नतांश ९०° हो अर्थात् चन्द्रमा या ग्रह उदय या अस्त हो रहा हो तो इसकी ज्याका मान १ होगा जो महत्तम है ऐसी दशामें नतांश सम्बन्धी लम्बन भी महत्तम अर्थात् सबसे अधिक होगा। महत्तम लम्बनको परम लम्बन या क्षितिज लम्बन कहते हैं क्योंकि इतना बड़ा लम्बन उसी समय होता है जब आकाशीय पिंड उदय या अस्त हो रहा हो और क्षितिज पर हो। यह भी स्पष्ट है कि जब पिंड ठीक खस्वस्तिक पर रहता है तब उसका नतांश शून्य होनेसे स्पष्ट नतांशकी ज्या भी शून्य होगी और लम्बनका मान शून्य हो जायगा। अर्थात् जब आकाशीय पिंड ठीक सिरके ऊपर खस्वस्तिक पर रहता है तब उसमें नतांश सम्बन्धी लम्बन नहीं होता।

यदि क्षितिज लम्बनको ल से प्रकट किया जाय तो

$$\text{ज्याल} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$$

यदि पहले समीकरणमें $\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ की जगह ज्या ल रखा जाय तो

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्याल} \times \text{ज्या ना} \qquad (१)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि क्षितिज लम्बन की ज्या को स्पष्ट नतांश की ज्या से गुणा कर दिया जाय तो नतांश सम्बन्धी लम्बन की ज्या आजायगी।

इस सूत्र से लम्बन का ज्ञान तभी हो सकता है जब पिंड का स्पष्ट नतांश ज्ञात हो। यदि यथार्थ नतांश दिया हुआ हो तो दूसरे प्रकार के सूत्र से काम चलेगा जिसका रूप इस प्रकार सिद्ध होता है:—

चित्र ८४ से स्पष्ट है कि

$$\text{ना}=\text{न}+\text{ला}$$

इसलिए सूत्र (१) से

$$\text{ज्या ला}=\text{ज्या ल}\times\text{ज्या}(\text{न}+\text{ला})$$

$$=\text{ज्या ल}(\text{ज्या न कोज्या ला}+\text{कोज्या न ज्या ला})$$

$$=\text{ज्या ल ज्या न कोज्या ला}+\text{ज्या ल कोज्या न ज्या ला}$$

दोनों पक्षोंको कोज्या ला से भाग देने पर

$$\text{स्परेला}=\text{ज्या ल ज्या न}+\text{ज्या ल कोज्या न स्परेला}$$

स्परेलाको एक पक्षमें करने पर,

$$\text{स्परेला}=\frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{१}-\text{ज्या ल कोज्या न}}\quad\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(\text{२})$$

इस सूत्रसे लम्बनका मान उस समय जाना जा सकता है जब यथार्थ नतांश दिया हुआ हो। परन्तु इस रीतिसे लम्बन जानने में सुबिधा नहीं होती क्योंकि इसमें गुणा भाग बहुत करना पड़ता है। इसलिए इसको सरल करनेके लिए दूसरा रूप सिद्ध करना चाहिए।

यदि दाहने पक्षके अंशको हरसे भाग दे दिया जाय तो

$$\text{स्परेला}=\text{ज्या ल ज्या न}+\text{ज्या}^{\text{२}}\text{ल ज्या न कोज्या न}+\text{ज्या}^{\text{३}}\text{ल ज्या न कोज्या}^{\text{२}}\text{न}+\text{ज्या}^{\text{४}}\text{ल ज्या न कोज्या}^{\text{३}}\text{न}\ldots\ldots\ldots\text{इत्यादि}$$

इस श्रेणीके आगेके पद इतने छोटे होते जाते हैं कि केवल पहले तीन पद ले लेनेमें कोई हानि नहीं हो सकती, यदि ल का मान १°से अधिक न हो।

स्परेलाकी जगह ऐसे पद भी रखे जा सकते हैं जिनमें केवल ला हो क्योंकि* ला=स्परेला $-\frac{1}{3}$ स्परे^{3}ला

जो धनुको उसकी स्पर्शरेखामें प्रकट करने का प्रायः शुद्ध सूत्र है यदि धनुका परिमाण बहुत छोटा हो। इस सूत्रके दूसरे पदके लिए यदि केवल $\frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{3}$ ले लिया जाय तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशा में

$$\text{ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^2\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{3} + \cdots\cdots$$

$$= \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^2\text{ल ज्या न कोज्या न}$$

$$+ \text{ज्या}^3\text{ल} \left(\text{ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{3}\right) + \cdots\cdots$$

$$\text{परन्तु ज्या न कोज्या न} = \frac{\text{ज्या २ न}}{2}$$

$$\text{और ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{3\ \text{ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{3\ \text{ज्या न}\ (1 - \text{ज्या}^2\text{न}) - \text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

$$= \frac{3\ \text{ज्या न} - 3\ \text{ज्या}^3\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{3}$$

---

*देखो सुधाकर द्विवेदी का चलन कलन पृष्ठ ४०

$$=\frac{३ \text{ ज्या } न - ४ \text{ ज्या}^३ न}{३}$$

$$=\frac{\text{ज्या } ३ न}{३}*$$

इसलिए

$$\text{ला}=\text{ज्या } ल \text{ ज्या } न+\frac{\text{ज्या}^२ ल \text{ ज्या} २ न}{२}+\frac{\text{ज्या}^३ ल \text{ ज्या} ३ न}{३}+\cdots\cdots$$

इस सूत्रसे ला का जो मान आवेगा वह रेडियनमें होगा। इसको विकलाओंमें प्रकट करनेके लिए दाहने पक्षके प्रत्येक पदको ज्या १″से भाग दे देना चाहिए अथवा कोछेरे १″से गुणा-कर देना चाहिए क्योंकि

१ रेडियन=२०६२६५″

∴ १″=·००००४८५ रेडियन

∴ ज्या१″=·००००४८५

इससे सिद्ध है कि रेडियनसे विकला बनाना हो तो रेडि-यनको ·००००४८५से भाग दो। परन्तु ·००००४८५=ज्या १″, इसलिए रेडियनसे विकला बनानेके लिए रेडियनको ज्या १″ से भी भाग दे देना चाहिए।

इस प्रकार

$$\text{ला}=\frac{\text{ज्या } ल \text{ ज्या } न}{\text{ज्या}१''}+\frac{\text{ज्या}^२ ल \text{ ज्या}२ न}{२\text{ज्या}१''}+\frac{\text{ज्या}^३ ल \text{ ज्या}३ न}{३ \text{ ज्या}१''}+\cdots(३)$$

=ज्या ल ज्या न कोछेरे१″+ज्या^{२}ल ज्या२ न कोछेरे २″+ज्या^{३} ल ज्या३ न कोछेरे ३″ क्योंकि $\frac{१}{\text{ज्या } १''}$=कोटिछेदन रेखा १″ जिसे

*देखो Hall and Knight की त्रिकोणमिति पृष्ठ १०५ (१९१० की छपी)

संक्षेपमें कोछेरे१″ लिखा गया है २ ज्या१″=ज्या२″ $\therefore \frac{१}{२ \text{ ज्या}१''} = \frac{१}{\text{ज्या}२''}$ =कोछेरे२″, इत्यादि।

इस सूत्रसे किसी आकाशीय पिंडका लम्बन उस समय निकाला जा सकता है जब उसका यथार्थ नतांश दिया हुआ हो।

चंद्रमाका लम्बन जाननेके लिए इस श्रेणीके तीनों पदोंकी आवश्यकता पड़ती है परन्तु सूर्य तथा ग्रहोंके लिए केवल पहले पदसे काम चल जाता है क्योंकि इनके लंबन बहुत कम होते हैं इसलिए दूसरे और तीसरे पदोंके मान नहींके समान होते हैं।

इसलिए सूर्य तथा ग्रहोंके लंबनके लिए केवल यह सूत्र पर्याप्त होगाः—

$$\text{ला} = \frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{ज्या } १''}$$

परन्तु जब ल बहुत छोटा होगा तब $\frac{\text{ज्या ल}}{\text{ज्या } १''} = \text{ल}$

$$\therefore \text{ला} = \text{ल ज्या न} \qquad (४)$$

*उदाहरण १—यदि शुक्र का क्षितिज लंबन ३०″ हो तो जिस समय इसका यथार्थ नतांश ६०° होगा उस समय इसका लंबन क्या होगा?

$$\text{ला} = \text{ल ज्या न}$$

$$= ३०'' \times \text{ज्या } ६०^\circ$$

---

* लम्बन के सम्बन्धमें जितने उदाहरण लिखे गये हैं वे सब Loomis Practical Astronomy से लिये गये हैं।

$= ३०'' \times \cdot ८६६$

$= २५''\cdot ९८$

उदाहरण २—यदि सूर्यका क्षितिज लम्बन ८·''६ हो तो जिस समय इसका यथार्थ उन्नतांश १६° होगा उस समय इसका लम्बन क्या होगा ?

सूर्यका यथार्थ नतांश = ९०°—१६° = ७४°

ला = ल ज्या न

$= ८''\cdot ६ \times$ ज्या ७४°

$= ८''\cdot ६ \times \cdot ९६१३$

$= ८''\cdot २७$

उदाहरण ३—यदि चन्द्रमाका क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″·५ हो तो उसका लम्बन क्या है जब कि उसका स्पष्ट नतांश ८०° १९′ १९″ हो ?

यहां चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश दिया हुआ है। इसलिए पहले सूत्रसे काम लेना होगा। इसलिए

ज्या ला = ज्या ल × ज्या ना

= ज्या ६०′ ४१″·५ × ज्या ८०° १९′ १९″

गुणा भागकी क्रियाको कम करनेके लिए इन कोणोंकी लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या (logarithmic sines) से काम लेना अच्छा होगा। लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या, कोज्या, स्पर्शरेखाको संक्षेपमें लरि ज्या, लरि कोज्या और लरि स्परे लिखा जायगा।

लरिज्या ६०′ ४१″·५ = ८·२४६८१३

लरिज्या ८०° १९′ १९″ = ९·९९३७७५

योग = ८·२४०६०८

∴ लरि ज्याला = ८·२४०६०८

और ला = ५९′ ४९″·६७

उदाहरण ४—यदि चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″·५ हो और उसका यथार्थ नतांश ७९° १९′ २९″·३३ हो तो उसका लम्बन क्या होगा ?

यहां यथार्थ लम्बन दिया हुआ है इसलिए सूत्र (३) से काम लेना पड़ेगा।

लरिज्या ६०′ ४१″ · ५ = ८ · २४६८३३

लरिज्या ७९° १९′ २९″ · ३३ = ९ · ९९२४१८

लरि कोछेरे १″ = ५ · ३१४४२५

योग = ३ · ५५३६७६

परन्तु लरि ३५७८″ · २९ = ३ · ५५३६७६

∴ सूत्र (३) का पहला पद = ३५७८″ · २९

= ५९′ ३८″ · २९

लरि ज्या² ६०′ ४१″ · ५ = ६ · ४९३७

लरिज्या २ × ७९° १९′ २९″ · ३३ = ९ · ५६१२

लरि कोछेरे २″ = ५ . ०१३४

योग = १ · ०६८३

परन्तु लरि ११″ · ७० = १ · ०६८३

∴ सूत्र ३ का दूसरा पद = + ११″ · ७०

लरि ज्या³ ६०′ ४१″ · ५ = ४ · ७४०

लरि ज्या ३ × ७९° १९′ २९″ · ३३ = ९ · ९२८ ऋणात्मक

लरि कोछेरे ३″ = ४ · ८३७

योग = ९ · ५०५

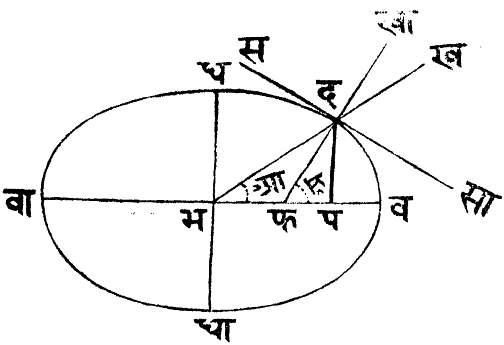
∴ तीसरे पद का मान = − ०″ · ३२

तीनों पदों को इकट्ठा करने पर

लंबन = ५९′ ३८″ · २९ + ११″ · ७० — ०″ · ३२ = ५९′ ४९″·६७

यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन = $\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ जहां त्र द्रष्टाके

स्थानसे भूकेन्द्र की दूरी है और क आकाशीय पिंडसे भूकेन्द्र की दूरी है। परन्तु पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है इसलिए त्र का मान सब जगह एक सा नहीं है। ऐसी दशामें क्षितिज लंबन का मान सब स्थानों के लिए एक नहीं हो सकता। इसलिए गणितसे पहले वह क्षितिज लम्बन जाना जाता है जो निरक्ष देश (विषुवत् रेखा) के किसी स्थान पर होता है। फिर इसकी सहायता से अन्य स्थानों का क्षितिज लम्बन तथा इष्टकालिक स्पष्ट लंबन जाना जाता है।



चित्र ७५

मान लो व ध वा धा पृथ्वी की मध्याह्न रेखा है ध, धा पृथ्वीके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तथा व वा विषुवत् रेखाके दो विन्दु हैं। भूकेन्द्रसे विषुवत् रेखाके व विन्दुकी दूरी भ व और ध ध्रुव की दूरी भ ध है। द द्रष्टाका स्थान है और स द सा द स्थानकी स्पर्श रेखा है जो द की क्षितिज रेखाके तलमें है। द खा रेखा स द सा स्पर्श रेखासे समकोण पर है इसलिए यही द स्थानकी ऊर्ध्व रेखा है। इसलिए द स्थानका स्पष्ट खस्वस्तिक खा है। यदि यह ऊर्ध्व रेखा पृथ्वीके भीतर बढ़ायी जाय तो पृथ्वीके

केन्द्रको न आकर भ व रेखाके फ विन्दु पर पहुँचेगी। यदि पृथ्वीके केन्द्रसे द तक रेखा खींची जाय और वह आकाशकी ओर बढ़ायी जाय तो ख विन्दु पर पहुँचेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि द स्थानका भूकेन्द्रीय खस्वस्तिक ख है। खा को द स्थानका भौगोलिक खस्वस्तिक कहते हैं। मध्यमाधिकार पृष्ठ ८३ में बतलाया गया है कि द भ व कोण द स्थानका भूकेंद्रिक अक्षांश है इसलिए द फ व कोण द स्थानका स्पष्ट या भौगोलिक अक्षांश कहलाता है। द स्थानकी ऊर्ध्वरेखा द फ और पृथ्वीकी त्रिज्या भ द से जो कोण भ द फ बनता है उसे द स्थानके ऊर्ध्वरेखाका कोण (angle of the vertical) कहते हैं। किसी स्थानके भौगोलिक अक्षांशको अ और भूकेंद्रिक अक्षांशको आ अक्षरों से प्रकट* किया जाता है।

मुखोपाध्यायकी Geometry of Conics पृष्ठ ९३, ९४ से सिद्ध है कि

$$\text{प फ} = \text{प भ} \times \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}$$

जहां त, थ क्रमसे दीर्घवृत्तके दीर्घ और लघु अक्षके आधे हैं।

परन्तु प द = प भ × स्परे ∠ प भ द = प फ × स्परे ∠ प फ द

$\therefore$ प भ × स्परे आ = प फ × स्परे अ

$$= \text{प भ} \times \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2} \times \text{स्परे अ}$$

$$\therefore \text{स्परे आ} = \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2} \text{ स्परे अ} \quad \cdots\cdots\cdots (५)$$

---

* अंग्रेजीमें भौगोलिक अक्षांशको ϕ और भूकेंद्रिक अक्षांशको ϕ' से प्रकट किया जाता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि किसी स्थानके भौगोलिक अक्षांशकी स्पर्शरेखा को $\frac{थ^2}{त^2}$ से गुणा कर दिया जाय तो उस स्थानके भूकेंद्रिक अक्षांशकी स्पर्शरेखा आजायगी। विलोम क्रियाके द्वारा भूकेन्द्रिक अक्षांश दिया हुआ हो तो भौगोलिक अक्षांश भी जाना जा सकता है।

यह बतलाया गया है कि त और थ पृथ्वीके दीर्घ और लघु अक्षोंके आधे हैं जिनके मान कर्नल क्लार्कके मतानुसार* यह हैं:—

त=२,०९,२६,२०२ फुट
=३९६३·३ मील (स्वल्पान्तरसे)
थ=२,०८,५४,८९५ फुट
=३९४९·८ मील (स्वल्पान्तरसे)

$$\therefore \frac{थ^2}{त^2}=\frac{२०८५४८९५^2}{२०९२६२०२^2}=·९९३१९६५=·९९३२$$

उदाहरण १—देहरादूनका भौगोलिक अक्षांश ३०°१८′५१″·८ उत्तर है तो इसका भूकेन्द्रिक अक्षांश और ऊर्ध्वरेखाका कोण क्या है?

उपर्युक्त सूत्रके अनुसार,

स्परे आ=·९९३२ × स्परे ३०°१८′५१″·८

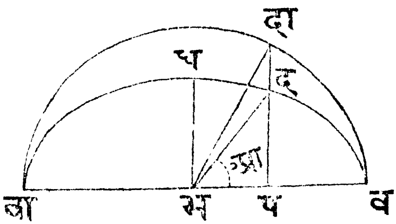
∴ लरि स्परे आ=लरि·९९३२ + लरि स्परे ३० १९′
=$\overline{१}$·९९७० + ९·७६७०
=९·७६४
∴ आ=३०°८′४०″

यही देहरादूनका भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ। यदि इसको भौगोलिक अक्षांशसे घटा दिया जाय तो ऊर्ध्वरेखाका कोण

* Hall's Spherical Astronomy pp. 44.

१०'१२" के समान होगा। ऊर्ध्वरेखाके कोणको नाटिकल अल-मैनेकमें Reduction to Geocentric latitude कहा जाता है। १९२७ ई० के नाटिकल अलमैनेकमें इसका मान १०'५".२ लिखा है। अंतरका कारण यह है कि इस गणनामें लघुरिक्थोंकी शुद्धता केवल चार अङ्कोंतक ली गयी है।

भूकेंद्रसे किसी स्थानकी दूरी इस तरह जानी जा सकती है:—



चित्र ७६

चित्र ७६ में व ध वा आधे दीर्घवृत्तका छेद (section) है जो विषुवत् रेखाके व विन्दुसे आरम्भ होकर उत्तरी ध्रुव ध से होता हुआ विषुवत् रेखाकी दूसरी ओर वा तक गया है। यदि व वा पर एक अर्द्धवृत्त व दा वा खींचा जाय तो यही व ध वा का सहायकवृत्त (auxiliary circle) होगा। प भ द कोण भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ जो आ से सूचित किया जायगा। भूकेन्द्रसे द स्थानकी दूरी भ द को त्र अक्षरसे सूचित किया जायगा। त्रिभुज प भ द में

प भ=भ द कोज्या आ=त्र कोज्या आ

प द=भ द ज्या आ=त्र ज्या आ

मुखोपाध्यायकी Geometry of Conics पृष्ठ ६५ से सिद्ध है कि

$$\frac{प\ द}{प\ दा} = \frac{भ\ घ}{भ\ व} = \frac{थ}{त}$$

$$\therefore प\ दा = \frac{त}{थ} \times प\ द = \frac{त}{थ} \times अ\ ज्या\ आ$$

परन्तु $प\ भ^2 + प\ दा^2 = भ\ दा^2 = त^2$

$$\therefore \left(अ\ कोज्या\ आ \right)^2 + \left(\frac{त}{थ} \times अ\ ज्या\ आ \right)^2 = त^2$$

या $अ^2\ कोज्या^2\ आ + \frac{त^2}{थ^2} \times अ^2\ ज्या^2\ आ = त^2$

परन्तु पृष्ठ ५६५ में सिद्ध हो चुका है कि $\frac{थ^2}{त^2} = \frac{स्परे\ आ}{स्परे\ अ}$

इसलिए $अ^2\ कोज्या^2\ आ + \frac{स्परे\ अ}{स्परे\ आ} \times अ^2\ ज्या^2\ आ = त^2$

यहां $\frac{ज्या^2\ आ}{स्परे\ आ} = \frac{ज्या^2\ आ \times कोज्या\ आ}{ज्या\ आ}$

$$= ज्या\ आ \times कोज्या\ आ$$

और $स्परे\ अ = \frac{ज्या\ अ}{कोज्या\ अ}$

$$\therefore अ^2\ कोज्या^2\ आ + \frac{ज्या\ अ}{कोज्या\ अ}\ ज्या\ आ \times कोज्या\ आ \times अ^2 = त^2$$

प्रत्येक पक्ष को कोज्या अ से गुणा करके प्रत्येक पद के सामान्य खंडों को इकट्ठा करनेपर

$$अ^2\ कोज्या\ आ\ (\ कोज्या\ अ \times कोज्या\ आ + ज्या\ अ \times ज्या\ आ\ )$$

$$= त^2\ कोज्या\ अ$$

$$\therefore अ^2\ कोज्या\ आ\ कोज्या\ (\ आ - अ\ ) = त^2\ कोज्या\ अ*$$

---

*देखो Hall and Knight's Elementary Trigonometry pp. 95.

$$\therefore \text{त्र}^2 = \frac{\text{त}^2 \text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या आ कोज्या (आ} - \text{अ)}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6)$$

$$= \frac{\text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या आ कोज्या (आ} - \text{अ)}}$$ अब कि निरक्ष देशीय त्रिज्या १ मान ली जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि किसी स्थानका भौगोलिक अक्षांश, उसके ऊर्ध्व रेखाका कोण और विषुवत् रेखासे भूकेन्द्रकी दूरी ज्ञात हो तो भूकेन्द्रसे उस स्थानकी दूरी जानी जा सकती है।

किसी स्थानका क्षितिज लम्बन जानना

मान लो कि चन्द्रमाका क्षितिज लंबन निरक्ष देश (equator) पर ल और किसी अन्य स्थानपर लि है। यदि भूकेन्द्रसे निरक्ष देशकी दूरी त और उस स्थानकी दूरी त्र हो तो पृष्ठ ५५७ से स्पष्ट है कि—

$$\text{ज्या ल} = \frac{\text{त}}{\text{क}}$$

और $$\text{ज्या लि} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$$

इसलिए $$\text{ज्या लि} = \frac{\text{त्र}}{\text{त}} \text{ज्या ल}$$

यदि त को १ मान लिया जाय तो

$$\text{ज्या लि} = \text{त्र ज्या ल} \quad (7)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि निरक्ष देशीय पृथ्वीकी त्रिज्या १ मान ली जाय तो चन्द्रमाके निरक्ष देशीय क्षितिज लम्बनकी ज्या को किसी स्थानकी त्रिज्यासे गुणा कर देनेपर उस स्थानका क्षितिज लम्बन ज्ञात हो जायगा।

उदाहरण २—यदि चंद्रमाका निरक्ष देशीय क्षितिज लंबन ५३' हो तो देहरादूनमें क्षितिज लंबन क्या होगा ?

ऊर्ध्व रेखाका कोण उदाहरण (१) में जान लिया गया है। इसलिए पहले देहरादूनकी त्रिज्या सूत्र ६ से जानना चाहिए :—

$$\text{त}^2 = \frac{\text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या आ कोज्या (आ − अ)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या ३०°१८'५२''}}{\text{कोज्या ३०°८'४०'' कोज्या १०'१२''}}$$

$\therefore$ २ लरि त = लरि कोज्या ३०°१८'५२" − लरि कोज्या ३०°८'४०"

— लरि कोज्या १०'१२"

= ९·९३६१ − ९·९३६९ − १०

= $\bar{१}$·९९९२

$\therefore$ लरि त = $\bar{१}$·९९९६

$\therefore$ त = ·९९९

$\therefore$ देहरादूनके क्षितिज लंबन की ज्या

= ·९९९ × ज्या ५३'

= ·९९९ × ·०१५४

= ·०१५३८

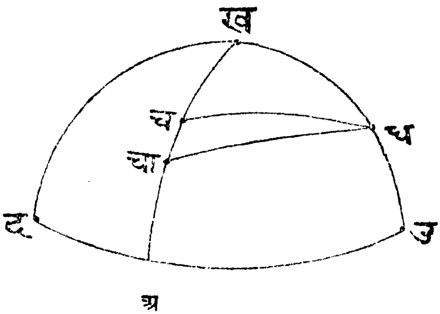
$\therefore$ देहरादूनका क्षितिज लंबन = ५२'५६" *

लम्बनके कारण आकाशीय पिण्डके स्पष्ट और यथार्थ विषुवांशों- में क्या अन्तर पड़ता है ?

लंबनके सम्बन्धमें अबतक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि इसके कारण आकाशीय पिंडके नतांशमें अन्तर

* ऐसी सूक्ष्म गणनाके लिए लघुरिक्थोंकी सारिणी कमसे कम दशमलवके सात अंकोंकी होनी चाहिए नहीं तो बहुत स्थूलता रह जाती है।

पड़ता है जिससे पिंडके विषुवांश, क्रान्ति, भोगांश और शर सबपर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। परन्तु जिस समय पिण्ड याम्योत्तर वृत्तपर होता है उस समय लंबनके कारण नतांशमें जो अन्तर पड़ता है उसका पूरा प्रभाव क्रान्तिपर ही पड़ता है न कि विषुवांशपर। परन्तु अन्य स्थानोंमें विषुवांश और क्रान्ति दोनों हीमें अन्तर देख पड़ता है क्योंकि जिस ऊर्ध्व वृत्तपर नतांशका अन्तर होता है वह विषुवत् वृत्तसे भिन्न होता है। विषुवांशका लम्बन जानना



चित्र ७७

मान लो कि उ ख द किसी स्थानका याम्योत्तर वृत्त है, उ, द उस स्थानकी क्षितिज उ अ द के उत्तर, दक्खिन विन्दु हैं, ख भूकेन्द्रिक खस्वस्तिक और ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव है। मान लो कि चन्द्रमाका यथार्थ स्थान जो पृथ्वीके केन्द्रसे देख पड़ता है च है और इसका स्पष्ट स्थान जो द्रष्टा को भूतलसे देख पड़ता है चा है। च चा चन्द्रमाका नतांश लंबन है जिसके लिए पृष्ठ ५५६ में ला लिखा गया है। कोण ख ध च और ख ध चा च और चा के नतकाल (hour angle) हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि लंबनके कारण चन्द्रमाका स्पष्ट नतकाल, यथार्थ

नतकालसे कोण च ध चा के समान अधिक है। यही कोण च ध चा चन्द्रमाका विषुवांश लंबन है। यह भी स्पष्ट है कि चंद्रमाका स्पष्ट ध्रुवान्तर ध चा उसके यथार्थ ध्रुवान्तर ध च से अधिक है। इसलिए स्पष्टक्रान्ति यथार्थ क्रान्तिसे कम हो जायगी। इसलिए चंद्रमाका क्रान्ति लंबन ध चा—ध च के समान होगा।

मान लो कि द्रष्टाके स्थानमें चंद्रमाके क्षितिज लंबन लि, विषुवांश लंबन ली, यथार्थ नतकाल घ, और यथार्थ क्रान्ति क तथा द्रष्टाका भूकेन्द्रिक अक्षांश अ है। तब यह स्पष्ट है कि चंद्रमाका स्पष्ट नतकाल ख ध चा=घ+ली=घा

गोलीय त्रिभुज च ध चा में

$$\frac{\text{ज्या (च ध)}}{\text{ज्या (च चा ध)}}=\frac{\text{ज्या (च चा)}}{\text{ज्या (च ध चा)}}$$

परन्तु $\angle$च ध चा=ली

$$\therefore \text{ ज्या ली}=\frac{\text{ज्या (च चा)} \times \text{ज्या (च चा ध)}}{\text{ज्या (च ध)}} \quad \ldots\ldots\ldots(\text{क})$$

और गोलीय त्रिभुज ख ध चा में

$$\frac{\text{ज्या (ख चा)}}{\text{ज्या (ख ध चा)}}=\frac{\text{ज्या (ख ध)}}{\text{ज्या (ख चा ध)}}$$

$$\therefore \text{ ज्या (ख चा ध)}=\frac{\text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}}{\text{ज्या (ख चा)}} \quad \ldots\ldots(\text{ख})$$

परन्तु $\angle$ख चा ध = $\angle$च चा ध

$$\therefore \text{ ज्या ली} = \frac{\text{ज्या (च चा)}}{\text{ज्या (च ध)}} \times \frac{\text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}}{\text{ज्या (ख चा)}} \quad \ldots(\text{ग})$$

परन्तु पृष्ठ ५५७ के सूत्र (१) के अनुसार,

ज्या (च चा) = ज्या लि × ज्या (ख चा)

इसको समीकरण (ग) में उत्थापन करने से

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि}}{\text{ज्या (च ध)}} \times \text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}$$

$\text{च ध} = \text{च का ध्रुवान्तर} = 90^\circ - \text{क}$

$\therefore \text{ज्या (च ध)} = \text{कोज्या क}$

$\text{ख ध} = \text{द्रष्टाका लम्बांश} = 90^\circ - \text{अ}$

$\therefore \text{ज्या (ख ध)} = \text{कोज्या अ}$

$\angle \text{ख ध चा} = \angle \text{ख ध च} + \angle \text{च ध चा} = \text{घ} + \text{ली}$

$$\therefore \text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या अ} \times \text{ज्या (घ + ली)}}{\text{कोज्या क}} \cdots (\text{क})$$

मान लो कि $\text{प} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या क}}$

तब $\text{ज्या ली} = \text{प} \times \text{ज्या (घ + ली)} \ldots\ldots\ldots\ldots (1)$

$= \text{प ज्या घ कोज्या ली} + \text{प कोज्या घ ज्या ली}$

यदि प्रत्येक पक्षको कोज्या ली से भाग दिया जाय तो

$\text{स्परे ली} = \text{प ज्या घ} + \text{प कोज्या घ स्परे ली}$

$$\therefore \text{स्परे ली} = \frac{\text{प ज्या घ}}{1 - \text{प कोज्या घ}} \ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

इस सूत्रका विस्तार करके उसी प्रकारकी श्रेणी बनायी जा सकती है जिस प्रकार पृष्ठ ५५८—५६१ में सूत्र (२) को सूत्र (३) के रूपमें लाया गया है। इस तरह

$$\text{ली} = \frac{\text{प ज्या घ}}{\text{ज्या } 1''} + \frac{\text{प}^2 \text{ ज्या } 2 \text{ घ}}{\text{ज्या } 2''} + \frac{\text{प}^3 \text{ ज्या } 3 \text{ घ}}{\text{ज्या } 3''} + \ldots\ldots (3)$$

विषुवांश लंबन जाननेके लिए सूत्र (१) उस समय काममें लाया जा सकता है जब स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो और जब यथार्थ नतकाल ज्ञात रहता है तब सूत्र (२) या (३) काममें लाया जाता है।

उदाहरण १—चंद्रमाका विषुवांश लंबन बतलाओ जब कि द्रष्टाके स्थानका उत्तर अक्षांश $३९^\circ ५७' ७''$, इस स्थानके लिए चंद्रमाका क्षितिज लम्बन $५९' ३६\cdot'' ८$, चंद्रमाकी उत्तर क्रान्ति $२४^\circ ५' ११''\cdot ६$ और चंद्रमाका यथार्थ नतकाल $६१^\circ १०' ४७\cdot'' ४$।

इस स्थानका भूकेन्द्रिक अक्षांश पृष्ठ ५६५के सूत्र (५) के अनुसार $३९^\circ ४५' ४७''\cdot ५$ हुआ।

लरि ज्या क्षि=लरि ज्या $५९' ३६''\cdot ८$=८·२३९०४८

लरि कोज्या आ=लरि कोज्या $३९^\circ ४५' ४७''\cdot ५$=९·८८५७५४

*लरि छेरे क=लरि छेरे $२४^\circ ५' ११''\cdot ६$=०·०३९५६३

∴ लरि प=८·१६४३६५

लरि ज्या घ=लरि ज्या $६१^\circ १०' ४७''\cdot ४$=९·९४२५७२

लरि कोछेरे $१''$=५·३१४४२५

इसलिए सूत्र (३) के पहले पदका लघुरिक्थ=३·४२१३६२

∴ पहला पद=$२६३८''\cdot ५३$

लरि $प^२$=२ लरि प= ६·३२८७

ज्या २ घ=ज्या २ × $६१^\circ १०' ४७''\cdot ४$= ९·९२६७

लरि कोछेरे $२''$= ५·०१३४

∴ दूसरे पदका लघुरिक्थ= १·२६८८

∴ दूसरा पद=+ $१८''\cdot ५७$

लरि $प^३$=३ लरि प=४·४९३

लरि ज्या ३घ=लरि ज्या ३ × $६१^\circ १०' ४७''\cdot ४$=८·७९१ ऋणात्मक

लरि कोछेरे $३''$=४·८३७

---

* पृष्ठ ५७३ में यह माना गया है कि $प = \frac{ज्या\ क्षि \times कोज्या\ आ}{कोज्या\ क}$ परंतु $\frac{१}{कोज्या\ क}$=छेदन रेखा क=छेरे क, इसलिए प=ज्या क्षि × कोज्या आ × छेरे क

∴ तीसरे पद का लघुरिक्थ=८·१२१ ऋणात्मक

∴ तीसरा पद= $-0''\cdot01$

∴ ली=$२६३८''\cdot५३ + १८''\cdot५७ - ०''\cdot०१$

=$२६५७''\cdot०६$

=$४४'१७''\cdot०६ = ४४'१७''\cdot१$

∴ चंद्रमाका स्पष्ट नतकाल

=$६१^\circ १०'४७''\cdot४ + ४४'१७''\cdot१$

=$६१^\circ ५५'४''\cdot५$

यदि यही स्पष्ट नतकाल दिया होता तो सूत्र (१) से विषुवांश लंबन इस प्रकार जाना जाता:—

लरि ज्या ली=लरि प+लरि ज्या $६१^\circ ५५'४''\cdot५$

=८·१६४३६५+९·९४५६०४

=८·१०९९६९

∴ ली =$४४'१७''\cdot०६$

इस प्रकार किसी स्थानके विषुवांश लंबनकी सारिणी तैयार की जा सकती है।

चन्द्रमा का क्रान्ति लंबन (Parallax in declination) जानना—

इस कामके लिए भी चित्र ७७ काम देगा। मान लो कि चंद्रमाकी यथार्थ क्रान्ति क, यथार्थ नतांश न और यथार्थ नतकाल घ हैं और लंबनके कारण चंद्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति, स्पष्ट नतांश और स्पष्ट नतकाल क्रमानुसार का, ना, और घा हैं।

मान लो कि चन्द्रमाका क्रान्ति लंबन लु है।

गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख में,

$$\text{कोज्या च ख ध} = \frac{\text{कोज्या च ध} - \text{कोज्या च ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या च ख ज्या ध ख}}$$

$$\text{कोज्या चा ख ध} = \frac{\text{कोज्या चा ध} - \text{कोज्या चा ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या चा ख ज्या ध ख}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध कोण एक ही हैं और

च ध=चंद्रमाका यथार्थ ध्रुवान्तर=90° – क

चा ध= ,, स्पष्ट ,, =90° – का

$\therefore$ कोज्या च ध=कोज्या (90° – क)=ज्या क

और कोज्या चा ध=ज्या का

$$\therefore \frac{\text{ज्या क} - \text{कोज्या न} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{ज्या का} - \text{कोज्या ना} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या ना}}$$

अर्थात् ज्या क ज्या ना—ज्या आ ज्या ना कोज्या न

=ज्या का ज्या न – ज्या आ ज्या न कोज्या ना

या ज्या क ज्या ना – ज्या आ (ज्या ना को ज्या न – कोज्या ना ज्या न) =ज्या का ज्या न

$\therefore$ ज्या क ज्या ना—ज्या आ ज्या (ना – न)=ज्या का ज्या न

परन्तु ना – न चंद्रमाका नतांश लम्बन है इसलिए

ज्या (ना – न)=ज्या ला=ज्या लि ज्या ना (देखो पृष्ठ ५५७)

यहां लि क्षितिज लम्बन माना गया है ।

$\therefore$ ज्या क ज्या ना—ज्या आ ज्या लि ज्या ना=ज्या का ज्या न

या ज्या का ज्या न=ज्या ना (ज्या क – ज्या लि ज्या आ)···(क)

इस समीकरणसे। ज्या ना और हटानेके लिए गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख से इस प्रकार काम लेना होगा—

$$\frac{\text{ज्या च ख ध}}{\text{ज्या च ध}} = \frac{\text{ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}}$$

$$\text{और} \quad \frac{\text{ज्या चा ख ध}}{\text{ज्या चा ध}} = \frac{\text{ज्या चा ध ख}}{\text{ज्या चा ख}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध एक ही हैं, इसलिए

$$\frac{\text{ज्या च ध ज्या च घ ख}}{\text{ज्या च ख}} = \frac{\text{ज्या चा ध ज्या चा घ ख}}{\text{ज्या चा ख}}$$

$$\text{या ज्या चा ध ज्या च ख} = \frac{\text{ज्या च ध ज्या च घ ख ज्या चा ख}}{\text{ज्या चा घ ख}}$$

$$\text{या कोज्या का ज्या न} = \frac{\text{कोज्या क ज्या घ ज्या ना}}{\text{ज्या घा}} \quad \cdots\cdots\cdots \text{(ख)}$$

समीकरण (क) के बायें पक्षका समीकरण (ख) के बायें पक्षसे और उसके दाहने पक्षको इसके दाहने पक्षसे भाग देनेपर

$$\text{स्पष्ट का} = \frac{\text{ज्या क} - \text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या घ कोज्या क}} \times \text{ज्या घा}$$

$$= \frac{\text{ज्या क} - \text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \times \frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या घ}}$$

$$= \left(\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \right) \times \frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या घ}}$$

$$= \text{स्परे क} \left(1 - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या क}} \right) \frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या घ}} \quad \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (1)$$

यदि यथार्थ क्रान्ति, नतकाल और स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो तो इस सूत्रसे स्पष्ट क्रान्ति जानी जा सकती है। फिर स्पष्ट क्रान्तिसे यथार्थ क्रान्ति घटानेपर क्रान्ति लम्बन जाना जा सकता है। यदि क्रान्ति लम्बनका मान सीधे ही जानना हो तो सूत्र (१) को दूसरे रूपमें लिखना होगा जो इस प्रकार सिद्ध होता है:—

सूत्र (१) से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}} = \text{स्परे क} \left(1 - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या क}} \right)$$

$$=\text{स्परे क}-\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\therefore \text{स्परे क}-\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}=\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\text{अथवा स्परे क}-\text{स्परे का}+\text{स्परे का}-\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}$$

$$=\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\text{परन्तु स्परे क}-\text{स्परे का}=\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}}-\frac{\text{ज्या का}}{\text{कोज्या का}}$$

$$=\frac{\text{ज्या क कोज्या का}-\text{कोज्या क ज्या का}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$=\frac{\text{ज्या (क}-\text{का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$\therefore \frac{\text{ज्या (क}-\text{का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}+\text{स्परे का}\left(१-\frac{\text{ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}\right)$$

$$=\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

अथवा

$$\frac{\text{ज्या (क}-\text{का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}=\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}-\frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}}\left(\text{ज्या घा}-\text{ज्या घ}\right)$$

परन्तु Halland Knight की Trigonometry पृष्ठ ११३के अनुसार

$$\text{ज्या घा}-\text{ज्या घ}=२\ \text{ज्या}\ \frac{\text{घा}-\text{घ}}{२}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{घा}+\text{घ}}{२}$$

जहाँ घा स्पष्ट नतकाल और घ यथार्थ नतकाल है।

इसलिए घा − घ=विषुवांश लंबन=ली

$$\text{घा} + \text{घ} = \text{घा} - \text{घ} + २\ \text{घ} = \text{ली} + २\ \text{घ}$$

$$\therefore\ \text{ज्या घा} - \text{ज्या घ} = २\ \text{ज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}\ \text{कोज्या} \left(\frac{\text{ली} + २\ \text{घ}}{२}\right)$$

और क − का = स्पष्ट और यथार्थ क्रान्तियोंका अंतर

= क्रान्ति लंबन = लु (देखो पृ० ५७५)

$$\therefore\ \frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$- \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \times २\ \text{ज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}\ \text{कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)$$

$$\text{परन्तु ज्या ली} = २\ \text{ज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}$$

$$\therefore\ २\ \text{ज्या}\ \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या ली}}{\text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या (घ + ली)}}{\text{कोज्या क कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$ (देखो पृ० ५७३)

$$\therefore\ २\ \text{ज्या}\ \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$

इसलिए

$$\frac{\text{ज्या ल}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्यालि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$- \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \times \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}} \times \text{कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)$$

यदि दोनों पक्षोंको कोज्या क कोज्या का से गुणा कर दिया जाय और सरल किया जाय तो

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ कोज्या का} - \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}} \cdots\cdots(\text{क})$$

मान लो कि

$$\text{कोस्परे फ} = \frac{\text{कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)\text{कोस्परे आ}}{\text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$

तब $\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ कोज्या का}$
$- \text{ज्या लि ज्या आ ज्या का कोस्परे फ}$

इसलिए

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ}\ (\text{कोज्या का} - \text{ज्या का कोस्परे फ})$$

$$= \text{ज्या लि ज्या आ}\left(\frac{\text{कोज्या का ज्या फ} - \text{ज्या का कोज्या फ}}{\text{ज्या फ}}\right)$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}\ \text{ज्या}\ (\text{फ} - \text{का})$$

यदि $\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}$ के लिए ब मान लिया जाय तो

$\text{ज्या लु} = \text{ब ज्या}\ (\text{फ} - \text{का})$

परन्तु $\text{क} - \text{का} = \text{लु}$ $\therefore$ $\text{का} = \text{क} - \text{लु}$

$\therefore$ $\text{ज्या लु} = \text{ब ज्या}\ (\text{फ} - \text{क} + \text{लु}) \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots\cdots(२)$

$= \text{ब}\ \{\text{ज्या}\ (\text{फ} - \text{क})\ \text{कोज्या लु} + \text{कोज्या}\ (\text{फ} - \text{क})\ \text{ज्या लु}\}$

दोनों पक्षोंको कोज्या लुसे भाग देनेपर

स्परे लु=ब ज्या (फ − क) + ब कोज्या (फ − क) स्परे लु

$$\text{या स्परेलु} = \frac{\text{ब ज्या (फ − क)}}{\text{१ − ब कोज्या (फ − क)}} \qquad \text{.........(३)}$$

यदि इसको पहलेकी तरह श्रेणीमें विस्तार किया जाय तो

$$\text{लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ − क)}}{\text{ज्या१}''} + \frac{\text{ब}^{२}\text{ज्या२ (फ − क)}}{\text{ज्या२}''} + \frac{\text{ब}^{३}\text{ज्या३ (फ-क)}}{\text{ज्या३}''} + \text{.........(४)}$$

जब स्पष्ट क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (२) से और यथार्थ क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (३) और (४) से क्रान्ति लंबन जाना जा सकता है।

यह जानना कि विषुवांश लंबनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है:—

पृष्ठ ५७३में विषुवांश लंबनका सूत्र यह आया है:—

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि × कोज्या आ × ज्या घा}}{\text{कोज्या क}}$$

ली और लि धनु बहुत छोटे होते हैं इसलिए

ज्या ली=ली

और ज्या लि=लि

लम्बनके कारण यथार्थ नतकाल और स्पष्ट नतकालमें जो भिन्नता देख पड़ती है वह भी बहुत कम होती है इसलिए व्यवहारकी सुविधाके लिए ज्या घ को ज्या घा के समान समझ लेनेमें कोई हानि नहीं। इसलिए उपर्युक्त सूत्रका रूप यह हुआ:—

$$\text{ली} = \frac{\text{लि × कोज्या आ × ज्या घ}}{\text{कोज्या क}}$$

इस सूत्रमें घ ही ऐसा है जिसका भेद प्रति क्षण बहुत बढ़ता रहता है, लि, ली, आ और क में जो विकार उत्पन्न होता है वह

इतना मन्द होता है कि कुछ समयके लिए यह मात्राएँ स्थिर मानी जा सकती हैं। इसलिए यदि घ को चल राशि मानकर ली की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

$$\text{ता (ली)} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \text{ कोज्या घ ता (घ)}$$

यहाँ ता (घ) को रेडियनमें लिखना होगा। यदि यह जानना हो कि प्रति घंटा विषुवांश लम्बनमें क्या भेद उत्पन्न होता है तो ता (घ) को १५° के रेडियनमें प्रकट करना चाहिए। यह विदित है कि

$१८०° = \pi$ रेडियन

$= ३\cdot१४१ ५९$ रेडियन

$\therefore १५° = \cdot२६१७९९$ रेडियन

और $६° = \cdot१०४७१९७$ रेडियन

उदाहरण—चन्द्रमाके विषुवांश लम्बनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है जब एक स्थानका क्षितिज लंबन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चंद्रमाकी क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° हो?

लरि लि=लरि ५७′=लरि ३४२०″=३·५३४०२६

लरि कोज्या आ=लरि कोज्या ४२°११′२१″=९·८६९७७८

लरि कोज्या घ=लरि कोज्या ५०° =९·८०८०६७

लरि ता (घ)=लरि·२६१७९९ =१̄·४१७९९९

लरि छेरे क=लरि छेरे २५° =०·०४२७२४

∴ लरि ता (ली) =२·६७२५६४

∴ ता (ली)=४७०″·५ =७′५०·५

यह जानना कि क्रान्ति लंबनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है:—

पृष्ठ ५८०में सिद्ध हुआ है कि

ज्या लु=ज्या लि ज्या अा कोज्या का

$$-\frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या}\left(\text{घ}+\frac{\text{ली}}{२}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$

यदि पहलेकी तरह ज्या लु और ज्या लि की जगह लु और ली लिये जायँ, घ+ $\frac{\text{ली}}{२}$ **को** घ **और** कोज्या $\frac{\text{ली}}{२}$ **को १ तथा** का **को** क **मान लिया जाय तो**

लु=लि ज्या आ कोज्या क — लि कोज्या आ कोज्या घ ज्या क

अब यदि केवल घ को चल-राशि मानकर इस समीकरण-की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

ता (लु)=लि कोज्या आ ज्या क ज्या घ ता (घ)

उदाहरण—**चन्द्रमाके क्रान्ति लम्बनमें प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है, जब एक स्थानका क्षितिज लम्बन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चन्द्रमाकी क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° है ?**

लरि लि=लरि ५७′=लरि ३४२०″ =३·५३४०२६

लरि कोज्या आ=लरि कोज्या ४२°११′२१″ =९·८६९७७८

लरि ज्या क=लरि ज्या २५° =९·६२५९४८

लरि ज्या घ=लरि ज्या ५०° =९·८८४२५४

लरि ता (घ)=लरि·२६१७९९=१̄·४१७९९९

∴ लरि ता (लु) =२·३३१९७५

∴ ता (लु)=२१४″·८ =३′३४″·८

भोगांश और विक्षेप (शर) पर लम्बनका प्रभाव—

जिस प्रकार विषुवांश और क्रान्ति सम्बन्धी लंबन जाननेके लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं ठीक उसी प्रकार ऐसे सूत्र भी स्थापित किये जा सकते हैं जिनसे भोगांश और शर सम्बन्धी लंबन जाने जा सकते हैं। इस कामके लिए चित्र ७७ के ध विन्दु-को कदंब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) समझना होगा। ऐसी दशा-में कदंब और खस्वस्तिक ख से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त उधखद वह वृत्त होगा जिसपर त्रिभोन लग्न या वित्रिभ लग्न है (देखो चित्र ६३ और पृष्ठ ४८४), ध च और ध चा कदम्बप्रोतवृत्तों-पर ग्रहके यथार्थ और स्पष्ट कदम्बान्तर हैं। इसलिए ९०°—ध च और ९०°—ध चा ग्रहके यथार्थ और स्पष्ट शरोंके समान होंगे। ख ध खस्वस्तिकसे कदम्बका अन्तर है जिसको ९०° से घटानेपर त्रिभोन लग्नका नतांश आ जायगा। यही त्रिभोन लग्नका नतांश खस्वस्तिकसे क्रान्तिवृत्तका यथार्थ अन्तर है इसलिए यह खस्वस्तिकका भूकेंद्रिक शर हुआ।

मान लो कि खस्वस्तिकका भूकेंद्रिक शर या त्रिभोन लग्न-का नतांश त्रा है, ग्रहका यथार्थ शर श और स्पष्ट शर शा है, ग्रहके भोगांश और त्रिभोन लग्नका यथार्थ अन्तर ख ध च है जिसे संक्षेपमें यथार्थ विश्लेषांश या केवल व कहा जायगा। यदि लि क्षितिज लंबन तथा भी भोगांश लंबन हो तो पृष्ठ ५७३ के समीकरण (क) की तरह

$$\text{ज्या भी} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा ज्या (व + भी)}}{\text{कोज्या श}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \text{(क)}$$

पृष्ठ ५७३ में दिखाई गयी रीतिके अनुसार इसको यों भी लिखा जा सकता है।

$$\text{स्पर्श भी} = \frac{\text{त ज्या व}}{\text{१ — त कोज्या व}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \text{(२)}$$

$$\text{जथ त}=\frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा}}{\text{कोज्या श}}$$

यह स्पष्ट है कि सूत्र (क) में भी और लि बहुत छोटे हैं इस लिए इनकी ज्याओंकी जगह धनु लिखनेमें कोई हानि नहीं होगी परन्तु सरलता हो जायगी। इसलिए

$$\text{भी}=\frac{\text{लि कोज्या त्रा ज्या व}}{\text{कोज्या श}} \quad \cdots\cdots\cdots (\text{ख})$$

अथवा यदि ग्रहका शर बहुत छोटा हो जैसे सूर्य-ग्रहण-के समय चन्द्रमाका शर होता है तो कोज्या श का मान १ के प्रायः समान होगा। इसलिए

$$\text{भी}=\text{लि कोज्या त्रा ज्या व} \quad \cdots\cdots\cdots (\text{ग})$$

यही रूप सूर्य-सिद्धान्तके सूर्य-ग्रहणाधिकार श्लोक ७-८ में बतलाया गया है।

शर लंबन या नति—यदि भु शर लंबन हो तो पृष्ठ ५८० के समीकरण (क) की तरह

$$\text{ज्या भु}=\text{ज्या लि ज्या त्रा कोज्या शा}$$

$$-\frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा कोज्या}\left(\text{व}+\frac{\text{भी}}{२}\right)\text{ज्या शा}}{\text{कोज्या}\frac{\text{भी}}{२}} \quad \cdots\cdots\cdots (\text{घ})$$

यह स्पष्ट है कि $\frac{\text{भी}}{२}$ अर्थात् भोगांश लंबन बहुत छोटा है इसलिए कोज्या $\frac{\text{भी}}{२}=१$। ऐसी दशामें यदि $\text{व}+\frac{\text{भी}}{२}$ की जगह व और शा की जगह श रखा जाय तो बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा और सूत्र (घ) सरल होकर ऐसा हो जायगा :—

$$\text{ज्या भु}=\text{ज्या लि ज्या त्रा कोज्या श}$$

$$-\text{ज्या लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व} \quad \cdots\cdots\cdots (\text{ङ})$$

यदि ज्या भु और ज्य लि की जगह इनके धनु लिये जायं क्योंकि यह बहुत छोटे हैं तो

भु=लि ज्या आ कोज्या श − लि कोज्या आ ज्या श कोज्या व···(च)

भोगांश लंबनकी समानता विषुवांश लंबनसे तथा क्रान्ति लंबनकी समानता शर लंबनसे समझनेके लिए यह याद रखना चाहिए कि

भोगांश लम्बनके सूत्र में	विषुवांश लम्बनके सूत्रमें
लि=क्षितिज लम्बन	लि=क्षितिज लम्बन
भी=भोगांश लम्बन	ली=विषुवांश लम्बन
आ=त्रिभोन लग्नका नतांश	आ=भूकेन्द्रिक अक्षांश
व=त्रिश्लेषांश	घ=यथार्थ नतकाल
श=यथार्थ शर	क=यथार्थ क्रान्ति
शा=स्पष्ट शर	का=स्पष्ट क्रान्ति
भु=शर लम्बन या नति	लु=क्रान्ति लम्बन

सूर्यसिद्धान्तने भोगांश लंबनका नाम हरिज और शर लंबनका नाम नति रखा है। अन्य सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भोगांश लंबनको केवल लंबन या स्फुट लंबन और शर लंबनको नति कहा गया है।

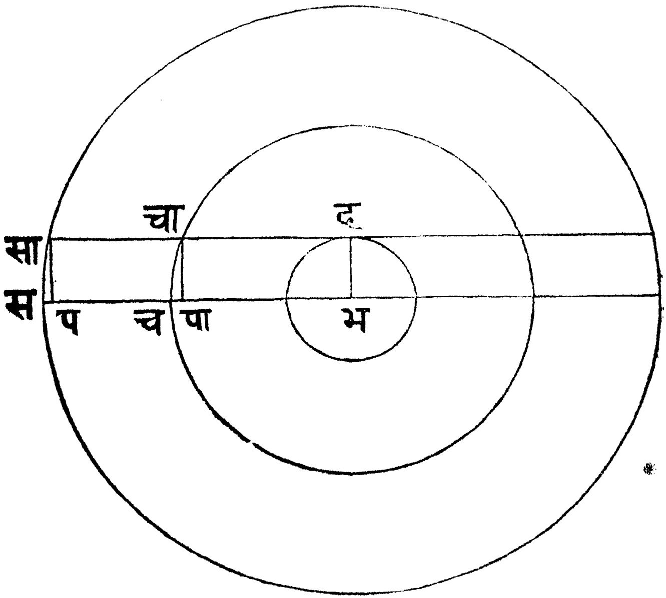
अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि हमारे आचार्योंने लंबनके विषयमें क्या लिखा है :—

भास्कराचार्यने लिखा* है कि किसी ग्रहकी दैनिक गतिको १५ से भाग देनेपर उस ग्रहका परम लम्बन (क्षितिज लंबन) आ जाता है। इसका कारण यह बतलाया गया है :—

भूतलके किसी स्थानको स्पर्श करता हुआ समतल (horizontal plain) आकाशको जिस वृत्तपर काटता हुआ

* गणिताध्याय पृष्ठ १९२

देख पड़ता है उसे उस स्थानका क्षितिजवृत्त कहते हैं। यह क्षितिज वृत्त आकाशके गोलको दो भागोंमें बांट देता है। इस क्षितिज वृत्तको स्पष्ट क्षितिजवृत्त (sensible horizon) कहते हैं। यदि पृथ्वीके केन्द्रसे होता हुआ स्पष्ट क्षितिज वृत्तके समानान्तर दूसरा समतल आकाशकी ओर बढ़ाया जाय तो यह आकाशको जिस वृत्तपर काटता है उसे उस स्थानका यथार्थ क्षितिजवृत्त true या rational horizon कहते हैं। चित्र ७८ में द भूतलपर द्रष्टाका स्थान और भ पृथ्वीका केन्द्र



चित्र ७८

है। द से जो समतल पृथ्वी तलको छूता हुआ खींचा गया

है वह चन्द्रमाकी कक्षाको चा बिंदुपर और सूर्यकी कक्षाको सा बिंदुपर काटता है। इसलिए चा, सा बिंदु द स्थानकी स्पष्ट क्षितिजपर है। यदि इसीके समानान्तर भ से होता हुआ एक समतल आकाशकी ओर बढ़ाया जाय जो चंद्र और सूर्यकी कक्षाओंको क्रमसे च और स बिंदुओंपर काटे तो भ च स तलको द स्थानका यथार्थ क्षितिज कहते हैं। यह प्रकट है कि जिस समय चंद्रमा और सूर्य्य अथवा अन्य कोई ग्रह द स्थानके यथार्थ क्षितिजपर रहता है उस समय वह भ च स तलमें रहता है जो द स्थान के स्पष्ट क्षितिजसे नीचे है इसलिए वह द्रष्टाको नहीं देख पड़ेगा। ऐसी दशामें ग्रह स्पष्ट क्षितिजसे जितना नीचे रहेगा उसका परिमाण चा पा या सा प है जो भ द अर्थात् पृथ्वीके अर्द्ध-व्यास के समान है। इसलिए यह कहनेमें कुछ भी दोष नहीं है कि जब ग्रह किसी स्थानके यथार्थ क्षितिजपर रहता है तब वह उस स्थानके स्पष्ट क्षितिजसे पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान नीचे रहता है अर्थात् उसका लंबन पृथ्वीके अर्द्धव्यास-के समान होता है। यदि चा पा को चा च के समान और सा प को सा स के समान समझ लें तो बहुत अंतर न पड़ेगा क्योंकि चा च या सा स पूरी कक्षाकी तुलनामें बहुत छोटा है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब ग्रह यथार्थ क्षितिजपर रहता है तब वह द्रष्टाकी क्षितिजसे अपनी कक्षा-में पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान नीचे रहता है।

यह पहले बतलाया जा चुका है (देखो पृष्ठ २४-२५) कि हमारे आचार्योंने मान लिया था कि प्रत्येक ग्रहकी योजनात्मक गति समान होती है। आगे आनेवाले भूगोलाध्यायके श्लोक ८१-८२ के अनुसार प्रत्येक ग्रहकी दैनिक गति ११८५८·७२ योजन होती

है। पृथ्वीका अर्द्धव्यास सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ८०० योजन और सिद्धान्त शिरोमणिके अनुसार ७६०·५ योजन होता है (देखो मध्यमाधिकार पृ० ८१)। पिछले ग्रंथमें लिखा हुआ पृथ्वीका अर्द्धव्यास ग्रहकी दैनिक गतिका ठीक पन्द्रहवाँ भाग है। पहले ग्रंथके अनुसार भी ग्रहकी दैनिक गति पृथ्वीके अर्द्धव्यासके प्रायः १५ गुनेके समान है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय ग्रह यथार्थ क्षितिजपर रहता है उस समय यह स्पष्ट क्षितिजसे अपनी दैनिक गतिके १५वें भागके समान नीचे रहता है। अर्थात् ग्रहका परम लंबन उसकी दैनिक गतिके १५वें भागके समान होता है। एक दिन ६० घड़ीके समान होता है इसलिए ६० घड़ीमें जो गति होती है उसका पन्द्रहवाँ भाग चार घड़ीकी गतिके समान हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रह चार घड़ीमें जितना चलता है उतना ही उसका परम लंबन (कलाओंमें) होता है। समयकी इकाइयोंमें ग्रहका परमलंबन ४ घड़ीके समान होता है।

यदि ग ग्रहकी दैनिक कोणात्मक गति, य उसकी दैनिक योजनात्मक गति, ल परमलंबन, क पृथ्वीसे ग्रह कक्षाकी दूरी और त्र पृथ्वीका अर्द्धव्यास हो तो ऊपर लिखी बातें इस प्रकार भी प्रकट की जा सकती है :—

$$ल = \frac{ग}{१५} = \frac{य}{१५क} = \frac{त्र}{क}$$

क्योंकि यदि ग्रह बहुत दूर हो तो उसकी दैनिक योजनात्मक गतिको अर्थात् १ दिनमें ग्रह अपनी कक्षाका जितना धनु (arc) चलता है उसको कक्षाके अर्द्धव्याससे भाग देनेपर उसकी दैनिक कोणात्मक गति ज्ञात होती है इसलिए

$ग = \frac{य}{क}$ । परन्तु यको १५ से भाग देनेपर जो आता है वह पृथ्वीके अर्द्धव्यासके समान होता है इसलिए $\frac{य}{१५} = त्र$ ।

इससे सिद्ध हुआ कि हमारे आचार्योंने परम लंबनका परिमाण जाननेके लिये जो नियम बनाये थे वह आजकलके बनाये नियमसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं (देखो पृ०५५७)। परंतु इसमें भूल यह थी कि ग्रहकी योजनात्मक गति समान नहीं है जैसा कि आजकलके वेधोंसे सिद्ध होता है इसलिए हमारे आचार्योंके बताये हुए नियमसे परमलंबनके जो मान आते हैं वे आजकलके वेधों द्वारा आये हुए परमलंबनों-से बहुत भिन्न हैं। नीचेकी तुलनात्मक सारिणीसे यह बात स्पष्ट हो जायगी :—

ग्रह	भास्कराचार्यके अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकलके वेधोंसे प्राप्त परम लम्बन		आजकलके वेधोंसे प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुतम	महत्तम	लघुतम	महत्तम
	विकला	विकला	विकला	विकला	वकला
सूर्य	२३६·५	८·७	६·०	१८६०	१६५६
चंद्रमा	३१६२·३	३१८६	३७२०	१७४०	२०२८
मङ्गल	१२५·७	३·५	१६·६	४·४	२१·२
बुध	६८२·१	६·४	१४·४	४·८	१०·६
गुरु	२०·०	१·४	२·१	३१·६	४६·७
शुक	३८४·५	५·०	३१·४	६·६	६०·०
शनि	८·०	०·८	१·०	१५·८	१६·५

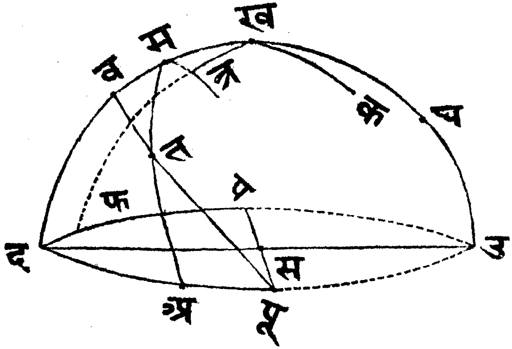
अब यह बतलाना आवश्यक है कि हमारे आचार्य ग्रहका परम लंबन जानकर उसका स्पष्ट भोगांश लंबन और शर लंबन अथवा नति कैसे जानते थे। भास्कराचार्य जी लिखते हैं कि (१) जिस समय ग्रह खस्वस्तिकपर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकारका लम्बन नहीं होता क्योंकि पृथ्वीके केन्द्रसे और द्रष्टासे ग्रहतक खींची गयी रेखाएं एक* ही होती हैं। (२) जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्नपर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्ति वृत्तके उस बिंदुपर होता है जो उदय लग्नसे तीन राशि कम होता है तब ग्रहमें भोगांश लंबन नहीं होता केवल नति होती है। (३) जिस समय क्रान्तिवृत्त खस्वस्तिकसे होता हुआ ऊर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्तिवृत्तपर होता है उस समय उसमें शरलंबन नहीं होता केवल भोगांश लंबन होता है। अन्य दशाओंमें लंबन और नति क्या होती है यह जाननेके नियम बतलाये गये हैं।

पृष्ठ ५८५ में बतलाया गया है कि किसी समयका भोगांश लंबन जाननेके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समयके त्रिभोन लग्नका नतांश या उन्नतांश क्या है क्योंकि त्रिभोन लग्नके उन्नतांशकी ज्या सूत्र (ख) का एक अंग है। त्रिभोन लग्नके नतांशकी ज्याको दृक्क्षेप और उन्नतांशकी ज्याको अथवा नतांशकी कोटिज्याको दृग्गति कहा गया है। चि० ७६ में दिखलाया गया है कि जब क्रान्तिवृत्तका उदयलग्न क्षितिजके पूर्व बिंदुके दक्खिन होता है तब त्रिभोन लग्न याम्योत्तरवृत्तसे पच्छिम होता है क्योंकि त्रिभोन लग्न उदय लग्नसे ३ राशि या ६० अंश कम होता है।

---

* इससे जान पड़ता है कि भास्कराचार्यने पृथ्वीको पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात ठीक होती है।

त्रिभोन लग्न खस्वस्तिक और कदम्ब विंदुओंसे जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त क्रान्तिवृत्तसे समकोण बनाता है और क्षितिजको फ विंदुपर काटता है।



चित्र ७९

उ पू द फ=स स्थानका क्षितिज वृत्त

उ ध ख म व द=स स्थानका याम्योत्तरवृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=खस्वस्तिक

म=मध्य लग्न

व पू=विषुवद्वृत

अ म त्र=क्रान्तिवृत्त

त्र=त्रिभोन लग्न

त=शरद् सम्पात (सायन तुला)

क=कदम्ब

क ख त्र फ=त्रिभोन लग्नसे जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त

अ पू=उदय लग्नकी अग्रा

इसलिए धनु अ द फ=९०°=धनु पू अ द। यदि दोनों धनुओंसे सामान्य खंड अ द निकाल दिया जाय तो अ पू=द फ

गोलीय त्रिभुज अ त पू में

$$\frac{\text{ज्या (अ पू)}}{\text{ज्या अ त पू}} = \frac{\text{ज्या (अ त)}}{\text{ज्या अ पू त}}$$

परन्तु अ त पू विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके बीचका कोण अर्थात् सूर्यकी परम क्रान्ति है और अ पू त कोण व द धनुके समान है जो स स्थानका लम्बांश है।

$$\therefore \text{ज्या (अ पू)} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या (त अ)}}{\text{लम्बज्या}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकारके तीसरे श्लोकका तात्पर्य है। इसी ज्या अ पू का नाम उदय या उदयज्या रखा गया है। परंतु अ पू = द फ, जो म ख त्र कोण के समान है।

अब यदि गोलीय समकोण त्रिभुज म ख त्र के धनु म ख का ज्ञान हो जाय तो धनु ख त्र का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि कोण ख त्र म समकोण है। यह स्पष्ट ही है कि म ख मध्यलग्न का नतांश है जो मध्यलग्न की उत्तर क्रान्ति व म और इष्ट स्थान के अक्षांश व स का अन्तर है। क्रान्ति दक्षिण होती तो जोड़ना पड़ता। म ख की ज्या का नाम मध्यज्या रखा गया है यह जानने की रीति उसी अधिकार के ४ थे और ५वें श्लोकों में बतलाई गयी है। इसलिए समकोण गोलीय त्रिभुज ख त्र म में

$$\text{ज्या (त्र ख)} = \text{ज्या (ख म त्र)} \times \text{ज्या (म ख)}$$

यदि गोलीय त्रिभुज ख त्र म को समतल त्रिभुज (plane triangle) मान लिया जाय तो ज्या (ख म त्र)=कोज्या (म ख त्र) क्योंकि ख म त्र और म ख त्र का योग ९०° के समान होगा।

इसलिए

$$\text{ज्या}\,(\text{अ}\,\text{ख}) = \text{कोज्या}\,(\text{म}\,\text{ख}\,\text{अ})\ \text{ज्या}\,(\text{म}\,\text{ख})$$

$$= \text{कोज्या}\,(\text{द}\,\text{फ}) \times \text{ज्या}\,(\text{म}\,\text{ख})$$

$$= \text{ज्या}\,(\text{म}\,\text{ख}) \sqrt{१ - \text{ज्या}^२\,(\text{द}\,\text{फ})}$$

$$= \sqrt{\text{ज्या}^२\,(\text{म}\,\text{ख}) - \text{ज्या}^२\,(\text{म}\,\text{ख})\,\text{ज्या}^२\,(\text{द}\,\text{फ})}$$

$$\therefore\ \text{दृक्क्षेप} = \sqrt{\text{मध्यज्या}^२ - \text{मध्यज्या}^२ \times \text{उदय}^२}$$

$$\text{दृग्गति} = \sqrt{१ - \text{दृक्क्षेप}^२}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकारके ५ – ६ श्लोकोंका अर्थ है, यहां त्रिज्या १ मानी गयी है।

$$\text{छेद} = \frac{(\text{ज्या}\ ३०^\circ)^२}{\text{दृग्गति}} = \frac{(\frac{१}{२})^२}{\text{दृग्गति}} = \frac{१}{४\ \text{दृग्गति}}$$

$$\text{लम्बन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश*}}{\text{छेद}}$$

$$= \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\frac{१}{४\ \text{दृग्गति}}}$$

$$= ४ \times \text{दृग्गति} \times \text{ज्या विश्लेषांश}$$

इससे लंबनका जो परिमाण ज्ञात होगा वह घड़ियोंमें होगा। यह सूत्र पृष्ठ ५८५के सूत्र (ग) से मिलता है जहां लि=४ घड़ी=ग्रहका परम लम्बन, दृग्गति=त्रिभोनलग्नकी उन्नतांशकी ज्या=कोज्या श्र और व=विश्लेषांश।

शरलंबन या नतिके लिए केवल यह दिया हुआ है कि दृक्क्षेपको परमलंबनसे गुणा करनेपर नति आती है। यह रीति बहुत स्थूल है।

* ग्रहके भोगांश और त्रिभोन लग्नका अन्तर विश्लेषांश है (देखो पृष्ठ ५८५

लंबन और नतिकी आवश्यकता सूर्य-ग्रहणकी गणना करनेमें पड़ती थी। इसलिए हमारे ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा सूर्य-ग्रहणाधिकारमें की गयी है। परन्तु आजकल लम्बनसे ग्रहों और ताराओंकी दूरीका पता भी लगाया जाता है। यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन की ज्या $= \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$। इसलिए यदि क्षितिज लंबनकी ज्या और भूकेन्द्रसे द्रष्टाकी दूरी त्र ज्ञात हो तो क सहज ही जाना जा सकता है। अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि ग्रह का लंबन कैसे नापा जाता है।

किसी ग्रहका लंबन नापना—मान लो कि चित्र ८० में द, दा भूतलके ऐसे दो स्थान हैं जो एक ही देशान्तर रेखापर हैं और जिनके अक्षांश भी शुद्धता-पूर्वक जान लिये गये हैं। जिस समय ग्रह च यामोत्तर वृत्तपर आता है उस समय द से उसका स्पष्ट नतांश ख द च अथवा न है और दा से उसका स्पष्ट नतांश खा दा च अथवा ना है। इन दोनों स्थानोंके अक्षांशोंका योग द भ दा ज्ञात है, इसलिए

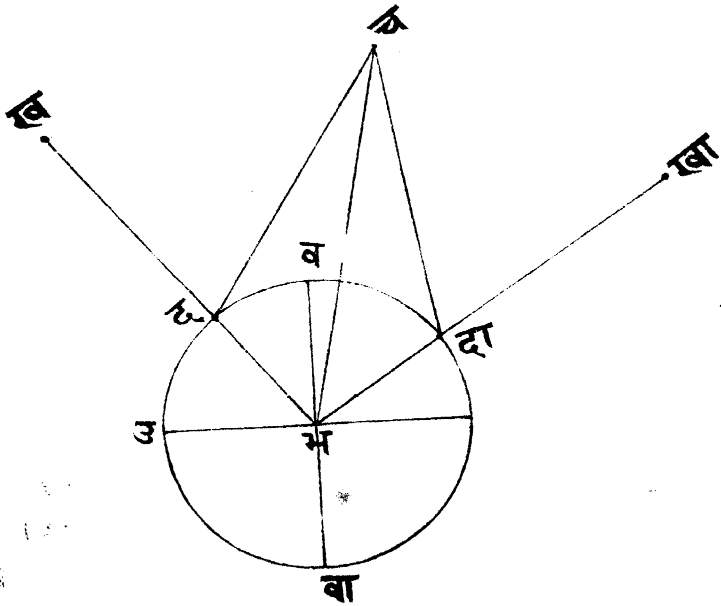
$$\angle \text{द च दा} = ३६०^\circ - (\angle \text{च द भ} + \text{च दा भ} + \angle \text{द भ दा})$$
$$= ३६०^\circ - (१८०^\circ - \text{न} + १८०^\circ - \text{ना} + \angle \text{द भ दा})$$
$$= \text{न} + \text{ना} - \angle \text{द भ दा}$$

परन्तु हमें द च दा कोणके जाननेकी आवश्यकता नहीं है। हमको तो द या द से च का लम्बन जानना है अर्थात् हमको द च भ या दा च भ कोण जानना है जो द और दा से च के लम्बन हैं। मान लो द च भ = ल और दा च भ = ला और द च दा = च। अब

$$\text{ज्या ल} = \text{ज्या न} \times \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}}$$

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ना} \times \frac{\text{भ दा}}{\text{भ च}} = \text{ज्या ना} \times \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}}$$

क्योंकि भ द और भ दा दोनों पृथ्वीकी त्रिज्याएँ हैं इसलिए समान मानी जा सकती हैं। इसलिए



चित्र ८०

$$\frac{\text{ज्या ल}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

अथवा $\text{ज्या ल} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$

परन्तु $\text{ल} = \text{च} - \text{ला}$

$$\therefore \text{ ज्या (च} - \text{ला)} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\therefore \quad \text{ज्या च कोज्या ला} - \text{कोज्या च ज्या ला} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

यदि इस समीकरणके प्रत्येक पक्षको ज्या च ज्या ला से भाग दिया जाय तो

$$\text{कोस्परे ला} - \text{को स्परे च} = \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा कोस्परे ला} = \text{कोस्परे च} + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

इस प्रकार यह सिद्ध है कि यदि दो स्थानोंसे किसी ग्रह-का नतांश वेध करके जान लिया जाय तो उन स्थानोंके अक्षांशों-के ज्ञानसे द च दा कोण अर्थात् च की जानकारी हो सकती है। फिर च से ला की जानकारी उपर्युक्त समीकरणसे की जा सकती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि चंद्रमाको छोड़कर अन्य ग्रहोंके लंबन बहुत छोटे होते हैं इसलिए यदि इनके लंबनोंकी ज्याओं-के स्थानमें इनके धनु ही रखे जायँ तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशामें

$$\text{ज्या (च} - \text{ला)} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \text{ की जगह}$$

$$\text{च} - \text{ला} = \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \text{ लिखा जा सकता है।}$$

$$\therefore \quad \text{च} = \text{ला} + \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$= \text{ला} \left(१ + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \right)$$

$$= \text{ला} \times \frac{\text{ज्या ना} + \text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\therefore \quad \text{ला} = \frac{\text{च ज्या ना}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

$$= \frac{\text{च ज्या ना}}{२ \text{ ज्या} \frac{\text{न} + \text{ना}}{२} \text{ कोज्या } \frac{\text{न} - \text{ना}}{२}} \cdots\cdots\cdots\cdots (\text{क})$$

इस सूत्रसे किसी ग्रहका वेध करके उसका साधारण लंबन या क्षितिज लंबन जाना जा सकता है क्योंकि यदि क्षितिज लंबन लि हो तो

$$\text{ज्या लि} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा} \quad \text{लि} = \frac{\text{ला}}{\text{ज्या ना}} \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots\cdots (\text{ख})$$

समीकरण (क) और (ख) को एकत्र करनेसे

$$\text{लि} = \frac{\text{च}}{२ \text{ ज्या} \frac{\text{न} + \text{ना}}{२} \text{ कोज्या } \frac{\text{न} - \text{ना}}{२}} = \frac{\text{च}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

उदाहरण—यदि द स्थानका उत्तर अक्षांश ५६°२०'३०" और दा का दक्षिण अक्षांश ३२°५५'५" हो तथा द और दा से मंगल ग्रहके याम्योत्तर नतांश ६८°१४'६" और २५°२' हो तो मंगलका क्षितिज लंबन क्या है ?

$$\text{द भ दा} = ५६^\circ २०' ३०'' + ३३^\circ ५५' ५'' = ६३^\circ १५' ३५''$$

$$\text{न} + \text{ना} = ६८^\circ १४' ६'' + २५^\circ २' = ६३^\circ १६' ६''$$

$$\therefore \quad \text{च} = \text{द च दा} = \text{न} + \text{ना} - \text{द भ दा}$$

$$= ६३^\circ १६' ६'' - ६३^\circ १५' ३५''$$

$$= ३१''$$

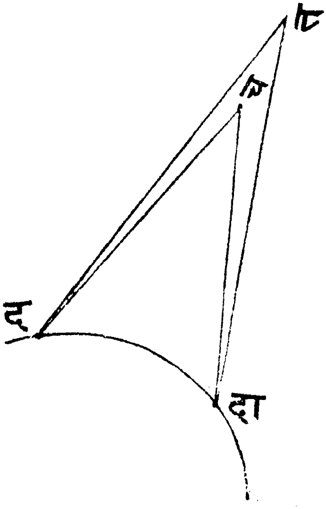
$$\text{ज्या न} = \text{ज्या } ६८^\circ १४' ६'' = \cdot ९२८७$$

$$\text{ज्या ना} = \text{ज्या } २५^\circ २' \quad = \cdot ४२३१$$

$\therefore$ ज्या न + ज्या ना = १ · ३५१८

$\therefore$ क्षितिज लंबन क्षि $= \dfrac{३१''}{१ \cdot ३५१८} = २२'' \cdot ९३$

यह प्रकट है कि इस रीतिसे च का मान जाननेके लिए हमको दो स्थानोंके अक्षांश जानना आवश्यक है। परन्तु यदि हम यह देखें कि जिस समय ग्रह याम्योत्तर वृत्तपर है उस समय वह किसी पासवाले तारेसे कितना ऊपर या नीचे दोनों स्थानोंसे देख पड़ता है तो च का मान सहज ही जाना जा सकता है। मान लो कि चित्र ८१ में च ग्रहका स्थान है और त उसीके पासवाले किसी तारेका स्थान है। द से देखनेपर त से च का अन्तर त द च कोणके समान है और दा से इन दोनोंका अन्तर त दा च कोणके समान है।



चित्र ८१

इसलिए द च दा = त द च + त दा च + द त दा

परन्तु तारा त इतनी दूर होता है कि द त दा कोण शून्यके समान होता है। इसलिए

द च दा = त द च + त दा च

इस चित्रमें द स्थानसे, त से नीचे च देख पड़ता है और दा स्थानसे त से ऊपर च देख पड़ता है। इसलिए च और त के अन्तरोंका योग किया गया है। यदि दोनों स्थानोंसे, त के एक ही ओर च देख पड़े तो त द च और त दा च कोणोंका अन्तर द च दा कोणके समान होता है।

व्यवहारमें ठीक एक ही देशान्तर रेखाके दो स्थानोंसे किसी ग्रह या तारेका वेध लेना कठिन है। परंतु यदि दो स्थान ऐसे हों जिनके देशान्तरोंमे थोड़ा ही भेद हो तो भी उपर्युक्त नियम लागू हो सकता है क्योंकि इससे जो अशुद्धि होगी वह नहींके समान होगी।

केवल चन्द्रमा और मङ्गल ग्रहका लम्बन जाननेके लिए यह रीति काममें लायी जा सकती है। मंगलके लिए भी यह रीति तभी शुद्ध हो सकती है जब वह पृथ्वीके बहुत पास हो अर्थात् सूर्यसे ६ राशिके लगभग दूर हो। अन्य दूरके ग्रहोंके लिए यह रीति उपयोगी नहीं है क्योंकि जब लंबन १० या १२ विकलासे कम होता है तब इस रीतिसे काम लेनेमें वेध करने-की कुछ भूलें ऐसी रह जाती हैं जिनसे फल बहुत अशुद्ध हो जाता है। चन्द्रमा इतने पास है कि यदि पृथ्वीको पूर्ण गोल माना जाय जैसा कि उपर्युक्त नियमके लिए भ द और भ दा समान समझ लिये गये हैं तो भी कुछ स्थूलता रह जाती है। इसलिए चन्द्रमाका लंबन जाननेके लिए भ द को भ दा के समान न समझकर इनका यथार्थ परिमाण लेना पड़ेगा। यदि

ज्या ल की जगह ल और ज्या ला की जगह ला रखा जाय तो ५६५ पृष्ठके अनुसार,

$$ल = \frac{भ द}{भ च} \times ज्या न$$

$$ला = \frac{भ दा}{भ च} \times ज्या ना$$

$$\therefore च = ल + ला = \frac{भ द \times ज्या न + भ दा \times ज्या ना}{भ च}$$

परन्तु क्षितिज लम्बन लि $= \frac{त्र}{भ च}$ जहाँ त्र=पृथ्वीकी त्रिज्या

$$\therefore भ च = \frac{त्र}{लि}$$

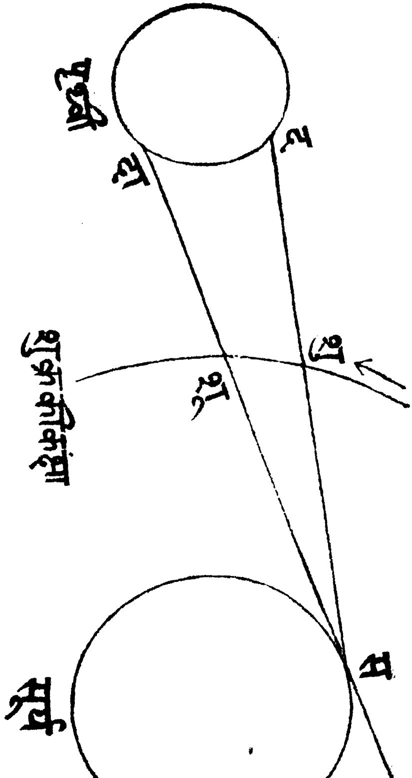
$$\therefore च \times \frac{त्र}{लि} = भ द \times ज्या न + भ दा \times ज्या ना$$

$$\therefore लि = \frac{च \times त्र}{भ द \times ज्या न + भ दा \times ज्या न}$$

यहाँ न और ना चन्द्रमाके यथार्थ नतांश हैं। यदि भौगोलिक या स्पष्ट नतांशके अनुसार लि का मान जानना हो तो पृष्ठ ५५७—५५८ में बतलायी गयी रीतिसे भौगोलिक नतांशसे यथार्थ नतांश जान लेना चाहिए। उपर्युक्त सूत्रसे यह सिद्ध होता है कि द्रष्टाके स्थानमें भिन्नता होनेसे क्षितिज लंबनमें भिन्नता होती है क्योंकि भ द और भ दा बदलते रहेंगे। यह बात वेधसे भी देखी गयी है कि भिन्न भिन्न स्थानोंमें चंद्रमाका क्षितिज लंबन भिन्न भिन्न देख पड़ता है। यह इस बातका प्रमाण है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् अंडाकार है।

सूर्यका लंबन उपर्युक्त रीतिसे नहीं जाना जा सकता। इसके लिए कई रीतियाँ काममें लायी जाती हैं जिनमेंसे दो नीचे लिखी जाती हैं:—

पहली रीति—भूतलपर दो स्थान द और दा ऐसे चुने जाते हैं जो विषवत् रेखाके निकट हैं और परस्पर बहुत दूर हैं। सरलताके लिए यह भी मान लो कि शुक्रकी कक्षा शु, शू और



चित्र ८२

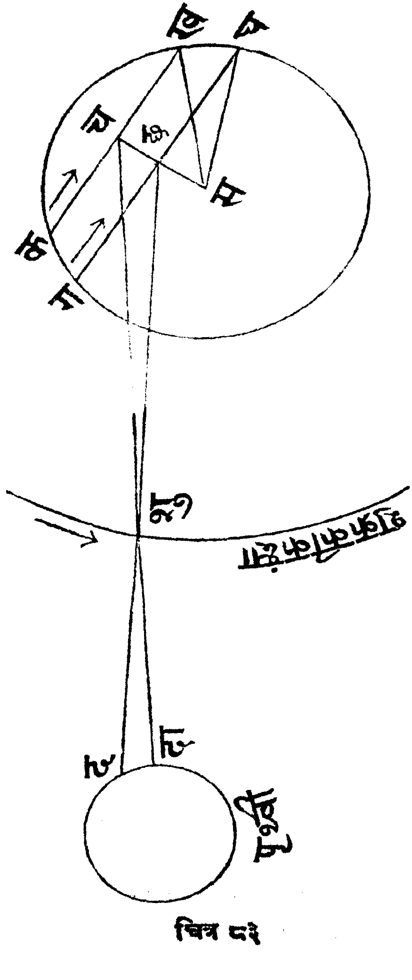
सूर्य भी विषुवत् रेखाके तलपर है जिस तल पर द, दा स्थान

ह। द, दा स्थानोंसे सूर्यके स बिन्दुतक दो स्पर्शरेखाएँ द स और दा स खींचो। द स्थानका द्रष्टा यह ध्यानसे देखता है कि शुक्र शु किस समय सूर्य बिम्बके सामने पहुँचकर उसको भीतरसे स्पर्श करता है। इसी प्रकार दा स्थानका द्रष्टा भी शुक्र और सूर्यबिम्ब के भीतरी स्पर्शका समय ध्यानसे देख लेता है। इन दोनों वेधोंके समयमें जो अन्तर होता है उतने ही समयमें शुक्र शु बिन्दुसे शू बिन्दुपर अपनी कक्षामें जाता है अर्थात् उतने ही समयमें शुक्र सूर्यकी परिक्रमा शु स शू कोणके समान करता हुआ देख पड़ता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्यके चारों ओर जानेवाली शुक्रकी यह गति शुक्र और पृथ्वीकी गतियोंके अन्तरके समान है। परन्तु हमको मालूम है कि शुक्र और पृथ्वी दोनों कितने समयमें सूर्यकी परिक्रमा करती हुई एक रेखामें आजाती हैं। इसलिए शु स शू या द स दा कोणका परिमाण जाना जा सकता है। जब यह मालूम हो गया कि सूर्यबिम्बके एक बिन्दुपर भूतलके दो स्थानोंसे कितना कोण बनता है तब चित्र ८० और ८१ में बतलायी गयी रीतिसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्यका क्षितिज लंबन क्या है।

व्यवहारमें यह रीति इतनी सुविधाजनक नहीं है जितनी देख पड़ती है क्योंकि शुक्र और पृथ्वीकी कक्षाएँ एक ही तलमें नहीं हैं, दूसरे द, दा स्थानोंके देशान्तरोंको बहुत ही शुद्धतापूर्वक जाननेकी आवश्यकता है। यह रीति डीलिस्ले (Delisle) ने चलायी थी।

दूसरी रीति—इस रीतिमें द्रष्टाके स्थानोंके देशान्तरोंके जाननेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यहाँ तो केवल यह देखा जाता है कि दो भिन्न भिन्न स्थानोंसे शुक्र कितनी देर तक सूर्यबिम्बके सन्मुख एक किनारेसे दूसरे किनारेतक जाता

हुआ देख पड़ता है। इस कामके लिए दो द्रष्टाओंके स्थान परस्पर बहुत दूर परन्तु उत्तर दक्खिन होने चाहिए।



चित्र ८३

मान लो कि शु शुक्र और द दा भूतलपर द्रष्टाके दो स्थान एकही तलपर अर्थात् कागज़के तल पर हैं और सूर्यका बिम्ब प्रकट करनेवाला वृत्त जिसका केन्द्र स है इस तलके समकोण-पर है। दा स्थानके द्रष्टाको देख पड़ेगा कि शुक्र अपनी कक्षामें तीरकी दिशामें चलता हुआ सूर्य बिम्बको क ख रेखामें काटता हुआ जाता है। परन्तु द स्थानके द्रष्टाको देख पड़ेगा कि सूर्यके बिम्बको शुक्र ग घ रेखामें काटता हुआ जाता है। जितनी देरमें शुक्र सूर्यके सामने एक किनारेसे दूसरे किनारेतक जाता हुआ देख पड़ता है वह समय प्रत्येक स्थानसे ध्यानपूर्वक देखकर लिख लेना चाहिए। शुक्र जिस गतिसे सूर्यके बिम्ब-को काटता हुआ निकल जाता है उसकी गणना सहज ही की जा सकती है। यह १ मिनटमें ४ विकलाके लगभग होती है। इसलिए जब यह मालूम है कि शुक्र क ख या ग घ रेखाओंको कितने समयमें पार करता है तब इन रेखाओंके विकलात्मक मान सहज ही और बहुत शुद्धतापूर्वक जाने जा सकते हैं। इसलिए क ख और ग घ चापोंके आधे भागोंके भी परिमाण जाने जा सकते हैं। परन्तु सूर्य बिम्बका कोणात्मक मान विक-लाओंमें मालूम ही रहता है। इसलिए स च और स छ के विक-लात्मक मान भी जाने जा सकते हैं क्योंकि रेखागणितके अनुसार

$$\text{स छ}^2 = \text{स घ}^2 - \text{घ छ}^2$$

और $$\text{स च}^2 = \text{स ख}^2 - \text{ख च}^2$$

स च और स छ की जानकारी हो जानेपर इन दोनोंका अन्तर निकाल लेनेसे हमको च छ का ज्ञान हो जाता है। इससे च छ की दूरी मीलोंमें भी मालूम हो सकती है क्योंकि यदि दोनों त्रिभुज द शु दा और च शु छ सजातीय (similar) समझ लिये जायँ तो

$$\frac{\text{च छ}}{\text{द दा}} = \frac{\text{शु छ}}{\text{शु द}}$$

परन्तु शु छ और शु द का सम्बन्ध हमें केपलरके नियमोंसे मालूम है क्योंकि शु छ शुक्रसे सूर्यकी दूरी है और शु द शुक्रसे पृथ्वीकी दूरी है। इसलिए यदि शु छ ७२३ और शु द २७७ हो तो

$$\frac{\text{च छ}}{\text{द दा}} = \frac{७२३}{२७७}$$

द दा पृथ्वी तलके दो स्थान हैं इसलिए इनकी परस्पर दूरी सहज ही जानी जा सकती है। इस प्रकार च छ का परिमाण मीलोंमें भी जाना जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त रीतिसे च छ का परिमाण विकलाओंमें भी जाना जा सकता है। इसलिए जब इसका परिमाण विकलाओं और मीलों दोनों में मालूम है तब यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्य पृथ्वीसे कितनी दूर है क्योंकि

$$\frac{\text{च छ का विकलात्मक मान}}{२०६२६५} = \frac{\text{च छ का मान मीलोंमें}}{\text{पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी}}$$

$$\therefore \text{ पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी} = \frac{२०६२६५ \times \text{च छ का मान मीलोंमें}}{\text{च छ का मान विकलाओं में।}}$$

इससे सूर्यका लंबन सहज ही जाना जा सकता है। हैली (Hally) ने १७७३ वि० में इस रीतिका आविष्कार किया था। इन दोनों रीतियोंमें यह दोष है कि शुक्र और सूर्यके बिम्बोंके भीतरी स्पर्शका समय ठीक ठीक वेध करना बड़ा कठिन होता है। शुक्रकी गति इतनी मन्द होती है और सूर्यके बिम्बका किनारा इतना अस्पष्ट होता है कि स्पर्शकालके समयमें कई असुओंका अन्तर पड़ सकता है।

क्षितिज लम्बन जानकर सूर्य और चन्द्रमाकी दूरी जानना—यह

बतलाया गया है कि क्षितिज लंबनकी ज्या = त्र ÷ क, जहाँ त्र पृथ्वीकी त्रिज्या और क भूकेन्द्रसे ग्रहकी दूरी है।

$$\therefore \text{क} = \frac{\text{पृथ्वीकी त्रिज्या}}{\text{क्षितिज लंबनकी ज्या}}$$

क्षितिज लम्बनकी ज्याको कलाओं और विकलाओं में प्रकट करने से सुविधा होती है इसलिए पृथ्वीकी त्रिज्याको भी कलाओं और विकलाओंमें लिखना चाहिए। यह बतलाया गया है कि

$$\text{त्रिज्या} \times २ \times ३\cdot१४१५९ = \text{परिधि} = ३६०^\circ$$

$$\therefore \text{त्रिज्या} = \frac{३६०^\circ}{२ \times ३\cdot१४१५९} = ५७^\circ\cdot२९५७७९५$$

$$= ३४३७'\cdot७४६७७$$

$$= २०६२६४''\cdot८०६२$$

$$= २०६२६५''$$

सूर्यका मध्यम क्षितिज लम्बन $= ८''\cdot८०$

$$\therefore \text{सूर्यकी मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{८\cdot८}$$

$$= २३४३९ \text{ पृथ्वीकी त्रिज्याओंमें}$$

यह दूरी पृथ्वीकी त्रिज्याओंमें है जिसका विषुवद्वृत्तीय मान ३९६३·३ मील है। इसलिए सूर्यकी दूरी = २३४३९ × ३९६३·३ मील = ९२८९४७८९ मील।

चंद्रमाका मध्यम क्षितिज लम्बन $= ५७'१''\cdot८ = ३४२२''$

$$\therefore \text{चंद्रमाकी मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{३४२२}$$

$$= ६०\cdot३ \text{ पृथ्वीकी त्रिज्याओंमें}$$

$$= ६०\cdot३ \times ३९६३\cdot३ = २३८९८७ \text{ मील}$$

सूर्य और चन्द्रमाके विस्तार—यदि किसी आकाशीय पिंडका

कोणात्मक अर्द्धव्यास वेधसे जान लिया जाय और उसका लम्बन भी ज्ञात हो तो उसका विस्तार भी जाना जा सकता है क्योंकि;

$$\text{कोणात्मक अर्द्धव्यासकी ज्या} = \frac{\text{पिंडकी त्रिज्या}}{\text{पिंडकी दूरी}}$$

$$\text{लम्बनकी ज्या} = \frac{\text{पृथ्वीकी त्रिज्या}}{\text{पिंडकी दूरी}}$$

$$\therefore \frac{\text{पिण्डकी त्रिज्या}}{\text{पृथ्वीकी त्रिज्या}} = \frac{\text{पिण्डके कोणात्मक अर्द्धव्यासकी ज्या}}{\text{पिण्डके लंबनकी ज्या}}$$

सूर्यका अर्द्धव्यास १६' और लम्बन ८''·८ है, इसलिए

$$\frac{\text{सूर्यकी त्रिज्या}}{\text{पृथ्वीकी त्रिज्या}} = \frac{१६'}{८''·८} = \frac{९६०}{८·८} = १०९$$

$$\therefore \text{सूर्यकी त्रिज्या} = १०९ \times \text{पृथ्वीकी त्रिज्या}$$

$$= १०९ \times ३९६३·३ \text{ मील}$$

$$= ४३१९९९·७ \text{ मील}$$

$$= ४३२००० \text{ मील}$$

चन्द्रमाका अर्द्धव्यास १५'३९''·९ और लम्बन ५७'१''·८ है

$$\text{इसलिए चंद्रमाकी त्रिज्या} = \text{पृथ्वीकी त्रिज्या} \times \frac{\text{ज्या } १५'३९''·९}{\text{ज्या } ५७'१''·८}$$

$$= \text{पृथ्वीकी त्रिज्या} \times \frac{१५'३९''·९}{५७'१''·८}$$

$$= ३९६३·३ \times ·२७५$$

$$= १०८९·९$$

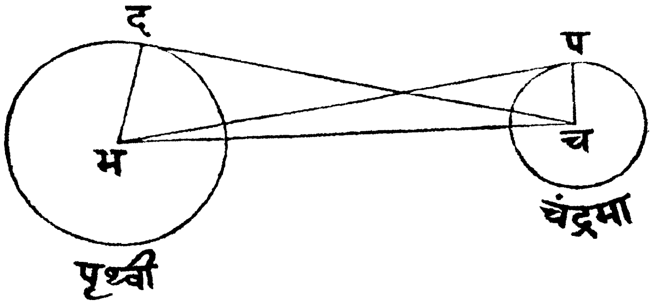
$$= १०९० \text{ मील}$$

चित्र ८४ में ∠ प भ च = चंद्रमाका कोणात्मक अर्द्ध व्यास

∠ भ च द = चंद्रमा का लम्बन

प च = चंद्रमा की त्रिज्या

भ द = पृथ्वी की त्रिज्या



चित्र ८४

वार्षिक लम्बन—यह बतलाया गया है कि तारे हमसे इतनी दूर हैं कि भूतलके किसी दो स्थानोंसे देखनेपर इनके लम्बनका पता नहीं लग सकता। परन्तु यदि पूरे वर्ष-भर तक किसी तारेका वेध किया जाय तो पृथ्वीकी वार्षिकगति-के कारण एकही द्रष्टाके स्थानोंमें बहुत अंतर पड़ता जाता है जिससे देख पड़ता है कि तारेमें भी कुछ लम्बन होता है। यह अभी सिद्ध हुआ है कि पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९,३०,००००० मील के लगभग है। यह विदित ही है कि पृथ्वी एक वर्षमें सूर्यकी परिक्रमा कर लेती है। इस लिए ६ मासमें पृथ्वी आधा परिक्रमा करती है। अब यदि किसी तारेका वेध किसी दिन किया जाय और फिर ६ महीनेके बाद उसी तारेका वेध किया जाय तो द्रष्टा के स्थानोंका अन्तर १ ८,६०,००,००० मील हो जाता है जिससे तारेकी दिशामें कुछ परिवर्तन देख पड़ता है। यह परिवर्तन लम्बनके कारण होता है। जब द्रष्टाके दो स्थानोंका अंतर अठारह करोड़ साठ लाख मील दूर होता है तब भी सब तारोंका लम्बन नहीं देख पड़ता है क्योंकि बहुत से तारे हमसे इतनी दूर हैं कि पृथ्वीकी कक्षाका व्यास भी

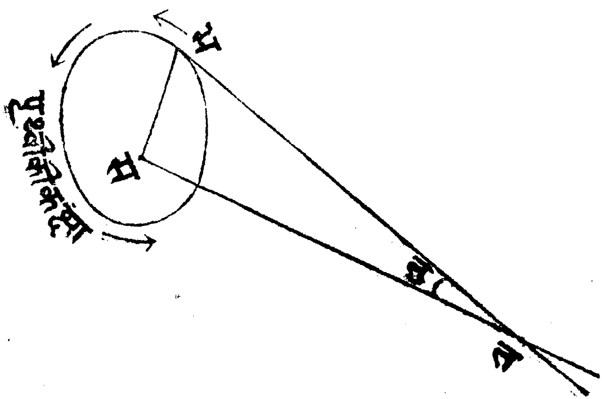
उनके सामने शून्यके समान है। इस लिए बहुत सूक्ष्म यंत्रोंसे भी थोड़े ही तारोंका लंबन नापा जा सका है।

वार्षिक लंबन—किसी तारेका वार्षिक लंबन वह कोण है जो पृथ्वीकी कक्षाके अर्द्धव्यासके सम्मुख तारेपर बनता है। चित्र ८५ में यदि भ पृथ्वी, स सूर्य और त किसी तारेके स्थान हों तो त का वार्षिक लंबन कोण स त भ अथवा लु के समान है।

जिस प्रकार चंद्रमा या ग्रहका लंबन जानने के लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं उसी तरह तारेका लंबन जाननेका सूत्र भी स्थापित हो सकता है।

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{ज्या स भ त}} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{ज्या लु} = \text{लु} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}} \times \text{ज्या स भ त}$$



चित्र ८५

अर्थात् किसी तारे का वार्षिक लंबन उस कोणकी ज्याके अनुपात

में होता है जो उस तारे और सूर्यके बीच भूकेन्द्रपर बनता है। यह स्पष्ट है कि जब कोण स भ त ९०° के समान होता है अर्थात् जब तारेका भोगांश सूर्यके भोगांशसे ९०° आगे या पीछे होता है तब लंबनका परिमाण महत्तम होता है। इसलिये किसी तारेका महत्तम लंबन वर्षमें दो बार देख पड़ता है। इसका सूत्र यह है :—

$$\text{तारेका महत्तम लंबन} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

यदि महत्तम लंबनको लू मान लिया जाय तो तारेका किसी समयका लंबन

$$\text{लु} = \text{लू} \times \text{ज्या स भ त}$$

साधारणतः तारेके महत्तम लंबनको ही तारेका लंबन कहते हैं।

ऊपरके सूत्रोंमें लु और लू रेडियनके दशमलव भिन्नमें हैं। यदि इनको विकलाओंमें लिखा जाय तो

$$\frac{\text{लू विकला}}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

इससे सिद्ध होता है कि यदि लू मालूम हो तो स त अर्थात् तारेकी दूरी मालूम हो सकती है क्योंकि स भ तो मालूम ही है।

उदाहरण—यदि किसी तारेका वार्षिक लंबन ०″·८ हो तो सूर्यसे उस तारेकी दूरी बतलाओ।

$$\frac{०·८}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{स त} = \frac{२०६२६५}{·८} \times \text{स भ} = २,५७,८३१ \text{ स भ}$$

अर्थात् सूर्य पृथ्वीसे जितनी दूर है उसकी २,५७,८३१ गुनी दूर सूर्यसे वह तारा है।

मीलोंमें यह दूरी=२,५७,८३१ × ९,३०,००,०००
=२,३९,७८,२८,३०,००,०००

इससे यह सिद्ध है कि यदि तारोंकी दूरी मीलोंमें लिखी जाय तो बहुत बड़ी संख्याका व्यवहार करना आवश्यक होगा जिसमें सुभीता नहीं है। इसलिए ज्योतिषियोंने इतनी बड़ी दूरीको प्रकट करनेके लिये एक और इकाई स्थिर की है जिसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। एक वर्षमें प्रकाश जितनी दूर चलता है उसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। यह कई प्रयोगोंसे सिद्ध हो गया है कि सूर्यका प्रकाश पृथ्वी तक ८ मिनट १८ सेकंडमें पहुँचता है अर्थात् प्रकाशकी गति प्रति सेकंड १,८६,००० मील है। इसलिये एक सायन वर्षमें प्रकाश ३६५·२४२२ × २४ × ६० × ६० × १८६००० मील अथवा ५८,६९,५८,८२,५०,८८० मील चलता है। इसलिये इसी दूरीको एक प्रकाश वर्ष कहते हैं।

यह भी याद रखना चाहिये कि जहां इतनी बड़ी दूरियोंका हिसाब लगाया जाता है वहां लाखों मीलकी दूरीकी भूल रह जाना साधारण बात है क्योंकि यदि किसी तारेके लंबनके वेध करनेमें ·००१ विकलाकी भूल रह जाय, जो असम्भव नहीं है, तो उसकी दूरीमें बहुत अन्तर पड़ सकता है।

नीचे एक सारिणी दी जाती है जिससे जान पड़ेगा कि कुछ तारोंके लंबन और उनकी दूरियां क्या हैं। यह सारिणी R. S. Ball की Spherical Astronomy पृष्ठ ३२८ से ली गयी है :—

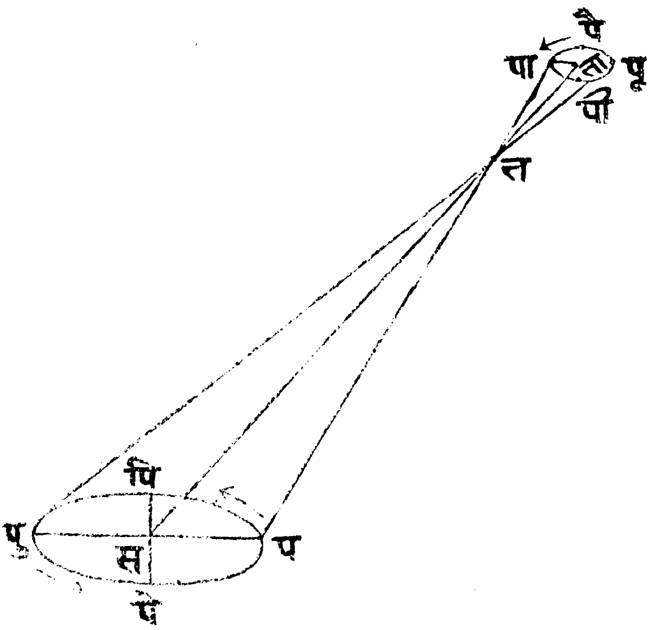
नाम अंगरेज़ीमें	नाम हिन्दीमें	वार्षिक लंबन	पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीका कितने गुनी दूरी	प्रकाश वर्षमें दूरी
α Centauri	...	०″·७५०±०″·०१	२,८०,०००	४·४
61 Cygni	...	०·३१±०·०२	५,६०,०००	८·८
Sirius	लुब्धक	०·३७±०·०१	५,६०,०००	८·८
Procyon	प्रश्वा	०·३१	६,६०,०००	११
Altair	श्रवण	०·२८±०·०२	७,४०,०००	१२
Aldebaran	रोहिणी	०·१७±०·०२	१४,००,०००	२२
Capella	ब्रह्महृदय	०·१२±०·०२	१७,००,०००	२७
Vega	अभिजित्	०·१२±०·०२	१७,००,०००	२७
Polaris	ध्रुव तारा	०·०७±०·०२	३०,००,०००	४७
Arcturus	स्वाती	०·०२४	८७,००,०००	१४०
α Gruis	...	०·०१५	१,४०,००,०००	२२०

प्रकाश वर्षकी दूरीकी कल्पना इस प्रकार की जा सकती है। जब यह कहा जाता है कि आकाशमंडलका सबसे चमकीला तारा लुब्धक हमसे ८·८ प्रकाश वर्ष दूर है तब इसका अर्थ यह भी होता है कि लुब्धककी जो किरणें इस समय हमारी आंखोंमें पहुँचकर लुब्धकका परिचय करा रही हैं वह वहांसे ८·८ वर्ष पहले चली थी अर्थात् यह आजकी किरण लुब्धककी ८·८ वर्ष पहलेकी दशा बतला रही है। अब लुब्धककी क्या दशा है इसका ज्ञान आजसे ८·८ वर्ष बाद हो सकता

है, इसके पहले नहीं। जैसे पत्रके द्वारा किसी दूरके मित्रका जो कुछ समाचार मिलता है वह उस समयका समाचार होता है जिस समय पत्र लिखा जाता है न कि इसके पहुंचनेके समयका।

आजकल दूरदर्शक यंत्रोंसे ऐसे तारोंका भी परिचय मिला है जो यहांसे लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं।

वार्षिक लम्बनके कारण तारा वर्ष भरमें एक नन्हेसे दीर्घवृत्तपर चलता हुआ जान पड़ता है।



चित्र ८१

चित्र ८६ में स सूर्य है, प, फि, पु, पे चार बिन्दुओंपर पृथ्वी अपनी वार्षिक परिक्रमा करती हुई दिखलाई गई है। त तारे का स्थान है। यदि प और स से दो रेखाएं त तक खींचकर और आगे, त से भी बहुत दूर स्थित तारोंके पास पहुंचायी जायं तो स सूर्यसे देखनेवाले तारा ता स्थानपर और पृथ्वीसे देखनेवाले पा स्थानपर देख पड़ेगा। इसी तरह जब पृथ्वी फि पु और पे बिन्दुओंपर रहेगी तब तारा क्रमानुसार फी, पू और पै बिन्दुओंपर देख पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि तारा पा फी पू पै बिन्दुओंसे बनी हुई कक्षापर घूमता हुआ देख पड़ेगा। यह छोटी कक्षा क्रान्तिवृत्त प फि पु पे के समानान्तर तलपर होगी और इसका आकार दीर्घवृत्तकी तरहका देख पड़ेगा।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवों अर्थात् कदम्बोंपर होता है उसकी कक्षा केवल वृत्तके आकारकी देख पड़ती है क्योंकि ऐसी दशामें इस छोटी कक्षाका तल हमारे दृष्टिसूत्रसे समकोणपर रहेगा। परन्तु जो तारा क्रान्तिवृत्त-पर होता है वह मध्य स्थानसे छः महीनेतक पूरब और छः महीनेतक पच्छिम देख पड़ेगा। जैसे किसी वृत्तपर घूमता हुआ पिंड उस समय केवल आगे बढ़ता हुआ या पीछे हटता हुआ जान पड़ता है जब वृत्त का तल देखनेवालेके दृष्टि-सूत्रकी ही सीधमें हो। तारेके वार्षिक लंबन जाननेकी विधि भी प्रायः इसी तरह है जैसा चित्र ८१ में बतलाया गया है। परंतु इस कामके लिए बहुत सूक्ष्म वेध करना पड़ता है जिसकी चर्चा करनेकी आवश्यकता यहां नहीं जान पड़ती।

भूचलन संस्कार (Aberration)

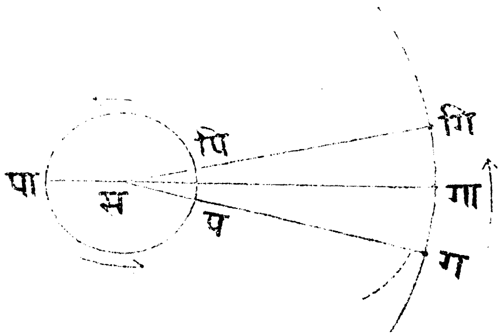
यह ऊपर बतलाया गया है कि प्रकाश एक सेकंड में

१,८६,००० मील चलता है। पृथ्वी भी वर्ष भरमें सूर्यकी परिक्रमा करती है जिससे यह अपनी कक्षामें प्रति सेकंड १८½ मील चलती है क्योंकि पृथ्वीकी कक्षाका परिमाण २π × ९,३०,००,००० मील है और एक वर्षमें ३६५.२४२ × २४ × ६० × ६० सेकंड होते हैं, इसलिए पृथ्वीकी कक्षाको एक वर्षके सेकंडों से भाग देनेपर १८½ मीलके लगभग आता है। इन दोनों गतियोंके कारण दूरदर्शक यंत्रमें आकाशीय पिंडोंका जो स्थान देख पड़ता है वह यथार्थ स्थानसे कुछ आगे या पीछे होता है। किसी पिंडके यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें इन दोनों गतियोंके कारण जो अंतर देख पड़ता है उसे भूचलन संस्कार (Aberration) कहते हैं। इसकी मीमांसा करनेके पहले संक्षेपमें यह बतलाना आवश्यक है कि प्रकाशकी गति कैसे नापी गयी और इन गतियोंके संयोगसे पदार्थोंके यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें कैसा अंतर देख पड़ता है।

प्रकाशकी गति—प्रकाशकी गति नापनेकी कई रीतियाँ हैं। इनमेंसे पहली रीतिकी चर्चा यहांकी जायगी:—

प्रकाशकी चालका पता रोमर नामक ज्योतिषीने संवत् १७३२ विक्रमीयमें लगाया। इसके पहले किसीकी कल्पनामें भी यह बात नहीं आयी थी कि एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेमें प्रकाशको भी कुछ समयकी आवश्यकता पड़ती है। रोमरने कैसे इस बातका पता लगाया यह भी आश्चर्यजनक है। आप लोगोंने चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण कई बार देखा होगा। चंद्रग्रहणके समय पृथ्वी सूर्य और चंद्रमाके बीच आजाती है इसलिए चंद्रमा पृथ्वीकी छायामें पड़ जाता है। जब पूरा चन्द्रमा छायामें आजाता है तब पूर्ण ग्रहण लगता है और जब कुछ ही भाग छायामें पड़ता है तब खंड

ग्रहण लगता है। जैसे चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमता है और कभी आधा, कभी चौथाई, कभी तीन चौथाई देख पड़ता है वैसेही बृहस्पतिके चारों ओर चार पांच चंद्रमा चक्कर लगाते हैं। बृहस्पतिके चंद्रमा इतने छोटे हैं कि बिना दूरबीनके देखे नहीं जा सकते। ये चंद्रमा घूमते घूमते बहुत जल्दी जल्दी बृहस्पतिकी छायामें चले जाते हैं इसलिए कुछ देरतक दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब बृहस्पतिके चन्द्रमा उसकी छायामें पड़ जाते हैं तब उनका ग्रहण लगता है। इन ग्रहणोंके समय भी गणना करके कई वर्ष पहले उसी प्रकार जान लिये जाते हैं जिस प्रकार सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय। जहाज़वाले तो इन ग्रहणोंको देख कर घड़ीका काम लेते हैं। बस इसीके सम्बन्धमें सोचते सोचते रोमरको प्रकाशकी गतिका पता मिला।



चित्र ८७

कल्पना कीजिए कि चित्र ८७ में स सूर्य है, प पा पि पृथ्वी के तीन स्थान अपनी कपनी कक्षापर हैं और ग गा गि गुरु अथवा बृहस्पतिके तीन स्थान बृहस्पतिकी कक्षा पर हैं। पृथ्वी और गुरु दोनों एकही दिशामें सूर्यकी परिक्रमा क्रमानुसार १ और

१२ वर्षमें करते हैं। जिस समय सूर्य पृथ्वी और गुरु क्रमसे स प और ग स्थानोंमें होते हैं उस समय पृथ्वी गुरुके बहुत पास होती है और जिस समय पृथ्वी पा पर, गुरु गा पर और सूर्य मध्यमें होते हैं उस समय पृथ्वी गुरुसे अत्यन्त दूर हो जाती है। प से पा पर पहुँचनेमें पृथ्वीको ६॥ महीने लग जाते हैं। १३ महीनेमें पृथ्वी प से पा पर होती हुई फिर पि पर पहुंचकर सूर्य और गुरुके बीच आ जाती है। जैसे जैसे पृथ्वी प से चल कर पा के पास होती जाती है तैसे तैसे बृहस्पतिके चन्द्रमाके ग्रहणका प्रत्यक्ष समय गणितसे जाने हुए समयसे पीछे पड़ता जाता है और जब पृथ्वी पा पर पहुँच जाती है और बृहस्पति गा पर अर्थात् पृथ्वी बृहस्पति से बहुत दूर हो जाती है तब गणित-सिद्ध कालसे प्रत्यक्ष काल सबसे अधिक पिछड़ जाता है। रोमरने ग्रहणकाल जाननेकी रीति अनेक वेधोंसे निश्चित की थी, जब पृथ्वी गुरुसे दूर और निकट प्रत्येक दशामें रही थी। इसलिए इस रीतिसे ग्रहणकालका जो समय आता था वह मध्यममानके अनुसार ठीक होता था। इस कालसे प्रत्यक्षग्रहण जितने परिमाणमें पिछड़ता था उसका आरम्भ वह उस समय-से करता था जिस समय पृथ्वी गुरुके अत्यन्त निकट रहती थी अर्थात् जब वह प विन्दु की दशामें रहती थी। इसी प्रकार जब पृथ्वी पा से आगे बढ़कर बृहस्पतिके पास पहुँचती जाती थी तब गणित-सिद्धकालसे प्रत्यक्ष-ग्रहणकालका पिछड़ना कम पड़ता जाता था। जब पृथ्वी पि पर और बृहस्पति गि पर हो जाते थे तब प्रत्यक्ष और गणित सिद्धकालोंका अन्तर शून्य हो जाता था अर्थात् प्रत्यक्ष ग्रहणका समय भी वही होता था जो गणितसे ठीक आता था। चित्र ८७ से जान पड़ेगा कि गणित-से निकाले हुए ग्रहणके समय और प्रत्यक्ष ग्रहणके समयमें जो सबसे अधिक अन्तर पड़ता है वह उन दोनों समयोंके अंतरके

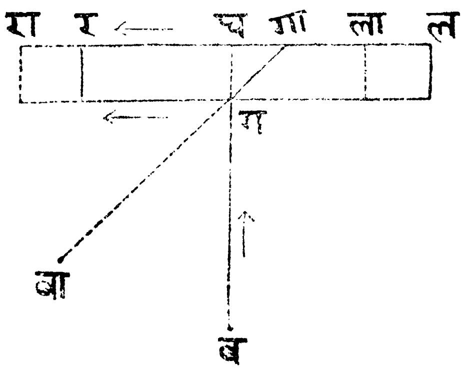
समान होगा जितनेमें गुरुके चंद्रमाका प्रकाश ग से प तक और गा से पा तक जाता है अर्थात् यह अंतर उस समयके समान होगा जितनेमें प्रकाश पृथ्वीकी कक्षाके व्यासके समान दूरी तै करता है।

अनुभवसे यह जाना गया है कि पा और प से देखनेपर ग्रहणोंके समयमें जो अन्तर पड़ता है वह सबसे अधिक होता है और १६ मिनट ३६ सेकंडके समान होता है। पृथ्वीकी कक्षाका अर्द्धव्यास ९,३०,००,००० मीलके लगभग है इसलिए इसका व्यास १८,६०,००,००० मील हुआ। इसलिए जब प्रकाश इतनी दूर चलनेमें १६ मिनट ३६ सेकंडका समय लेता है तब एक सेकंडमें इसकी गति १८,६०,००,००० ÷ ९९६ = १,८६,००० मीलके लगभग।

इसके बाद कई अन्य वैज्ञानिकोंने प्रकाशकी गति नापनेके प्रयोग किये। इन सब प्रयोगोंसे जो फल निकले वे प्रायः एक-से हैं। इन प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो गया कि प्रकाशकी गति १,८६,२४० मील है।

अब यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश गतिमान है तब यह समझ लेना कठिन नहीं है कि यदि गतिमान प्रकाश किसी दूसरी गतिवाली वस्तुमें प्रवेश करे तो इसकी दिशामें परिवर्तन हो जायगा। उदाहरणके लिए मान लो कि एक रेलगाड़ी ६० मील प्रति घंटेके हिसाबसे दौड़ी चली आ रही है। यदि एक बन्दूक रेलगाड़ीको लक्ष्य करके इस तरह चलायी जाय कि गोली गाड़ीकी दिशासे समकोण बनाती हुई एक ओर घुसे और दूसरी ओर आर-पार निकल जाय तो क्या गोली गाड़ीके डब्बेके भीतर भी उसकी दिशा से समकोण बनाती जायगी? जितनी देरमें गोली रेलगाड़ीके सामने दीवालसे पीछे की दीवाल तक पहुँचेगी उतनी देरमें गाड़ी कुछ आगे बढ़ जायगी और गोली

पीछेकी दीवालमें घुसनेके छेदके ठीक सामने न लगकर कुछ पीछे पड़ जायगी। कल्पना करो कि र ल गाड़ीका एक डब्बा है जो र की ओर ६० मील प्रति घंटे या ८८ फुट प्रति सेकंड की गतिसे आगे बढ़ रहा है और ब स्थानसे बन्दूक ऐसी दागी गई कि गोली ब ग दिशामें चलती हुई डब्बेमें ग स्थानसे घुसती है। जिस समय गोली ग पर आयी डब्बा र ल स्थितिमें था। यदि गाड़ी स्थिर होती तो गोली घ स्थान पर छेद करती हुई बाहर निकल जाती। परन्तु बात ऐसी नहीं होने पाती क्योंकि जिस समय गोली ग छेदसे घुसकर घ की ओर जाती रहती है उस समय गाड़ी भी आगे बढ़ी जा रही है। इसलिए जिस समय गोली पीछेकी दीवाल तक पहुँचे उस समय डब्बा रा ला स्थितिमें हो गया और घ की जगह गा बिन्दु सामने आ गया। इसलिए गोली गा पर छेद करती हुई देख पड़ेगी। डब्बेमें बैठे हुए मुसाफिर कहेंगे कि गोली गा ग दिशामें आयी, इसलिए बन्दूक चलानेवाला बा स्थानकी सीधमें रहा होगा।



चित्र ८८

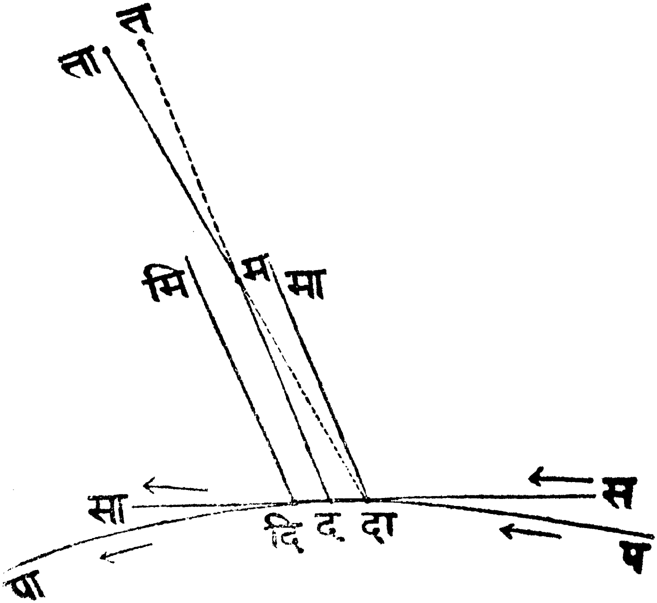
जिस समय पानी बरस रहा हो और बूंदें खड़ी गिर रही हों उस समय यदि मनुष्य छतरी ठीक ऊपर थाँम खड़ा हो तो भीगनेसे बच जाता है परन्तु यदि वह छतरी ठीक उसी तरह थाँमे आगे बढ़े तो वह भीगनेसे बच नहीं सकता क्योंकि उसके चलनेके कारण खड़ी गिरती हुई बूंदें भी उसके मुंहपर तिरछी आती हुई पड़ती हैं। मनुष्यकी चाल जितनी ही अधिक होगी उतनी ही तिरछी बूंद उस पर पड़ेगी। यह भी इसी बातका उदाहरण है।

इसी प्रकार जब प्रकाश दूरदर्शक यन्त्रके भीतर प्रवेश करता है तब उसकी दिशामें परिवर्तन हो जाता है। कल्पना करो कि किसी तारेका यथार्थ स्थान त है और द्रष्टाकी आँख द पर है। यदि द्रष्टा अचल हो और वर्तन (refraction) भी न हो तो तारा द त दिशामें सदैव देख पड़ेगा, चाहे तारेसे प्रकाश द्रष्टाकी आँखमें उसी क्षण पहुँच जाय जिस क्षण तारेसे चलता है या उसके आनेमें कुछ देर लगे।

परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि द्रष्टा द दि दिशामें चल रहा है तो तारा उसको द त की दिशामें तभी देख पड़ेगा जब प्रकाश उसी क्षण द्रष्टाकी आँखमें पहुँचे जिस क्षण तारेसे चलता है। परन्तु यदि प्रकाशके त से द तक आनेमें कुछ समय लगता है तो तारा द त दिशामें कदापि नहीं देख पड़ेगा।

मान लो कि द म उस नलीका अक्ष (axis) है जिसके मादा और मिदि समानान्तर भुज हैं। जिस समय प्रकाश नली में म से अक्ष म द की ओर उतर रहा है यदि उसी समय नली अपने ही समानान्तर द दि की ओर जा रही है और जितनी देर-

में प्रकाश म द दूरी चलता है उतनी देरमें नली द दा दूरीके समान आगे बढ़ती है तो चित्र ८६ की तरह यह प्रकट है कि प्रकाश द पर न पहुँच कर दा पर पहुँचेगा। इससे यह ज्ञात



चित्र ८६

पड़ेगा कि प्रकाश म दा दिशासे आ रहा है और तारा दा म की सीधमें कहीं ता पर है। इस कारण यदि नली चलायमान हो और तारा त पर हो तो वह नलीकी असली दिशामें नहीं देख पड़ेगा वरन् दा म ता दिशामें देख पड़ेगा। अर्थात् तारेका

स्पष्ट स्थान ता होगा जो यथार्थ स्थानसे उसी दिशाकी ओर बढ़ा हुआ है जिस दशामें नली जा रही है। इस प्रकार इन दोनों गतियोंके कारण तारेके यथार्थ और स्पष्ट स्थानोंमें त म ता कोणका अंतर पड़ता है जिसे भूचलन संस्कार Aberration कहते हैं।

यह जानना सहज है कि त म ता अथवा द म दा कोणका परिमाण क्या है क्योंकि म द दा त्रिभुज में

$$\frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}}$$

परंतु द दा पृथ्वीकी उतने समय की चाल है जितने समयमें प्रकाश म दा के समान चलता है। इस लिए द दा और म दा की दूरियोंमें वही अनुपात है जो पृथ्वी और प्रकाशकी गतियोंमें है। परन्तु पृथ्वी प्रति सेकंड १८½ मील चलती है और प्रकाश १८६००० मील चलता है इसलिए

$$\frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}} = \frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{पृथ्वीकी गति}}{\text{प्रकाशकी गति}} = \frac{१८.५}{१८६०००} \text{ के लगभग}$$

$$= \frac{१}{१००००} \text{ के लगभग}$$

यदि भूचलन संस्कारको भू माना जाय तो ज्या द दा=ज्या भू =भू, जब कि भू का मान रेडियनमें हो। ऐसी दशामें

$$\text{भू} = \frac{१}{१००००} \times \text{ज्या म द दा}$$

यदि भू को विकलाओंमें लिखा जाय तो

$$\frac{\text{भू}''}{२०६२६५} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या म द दा} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या त द ख}$$

$$\text{अथवा भू}'' = २०''.६३ \text{ ज्या त द ख}$$

२०″·६३ को भूचलन संस्कारका स्थिरांक (coefficient of aberration) कहते हैं। इसका अधिक शुद्ध मान २०″·४७ है। यदि त द स का कोण ९०° के समान हो तो यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कारका महत्तम मान २०″·४७ होगा।

यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कारके स्थिरांकमें पृथ्वीकी गति एक गुणकके रूपमें वर्तमान है। परंतु पृथ्वीकी गति सदा समान नहीं होती जिस समय पृथ्वी अपने नीचपर रहती है उस समय इसकी गति अत्यन्त तीव्र और जिस समय यह अपने उच्चपर रहती है उस समय इसकी गति अत्यन्त मंद रहती है। इसलिए पहली दशा में भूचलन संस्कारका स्थिरांक २०″·८० और दूसरी दशामें २०″·१३ होता है।

भूचलन संस्कारके कारण सूर्य, तारों और दूरके ग्रहों के भोगांश, शर, विषुवांश और क्रान्तिपर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या विस्तारके भयसे छोड़ दी जाती है। यहाँ इसकी चर्चा साधारण रीतिसे कर दी जाती है:—

जिस प्रकार वार्षिक लंबनके कारण तारा अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक छोटी सी कक्षामें घूमता हुआ देख पड़ता है उसी प्रकार भूचलन संस्कारके कारण भी वह अपने यथार्थ स्थानके चारों ओर एक छोटी सी कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है। यह कक्षा भी क्रान्तिवृत्तके तलके समानान्तर होती है। इसकी कक्षाका आकार भी उसी प्रकार बदलता है जिस प्रकार लंबनके कारण तारेकी कक्षाका आकार बदलता है। जिस समय इसका आकार दीर्घवृत्त की तरह होता है उस समय इसका दीर्घ अक्ष २०″·४७ के समान होता है और लघु अक्ष २०″·४७ × ज्याश के समान होती है जब कि श तारेका शर या विक्षेप हो।

यह स्पष्ट ही है कि तारेका भूचलन संस्कार इसी दिशा-में होता है जिस दिशामें पृथ्वीकी गति होती है परन्तु जिस दिशामें पृथ्वीकी गति होता है उससे ६०° आगे सूर्य रहता है क्योंकि पृथ्वीकी गति भूकक्षाकी स्पर्श रेखाकी दिशा में होती है जो भूकक्षाके अर्द्धव्यास से ६०° का कोण बनाता और सूर्य भूकक्षाके केन्द्रपर रहता है। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि तारेका भूचलन संस्कार क्रान्तिवृत्त के उस बिन्दुकी ओर होता है जो सूर्य से ६०° पीछे रहता है अर्थात् जिसका भोगांश सूर्यके भोगांश से ६०° कम होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव अर्थात् कदम्बपर होता है वह वर्ष भरमें अपने यथार्थ स्थानके चारों ओर एक वृत्त पर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसके अर्द्धव्यासका कोणात्मक मान २०″·४६ होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्तपर होता है वह क्रान्तिवृत्तपर ही अपने यथार्थ स्थान से २०″·४६ आगे और पीछे लालककी तरह आन्दोलन (Oscillation) करता हुआ देख पड़ता है। इस लिए वर्ष भर में कुल अंतर ४०″·६ के समान पड़ता है।

जो तारा किसी और स्थानमें रहता है जिससे उसका शर मान लो श के समान होता है, वह वर्ष भरमें एक दीर्घ-वृत्तपर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसका केंद्र तारेका यथार्थ स्थान होता है, जिसके दीर्घ अक्षका आधा २०″·४६ और लघु अक्षका आधा २०″·४६ ज्या श तथा जिसका तल क्रान्तिवृत्त के तलके समानान्तर होता है।

इसपर बहुत से पाठक पूछ बैठेंगे कि वार्षिक लंबन और भूचलन संस्कारमें फिर अंतर क्या है। इसका उत्तर यह है कि वार्षिक लंबनके कारण तारा जिस कक्षामें घूमता हुआ देख पड़ता है उसका विस्तार तारेकी दूरीपर अव-

लंबित है अर्थात् तारा जितना ही दूर होगा उसका लंबन उतना ही कम होगा जिसके कारण कक्षा का आकार भी छोटा होगा। सबसे निकट वाले तारेको जो कक्षा लंबनके कारण देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्षका आधा ०″·७६ से अधिक नहीं है। परंतु भूचलन संस्कारके कारण तारेकी जो कक्षा देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्षका आधा सदैव २०″·४७ होता है और यह सब तारों के लिए समान होता है। दूसरी बात यह है कि यदि तारा उसी दिशामें हो जिस दिशामें सूर्य है अथवा सूर्यसे ठीक १८०° पर हो तो लंबन का परिमाण शून्य होता है परन्तु भूचलन संस्कारका परिमाण महत्तम अर्थात् २०″·४७ होता है। तात्पर्य यह कि लंबन के कारण तारा सूर्य की ही ओर कुछ हटा हुआ देख पड़ता है परन्तु भूचलन संस्कार के कारण तारा उस विन्दुकी ओर हटा हुआ देख पड़ता है जो सूर्य से ९०° पीछे होता है।

ग्रहोंपर भूचलन संस्कारका प्रभाव दो तरहसे पड़ता है, एक तो पृथ्वीकी गतिके कारण दूसरा ग्रहकी गतिके कारण। यदि ग्रहकी गति पृथ्वी की गतिके समान हुई और उसी दिशामें हुई तो भूचलन संस्कारका अभाव होगा। अन्य दशाओंमें भूचलन संस्कार क्या होगा इसकी गणना अलग अलग सहज ही की जा सकती है।

चंद्रमाकी गति प्रकाशकी गतिकी तुलनामें बहुत कम होती है इस लिए इसके कारण भूचलन संस्कार शून्य के समान समझा जा सकता है। पृथ्वीकी गतिके कारण भी चंद्रमामें भूचलन संस्कार नहींके समान होता है क्योंकि पृथ्वीके साथ साथ चंद्रमा भी वर्ष भरमें सूर्यकी परिक्रमा कर आता है। इसलिए चंद्रमामें भूचलन संस्कारका प्रभाव शून्यके समान होता है।

दैनिक भूचलन संस्कार—पृथ्वीको दैनिक गतिके कारण विषुवत् रेखाका कोई विंदु दिन भरमें २५००० मीलके लगभग चलता है क्योंकि विषुवत् रेखापर पृथ्वीकी परिधि २५००० मीलके लगभग लंबी होती है। अन्य स्थानोंकी परिधि इससे छोटी होती है। इसलिए जब दिन भरमें २५००० मीलको गति होती है तो एक सेकंडमें $\frac{३}{१०}$ मीलकी गति सिद्ध हुई। परंतु पृथ्वी की वार्षिक गति १८½ मील प्रति सेकंड होती है। इसलिए पृथ्वीकी दैनिक गति उसकी वार्षिक गति की $\frac{३}{१०} \div \frac{३७}{२} = \frac{३}{१०} \times \frac{२}{३७} = \frac{३}{१८५} = \frac{१}{६२}$। इस लिए वार्षिक गतिके कारण जितना भूचलन संस्कार होता है उसका बासठवां भाग दैनिक गतिके कारण विषुवत् रेखापर होगा। अन्य स्थानपर इससे भी कम होगा इसलिए यह भी नहींके समान समझ लेने में अनुचित नहीं है।

भूचलन संस्कारका आविष्कार—इसके आविष्कारकी कथा बहुत ही रोचक है। परंतु विस्तारके साथ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्रैडली नामक ज्योतिषी जिस समय अजगर नामक तारा पुंजके तीसरे तारे (γ Draconis) के वार्षिक लंबनकी जांच कर रहा था उस समय उसको जान पड़ा कि इस तारे का शर स्थिर नहीं रहता वरन् वर्ष भर में क्रमानुसार कुछ बदलता रहता है जिसका कारण उस समय तककी जितनी जानी हुई बातें थी उनसे समझमें नहीं आता था। अंतमें वह इस सिद्धान्तपर पहुँचा कि पृथ्वीको वार्षिक गति और प्रकाशकी गतिके कारण यह वार्षिक परिवर्तन सभी तारोंमें होता रहता है—ब्रैडली को इस घटना का अनुभव १७८६ विक्रमीय में हुआ था।

इस प्रकार काल-समीकरण, वर्तन, लंबन, भूचलन-संस्कार इत्यादि नवीन आविष्कारों की मीमांसा सहित त्रिप्रश्नाधिकारका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

❀ इति ❀



अनुक्रमणिका

(अंकों से पृष्ठांक समझना चाहिये)

अनुक्रमणिका

(अंकों से पृष्ठांक समझना चाहिए)

अनुक्रमणिका

(अङ्कों से पृष्ठांक समझना चाहिए)

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	३	मंस्कारकी	संस्कारकी
१२८	११	यह तो	यह
१३०	७	१६' १७·''	१६' १७''·६
१३०	अंतिम	हाती	होती
१३६	१५	रेखा, गणित	रेखागणित
१४४	इन्द्रकेसम्मुख	१६-४७०	१६, ४७०
१४८	२४	विन्हु	विन्दु
१५३	२४	में बाहरी	में। बाहरी
१५६	७	होता	होते हैं
१५७	४	तत्प्रवद्याम	तत्प्रवद्यामि
१६०	अंतिम	बी	बीज
१६८	२०	यस्मिन यस्मिन	यस्मिन् यस्मिन्
१७४	१६	को ज्या	कोज्या
१७४	२४	Hell	Hall
१७६	६ठां स्तम्भ	२५८४	२५४८
१८४	१ली, पंक्ति	गालीय	गोलीय
"	३	$\frac{\pi}{\text{८}}$ — उ	$\frac{\pi}{\text{२}}$ — उ
१८५	५	शीघ्रा द्विशोध्य	शीघ्राद्विशोध्य
१८६	१४	ऋणामक	ऋणात्मक
१८८	१०	चौ थे	चौथे
१६१	२०	प्रोज्मय	प्रोज्मय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९३	६	खनग	खनगा
२०४	११	२४	३०
२१७	१३	५७, ७६, १७, ८२८	१, ५७, ७६, १७, ८२८
२१६	१०	५ व	५ वें
२२१	१	२	३
२२२	४	३३१६	३३६६
२२८	८,६	याम्योत्तरवृत्त या पाताल	पाताल
२३०	७	चुराणा	चुराणा
२३४	१३	(४) में	(४) के
२३६	१८	जाता है क्रम से	जाता है) क्रम से
२४०	४	$\frac{\pi.\text{त.थ}}{\pi.\text{त.त}}$	$\frac{\pi.\text{त.थ}}{\pi.\text{त.ल}}$
२४०	८	$\text{गत}^{२}$	$\pi\text{त}^{२}$
२४२	१	त (१–चकोज्या)	व (१–चकोज्या उ)
२४६	१	$\sqrt{}\text{१} + \text{च}$	$\sqrt{\text{१} + \text{च}}$
२४८	२	$\text{१}^{-\text{३ उ}\sqrt{-\text{१}}}$	$\text{इ}^{-\text{३ उ}\sqrt{-\text{१}}}$
२५०	४	फि' (स)	फि' (म)
२५२	५	$\frac{\text{च}^{४}}{\text{५}}$	$\frac{\text{च}^{४}}{\lfloor\text{५}}$
,,	६	+ (	× (
२५४	१	$\text{ज्या}^{४}\text{म} + \text{२कोज्या२म}$	$\text{ज्या}^{४}\text{म} \times \text{२ कोज्या२म}$
२५८	५	$\left(\frac{\text{च}}{\text{२}} + \frac{\text{च}^{३}}{\text{८}} + \frac{\text{च}}{\text{१६}}\right)$	$\left(\frac{\text{च}}{\text{२}} + \frac{\text{च}^{३}}{\text{८}} + \frac{\text{च}^{४}}{\text{१६}}\right)^{२}$

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५६	४	$\frac{च_{8}}{६}$	$\frac{च^{8}}{६}$
२६३	७	$\frac{च^{8}}{२}$	$\frac{च^{8}}{२}\times$
२६८	११	क्रम से पृथ्वी	क्रम से सूर्य, पृथ्वी
”	”	र वह	रा वह
२६९	२	पर गु	प र गु
२७२	१५	चंद्रमाकी	चंद्रमाका
२७३	१५	म २ म	म, २ म
”	१८	विकल के	विकला के
२७४	१	मज्या २म	ज्या २म
२८०	रेखा	र च,प च,	र च,प च,
२८१	१२	है।	है
२८६	१३	शक त्रि०	शक
२८८	२	न्यकर्णाता	न्यन्त्यकर्णाता
२९०	२०	३०	६०
२९२	१९	स्मताः	स्मृताः
२९६	४	पलों	प्राणों
२९९	४	शंकु की छाया	शंकु की मध्याह्न कालिक छाया
”	८	दिन	दिन मध्याह्नकाल में
३०१	५	ब का स्वस्तिक	बस्वस्तिक
३०७	१६	ग च प	ग च पू
”	१९	पूरस	पूरक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०९	१०	२५७९५२९	२५७६९५२९
३१६	२३	९५°३८'५२'	९५°३८'५३"
३१७	११	१°-०९७५	११°-०९७५
३१८	४	भाजिता	भाजिताः
"	५	भुक्त्यन्तीरोद्धता	भुक्त्यन्तरोद्धृता
३१९	५	विपल	पल

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२४	३	अर	और
३२६	६	सम	समं
"	१२	तदेव	तद्धदेव
३३०	७	स्थलता	स्थूलता
३३७	१५	द्यगणाद्	द्युगणाद्
३४५	६	बत ानहीं	बात नहीं
३५०	१०	अंत	अंतर
३५२	अंतिम	ब्रह्मण	ब्राह्मण
३५३	१६	बहुवचनमें	बहुवचनमें है
३५४	७	सम्पातको	सम्पातके
३७३	१७	प्राक्चाक्रं	प्राक्चक्रं
३७७	२	लोकों में	श्लोकोंमें
३८०	२२	<र भ	<र भ श
३८०	२४	अर्द्धव्ययन	अर्द्धव्यास
३८२	१६	अशांत	अक्षांश
३६१	१	अक्षांश	अक्षांश
३६७	११	ि ज्या	त्रिज्या
४१०	७	छायार्ण	छायाकर्ण
४२०	नीचे से ३ री पंक्ति	कीज्या	कोज्या
४२१	१	विभाज्यासे	विभज्यासे
४२७	६	—चरज्या±नतो	±चरज्या—नर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		क्रमज्या;	त्क्रमज्या
४२८	८	उह	उस
४३१	१९	दक्षिणा	दक्षिण
४३२	८	नतोत्क्रमयज	नतोत्क्रमज्या
४३४	८	२५°'२	२५°२५'
४३५	१८	दृज्या	दृग्ज्या
४३७	९	३४·३८²	३४३८²
"	११	काल	कला
४४१	९	भोगांश	भोगांशज्या
४४७	नीचे से दूसरी पंक्ति	उसी से	उसी के
४४८	६	सायनमेष;	सायनमेष
४४९	१६	३१४	३१४०
४६६	अंतिमपंक्ति	५२°५१'	५२°४१'
४८२	१२	बतलाती	बतलायी
४९६	२०	१८३६	१८९०
४९८	२०	४६४	४६५
५०६	६	ज्या मा + नी)	ज्या (मा + नी)
५१८	६	१५ घड़ी १६ पल	१६ घड़ी १५ पल
५१८	१८	मध्यमा	मध्यम
५२१	१६	१६*सेकंड	३६ सेकंड

*इसके आगे तीसरे और चौथे उदाहरण में १६ सेकंड मानकर जितनी गणना की गयी है उसमें ३६ सेकंड के अनुसार जितना आना चाहिए वही लेना शुद्ध होगा। पाठक कृपया इसका ध्यान रखें।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२१	२४	सेकंड होता	सेकंड पर होता
५२३	१८	क्या	क्या होगा
५२४	१८	१२०	५२१
५२८	४	वतना	वर्तनाङ्क
”	८	अपात	आपात
”	११	ज्याधि	ज्यावि
५२९	५	आयात	आपात
५३०	११	स्पष्ठ	स्पष्ट
५४२	१६,१८	ग्रैडिली	ग्रैडली
५४५	६	घ्रव	ध्रुव
५६३	१७	लार	लरि
५७८	१३	ज्याल	ज्यालु
५९५	२०	द या द	द या दा
६०६	१८	शक्र	शुक्र
६१७	१६	अपनी अपनी	अपनी

सूर्य सिद्धान्त के मध्यम और स्पष्ट अधिकारों के विज्ञानभाष्य पर

विद्वानों की सम्मतियां

ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी 'माधुरी' में लिखते हैं:—

\+ + ×

"मेरे देखने में उक्त सिद्धान्त के जितने अनुवाद आये हैं, उन सब में श्रीवास्तव जी का अनुवाद और विज्ञान भाष्य उत्तम है। × × × जो प्राचीन किंवा नवीन संस्कृत-टीकाओं में नवीन तथा जटिल विषय नहीं सुलझे हैं, उनको आपने आदर्श के समान प्रत्यक्ष रख दिया है। आर्यभट्ट, ब्रह्म गुप्त, लीलावती, वराहमिहिर, और भास्कराचार्य के मंतव्यों के साथ न्यूटन, केपलर आदि के वैज्ञानिक सिद्धान्त भी यथा स्थान, विषय के स्पष्टीकरण के लिये, युक्ति पूर्वक दिखलाये हैं। × × + × × × ज्योतिष के ग्रहगणित-जैसे महादुर्बोध और स्वयं कठोर विषय को मधुर तथा सरल भाषा में, पूर्वापरकी आलोचना करते हुए, लिखकर समझा देना आप ही का कार्य है, जो सर्वथा स्तुत्य एवं हृदयग्राही है। मैं भारत की प्रत्येक पाठशाला में इस विज्ञान-भाष्य के प्रचार के लिये गणित-विद्या-प्रेमियों से शुद्धांतः करण से प्रार्थना करता हूँ।"

× × ×

ता० १७ नबम्बर सन् १९२५

श्रीमान्.........

आपका भेजा सूर्यसिद्धान्त का विज्ञान भाष्य मिला परंतु शरीर अस्वस्थ होने से आपको प्राप्ति-सूचक पत्र भी न लिख सका और पूर्ण रीति से ग्रंथ का भी आलोचन न कर सका। तो भी जहाँ तक देखा है आपका श्रम अवश्य प्रशंसनीय है एवं 'विज्ञानभाष्य' नाम सार्थक है। इसका प्रचार भारतवर्ष के प्रत्येक विद्यालयों में होना परमावश्यक है।

नवीन गणित का विषय सोदाहरण और सोपपत्तिक ही भारतीय प्राचीन गणितज्ञों को संतोषप्रद होता है। इस विज्ञानभाष्य के अंत में पाश्चात्य रीति से सुबच और सुबोध भगणोपपत्ति अवश्य लगा देना चाहिये।

सम्मति—इदं हि सौर विज्ञानभाष्यं भाषा निबन्धनं।
विद्यार्थिभिः पठ्यमानं नूनं व्युत्पत्तय भवेत्॥
प्राचीन मत संदर्भौ नवीन मत संग्रहः।
अन्यद्यथायथं चात्र ग्रन्थकर्त्रा निवेशितम्॥

ह० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

१३ अगस्त १९२५

सुभाशिष; सन्तु

विज्ञान परिषत् ने आपके भाष्ययुक्त सूर्य सिद्धान्त के दो अधिकारों की एक एक कापी मुझे भेजी है। यह शायद आप-ही की कृपा का फल है।

यह भाष्य देखकर और यत्रतत्र पढ़कर मुझे जो खुशी हुई वह बयान से बाहर है। इसे लिखने में आपने बड़ी योग्यता दिखाई है। इस सूत्रमय प्राचीन ग्रन्थ का तत्व समझाने में

आपने ज्योतिष और गणित विषय के अपने अगाध पाण्डित्य का बहुत ही अच्छा परिचय दिया है। इस देश में बहुत ही कम ऐसे ज्योतिषी होंगे जिन्होंने इन विषयों का इतना विशद ज्ञान प्राप्त किया हो जितना कि आपने प्राप्त किया है। इस समय मेरे पास मेरे ही गांव के पं० ताराचरण मिश्र नाम के एक ज्योतिषी बैठे हुए हैं। वे आपकी पुस्तकें देखकर अवाक होगये। उनकी राय है कि इस ग्रन्थ का इतना विशद विवेचन करने वाला और कोई इस देश में शायद ही बिरला हो। मूल ग्रन्थ का अनुवाद तो अच्छा है ही भाष्य आपका सचमुच ही अद्वितीय है। इससे ज्योतिषियों को इस विषय की अनेक अज्ञान बातें मालूम हो सकती हैं।

मैं इस ग्रन्थ के विषयके ज्ञान में बिलकुल ही कोरा हूँ। अतएव सिवा ऊपरी बातों के और कुछ कहने का अधिकारी नहीं। पृष्ट ५ पर श्लोक ९ के "कालत्रे दोऽत्रे केवलम्" का मतलब सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि यह शास्त्रतो वही है जिसका ज्ञान किसी समय पहले सविता ने ऋषियों को कराया था। पर बीच में लुप्त होगया था। सो अब फिर इतने दिनों पर युगों के बाद मैं उसका प्रकटीकरण पूर्ववत् करता हूं।

भाष्य की हिन्दी खूब गँठी हुई होनी चाहिये। पृष्ठ १० पर "पस तोलने की एक इकाई का भी नाम है" यह वाक्य यदि इस तरह लिखा जाता "तोलने की एक एकाई का भी नाम पस है" तो वाक्य में वैशद्य आजाता।

चन्द्रशेखर सामन्त का सिद्धान्त दर्पण न देखा हो तो एक दफे उसका सैर कर आइयेगा। शायद उसमें आपको कुछ नवीनता मिले। मेरी कापी और संग्रह के साथ, ना० प्रा० सभा के पुस्तकालय में चली गई। जर्मनी में छपे हुए सूर्य-सिद्धान्त

की एक अच्छी कापी मेरे पास था। पता नहीं वह कहाँ गई। उसकी अंग्रेजी भूमिका बड़े महत्व की थी।

आपको अपने भाष्य के लिए विषय (Introduction) के तौर पर भी कुछ लिखना चाहिये। ज्योतिष शास्त्र या खगोल विद्या की उत्पत्ति विकाश का कहां किस तरह हुआ, यह उसमें दिखाना चाहिये।

म० प्र० द्विवेदी।

सूर्य सिद्धान्त

संस्कृत ग्रन्थ सूर्य्य सिद्धान्त के प्रथम और द्वितीय अध्यायों का भाषान्तर राष्ट्रभाषा हिन्दी में पृथक पृथक दो भागों में हमारे पास आलोचना के लिये आया है। पृष्ठ संख्या ८+११६+८ प्रथम भाग मध्यमाधिकार में और १०+२०४+८ द्वितीय भाग स्पष्टाधिकार में है। प्रस्तावना नहीं है। छपाई साधारण है। मूल्य मध्यमाधिकार का ॥=) एवं स्पष्टाधिकार का ॥।) है, जो लेखक के परिश्रम के विचार से कम समझ पड़ता है।

सूर्य्य सिद्धान्त से ज्योतिष शास्त्र में प्रामाणिक ग्रन्थ का राष्ट्रभाषा हिन्दी में भाषान्तर करण का भार विज्ञान परिषद् इलाहाबाद ने ग्रहण करके एक परम प्रशंसनीय कार्यारम्भ किया है।

मध्यमाधिकार में विषयारम्भ से क्रान्तिवृत्त के उत्तर या दक्षिण ग्रहों के गति पर्य्यन्त का वर्णन है और स्पष्टाधिकार में ग्रहों के शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात से लेकर योग तिथि अर्द्धतिथि और करण तक का कथन आया है।

लेखक ने मूल का प्रति श्लोक मोटे टाइप में देकर इसके नीचे हिन्दी में सरल अनुवाद करके अपना विज्ञान भाष्य लिखा है। विषय के गहन होने से उसका केवल भाषान्तर द्वारा

समझना कठिन है। एतदर्थ लेखक ने विज्ञान भाष्य द्वारा इसको बहुत कुछ सुगम कर दिया है। ग्रहों की गति तथा उनके मन्दोच्च और शीघ्रोच्च और पात का समझना कुछ कठिन है। अनुवादक ने इन्हें गणित द्वारा अच्छी तरह से समझाया है। आवश्यकतानुसार परिलेख (Diagram भी दिये गये हैं। इससे विषय समझने में सरलता मालूम पड़ती है। दिनपति मासपति तथा वर्षपति की उपपत्ति जानने के नियम और ग्रहों के वक्री और मार्गी होने के कारण मनोरञ्जक मालूम होते हैं। गणित की जिन रीतियों का उपयोग इन दो भागों में हुआ है, उनके कुछ अङ्कों को देखकर मन ऊब उठता है (उदाहरणार्थ संबत् १९७९ की बसन्त पञ्चमी तक सृष्टि के कितने दिन बीते। यह विषय देखने योग्य है। साथ ही साथ सरल और व्यवहारिक रीतियाँ भी दी गई हैं। हमारे आचार्य्यों के सिद्धान्तों में मतभेद, योरूपीय ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त और आधुनिक ज्योतिष शास्त्र की तुलनात्मक चर्चा की गई है, जिससे ग्रन्थ में व्यापकता व रोचकता आगई है और जिन बातों के समझने में हमारे आचार्य्यों को कठिनता बोध होती थी वे सुगमतापूर्वक समझ में आजाती हैं।

इन भागों के पठन से यह भी ज्ञात होता है कि हमारे आचार्य्य समय समय पर ग्रहों के वेध लेते थे, और कई आचार्य्य भविष्य में भी वेध लिये जाने का आदेश दे गये हैं।

कुछ गाणित्य सिद्धान्त जिनका उपयोग इस पुस्तक में किया गया है ऐसे हैं जो केवल हिन्दी पढ़े लिखे ज्योतिष प्रेमियों के समझ में शायद न आसके। अच्छा होता यदि जिनका उपयोग ग्रंथ में हुआ है ऐसे भूगोल और गणित सम्बन्धीकठिन वैज्ञा-

निक शब्दों की एवं कुछ ज्योतिष सम्बन्धी ऐसे ही शब्दों की व्याख्या पुस्तक के आरम्भ में दी गई होती।

ऐसे ग्रन्थों में शुद्धि पत्र की लम्बाई चौड़ाई जितनी कम हो उतना ही अच्छा होता है।

हमारा मत है कि विज्ञान परिषद् ने अपने कार्य में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है और हम आशा करते हैं कि हिन्दी ज्योतिष शास्त्र के प्रेमी इस पुस्तक से लाभ उठायेंगे और परिषद् को उत्साहित करेंगे।

यह ग्रन्थ परीक्षाओं के पाठग्रन्थ बनाये जाने के योग्य समझ पड़ता है। हम ऐसा उपयोगी एवं ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ लिखने पर बाबू महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव को हृदय से धन्यवाद देते हैं। ऐसे ग्रन्थों से हमारी हिन्दी का गौरव है।

शुकदेवविहारी मिश्र
पता—दीवान छतरपुर
२८—८—२५

सूर्यसिद्धान्तः

(स्पष्टाधिकारान्तः)

श्रीयुत महावीरप्रसाद श्रीवास्तव-रचित भाषानुवाद विज्ञान-भाष्याभ्यां समलङ्कृतः।

अत्रानुवाद कृता ज्यौतिषसिद्धान्तीय परिभाषाऽनभिज्ञानामपि यथा प्रत्येक पदार्थावबोधोऽक्लेशेन जायते तथा प्रथमं सुस्पष्ट-"हिन्दी"-भाषया ग्रन्थग्रन्थिं मोचयित्वा तत्पुरस्तात् विज्ञानभाष्ये नूतनातिचमत्कारकरवासनाविवरणम्, प्रकरणप्राप्तापरपुस्तकीय-पद्यप्रमाणम्, यत्र तत्र गणितोदाहरणनिवेशनम्, भ्रान्तान्याचार्य-मतश्चौल्यप्रकटनम्, सङ्क्षतः प्राचीनाचार्यमतसमालोचनम्,

पाश्चात्य-गणकाभिनवाविष्कृतविषयोपपत्तिरीतिप्रदर्शनम्, चैतेषां विषय रत्नानां तथोपनिवेशो विहितोऽस्ति यथैतद्दर्शनेनापठितांग्लगणितानामपि जनानांमांग्लगणित ज्ञान तृष्णा निवर्तते, प्रवर्तते चानास्वादित ज्यौतिः सिद्धान्तरसानामपि मानसे सिद्धान्त सुधाऽऽगाधधाराप्रवाह इति नाधिकोक्तिः।

तथाचात्र भाष्यरचयितुर्बहु दर्शितित्वमप्रतिहतप्रज्ञावत्वञ्च स्फुटमुद्योत्यते।

श्रीगङ्गाधर मिश्र
१०—६—२५

श्रीमान् विज्ञान परिषद् के मन्त्री महाशय,

तीस वर्ष हुये मैंने "ज्योतिषमरीचिमाला" नामक ग्रंथावली प्रकाश करने का संकल्प किया जिसमें प्राचीन ज्योतिष शास्त्र की जिसके अन्तर्गत गणित भी है, झलक भाषा में दिखाई जाय। उस माला के दो अंक अंकगणित (लीलावती) और वीजगणित प्रकाशित भी हुए। कई कारणों से शेष अंक जिनमें एक सूर्यसिद्धान्त भी था प्रकाशित होने से रह गये। संस्कृत ग्रन्थों का भाषानुवाद प्रकाशित करने में मेरा अभिप्राय यही रहा है कि आजकल के लोग अपने प्राचीन शास्त्रों को देखें और उनका गौरव समझें। ऐसे काम में जो कोई हाथ बंटाता है तो कितना आनन्द होता है। सूर्यसिद्धान्त भाषा विज्ञानभाष्य समेत का एक भाग बाबू महाबीरप्रसाद जी ने मुझे दिखाया था। अब आपने दोनो भाग एक अपील के साथ भेज दिये। मेरे पास जो सामग्री थी, मैंने बाबू साहेब को दे दी। भाष्य अत्यन्त विशद है ईश्वर हमारे देसी भाइयों की आँखें खोल दे और वह समझें कि भारत ही जगद्गुरु है।

किमधिकम्
आपका शुभचिन्तक
श्री अवधवासी सीताराम

The Leader of September 26, 1925 says:—

Suryasidhanta is a standard work and to know Hindu astronomy without its knowledge is inconceivable. But being very concise and abstruse and there being no good commentary on it, it is beyond the comprehension of ordinary student. Babu Mahabiraprasada's commentary, therefore supplies a long-felt want. The writer, after giving the original slokas and their Hindi translation, explains the rules according to the ancient Hindu theories and the modern astronomy with copious illustrations. Comparative tables of various calculations by diffrent authoritis have also been given. Quotations from the works of ancient Hindu astronomy show how astronomy progressed in India up to the sixteenth century and how it has been neglected since then. The author has also tried to show how our astronomy differs from that of Greece and Modern Europe. The copernian theory and the laws of Kepler and Newton have been explaind as well as other modern discoveries. The book should prove useful to all students of astronomy.

॥ इति ॥